प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिका उपोद्घात.

.दित हो कि इस ग्रन्थमें प्रथम, जैनी किस सबबसें कहेजाते हैं? और जैनी होके
कों क्या क्या करना चाहियें? वो अधिकार है. उसपीछे मार्गानुसारीका, समकि-
श्रावकके बारह व्रत और साधुके मार्गका अधिकार, चौदह गुणस्थानकका स्व-
कर्म कितने हैं उन्होंकी संख्या, कर्मकी प्रकृति कितनी है? कर्म किसतरहसें
हैं? कर्म क्या पदार्थ है? कर्म क्या फल देते हैं? कर्म क्या करनेसें नाश होते
र्म नाश करनेका क्या उपाय है? गृहस्थ धर्म, पूजा भक्ति और प्रभुजीका किस
बहुतमान करना? किस तरह गुणग्राम करना? क्या क्या भावनाएं भावनी?
देवद्रव्य भक्षणसें, ज्ञानद्रव्य भक्षणसें और साधारणद्रव्य भक्षणसें क्या नुक-
होता है? वो और उसी मतलबकी कथाएं, धर्मप्रवृत्तिमें शास्त्रके आधार और
पत्रांक सहित विविध प्रकारके प्रश्नोत्तर, ध्यानके स्वरूप, प्रतिक्रमणके हेतु, और
शुद्धि किस प्रकार की जाय? विसीके चिंतवन इत्यादि दर्शायें हैं. तदनंतर
वक्त क्या क्या करकें संथारा करना? उसका स्वरूप, और रात्रिमें सोनेके
का विधि, प्रतिष्ठा, दिक्षादिके मुहूर्त्त वगैरः वस्तुओंके स्वरूप बतलाया है कि
आत्माके हितकर्त्ता हैं वो अनुक्रमणिका अवलोकन करनेसें विदित हो जायगा.

प्रिय पाठक महाशय! इस ग्रंथकी रचना करनेमें पेस्तर मेरा दिल प्रवृत्त न
लेकिन मेरे परमप्रिय मित्र रायचंदभाइ उदेचंदजी आदिनें मुझकों बहुतसी
जिससें मेरे दिलमें आया कि-मेरेमें शास्त्र रचनेकी सामर्थ्यता तो नहीं
पढनेके शुरूमें कका घूंटते हैं और पीछे अभ्याससें करकें वे
हैं, वैसें मैंभी इन हेतु भाइयोंकी प्रेरणा है तो थोडा
जो वार्त्ता जिस पत्रमें होय उस नोंधके साथ जाहिर
समजमें लेना सुगम हो पडेगा, और मुजकोंभी यह कि-
करनेसें प्रमादका संग छूट जायगा; फिर शास्त्रकी पढी हुइ
आ जायगी-ऐसा विचार करकें जिस जिस समय जो जो
, या मेरे पास मेरे धर्मस्नेही बैठते थे उन्होंने जो जो प्रश्न किये
दाखिल किये हैं, इसी सबबके लिये इस पुस्तकमें क्रमका

इस ग्रन्थकी, मुख्यतासें तो जैनबान्धवोंके हितार्थ रचना है; तदपि इस ग्रन्थमें अन्य धर्मकी निंदाके शब्द किसी जगहपर नहीं है; किन्तु इस पुस्तकमें मार्गानुसारीके गुण वगैरः कितनीक आत्मिक वातें है कि जो कुछ धर्मवालोंको पसंद पडें और उपयोगी होवै वैसी सामिल रक्खी गइ हैं; इसीसें अन्य धर्मवालोंको भी मध्यस्थ दृष्टि रखकर सच्चा क्या है ? और झूँठा क्या है ? वो ध्यानमें लिया जावे. और इस बाबतका शोच विचार करकें यह किताब पढी जावै, या वे पढ लेवें तो उन्होंकोंभी जरूर अत्यंत लाभ–फायदा प्राप्त होवैगा. अगर तो कोइ कोइ वात या बाबत समजमें न आ सके तो उस संबंधमें मुझकों प्रश्न लिखें भेजे जायेंगे तो बेशक मैं उन्का योग्य खुलासा विदित करुंगा.

शुरूमें यह पुस्तक बनानेके वक्त मेरा छपावानेका ईरादा बिलकुल न था; परन्तु मेरे प्रिय स्वदर्शनी और अन्यदर्शनी मित्रोंकी प्रेरणासें छपवाकर प्रसिद्ध करनेका समय सानुकूल हुवा.

इस पुस्तकके बहुतसें खरीददार हैं और दूसरेभी बहुत खरीदनेवाले उ- ... होनेका संभव है, उसीके लिये बहुत नकल छपवानेके खर्चमें पेस्तरसेंही पैसे- ... मदद देकर आज तक गुजराती भाषामें तीन आवृत्ति छपकर बिक चुकी हैं और ... हिंदीभाषामेंभी इसीतरह छपवानेकी उत्सुकतासें मकसुदाबादवाले रायबहादुर ब ... साहबकी भव्य जीवके हितार्थ छपवानेकी इच्छा हुइ और बाबु साहबने मुझकुं फरमाया उससें मेने बाबुसाहबकी तर्फसें यह किताब छपवाइ.

मेरी लिखी हुइ गुजराती किताब छपवानेमें मेरे मित्र कुंवरजी आणंदजी भावनगर निवासीने बहुतसी मदद दीथी, कितनीक जगह मेरे लेखके हस्तदोषका भी वे सुधारा करकें छपवानेके लिये भेजा करते थे और [उन्होंने] उसके लिये प्रशंसनीय महेनत लीथी; वास्ते मै उन्ह महाशयका उपकार मानता हुं; क्युं कि गुजराती भाषाका [यह] पुस्तक सुधारा गयाथा तो उसपरसें यह हिंदिभाषाका ठीक बनानेमें आया.

पुनः यह पुस्तक बनानेमें मेरी शक्ति प्रफुल्लित करनेवाले मेरे सबसें पेस्तर उपकारी पुरुष थे कि जिनका मैं कुछ वर्णन करता हुं:–मैं जब आठ वर्षकी उमरका हुवा तब अहमदाबादवाले शाह ठाकरसी पुंजाभाई कि जो भरुचमें दफ्तरदार थे. उन्होंका मेरेपर बडा प्यार था और उन्होंने मुजकों हमेशाः नियम धारण करनेका शिखाय

और पोषध वगैरः करनेका अभ्यास करवाया. उस दिनसें मेरी स्वधर्मपर विशेष अभिरुचि–प्रीति उत्पन्न हुइ.

पीछे मेरी चौदह वर्षकी उंमर हुइ उस वक्त श्री हुकम मुनिजीका समागम हुआ, तो उन्होंनें मुझकों आगम सार नवतत्त्वके छूटे बोल सिखाये, कितनीक अध्यात्मिक बातें भी एकान्तमें समजा दी, और सूत्र पढने–वांचनेकी छूट्टी बतलाइ, जिस्सें मैंनें बहुतसें ग्रंथ बहुत वक्त वांच लिये उससें मुझको स्याद्वाद मार्गकी श्रद्धा हुइ.

कुछ समयके बाद श्रावककों सूत्र पढने मुनासिब ही नहीं हैं ऐसा मुझकों विदित हुआ, और श्री हुकम मुनिजीका बताया हुआ एकांत मार्ग जैनशैलीके आगमोंसें विरूद्ध कथनवाला समजनेमें आया, उससें संवत १९२१ की सालमें मैंने श्री हुकममुनीजीका प्रसंग छोड दिया.

तत्पश्चात् पंजाबी तपस्वीजी साहब श्री मोहनलालजी और मुनिमहाराजजी साहब बुटेरावजी महाराजका प्रसंग हुवा, जिससें उन्होंके पाससें मैंनें स्याद्वाद मार्ग समज लिया, और श्रावकके बारह व्रत अंगीकार कियें, और कितनीक बातोंका बोधभी हुआ.

उस बाद संवत १९४२ की सालमें मुनीमहाराजजी श्री आत्मारामजी साहबजीकी मुझकों भेट हुइ और उन्होंके प्रसंगसें ज्यादे बोध प्राप्त हुआ.

संवत १९२८ की सालके बाद मैंने व्यापारकी उपाधि कमती कर डाली, उससें शास्त्रावलोकनकी उत्तम तक हाथ लगी, उसमें श्री कलिकालसर्वज्ञ हेमाचार्यजी महाराज, श्री हरीभद्रसूरीजी और न्यायशास्त्रपारंगत श्रीमद् यशोविजयजी वगैरः अनेक आचार्यजी और महोपाध्यायजी आदिके बनाये हुवे ग्रंथ वांच लिये, जिससें अच्छा बोध हुवा. कहनेका तात्पर्य यही है कि मेरेमें यह पुस्तक बनानेकी जो कुछ शक्ति प्राप्त हुइ सो सब उपकार उक्त महान् पुरुषोंकाही है, और उन्हीकाही आभारी–ऋणी हुं कि जिसका बदला देनाभी दुर्लभ है.

इस पुस्तककी गुजराती प्रतके २०५ पत्र तक आचार्य महाराजजी श्री आत्मारामजी महाराजजीने तपासकर शुद्ध कर लिये थे, और पीछेके विभागके पत्र उन्हीं महात्मनजीकों मैं भेजनेवाला था; मगर अफशोषका मुकाम है कि उतने वक्तमें उन आचार्यजीका स्वर्गवास हो गया; उससें मनका संकल्प मनहीमें रहगया. बस इतनी बात मेरे उपकारी महाशयोंकों निवेदन करके मै नमस्कार करता हुं.

अब इस पुस्तकके पढनेवाले साहबोंसें मेरी अंतिम प्रार्थना है कि यह पुस्तक मैंने बालखेलके जैसा बनाया है, उसमें कुछ भी भूल चूक हो गइ हो तो उसें आप कृपालुजन सुधारकर पढनेकी तस्दी लेवें और वो भूल मुझकों विदित होनेके लिये दयालुतासें लिख भेजें कि जिससें वो भूल सुधर जाय. अलम्.

भरुचबंदर
संवत १९६५
प्रथम श्रावण वद बीज

आप स्वधर्मियोंका कृपाभिलाषि.

अनूपचंद मलुकचंद.

अठारह दूषण निवारककी भूमिका.

इस ग्रन्थमें प्रथम आस्तिक मतकी सिद्धता वतला करकें नास्तिक मतका खंडन किया गया है, उससें पाठक महाशयोंकों यह पुस्तक पढनेसें आस्तिकमतकी दृढ श्रद्धा हो सकेगी. तत्पश्चात् अठारह दूषण सहित जीव हैं उसका वर्णन किया गया है और उन्ह दूषणोंसें क्यौं करकें लिप्त हुआ जाय ? अगर क्यौं करकें मुक्त हुआ जाय वोभी वतलानेमें आया है. उक्त बावतोंका स्वरूप किसि ग्रन्थमें अलग दर्शाया गया न होनेके सवव, कितनेक धर्मप्रिय बान्धवोंकी प्रेरणासें मैंने विविध प्रमाणिक शास्त्रोंके आधार युक्त भव्यजीव हितार्थे यह पुस्तक लिखा है. पिछाडीके विभागमें जैनसमुदायका कैसे सुधारा होय उसका वर्णन किया गया है; तथापि मेरी मतिके दोषसें करकें कभी कुछ शास्त्र विरुद्ध लिखा गया हो तो परमगुणग्राही पाठकगणकों मेरी नम्र प्रार्थना है कि शास्त्र देखकर शुद्ध करनेकी कृपा करें.

इस ग्रन्थका कितनाक गुजराती लिखान आचार्यजी श्रीमान् विजयानंदसूरिजी महाराजजीके शिष्यानुशिष्य परमपूज्य मुनि महाराज श्री हंसविजयजी महाराजने संशोधन कर सुधार लिया था, और कितनाक लिखान शुद्ध करनेकी महेनत ले कर अहमदावाद निवासी स्वधर्मभ्राता धर्मज्ञ हीराचंद ककलभाइ शाहने सुधार लिया था जिस्सें हिंदि भाषामें सुगमता प्राप्त हुइ; वास्ते मैं वे दोनु महाशयोंका उपकार मानता हुं. पुनः मुझकों जिन जिन महाशयोंने सम्यक्त्व बोध किया है, और श्रीमान् हरिभद्रसूरीजी वगेरः तत्वज्ञ आचार्य महाराजजीके ग्रंथावलोकनसें करकें जो विमल बोध हुवा है कि जिससें यह ग्रन्थ लिखा गया—वास्ते वो तमाम उपकार उन्हीं महान् पुरुषोंका है. महाशय ! इसमें किसी समज फेरसें श्री वीतरागजीकी आज्ञा विरुद्ध जो कुछ लिखा गया हो तो मैं त्रिविध मिच्छामिदुक्कडं देता हुं. शंवः

प्रश्नोत्तररत्नचिन्तामणिकी अनुक्रमणिका.

अठाहर दूषण निवारककी अनुक्रमणिका.

दुगंछा

श्री विश्वेश्वरवन्दे.

श्री प्रश्नोत्तर-रत्नचिन्तामणि.

---

१ प्रश्नः—जैनी किस लिये कहे जाते हैं?

उत्तरः—जिनराजके सेवक अर्थात् श्री जिनेंद्र महाराजके वचनरुपी अमृतका पान करनेवाले हैं उस सवबसें जैनी कहे जाते हैं?

२ प्रश्नः—जिन वो कौन हैं?

उत्तरः—राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, काम अज्ञान, रति, अरति, शोक, हास्य, जुगुप्सा इत्यादि भावशत्रुओंकों जीतनेवाले हो सोही जिन है.

३ प्रश्नः—पूर्वोक्त रागद्वेषादि किसने जित लिये हैं?

उत्तरः—तीर्थंकर और सामान्य केवलीओंने.

४ प्रश्नः—तीर्थंकर वो कौन हैं?

उत्तरः—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकारुप चतुरविध संघकी स्थापना करके धर्म-तीर्थ प्रवर्त्ताकर अनेक भव्य जीवोंकों संसार समुद्रसें पार करते हैं वोही तीर्थंकर कहेजाते हैं

५ प्रश्नः—तीर्थंकर और सामान्य केवलीमें क्या तफावत है?

उत्तरः—स्वयमेव बोध पा कर सर्व जीवोंकों धर्मोपदेश देकें तार दें वो तीर्थंकर, और पूर्वोक्त तीर्थंकरका धर्मोपदेश अंगीकार करकें केवलज्ञान प्राप्त करें वो सामान्य केवली.

६ प्रश्न—सिद्ध हुवे सामान्य केवली और तीर्थंकरमें क्या तफावत है?

उत्तरः—सिद्धमें तो दोनू समान हैं, कुच्छ तफावत नहीं, उनकों किसी दिन पुनः संसारमें आनेका नहीं और शरीरसें रहित हैं?

७ प्रश्नः—वर्त्तमान समयमें कोइ तीर्थंकर हैं?

उत्तरः—वर्त्तमान कालमें इस क्षेत्रकी अंदर कोइ तीर्थंकर नहीं हैं. महाविदेह क्षेत्रमें हैं; मगर वहां जानेकी अपनेमें शक्ति ताकत नही हैं.

८ प्रश्नः—तीर्थरक्षक देवताओंकी मददसें वहां जा सके या नहीं? कोइ आगेके वक्त में जाकर आया हो तो उनके नाम जाहिर करो.

उत्तरः—स्थुलीभद्रजीकी भगिनी यक्षानें अपने भाइ श्रेयकको पर्यूषण पर्वमें शक्ति रहित होनेपरभी पोरसी, साढपोरसी, आदि पच्चख्खाण करार्के दिनभर उपवास कराया, श्रेयक क्षुधाकी पीडा झुककर उसी दिन मर गया यक्षाकों खेद प्राप्त हुवा. ऋषिघातका प्रायश्चित लेनेकों संघके पास गइ. शुद्ध भावसें प्रेरणा की हुइ होनेसें संघने प्रायश्चितकी ना कही, यक्षा इससें संतुष्ठ न हुइ ओर श्री सिमंधरस्वामीके पास उसका खुलासा पूंछ आनेका आग्रह कीया, शासनदेवीकी सहायता-मददसें यक्षा श्री सिमंधरस्वामीके पास गइ. भगवान् श्री सिमंधरस्वामीजीने भी प्रायश्चित न दीया; मगर चार चूलिकाएं सुनाइ. यक्षानें वै चार चूलिकाएं संघके आगे कह बतलाइ. संघने आचारांगजी और दशवैकालिकजी सूत्रमें उनकी योजना की. जो चार चूलिकाए सांप्रत समयमें (अबी) भी भावना, विमुक्ति, रति कल्प और विचित्रचर्या ये नांवसें पूर्वोक्त दोनू सूत्रोमें विद्यमान है.

पुनः कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजीने खुद कितने भवके पश्चात् (मैं) मोक्षगति पाउंगा, वो जाननेके लिये शासनदेवीकों श्री सिमंधर स्वामीके पास भेजीथी इत्यादि अनेक दृष्टांत मोजूद है.

९ प्रश्नः—तीर्थंकरकों देव किस लिये मानने चाहियें?

उत्तरः—दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुगंछा. काम, मिथ्यात्व, अज्ञान, निद्रा, अव्रत, राग और द्वेष-यह अठारह प्रकारकें दूषण मनुष्य, तिर्यंच, नारकी और देवताओंमें रहे हुवे हैं. तीर्थंकर देवमें उक्त कथित एकभी दूषण नहीं होता है, जंन्म मरण पुनः करनेका नहीं होता है, सर्वज्ञ है, धर्मका उपदेश करते हैं, अनेक भव्यजीवोंकों तारते हैं. फिर उन्होंके फरमाये हुवे आगम श्रवण करै वो अपने आत्माका कल्याण होने रूप उपकारभी उन्होंकाही है. वास्ते उन्होंकों देव मानना.

१० प्रश्नः—अन्यमतावलंबी जिनकों देव मानते हैं तिनकों अपनभी देव माने या नहीं?

उत्तरः—पूर्वोक्त अठारह दूषणोंसें रहित हो तो उन्होंकोंभी देव मान लेवै तो. किंचित्भी दूषण नहीं.

११ प्रश्नः—अन्य देव दूषण युक्त हैं ऐसा क्यौं कहा जाय?

उत्तरः—उन्होंके चरित्र, मूर्तियें और (उन्हीके) शास्त्रोंसें दूषण सिद्ध होतें हैं. तो फिर देव क्योंकर माने जाय?

१२ प्रश्नः—तीर्थंकरदेवने आगम लिखे हैं या और किसीने लिखे हैं?

उत्तरः—तीर्थंकरदेवने शिष्योंकों सुनाये, शिष्य संपूर्ण ज्ञानवान् हुवे. स्मरणशक्ति तीव्र होनेसें श्री महावीर स्वामीजीके निर्वाण पश्चात् ९८० वर्ष तक उन्होंनें मुखपाठपर रक्खे और पढाये, दिन दिन यादशक्ति कम हो जानेसें देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने लिखनेका प्रारंभ किया.

१३ प्रश्नः—अगले आचार्य महाराजाओंनें क्यौं नहीं लिखवाये?

उत्तरः—मुनिमाहाराज आरंभके त्यागी हैं. लिखनेमें आरंभ होवै वो दोषसें डरकर नहीं लिखवाये.

१४ प्रश्नः—देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण आरंभसें क्यौं नहीं डरें?

उत्तरः—आपने ज्ञानचक्षुसें देखा कि अव पुस्तक नहीं लिखावेंगे तो सबकी स्मरणशक्ति हीन हुइ होनेसें सर्व शास्त्रका लोप हो जायगा और बडा दूषण प्राप्त होगा. इस लिये अपवाद सेवन करकेंभी पुस्तक लिखवानेका प्रारंभ किया. यह अधिकार वृहत्कल्पकी भाष्यमें स्फुटपनेसें मौजूद है.

१५ प्रश्नः—वै आगम किनके पाससें सुनने चाहियें?

उत्तरः—गुरुमहाराजके पाससें सुनने चाहियें.

१६ प्रश्नः—गुरुमहाराज किनकों मानने चाहियें?

उत्तरः—जो गुरु पापसें डरें, सत्योपदेश देवें, हिंसा, असत्य, चोरी, स्त्रीगमन और धन वगैरः परिग्रहके त्यागी होवें, निरंतर शास्त्राध्ययन करते होवै उन्हीकों गुरु मानने चाहियें, और उन्हीके मुखद्वारा धर्मोपदेश सुनना चाहिये.

१७ प्रश्नः—पूर्वोक्त सब गुण न हो; मगर शास्त्रोपदेश करजानते हो तो उनके पाससें धर्म सुननेमें क्या हरकत है?

उत्तरः—उपदेश करनेवाला मनुष्य उत्तम गुणवाला हो, तभी श्रोताओंके मनपर

अच्छी असर कर सक्ता है, और आपके उत्तम गुणोंकी छाप सामनेवालेके हृदयमें पाड सक्ता है; परंतु जो उपदेशकही गुणहीन हो तो "परोपदेशे पांडित्यं" जैसा होता है, आप मिथ्या डोल धारण करकें भवभ्रमण वढाते जाते हैं और श्रोताजन अपना आत्मा सुधार सक्ते नहीं; सबब कि गुरु कहते हैं मगर उन्हीसें पालन किया जाता नहीं है, तो अपन किसतरहसें धर्म पालन कर सके? ऐसा मनमें आनेसें लाभ हांसिल नहीं होता है.

१८ प्रश्नः—यत्किंचित् सारभूत धर्मतत्त्व क्या है सो कहो?

उत्तरः—प्रथम तो धर्मकी योग्यता करनी.

१९ प्रश्नः—धर्मकी योग्यता किस रीतिसें हो सके?

उत्तरः—मार्गानुसारीके गुण पैदा करनेसें धर्मकी योग्यता हो सके.

२० प्रश्नः—मार्गानुसारीके गुणका विवेचन करो?

उत्तरः—प्रथम न्यायविभव यानि सब प्रकारके व्यापारमें न्यायपूर्वक वर्त्तन चलाना, अन्याय छोड देना, नौकरी करता हो तो मालिकने सुपरद किये हुवे कार्यकी अंदरसे पैसा नहीं खा जाना, लांच-रिस्वत नहीं खानी, कमअकलवाले मनुष्यकों ठगलेनेका प्रयत्न नहीं करना, व्याजवटा करनेवालोंकों याद रखना चाहियें कि सामनेवालेकों ठगकर व्याजके ज्यादे पैसे नही लेना, मालमें भेलसेल करकें नहीं बेचना, सरकारी नौकरी करनेवालोंकों मुनाशिव है कि अफसरोंकों प्यारे होनेके लिये लोगोंक उपर कायदेविरुद्ध जुल्म नहीं गुजारना, मजदूरी या कारीगिरीका धंधा करनेवालोंकों योग्य है कि ठहराये हुवे दाम लेकें वरावर काम करना-दिलमें चोरी रखकर काम नहीं करना, ज्ञाति या पंचोंमें शेठाइ करनेवालोंकों योग्य है कि आपसें विरुद्ध मतवालेकों द्वेषबुद्धिसें गैरव्याजवी गुन्हागार नहीं ठहराना, किसी मनुष्यने अपना कुच्छ विगाड किया हो वो द्वेषसें उसके उपर झूंठा कलंक नहीं धरना या उसकों नुकसान नहीं करना, किसीकों नाहक अपराधी-दोषी नहीं बनाना, धर्मगुरुके व्हाने-मिससें पैसे लेनेके वास्ते धर्ममें नहीं हो वो वात नहीं समझानी, अथवा सेवककी स्त्रीके साथ अयोग्य-नालायक काम नहीं करना, धर्मानिमित्तसें पैसा निकलवाकर अपने घरका-

ममें खर्च नहीं देना, धर्मसंबंधी कार्यमें खर्च करनेके वास्तेभी झूंठी गवा-साक्षी पूर कर पैसा नहीं लेना, धर्मकार्यमें कुच्छ फायदा होता हो तो उसके बदलेमें मनमें शोचना कि अपन धर्मके लिये झूंठ बोलते हैं–अपने कामके लिये नहीं बोलते हैं वास्ते उनमें दोष नहीं, ऐसा समजकर उलटासूधा करना वोभी अन्याय है. जिनमंदिर अगर उपाश्रयमें प्रभावना होती हो वो एकसें ज्यादे वक्त लेनी वोभी अन्याय है. जिनमंदिर अथवा उपाश्रयके कार्यभार करनेवालोंकों उस खातेके मकान अपने खानगी कार्यमें नहीं वापरना. या उस खातेके मनुष्यद्वारा खानगी कार्य करवाना नहीं. कोइ मनुष्य ज्ञातिभोजन कराता हो और उसके साथ कुच्छ तकरार वा अदावत हो, उस्सें उनकी भोजनसामग्री बिगाडनेके इरादेसें लढाइ खडी करकें, पकवान्न वगैरः चाहिये उस्सें ज्यादे लेकर बिगाड करवाना, एकसंप करकें ज्यादे खाजाना और भोजनसामग्रीमें टोटा पडे वैसीही युक्तियें करनी वोभी अन्याय है. परस्त्रीगमन नहीं करना. स्त्री या पुरुष कुच्छभी सलाह पुंछे तो मालुम होनेपरभी खोटी–बदसलाह नहीं देनी. अपने मालिकके हुकम सिवा उनका पैसा नहीं उठाना. एकदूसरेकों लढाइ हो जाय ऐसी समझ नहीं देना. अपनी प्रतिष्ठा बढानेके लिये असत्य धर्मोपदेश नहीं देना. अन्यमतावलंबी धर्म सबंधी सच्ची बात कहता हो तोभी 'ये धर्म बढ जायगा' ऐसा जानकर वो बात झूंठी पाडनेकी कुयुक्ति करनी वोभी अन्याय है. आप अविधिसें चलता हो और दूसरे पुरुषकों विधियुक्त चलता देखकर उनकेपर द्वेष धारण करना वोभी अन्याय है. जो पुरुष विधिसें वर्तन चलाता हैं उसकों धन्यवाद देना और आपसें उस मुजब वर्त्ताव न हो सकता हो तो उनके लिये पश्चाताप करना वो अन्याय नही है. सरकारकी या म्युनिसिपालिटीकी जकात चोरी करनी, स्टेंप चोरी करनी, सच्ची पैदास छुपाकर कमती पैदास–आमदनीपर सरकारकों टक्स कम देना वोभी अन्याय है. चोरी करनी, दूसरी कुंजी लागु करनी या लूंट चलानी वोभी अन्याय कहाजाता है. गुणवंत साधु मुनीराज, भगवंत और गुरुमहाराजके अवर्णवाद नहीं बोलना. शुद्ध धर्मकाभी

अवर्णवाद नहीं बोलना. और लडकीके पैसे लेकर आपका व्याह नहीं करना. इत्यादि बहुतसे अन्याय हो सकते हैं उन सबका त्याग करकें व्यापार करना सो मार्गानुसारीका प्रथम लक्षण है.

२ शिष्टाचार यानि ज्ञान और क्रियासें करकें उत्तम आचरणवाले मनुष्योंके आचार उनकों शिष्टाचार कहते हैं. उनमें लोग निंदा करै वैसा कार्य नहीं करना. राज दंडके पात्र होवै वैसाभी काम नहीं करना. वेश्या तथा परस्त्रीगमनका त्याग करना. जुगार नहीं खेलना, शिकार करनेकों न जाना. चोरी न करनी. बहुत जीवहिंसा होवै वैसा व्यापार नहीं करना. जिस कामसें किसी मनुष्यकों नुकसान होवै या किसीका जान जावै ऐसा झूंठ नहीं बोलना बनसकै तो सर्वथा झूंठ नहीं बोलना और मांस, मदिरा, ताडी, सहत, मख्खन, कंदमूल वगैरः अभक्ष्य पदार्थ नहीं खाना.

३ समान धर्म आचारवालोंके साथ व्याह करना; लेकिन एक गोत्रवाला हो उसके साथ व्याह नहीं करना. हेमचंद्राचार्यजीनें एक गोत्रवालेके साथ व्याह-सादी करनेका योगशास्त्रमें निषेध-मनाइ किया है. स्त्री भर्त्तारका एकही धर्म हो तो धर्मसंबंधी तकरार उठनेका संभव नहीं रहता और धर्मकार्य करनेमें परस्पर साधनभूत हो पडै.

४ सब प्रकारके पापसें डरना. पाप करनेसें इस लोकमें निंदा होती है और अपर जन्ममें नरकादि दुःख भुक्तने पडते हैं.

५ देशाचार मुजब चलना यानि जिस देशमें रहते होवै उस देशमें जो जो काम करनेसें निंदापात्र न हुवा जावै उस मुजब चलना. वस्त्र आभूषण अशन पानादि देशकी रीति मुजब उपयोगमें लेना. जिस देशमें जो कपडे पहने जाते हो उसकों छोडकर अन्य देशकी रीतिके नहीं पहनना.

६ साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका और राजा, प्रधान, खजानची, कोतवाल वगैरः किसी मनुष्यके अवर्णवाद नहीं बोलना.

७ जिस घरमें बारी दरवाजे वगरः पैठने निकलनेके बहुतसे मार्ग हो वैसे घर-मकानमें नहीं रहना वहां रहनेसें चोर प्रमुखकों आनेजानेका तथा औरतकों बदचलन चलानेका सुगम पडता है.

८ अशुद्ध स्थानवाले घरमें नहीं रहना. जिस घरकी जमीन उधेई लगी

हुइ हो, जिस मकानके नीचे हड्डीयें तथा मुर्दे गाडे हो अथवा मुर्दे जलाये हुवे हो अगर आसपास वेश्या, जुगारी, चोर, कसाइ वगैरः रहते हो वैसे घर छोडकर अच्छे पडोसमें रहना. पडोशी धर्मबंधु हो तो सर्वोत्तम समझना. अन्यमतावलम्बीके पडोससें उनके आचार विचार अपनेमें घुस जाते हैं, वो वहुत श्रम उठानेपर भी पीछेसें दूर नहीं हो सक्ते है और वहुत करकें अनेक पापबंधनमें पडना पडता है.

९ अति गुप्त स्थानमें नहीं रहना. रहनेसें गुणिपुरुषकों दान देनेका अवकाश नहीं मिलता है. और आग मग्नुखके भय वक्त जानमाल बचानेका मुश्किल हो पडता है.

१० अति प्रकट स्थानमें भी नहीं रहना. रहनेसें स्त्री वर्ग पूर्ण प्रकारसें लज्जा-मर्यादा नहीं समाल सकता है. और दरवाजेके आगे सोर गुल मच रहा हो तो स्थिर चित्तसें कार्य नहीं हो सकता है.

११ सत्संग यानि गुणी पुरुषका समागम करना. मुनि महाराज, देवगुरु भक्तिकारक श्रावक और प्रमाणिक गृहस्थोंकी साथही विशेष परिचय रखना. मिथ्यात्वीका संग नहीं करना. करनेसें अपनी धर्मबुद्धि नष्ट हो जाती है. सुसंगसें बुद्धि अच्छी होती है. उनेके सदाचरण देखकर अपनेकोंभी सदाचरण ग्रहण करनेका अवकाश मिलता है. जुगारी, लुच्चे, चोर, विश्वासघाति, ठग वगैरः की सोवत करनेसें वैसें नीच कृत्य करनेका इरादा सहजही होता है; वास्ते वैसें अधर्मीयोंका संग छोड देना.

१२ माता पिताकी आज्ञामें रहना, उनकों पूजनेवाले होना, हमेशां प्रातःकालमें उनका वंदन करना, परदेशमें जानेके और विदेशसें आनेके वक्त भी विनयपूर्वक चरणपूजन करना, जो वृद्ध हुवे हो तो उनकी खाने पीने ओर पहनने ओढनेकी शक्ति मुजब तजवीज रखना. कोइ वक्त गुस्सा नहीं करना. कटुवचनका उपयोग नहीं करना, उनके आदेशका उल्लंघन नहीं करना. कभी गैरव्याजवी नहीं करने योग काम वतला देवें तो मौनवृत्ति धर लेनी. अयोग्य कार्य करनेसें गैरफायदे होते हैं उनक विनयपूर्वक बयान करकें समझा देनेका प्रयत्न करना उनका अपनेपर अवर्णनीय उपकार है. माताने नौ महिने तक उदरमें रखकर—वोजा वहकनर अपने लिये अनेक वेदनायें सहन की हैं. विष्टा मूत्रादि मलीन तत्त्वोंसें अपना वेरवेर प्रक्षालन कीया है. फिर जब अप रोगग्रस्त हुवे हो तब वो भूंख, प्यास सहन कर अनेक उपचार करकें अपना शुद्धबुद्धि सें पालन करती है. इसके उपरांत परोक्ष रीतिसें उनके उपकारका जलप्रवाह निरंतरहै

षहन करता है. मातापिता तो जगत्में कल्पवृक्ष समान हैं. अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीजी त्रिशलादेवीके उदरमें आये बाद माता दुःखी होगी, ऐसा शोचकर किंचित् वक्ततक चलायमान नहीं हुवे; उतनी देरमें तो माताजी अनेक कल्पांत करने लगे, मुर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पडे! उसी वक्त भगवंतजीने अभिग्रह धारण कर लिया कि 'माता पिताका स्वर्गवास हुवे बादही दीक्षा ग्रहण करुंगा.' अहा! पुत्रकी पूजनीक बुद्धि तर्फ दृष्टि करो. राम और लछमन तथा पांडवोंनें मातापिताकी जो सेवा की है, उसका वर्णन सहस्र जिव्हासेंभी करना मुश्किल है. उनके किये हुवे उपकारका बदला अपन कोइभी तरहसें नहीं दे सकते हैं; तोभी निरंतर उनकों धर्ममार्गमें योजनेके लिये प्रयत्न करकें भक्ति करनी.

१३ जहां स्वराज्यका या परराज्यका भय हो, वैसे स्थानमें नहीं रहना. क्यौं कि वहां रहनेसें धर्मकी, धनकी और शरीरकी हानि होती है.

१४ पैदासके प्रमाणमें खर्च करना, पैदासके चार हिस्से कर देना. एक हिस्सा सिलकमें रखना, दूसरा हिस्सा व्यापारमें रोकना, तीसरा हिस्सा आपके तथा कुटुंबके खानेपीने और वस्त्रादिकमें वापरना, और चौथा हिस्सा धर्मकार्यमें व्यय करना. इस मुजब आमदनीकी व्यवस्था करनी. यदि पैदास कम हो तो दशवां हिस्सा किंवां अपनी शक्ति मुजब धर्मनिमित्तमें अवश्यद्रव्य व्यय करना. बडी महेनतसें उदरपोषण होता हो तो मन कोमल रखकर धर्मकार्यमें द्रव्य व्यय करनेवालेकी अनुमोदना प्रशंसा करनी.

१५ धनके अनुसार वस्त्राभूषण पहनना. कम द्रव्य हो और धनवान्के समान वस्त्र पहननेसें या ज्याद धन हो और गरीबके जैसें पहननेसें लघुता-हलकापन हो जाय; वास्ते शक्तयानुसार पोषाक रखना.

१६ शास्त्र श्रवण करनेमें चित्त पिरोना. बुद्धिके आठ प्रकारके गुण उपार्जन करना-यानि शास्त्र श्रवण करनेकी इच्छा करनी १, शास्त्र सुनना २, उनका अर्थ समझना ३, वो याद रखना ४, उसमें तर्क करना वो सामान्य ज्ञान ५, अपोह-विशेष ज्ञान मिलना ६, उहापोहसें संदेह न रखना ७, और तत्त्वज्ञान यानि फलानी चीज अैसीही है अैसा निश्चय करना ८, पूर्वोक्त रीतिसें शास्त्र श्रवण कर अपने औगुन छोड करकें उद्यमवंत होना

१७ अजीर्ण—बदहजमीके वक्त यानि खोराक हजम नहीं हुवा हो वैसे समयमें दूसरा नया खोराक नहीं खाना. रोगोत्पत्ति होवै वैसीभी वस्तु नहीं खानी और स्वादिष्ट वस्तु देखकर शक्ति उपरांत भोजन नहीं करना.

१८ अकाल—बे वक्त भोजन नहीं करना. भोजन करनेका जो वक्त कायम किया गया हो वही वक्त भोजन करना यानि वक्त नहीं भूलना—चूकना.

१९ धर्म अर्थ और काम यह तीनू वर्ग साधन करना—मतलब यह कि गृहस्थावस्थामें जो समय धर्म साधनेका हो वोही समय धर्म साध लेना, पैसे कमानेके वक्त धनोपार्जन करना, और भोग—उपभोग भोगनेके वक्त उनमें तत्पर रहना. धर्मसाधनके समय द्रव्य उपार्जन करनेका ध्यानमें रक्खे तो धर्मसें पतित हुआ जाता है. सब वस्तुकी प्राप्ति धर्मसेंही होती है. धर्मसें पतित हुवे तो तीनू वर्ग हाथमेंसें गयेही समजना; वास्ते दिनभरमें तीनुं वर्ग साधनेका वक्त मुकरर कर रखना कि जिससें धन पैदा करनेमें और संसारोचित कार्य करनेमें विघ्न न आवे, जगत्में निंदा न होवै और अच्छी तरहसें धर्मसाधन हो सके उस मुजब चलना.

२० मुनिराज महाराजका दान देनेरूप आतिथ्य विनय पूर्वक करना. दुःखीजनकों अनुकंपादान देना, मुनिकी सेवा भक्ति करनेमें कुशल रहना और अहंकार रहित दान देना.

२१ जिनमतकी अंदर सन्मान पूर्वक राग धरना. नाहक झूंठा हठ—कदाग्रह नहीं करना.

२२ गुणीजनका पक्ष करना. उनकी साथ सौजन्यता और दाक्षिण्यता वापरनी. जो जो सुकार्य करनेके हो वो वो कार्य बंदरकी तरह चपलताईसें नहीं मगर स्थिरतासें करने चाहियें. निरंतर प्रियभाषित होना—किसीकों दुःख—बुरा लगे वैसा नहीं बोलना. अपने और पराये आत्माका उपकार करनेकी बुद्धि रखना, और गुणीपुरुषके अनुयाय वर्त्तन रखना.

२३ जिस देशमें जानेकी शास्त्रकार आज्ञा न देते हो या राजकी तर्फसें मना हो उस देशमें उद्धताई करकें नहीं जाना. जो समय जो कार्य करनेकी आज्ञा—रजा न हो उस कालमें वो कार्य नहीं करना—जैसें कि उष्ण कालमें खेती करै तो वर्षाकालके जैसी न होवै, वर्षाकालमें ठंडे पदार्थ खानेसें हजम नही होते हैं. और समुद्रपर्यटन

करनेसें नुकसान होता है. यवनके मुल्कमें जानेसें जबरदस्तीसें न खानेलायक चीज-अभक्ष्य खिला देवें और जबरदस्तीसें धर्मभ्रष्ठ कर देवें-वैसे देशमें नहीं जाना, अपना बल समालकर काम करना; क्यों कि शक्ति उपरांत कार्य करनेसें धनकी और शरीरकी हानि होनेका संभव है.

२४ व्रतके अंदर स्थिर चितवाले, और ज्ञान सावधान ऐसे जो पुरुष होवे उन्हकी पूजा करनी. आत्महितार्थ उन्हके पाससें ज्ञान संपादन करना और उन्होंकी प्रवृत्ति मुजब चलना.

२५ पोषण करने लायक अपने कुटुंबका वस्त्र आहार वगैरःसें पोषण करना.

२६ हरएक कार्य शुरू किये पहिलेही शुभाशुभ परिणाम दीर्घदृष्टिसें विचार लेना और उस बाद शुरु करना.

२७ विशेषज्ञ यानि सामान्य और विशेषकों पहिचानते सीखना और उनके ज्ञाता होना.

२८ लोकवल्लभ यानि सब लोगोंकों वल्लभ लगै वैसा काम करना. किसीका दिल दुभाना नहीं, अनीतिसें और धर्मविरुद्ध आचरणसें लोगोंमें प्यार होनेकी इच्छा नहीं रखनी.

२९ लज्जावंत होना यानि निर्लज कार्य नहीं करना.

३० विनयवंत होना. देव, गुरु, सुश्रावक, कुटुंबी, शिक्षक, हुन्नर सीखानेवाला तथा राजा, प्रधान, शेठ-शाहूकार जो कोइ गुणसें, धनसें, पद्वीसें और अवस्थासें करकें अधिक हो उन सबका यथोचित विनय करना.

३१ दुःखी मनुष्यपर दया करनेमें कुशल रहना. ज्यों बन सके त्यों हिंसाका काम नहीं करना.

३२ सौम्यदृष्टि रखनी. किसी वक्तभी कषायवाली प्रकृति धारण नहीं करनी कि जिससें दूसरेकों अपनेपर द्वेष पैदा हो आवै.

३३ छः शत्रुओंकों जीतना यानि कामका पराजय करना-मतलब कि परस्त्रीका बिलकुल त्याग करना-स्वस्त्रीकोंही सेवन करना. वोभी अपनी स्त्रीका जैसे रोगार्त्त पुरुष औषध खानेकी जरूरतसें ओषध खावें, वैसेंही ऋतुस्नानके वक्त केवल चित्तकी समाधी करनेके-उपाधि मिटानेके लिये सेवन करैं. भावना तौ छोड देनेकीही रक्खै. कूत्तेकी तरह निरंतर वा एक रात्रिमें बहुत दुफे स्त्रीसंग करना वो उत्तम पुरुषोंका

लक्षण नहीं है. नित्य स्त्री सेवनसें आपका और स्त्रीका शरीर निर्बल हाता जाता है. फिर ऐसा बुरी आदनके लिये स्त्रीके विरह वक्त परस्त्री सेवनकी बुद्धि हो आती है. बहुत करकें दुनयांमें इलकापन प्राप्त होता है-कोइ विश्वास नहीं करता है-राजाके जाननेमें आवै तौ दंड करता है. यह भवमें ऐसा होता है और आते भवमें नरकके दुःख भुक्तने पडते है; वास्ते ज्यौं वन शकै त्यौं कामदेवकों वश्य करलेना. १, क्रोध-किसीके ऊपर गुस्सा न करना यानि सब प्राणियोंके ऊपर समभाव धारण करना. एक क्रोड पूर्व तक संयम पालन करके उपार्जन किया हुवा फल क्रोधके करनेसें क्षणभरमें नष्ट हो जाता है, और कुगतिका भाजन होना पडता है. हालाहल विष खाया हो तो एक वक्तही मरण प्राप्त करता है; लेकिन क्रोधरूपी हालाहलके तावे हुवे प्राणियोंका अनंती वेर मरण होता है; वास्ते निरंतर क्षमागुण धारण करनेका सीखना चाहियें. २, लोभ-लोभी मनुष्यका चित्त हम्मेशां फिक्रमेंही भटकता रहता है. उनकों किसी वक्त कोइभी प्रकारसें संतोष पैदा नहीं होता है. फिर लोभके वश्य होनेसें नहीं करनें लायक काम करनेकों तैयार होता है, उससें इस दुनयांमें हीलना होती है और परभवमें भी दुःख भुक्तने पडते हैं; वास्ते जिस औसरमें जो मिले उसीसें संतोषवृत्ति रखनी और नीतियुक्त उद्यम करना. अलगे जन्मोंमें जैसा उपार्जन किया होवै वैसा यह भवमें मिलता हैं लोभ करनेसें कुच्छ ज्यादे नहीं मिलता है. ऐसा सोच-समजकर संतोष पकडना. क्यौंकि संतोपसेंही लोभका पराजय होता है. ३ मान-गर्वदशा धरनेसें जगत्में हलकापन प्राप्त होता है. लोग गर्विष्ट-अहंकारीका उपनाम देते हैं गुरु-श्रेष्टका विनयभी नहीं हो सक्ता है, विद्या हुन्नर नही आते है और मनुष्यजन्म मिलने परभी धर्म नहीं साध सक्ता है; वास्ते मानकों छोडकर गंभीरता धारण करनी. ४, हर्ष-किसीभी कार्यमें अत्यंत राजी न होंजाना क्यौंकि हर्ष करनेसें गर्वकी सीढीपर चढनेमें देर नहीं लगती है. यह संसारमें सर्व वस्तुएं क्षणिक हैं. शरीर आज सुखी मालुम होता है और कल अनेक व्याधियुक्त होजाता है. लक्ष्मी चपल है यानि आज जिस मकानमें लक्ष्मी सोभायमान् हो रही हो उसी मकानमें दूसरे रोज भूतगण निवास करता है! वास्ते ऐसे अस्थिर पदार्थ पूर्वकृत पुण्यके सववसें प्राप्त हुवे होवैं तो उनका सदुपयोग करना; लेकिन अत्यंत हर्षित होकर गर्व नहीं करना. ५, मद आठ प्रकारके हैं. यानि जातिमद, कुलमद, वलमद, रूपमद, ऋद्धिमद, लोभमद, तपमद और विद्यामद यह ८ हैं जातिमद करनेसें नीच जातिमें उत्पन्न होता है. कुलमद करनेसें नीच गोत्र

बांधता है, बल पराक्रमका मद करनेसें आते भव-जन्ममें निर्बलता प्राप्त होती है रूपका मद करनेसें कुरूपता प्राप्त होती है, धनका या ठकुराइका मद करनेसें परभवमें दरिद्री पना प्राप्त होता है, ज्यौं ज्यौं मिलता जावै त्यौं त्यौं ज्यादे लोभ करै और मनमें इरादा करै कि मैं तो खोनेवाला हुंही नहीं, जो जो व्यापार करुंगा उनमें पैदाही करुंगा! अैसा आ जिवीकाका मद धरनेवाले मनुष्यकों किसी ना किसी वक्त भारी धका लगता है कि सब दिनोंका पैदा किया हुवा एक दिनमें चला जाता है और निर्धनावस्था प्राप्त होती है; वास्ते लोभका मद नहीं करना. तपमद करनेसें तप निष्फल होता है, विद्याका मद करनेसें आपसें ज्यादे विद्वान हो उनकों मान नहीं दे सकता है; मगर उनकी अवगणना करता है और आप ज्यादे ज्ञान संपादन नहीं कर सकता है, क्यौं कि गर्विष्ट होनेसें शंका पडे वोभी दुसरेकों नहीं पूंछी जाती है और यु करते धीरेधीरे अपनी विद्या खो देता है और आते जन्ममें अज्ञानी होता है; वास्ते विवेकी मनुष्यकों यह आठों मद छोड देनेही चाहियें.

३४ कृतज्ञता यानि किसीने अपना उपकार किया होवै तो उनका अच्छा बदला देना, नहीं कि समय प्राप्त होनेपरभी उपकारकों भूल जाना.

३५ पांचों इंद्रियोंकों तावे करनेमें तत्पर रहना, इंद्रियोकों छुट्टी छोडनेसें इस जन्ममें भी बहुत नुकसान होता है और परजन्ममें भी दुर्गति मिलती है. देखो स्पर्शेंद्रियके सुख भुक्तनेके लिये हस्ति बंधनमें पडता है. रसद्रियके विषयमें मछलियां बेजान होती हैं, घ्राणेंद्रियकें विषयसें भौंरा कमलपर बैठता है और सूर्य अस्त होजानेसें कमल बंध होतेही अंदर कब्ज होजाता है. चक्षु इंद्रियकें वश होनेसें पतंग नामक जंतु दीपकपर गिरकर जान खो देता है. कर्णेंद्रिय के विषयसें हरिण शिकारीके तावे होकर मरणके शरण होता है. इस तरह एक एक इंद्रियकों छूटी छोडदेनेसें प्राण गुमाना पडता है तो जब पांचो इंद्रियोंके विषयोमें लुब्ध होनेसें परभवमें कैसे दुःख भुक्तने पडते हैं? उनका वर्णन तो ज्ञानी महाराजही कर सकै; वास्ते यथाशक्ति विषयका संकोच करना. इस मुजब मार्गानुसारीके पेंतीस गुण जिस मनुष्यमें होवै वोही पुरुष धर्मके लायक जानना एसे गुणोंसें मनुष्य समकितवंत होता हे श्राद्धधर्म और मुनिधर्मकों पाता है और अंतमें मुक्तिसुखकों हाथ करता है.

२१ प्रश्नः—समकित वो क्या है?

उत्तरः—समकितके बहुत प्रकार हैं; लेकिन अल्प मात्र कहता हुं. समकितके मुख्य दो प्रकार हैं यानि व्यवहार समकित और निश्चय समकित यह दो है. उनमें व्यवहार सयकित सो आगे कहे हुवे अठारह दूषण रहित ऋषभादि चौविश तीर्थंकरकों शुद्ध देव तथा तरणतारण नावरूप मानने चाहियें. जो देव संसारके पारकों नहीं पहुंचे हो उनकों देवबुद्धिसें देव नहीं मानना. प्रभुने मुनिका जो मार्ग बताया हैं उन मार्गपर चलनेवालेकों गुरुबुद्धिसें गुरु मानना. साधु और श्रावकोंका धर्म प्रभुने जिस मुजब बतलाया है उसी धर्मकोंही सत्य मानना यह तीनों तत्त्वोंके ऊपर श्रद्धा रखनी सोही व्यवहार समकित है. निश्चय समकित वही है कि पहिले अपने आत्माका स्वरूप और पुद्गलका स्वरूप जानना. आत्मामें चेतन गुण है और पुद्गलमें जड गुण है, उससें आत्मामें सब पदार्थ जाननेकी शक्ति है; मगर कर्मसें करकें आत्मा छा गया है उससें अभी संपूर्ण हाल—भाव नहीं जान सक्ता है. ऐसा निश्चय होनेसें जो जो बाह्य पदार्थ हैं उनके ऊपरसें मोह छोड देता है. फक्त आत्मगुणमेंही आनंद मानता है. जो संसारी आनंद है वो सब अस्थिर आनंद है और उनकों सच्चा आनंद मान लेनेसें कर्मबंधन होता है और दुर्गतिमें उनके दुःख भुक्तने पडते है. आत्माका ज्ञान ज्यौं ज्यौं निर्मल होता जाता है त्यौं त्यौं सांसारिक कार्यमें ममता घटती जाती है. कर्मके योगसें जो सुख दुःख प्राप्त होते हैं, उनकौ कर्मके फल समझकर रागद्वेष नही करते हैं, पुद्गलके संयोगसें कर्म बंधन हुवे है सो भुगते जाते हैं, ऐसा विचारता हैं. इस मुजब चित्तकी सुंदरता होती है; परंतु विशेष विशुद्धि नहीं हुइ उस्सें संसारकों नहीं छोड सक्ता है. श्रावकके व्रतभी नही ले सक्ता है; लेकिन भावना रात दिन बनी रही है, अनंतानुबंधी कषायकी चोकडी तथा समकितमोहनी, मिश्रमोहनी और मिथ्यात्वमोहनी यह सात प्रकृति क्षय हुइ है. ऐसे जीवोंकों समकितकी प्राप्ति होती है, वो निश्चय समकित कहाजाता है.

२२ प्रश्नः—निश्चय समकित दृष्टिकों व्यवहार समकित होवे या नहि ?

उत्तरः—बहुत करके होवे.

२३ प्रश्नः—व्यवहार समकितवालेकों निश्चय समकित होवै या नहीं ?

उत्तरः—होवैभी सही और नहींभी होवै.

२४ प्रश्नः—अकीले व्यवहार समकितसें क्या फायदा होता है ?

उत्तरः—व्यवहार समकित निश्चय समकितका कारण है. देवगुरुकी श्रद्धा हुइ कि गुरुमहाराजकी सेवा करै. गुरुमहाराज धर्म सुनावें इस्सें अपना आत्माका और पुद्गलका स्वरूप जाने. युं करते करते क्रमसें निश्चय समकित होवे.

२५ प्रश्नः—देवकी भक्ति किस प्रकारसें करनी ?

उत्तरः—देव अभी नहीं विचरते हैं; किन्तु उन्होंकी मूर्ति हैं वो अपनेकों आलंवनभूत हैं, उससें पाषाणकी, धातुकी, रत्नकी, काष्टकी और दांतकीः-जेसी अपनी शक्ति हो वैसी भगवंतजीके आकारवाली मूर्त्ति करा लेवै, यथाशक्ति सुंदर मंदिर वंधवा लेवै और आचार्य महाराजके पास उन प्रतिमाजीकी प्रतिष्ठा कराकें उन्हकी भक्ति करै अथवा पूर्व पुरुषोंने ऐसे जिनविंव पधराये हुवे होते हैं उन्हीका अष्ट द्रव्यसें करकें पूजन करै तथा उन्हकी समीपमें अच्छे प्रकारसें गुणग्राम करै.

२६ प्रश्नः—प्रतिमाजीकों पूजनेसें क्या लाभ होता है ? प्रतिमाजी कुच्छ भगवान् नहीं हैं तौ उनकों कैसे भावसें पूजनी चाहियें ?

उत्तरः—भगवंत धर्म प्रकाश गये हैं उनके आधारसें धर्मका स्वरूप–आत्माका स्वरूप जान लिया है उससें वै उपकारी पुरुष हैं, वै उपकारी पुरुष तौ निर्वाण प्राप्त हो गये हैं, तब प्रतिमाजीमें उन्होके नांवका आरोपण करकें भक्ति करनी. जैसे अपने बुजुर्ग–वडे पुरुष या तौ मान्यकारी पुरुषकी तसवीर होती है और उनका कोइ गुणग्राम करै तौ अपन कैसे खुशी होते हैं; अगर अभी अपने राज्यकर्त्ता शहनशाह एडवर्ड या गव्हनर जनरल, गव्हर्नर वा प्रतिष्ठित अधिकारीओंकी तसवीर–छवी या पुतले जगइ जगइ बैठाये हुवे हैं और ऐसा किया हुवा देखकर वै अधिकारी तथा उन्हके उपर प्रीतिभाव धारण करनेवाले लोग राजी होते हैं और वे अधिकारी

आपकोंही मान्य मिला समझते हैं, तैसे अपनभी भगवंतकी मूर्ति बैठानेसें उन्हीकों मान्य देते हैं. उन्होंकों मान्य देनेका दिल हुवा वो शुभ अध्यवसायका लक्षण है और उससें जीव बडा भारी पुण्य उपार्जन करता है. जो जैन नांव धारण करकें ढुंढक कहाते है वे प्रतिमाजीकों नहीं पूजते हैं जो उन्हकी अज्ञानता है, वे जैनशास्त्रकों मान्य करनेका कहते हैं; मगर वें शास्त्रमें कहे मुजब नहीं चलते हैं. इस बाबतके दृष्टांत श्री प्रतिमाशतक ग्रंथमें श्री यशोविजयजीनें बहुतसें दीये हैं, तथा समकितशल्योद्धार नामक ग्रंथ छपा गया है, उनमेंभी बहुतसें दृष्टांत हैं इस लिये यहांपर विस्तारसें नहीं लिखता हुं. भगवान् विचरतेथे उस वक्तकी प्रतिष्ठाकी हुइ प्रतिमाजीयें अभि विद्यमान् हैं और ढुंढकमत तो अभी निकला है, तब जो प्रतिमा पूजनेका अयोग्य होता तो भगवंत थे जब क्यौं बनवाइ गइ? उस पीछेभी बहुतसें आचार्य हुवे हैं, कि जिनके उपदेशसें बहुतसे श्रावकोंने प्रतिमाजी करवाइ हैं तथा अनेक प्रकारसें पूजाभी की है. गृहस्थावासमें रहे हुवे श्रावकभाइयोंकों भगवंतके गुणग्राम करनेके लीये अनुकूलता भरी जगह देखें तो फक्त जिनमंदिरही है और उनकी अंदर भगवंतके गुणोंका स्मरण होनेके वास्ते जिनबिंबकी स्थापना की है. उन्हों की आकृति एसी सौम्य है कि उन्होंकों देखनेसें भगवंतके गुण स्मरणमें आते हैं. अपने वृद्ध पुरुषकी या मानवंते पुरुषकी छवी या उनकी कोइभी चीज पडी हुइ होती है तो उसकों देखकर वे पुरुष और उनके गुण जैसें स्मरणमें आते है वैसे ही भगवंतकी मूर्तिकों देखकर भगवद् गुणस्मरण होता है. प्रतिमाजीकी मुंह देखकर सोचता है कि यह मुख कैसा है जिनमुखसें किसीके भी अवर्णवाद, मृषावाद या हिंसाकारी वचन नहीं बोले गये हैं. उन मुखका अंदर रहा हुइ जीव्हासें रसेंद्रियके विषयोंका सेवन नहीं किया गया है; किन्तु यह मुखद्वारा धर्मोपदेश देकर अनेक भव्यजीवोंकों संसार समुद्रसें पारकर दिये हैं; वास्ते इस मुखकों धन्यवाद है. यह नासिकाद्वारा सुरभिगंध और दुरभिगंधरूप घ्राणेंद्रियके विषयोंका सेवन नहीं किया गया है. यह चक्षु इंद्रियद्वारा पांच वर्णरूप विषयोंकों

सेवन नहीं किये हैं किसी स्त्रीकी तर्फ कामविकारकी नजरसें नहीं देखा है ओर न किसीके सामने द्वेषकी नजरसें भी देखा है. मात्र वस्तुस्वभाव और कर्मका विचित्रता विचारके समभावसें रहे हुवै हैं उससें ऐसें नेत्रोंकों धन्य है. यह कानोंसे करकें विचित्र प्रकारकें राग, रागणीयें श्रवण करनेरूप उनके विषयोंकों सेवन नहीं कीये है, किन्तु प्रिय अप्रिय जैसे शब्द कानपर पडे तैसेही समभावसें सुने हैं. यह शरीरसें किसी जीवकी हिंसा यों अदत्त ग्रहण वगैरः नहीं किया है. फक्त जीवरक्षा की है और किसी जीवकों दुःख प्राप्त न हो वैसेही चले हैं. ग्रामानुग्राम विहार करकें भव्य जीवोंकों संसारिक दुःखोंसें पार किये हैं और आपनें कर्मक्षय करकें केवलज्ञान केवलदर्शन प्रगट किया है; वास्ते इन प्रभुकों धन्य हैं. वे परमोपकारी है, उससें उन्हेंकी जितनी भक्ति कर सकुं उतनी करनी योग्य है. एसा सुंदर भावना भगवंतकी मुद्रा देखनेसें उत्पन्न होती है. उत्तम प्राणि ऐसें प्रभुकी जल, चंदन, केसर, वरास, पुष्प, धूप, दीप, फल, नैवैद्यसें पूजा करते है. तथा आभूषण चढाते हैं. इस मुजब पूजा करनेमें यथाशक्ति द्रव्य व्यय करते हुवे चिंतवन करते है कि, में जो द्रव्य पैदा करता हुं उन्हमें अनेक प्रकारकें पाप लगते है कि, फिर वो धन संसारकें कार्यमें व्यय करता हुं उससेंभी फिर पापकी वृद्धि करता हुं मेरे ये धनमेंसें मेरे परिणाम पहुंचें उतना धनजो मैं प्रभुभक्तिकी अंदर खर्चु तौ उनसें पापबंधन रूक आवै और पुण्यबंधन होवै; फिर ये धन अंतमें मेरा नहीं है. और उनका स्वभाव भिन्न होता है.–मैं चेतन हुं वो जड है; वास्ते मेरे उनपरसें मूर्च्छा उतारनी सो योग्य है. फिर सोचता है कि मैं प्रभुकी भक्ति करुंगा तौ वो देखकर दूसरे जीव उनकी अनुमोदना करेंगे, फिर कितनेक भाग्यवान् जीव भक्ति करनेमें तत्पर होंगे तौ उनका कारणीक में होउंगा. इससें प्रभुभक्ति करनेमें अनेक लाभ होवेंगे. उत्तम जीव पहिले द्रव्यपूजा करकें पीछे भावपूजा करते हैं इन औसरमें भगवंतके गुण विचारते हैं और प्रभुके गुण सोचकरकें उनका अपने आत्माके साथ मिलाप करते है कि, अहा! प्रभु निरागी ओर मैं रागी हुं, प्रभु अद्वेषी

और मैं द्वेषी हुं, प्रभु अक्रोधी और मैं क्रोधी हुं, प्रभु अकामी और मैं कामी हुं, प्रभु निर्विषयी और मैं विषयी हुं, प्रभु अमानी और मैं मानी हुं, प्रभु अमायी और मैं मायी हुं, प्रभु अलोभी और मैं लोभी हुं, प्रभु आत्मानंदी और मैं संसारानंदी हुं, प्रभु अतिंद्रिय सुखके भोगी और मैं पुद्‌गलका भोगी हुं, प्रभु स्वस्वभावी और मैं विभावी हुं, प्रभु अजर और मैं सजर हुं, प्रभु अक्षय और मैं क्षय स्वभाववंत हुं, प्रभु अशरीरी और मैं शरीरवाला हुं, प्रभु अनिंदक और मैं निंदक हुं, प्रभु अचल और मैं सचल हुं, प्रभु अमर और मैं मरण सहित हुं, प्रभु निंद रहित और मैं निंद सहित हुं, प्रभु निर्मोही और मैं समोही हुं, प्रभु हास्य रहित ओर मैं हास्य सहित हुं, प्रभु रतिसें रहित और मैं रति सहित हुं, प्रभु अरति रहित और मैं अरति सहित हुं, प्रभु शोक रहित और मैं शोक सहित हुं, प्रभु भय रहित और मैं भय सहित हुं, प्रभु दुगंच्छा रहित और मैं दुगच्छा सहित हुं, प्रभु निर्वेदी और मैं सवेदी हुं, प्रभु अक्लेशी और मैं क्लेश सहित हुं, प्रभु अहिंसक और मैं हिंसक हुं, प्रभु वचनसें रहित है और मैं मृषावादी हुं, प्रभु अप्रमादी और मैं सप्रमादी हुं, प्रभु निराशावंत और मैं आशावंत हुं, प्रभु सर्व जीवकों सुख देनेहारे और मैं अनेक जीवोंकों दुःख देनेहारा हुं, प्रभु अवंचक ओर मैं सवंचक–दूसरोंकों ठगनेहारा हुं, प्रभु सबके विश्वासपात्र और मैं अविश्वासपात्र हुं, प्रभु आश्रव रहित और मैं आश्रवसें भरपूर हुं, प्रभु निष्पाप और मैं सपाप हुं, प्रभु परमात्मपदकों पाये हुवे और मैं बहिरात्मपनेसें प्रवर्त्तता हुं, प्रभु कर्मरहित और मैं कर्म सहित हुं. इस मुजब भगवत अनेक प्रकारके गुणसें संयुक्त हैं और मैं सब प्रकारकें दुर्गुणोंसें भरा हुवा हुं, उसीसें यह संसारमें परिभ्रमण करता हुं. आज भाग्योदयसें यह प्रभुजीकी मूर्ति मैने निहाल ली और उसके आलंबनसें मेरेकों प्रभुके गुणका स्मरण हुवा तथा मेरे औगुन समझनेमें आये, तो अब मैं मेरे आगुण छोडनेका उद्यम करुं. प्रभु जिस रस्ते चले वही रस्ते में चलुं और प्रभुने जैसा वर्त्तन चलाया वैसा वर्त्तन में चलाउं. इस मुजब भावना भावते–पूजा करते प्राणी अपना कर्मक्षय

करता है, शुद्ध समकितको प्राप्त करता है और यावत् मोक्षसुखकोंभी पाता है; वास्ते जिनप्रतिमाकी पूजा करनेसें उपर मुजब लाभ जानकर समस्त भव्य जीवोंनें यथाशक्ति जिनेश्वर भगवान्की भक्ति करनी चाहियें.

२७ प्रश्नः—सामान्यप्रकारमें जिनभक्तिकी रीति तथा लाभ बतलाये; परंतु अनुक्रमसें हररोज किस प्रकारसें भक्ति करनी? वो कह दो.

उत्तरः—दिनमें तीन दफे जिनमंदिरमें जाना. उनमें प्रातःकाल वासक्षेपसें, मध्यानकाळ जळ चंदनादि अष्ट द्रव्यसें-सत्तरह प्रकारसें या जैसी शक्ति हो उन मुजब विशेष द्रव्यसें पूजा करनी और संध्याकालमें धूपपूजा तथा दीपपूजा करनी. उनमें मध्यान्हकी पूजा प्रभुके अंग स्पर्श करकें करनेका है, और स्नानभी करना चाहिये-स्नान करकें शुद्ध हुवे सिवा प्रभुके अंगका स्पर्श करना उचित नहीं है. अपना शरीर मलीन होता है सो स्नान करनेसें शुद्ध होता है. वास्ते निर्जीव जगह देखकर शरीरकी शुद्धि हो सके उतने जलसें स्नान करना. ज्यादे पानी नहीं ढोलना. ज्यादे पानी ढोलनेसें असंख्य अपकाय जीवोंकी कारण सिवा विराधना होती है. स्नान कीए बाद पवित्र वस्त्रसें शरीर पुंछकर साफ कर डालना. पीछे सुंदर शोभायमान् सांसारिक कामोंमें जिनका उपयोग न हुवा हो वैसे और धूले हुवे वस्त्र धारण कर लेवें. विगर धूले हुवे वस्त्र पहनकर पूजा करनेसें नीवी पच्चख्खाणका प्रायश्चित लगे ऐसा कहा है. पीछे अपनी शक्त्यानुसार योग्य आभरण धारण करकें फिर जिनपूजाके लिये जल, चंदन, पुष्पादिक शुद्ध द्रव्य लेकर जिनमंदिरमें जाना. जिनमंदिरमें प्रथम द्वारमें पेठतेही 'निसिहि' कहना. तबसें संसारके व्यापारका निषेध कियाही समझना यानि जिनालय अंदर व्यापार रोजगार संबंधी बातचितभी नहीं करना. फक्त जिनमंदिर संबंधी कार्यमेंही चित्त पीरोना. जिनमंदिरमें कुच्छ काम चलता हो तो उनका तपास करना, कुच्छ आशातना हुइ हो तो वो दूर करनी और जिनमंदिरके नौकर चाकरके कार्यकी तर्फ नजर

रखनी. जप भगवंतकी मूर्ति दृष्टिमें आवे तव दोनू हाथ जोडकर नमस्कार करना और रंगमंडपमें दाखिल होनेही दूसरी दफै 'निसिहि' कहनी, यहांसें जिनमंदिर संबंधी व्यापारकाभी त्याग करदेनेका समझ लेना, और जिनपूजा संबंधी काममें प्रवेत्त होना. प्रथम आपके हाथ धोकर सुवर्ण, चांदी, अन्य धातु मिट्टीके (अपनी शक्तिके अनुसार जसें) कलश हो वैसे कलशमें निर्मल जळ भरना, प्रभूके शरीरपरसें चिंतवन करना कि भगवंतने इस मुजब आभूषण उतारकर संयम ग्रहण किया था. वाद मोरे पीछीसें प्रभुके शरीरकी प्रमार्जना दृष्टिपूर्वक करनी. चीटी वगैरः जंतुओका प्रचारहुवा होवे तो वो दूरकरके कलशद्वारा अभिषेक करना. पीछे वस्त्रके स्वच्छ टुकडेसें केशर निकाल डालना. उनसें न निकलसके तो वालाकुचीसें दूर करना. वाद पंचामृतका अभिषेक करकें सुकोमल सुंदर और धूलेहुवे उज्वळ वस्त्रसें प्रभुका शरीर जल रहित करना, पीछे चंदन, केसर, वरासादिसें नव अंगमें पूजा करना और जीव जंतु विगरके, नहीं सडे हुवे, भूमिपर न पडे हुवे, अशुचि संसर्गसें रहित और सुगंधिवाले मोतियें, गुलाव वगैरः के फूल चढाना. पीछे मुकुट कुंडलादि आभरण पहनाना. उसके वाद अगर, सिलारसादि सुगंधिदार चीजोंसें वनाया गया हुवा दशांग धूप करना. लालटेनमें दीपक रखकर दीपक पूजा करनी. भगवंतके शरीरपर सोने चांदीके वर्क शक्ति मुजव चढाके आंगी रचनी या रचवानी, पीछे भगवंतके समीपमें सुंदर उज्वल अक्षतसें नंदावर्त्त अथवा स्वस्तिक करना. उनमें पहिली तीन ढिगलीयां करनेके अव्वल पहिली ढिगलीसें ज्ञान प्राप्ति, दूसरीसें दर्शन-समकित प्राप्ति और तीसरीसें चारित्र प्राप्ति होवै इस मुजवसें भावना रखकर स्वस्तिक करना, उस वक्त चोरों गतियोंका नाश होनेंकी भावना रखनी फिर तिन ढगलीयोंके उपरकि तर्फ अक्षतसें अर्द्धचंद्रकार समान सिद्धशिला वनानी और शोचना कि यह सिद्धशिलापर मेरा निवास हो. इस प्रकार अक्षत पूजा करकें पीछे सुंदर फल मेवे वगैरः धरना. अपक्व, सडे हुवे, खराव गंधवाले या अभक्ष फुल पूजा प्रकरणमें नहीं धरना. वाद

नैवेद्य चढाना-धरना; उसमेंभी भक्ष पदार्थ यानि लड्डु, दूधपाक, शाक, दाल, चावल, चूरमा वगैरः विविध जातिके पकवान प्रभुके आगे धरना. और पीछे भावना भावै कि-'यह आहार अनेक पापारंभ करके तैयार किया गया है और यह आहार मैं खाउंगा तो उस्सें भी इसके आस्वादनसें मेरेकों राग द्वेषकी परिणती जाग्रत होयगी; वास्ते जितना आहार प्रभुकों चढाउंगा उतने आहार संबंधी रागद्वेषकी परिणती होनी बंध रहेगी और फिर उपकारकी भक्ति होगी.' उनसें परंपराद्वारा मुक्तिफलकी प्राप्ति होगी. ऐसा शोचना. इस तरह द्रव्य पुजा करना. इससेंभी ज्यादे द्रव्य हो तो ज्यादे द्रव्य चढाना. उसके बाद तीसरी 'निसिहि' कहनी और शोचनाकि-'अब द्रव्य पूजाका कार्य मोकूफ करकें भाव पूजा करुंगा.' पहिले तीन प्रदक्षिणा देकें तीन खमासण देना तीन दिशाओंकी तर्फ निघा फिरानी छोडकर यानि केवल प्रभु सन्मुख देख वीरासन लगाकर दोनू हाथ जोडकें चैत्यवंदन, नमुथ्थुणं, दोनू जीवंती, स्तवन, जयवीयराय आदि कहना, और काउस्सग्ग करना. और काउस्सग्ग पारकर एक स्तुतिं वा आठ स्तुति शक्ति अवकाश हो वैसी रीतीसें चैत्यवंदन करना. यह सामान्य विधिसें प्रभु भक्ति कह दी. पीछे प्रभु सन्मुख खडे रहकर आगे जिस मुजब बतलाइ गइ है उसी मुजब भावना भावै बहुत गुणी आचार्य महाराज भगवंतके गुणरूपी श्लोकबद्ध-काव्यबद्ध रचना कर गये हैं उस स्तुतिसें स्तुति करनी. ऐसी सुंदर भावना उपयोग करनेसें नागकेतू वगैरः केवलज्ञान पाये हैं. उनकी कथा कल्पसूत्रमें मौजूद है.

२८ प्रश्नः—पुष्प पूजा करनेसें पुष्पोंके जीवोंकों पीडा होता है उसका क्या करना?

उत्तरः—पुष्पके जीवोंकों बाधा नहीं होती है; लेकिन रक्षण होता है; क्यों कि पुष्प कोइ गृहस्थ ले जावै तो मनुष्यके स्पर्शसें उनके जीकों किलामना होवै. कितनेक गृहस्थ शय्यामें बिछाकर सो जाते हैं उससें भी किलामना होती है; किन्तु जो पुष्प प्रभुजीकों चढते हैं उनकों तो अपने आयुष्य तक अबाधा रहती है. फिर तुम कहोगे कि पुष्पकों सूइसें छेदकर गुंथनसें

किलामना हुवे बिगर क्यों रहे ? तो उसके जवाबमें यही खुलासा है कि, जो पुष्पकी दांडी पोकल हो उसमें डोरा पिरोना शास्त्रमें कहा है, वास्ते उस मुजब काम करनेसें बाधा नही होगी. पुष्प छेदकें पिरोकर या कची कलीयें पिरोकर हार बनाकें चढानेकी रीति प्राचीन नहीं; मगर अर्वाचीन-नवीन रीति मालूम होती है. ऐसी रीति पडनेसें कितनीक दफै गुंथन किये बवे पुष्प नहीं मिलते हैं तब विधिपूर्वक पूजा करनेके रसिक पुरुषोंकोंभी सीए हुवे फूल चढाने पडते हैं, सो अपवाद समझकर चढाते हैं; सबब कि जो वौ हार न चढावे तौ बिल्कुल पुष्पहार चढ सकै नहीं वास्ते योग बन सके वहांतक गुंथे हुवे फूल चढाना यही श्रेय है. प्रभुभक्ति करनेमें कदाचित् अल्पहिंसा होवै तौ उसपर आवश्यकजीमें कुंवेका दृष्टांत दिया है. जैसे कुवा खोदनेमें कष्ट पडता है; मगर हंमेशां पानीका सुख होता हैं; वैसेही प्रभुपुजनमें अल्पहिंसा होवे, मगर अंतमें मुक्तिके सुखकी प्राप्ति होती है. इस लिये श्रावककों अष्टप्रकारी पूजा करनेका महानिशिथ्थ सूत्रमेंभी कहा है.

९ प्रश्नः—नैवेद्य-पकाया हुवा धरना ऐसा किस शास्त्रमें कहा है ?

उत्तरः—श्राद्धविधिमें कहा है, फिर श्राद्धविधिमें निशिथ्थ चूर्णी वगैरःके दृष्टांत दिये हैं. आचारोपदेश, अष्टप्रकारी पूजाका रास, तथा सकलचंदजी उपाध्याय प्रमुख विरचित पूजाओंमेंभी कहा है. वै शास्त्र देखनेसें विस्तारयुक्त मालूम हो जायगा. सामान्य प्रकारसें नैवेद्य चढानेका तौ महानिशिथ्थ, पंचाशकजी, प्रवचन सारोद्धार, योगशास्त्र आदि बहुतसे शास्त्रोंमें कहा है.

१० प्रश्नः—दीपकपूजा कौनसें शास्त्रमें कही है ?

उत्तरः—महानिशिथ्थसूत्रमें अष्टप्रकारी पूजाका अधिकार चला है, वहां कही है. प्रभुके जन्म समय दिग्कुमारीकाओंने दीपक किये हैं-वगैरः वर्णन जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिमें है; और आवश्यकसूत्रमेंभी कहा है.

११ प्रश्नः—गुरुभक्ति किस प्रकारसें करनी ?

उत्तरः—गुरुकों देखतेही दोनू हाथ जोडकर नमस्कार करना. गुरु कुच्छ काममें न लगे हो तौ खमासमण देकर वंदन करना. इच्छकार पूंछकर अभूठियो

अभ्यंतरसें खमानां. गुरु खडे हो तौ खडेही रहना. गुरुके वचनकी अ-
वगणना नहीं करना. वस्त्र, पात्र, औषध, पाट, पटरे, रहनेकी जगह आदि
जो कुच्छ चाहियें सो हाजिर करना. अपनी पास न हो तो जिसकी
पास हो उसकी पास गुरुजीकों लेजाकर दिलवा देना. किसी प्रकारसें
उन्होंका वचन नहीं लोपना. गुरु महा उपकारी हैं, वो उपकारीके उप-
कारका बदला किसी दिन नहीं दिया जायगा; वास्ते यथाशक्ति गुरुभक्ति
करना. तन, मन और धन अर्पण करना. शायद गुरुमहाराजके काममें
तमाम दौलत व्यय हो जावै तौभी व्यय करनेमें किंचित्‌भी अंदेशा नहीं
ल्याना. ऐसा भाव जिनकों हो जाता है उनकों अवश्य-निश्चय समकित
होता है. उनमें जितनी कसर-कचास हो उतनीही समकितमेंभी न्यूनता
जाननी. वास्ते देवगुरुकी भक्तिमें कोइभी तरहसें कमी नही रखनी. गुरु-
महाराज एक कौडीभी आप नहीं लेते हैं. किसी वक्त अकस्मात् धर्म
संबंधी हरकत आ पडी हो और उस काममें पैसे खर्चने पडे वैसा हो-
औषधमें वापरने हो, पुस्तक लिखवाने हो-आदि धर्मके कार्यमें पैसेकी
जरूरत हो उस वक्त गुरुमहाराज वापरनेका उपदेश करते हैं; वास्ते बि-
लकुल् मनकों पीछे न हठातें प्रसन्न होकर द्रव्यका सदुपयोग करना.

३१ प्रश्नः—गुरु लोभी हो तो कैसें करना.

उत्तरः—गुरुमहाराज लोभी होवैंही नहीं, जो अपने शरीर, शिष्य और श्रावककी
आशा नहीं रखते हैं वो धनकी आशा क्यों रक्खें ? वास्ते उन्होंमें लोभी
होनेकी शंका करनीही नहीं. वै फक्त शरीर संरक्षणके लिये प्रमाणोपेत
वस्त्रकों ग्रहण करते हैं और शरीरद्वारा ज्ञानदर्शनचारित्रका आराधन किया
जाता है उससें शरीरकों शुद्ध मान आहार देते हैं-इंद्रियोंकी पुष्टिके लिये
तों आहारभी नहीं लेते हैं. उसमेंभी जो आहार गृहस्थने अपने वास्ते
बनवाया हो वही लेते हैं, उनमेसेंभी इस अंदाजसें ग्रहण करते हैं कि
उन गृहस्थकों फिर न बनवाना पडे, और फिर नयाही बनवाना पडेगा
ऐसा मालूम हो जाय तौ बिलकुल् नही ग्रहण करते हैं आहारके संबं-
धमें ऐसे निरिच्छावान् होते हैं तौ फिर दूसरा लोभ तो कहेंही

किस लिये ? उन्होंकों एक कौडी भी पास नहीं रखना हैं, और जिन्होंने रख्खा है तो उन्होंकों शास्त्रमें गुरुबुद्धिसें (गुरु) मानने नहीं कहे हैं. जिनाज्ञा विरुद्र ऐसे वेषधारी द्रव्यालिंगी, पासथ्थादिक द्रव्य रखनेवालेकों जो गुरुबुद्धिसें मानते है उनकों मिथ्यात्व लगता है.

प्रश्नः—कोइ एसा कहता हैं कि-ज्ञानसें करकें ही धर्म होता है, क्रिया वो तो सी फेक्रर्म है, उससें क्रिया करनेसें धर्म नहीं होवें; वास्ते कभी क्रियारुचि न होवै तो भी ज्ञान पढे हुवे होवै तो उनकों गुरु माननेमें क्या हरकत हे ?

उत्तरः—शास्त्रमें समकित करकें सहित हो उनकों ही ज्ञान कहते हैं जो आज्ञाके समकित हो वो तो भगवंतकी आज्ञाके आराधक होते हैं, जो आज्ञाके आराधक होवें वे क्रियासें विमुख होवैंही नहीं; कारण कि ज्ञानद्वारा अपने आत्माका और पुद्‌गलका स्वरूप जान लिया है उससें वे जानते है कि "अहा ! यह पुद्‌गल तो जड पदार्थ है, पुद्‌गलका वशीभूततासें करकें विपरीत बुद्धि हुइ उससें पर वस्तु जो धन-धान्य-और स्त्री-कुटुंबादि उनकों इस जीवनें अपनी करकें मान लि हैं और उससें कर्मबंधन करकें चारों गतियोंमें घूमकर अनेक प्रकारके दुःख भुक्ते., इस भवमें भाग्योदयसें श्री जीनराजजीका मार्ग, प्राप्त हुवा औकर्मने विवर-रस्ता दिया उससें मेरेकों संयमकी प्राप्ति हुइ हे, तो अब मुझकों आत्मतत्वमेंही रमण करना योग्य हे. अनादिकालकी जीवकों परभावमें रमण करनेकी आदत है, उसीसें मेंरी दशा वेर वेर पुद्‌गल भावकी होती है वो वदल डालनेके लिये अशुभ क्रिया छांडके शुभ क्रियामें प्रवर्त्तना योग्य हे." इस तरहकी भावनासें संयमकी क्रिया करते हैं और वो क्रिया कर्मनिर्जराकी हेतुभूत होती है. फिर योगादिककी जो शुभ प्रवृत्ति होती है उससें यदि शुभकर्म बंधाजाता है; परंतु वो कर्म मुक्ति प्राप्त करनेमें सहाय्यकारी होते हैं-विघ्नकारी नहीं होते हैं. ऐसें शुभ कर्मके योगसें आर्यक्षेत्रमें जन्म, पांचो इंद्रियें संपूर्ण, धर्मिष्ठ कुल, धर्मकार्यमें स्वजनादि अनुकूल, निरोगी शरीर, और देवगुरुकी योगवाइ-इत्यादि साधनोंकी प्राप्ति होती है. यह साधन मिले विगर जीवसें मुक्तिमार्गका आराधन नहीं हो सक्ता है. जो ज्ञानवान् हैं वे सहजसेंही क्रियामें प्रवर्त्तते हैं. ज्ञान

गुणद्वारा वस्तु स्वरूपका जाननेमें संसारका अनित्यता समझकर जिन्होंने चारित्र अंगिकार किया है वैसे मुनिराज हरदम शोचते है कि-सब जीव सत्तासें करकें समान हैं; लेकिन कर्मसें करकें अलग अलग गति प्राप्त हुवे हैं वे सब सुखके अभिलाषि हैं. दुःखकों नहीं चाहते हैं. जैसे मेरे शरीरकों कोइ पीडा प्राप्त करता है तौ मुझकों दुःख होता है. वैसेंही सब जीवोंकों भी दुःख होता है, उस वास्तें किसी जीवकोंभी दुःख देना योग्य नहीं है ऐसें विचारसें वै जबजब उठते हैं-बैठते हैं-सोते हैं-चलते है. तब तब यत्नापूर्वक प्रवर्त्तते हैं. फिर पडिलेहणभी उसी लियेही करते है कि वस्त्रमें कोइ जीव हो तो शरीरकों लगनेसें उनकों पीडा उत्पन्न होवें. फिर प्रतिक्रमणकी क्रिया करते हैं उनका कारणभी एसा है कि आप आत्मास्वभावमें रमणता करनेकों चाहते है; परंतु जीवकों अनादिकालका मोहप्रवृत्तिका अभ्यास बना हुवा है उसके जोरसें जो नही करने लायक प्रवृत्ति हो जाती है सो आपके मनमें अनिष्ट लगती है और उसकी निंदा गर्हा तौ कायम हुवा करती है; परंतु प्रतिक्रमणमें विशेष प्रकारसें करनेका बन शके वास्ते प्रतिक्रमण करते हैं. यथाशक्ति तप करते हैं, उसमेंभी ऐसा भाव प्रवर्त्तता है कि आहार करना वो मेरा स्वभाविकधर्म नही है, मगर अभीतक पुद्गलमें रहा हुं इस्सें ज्ञान ध्यान भले प्रकारसें होनेके लिये इस शरीरकों निर्वद्य आहार देता हुं; तौभी थोडी थोडी तपश्चर्या करुं तौ उस्से कुच्छ ध्यान ज्ञानमें हरकत नहीं, होगी, मगर शुभ भावके योगसें ज्ञान ध्यानकी वृद्धि होगी; वास्ते यथाशक्ति तपस्या करुं-एसी भावना होनेसें ज्ञानीकों सहजमें तपभी बन आता है. वास्ते ज्ञानवंतकों क्रियाकी रुचि न हो यह बात संभवितही नहीं है; लेकिन जो फक्त लोकरंजनार्थ ज्ञान पढे हुवे होते हैं उन्होंकों क्रिया रुचि नहीं होती, तौ वै कुच्छ जैनमार्गमें नहीं हैं? श्रीविशेषावश्यकजीमें क्रिया रूचि रहित जीवकों अज्ञानी कहे हैं. तौ वैसे अज्ञानी गुरु करने योग्य होवेही नहीं, उसकी संगत करनेसें उनके जैसी विपरीत बुद्धि और मिथ्यात्व प्राप्त होवे, इस लिये भगवंतकी आज्ञा मुजब चलनेवालेकों ही गुरुमानने चाहियें.

३४ प्रश्नः—गुरुमहाराज न हो तौ धर्मकरणी किसके आगे करनी ?

उत्तरः—जैसें देवके अभावसें देवकी मूर्ति, तैसें गुरुके अभावसें गुरुकी स्थापना जाननी. उनमें मुख्य अक्ष, सो गोलाकारका कौडा समझना. वै तीन, पांच सात या नव आवर्त्तवाले हो तौ श्रेष्ठ गिनेजाते हैं. इसका फल श्री भद्रबाहुस्वामीकृत स्थापनाकुलकमें विशेष प्रकारसें दर्शाया है. श्री यशो विजयजी उपाध्यायनें स्थापनाकी सज्झाय बनाइ है उनमें भी उनका फल तथा विधि बताया है. ऐसे अक्षके स्थापनाचार्य स्थापितकरकें उनके सन्मुख क्रिया करनी. उनका योग न बन सके तो ज्ञान दर्शन और चारित्रके उपकरण–मुख्यत्वमें पुस्तक नौकरवाली–माला प्रमुखकी स्थापना करनी. श्री ठाणांगजी सूत्रमें दश प्रकारकी स्थापना कही है, वौ स्थापित करकें पंचिंदियसें उनमें गुरु महाराजके गुणका आरोपण करना ओर पीछे उनकी समीपमें विधि करना.

३५ प्रश्नः—धर्म वो क्या है ?

उत्तरः—धर्म दो प्रकारके है अर्थात् आत्मिक धर्म और व्यवहारिक धर्म ये दो हैं.

३६ प्रश्नः—आत्मिक धर्म सो क्या ?

उत्तरः—आत्मिक धर्म सो आत्माका लक्षण यानि अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंत चारित्र और अनंतवीर्यादि उनमे रमण करना वही आत्मिक धर्मका आराधन समझना.

३७ प्रश्नः—अनंतज्ञान किसकों कहते हैं ?

उत्तरः—अनंत पदार्थोंका और तीनू कालका स्वरूप जाननेकी आत्माकी शक्ति है वही अनंतज्ञान.

३८ प्रश्नः—आत्माकी ऐसी शक्ति है तौ वो मालूम क्यौं नहीं होती ?

उत्तरः—आत्मा कर्मसें करकें आच्छादीत हुवा है उससें उनकी शक्ति नहीं चल शकती हैं.

३९ प्रश्नः—आत्मा कर्मसें करकें कबसें आच्छादित हुवा है ?

उत्तरः—आत्मा अनादि कालसें कर्मसें आच्छादित है वो किसी समयमें भी निर्मल होताही नहीं. जैसें सुवर्ण खानीकी अंदर मूलसेंही मिट्टीके साथ मिलाहुवा है, तैसें जीवके लियेही समझना.

४० प्रश्नः—कर्म वे क्या ? और वे जीवके साथ कैसी रीतिसें भेलसेल हुवेले है ? फिर अनादिके कर्म हैं वही चले आते हैं या फेरफार होते है ?

उत्तरः—कर्म वो जड पदार्थ है, जो चर्म चक्षुद्वारा मालूम होता है वो सब जड पदार्थही है, जीव नजर नहीं आते हैं. जड पदार्थ विचित्र प्रकारके रूप धारण करते हैं. मनुष्यके शरीररूपसें मिले हुव हैं वोही अलग अलग हो कर फिर भस्मरूप होजाते हैं, वक्तपर अग्निरूप होजाते हैं और वही पीछे पृथिवी, जल, वायु, वनस्पति, तथा जानवरोंके रूपकों धारण करते हैं. जीवके, शरीरसैसें अलग पडे हुवे पुद्गलोंके विचित्र घाट वनते हैं. जीवने ग्रहण न किये हो वैसें छूठे पुद्गलोंके भी स्वभाविक अनेक रूप वनते हैं आकाशमें लीले–हरे पीलेरंग मालूम होते है वो स्वभाविकही वनते हैं. अैसे पुद्गल परमाणुए मिलकर कर्मयोग्य पदार्थ होता हैं. वैसा कर्मपदार्थ आत्माके साथ अनादिकालसें मिलगया हुवा है, वो ज्यौं ज्यौं भुके जाते हैं त्यौं त्यौं अलग होते जाते हैं और पीछे नये वंधाते हैं. अैसें श्रेणी प्रश्रेणी चलीही आती हे. जैसें चिकनाइवाले पदार्थकों धूल लगती है, तैसें जीवकों रागद्वेषकी परिणतीरूप चिकनाइ के योगसें कर्मके पुद्गल आकर लिपट जावे हैं.

४१ प्रश्नः—जीव और पुद्गलका कर्त्ता कोइ है ?

उत्तरः—ये किसीके बनाये हुवे नहीं हैं यानि उसका कर्त्ता कोइ नहीं हैं. फिर न्यायसें शोचनेसें इसका कर्त्ता कोइ हो सकै भी नहीं. जो उसका कोइ कर्त्ता–वनानेवाला हो तौ वो शरीरधारी होना चाहियें यानि उसका वनानेवालेकाभी फिर वनानेवाला कोइ होनाही चाहियें. फिर जव जगत्में कोइ पदार्थही न होवें तव जीव और पुद्गल क्या पदार्थ न वना सकै ? फिर जो जीवका कर्त्ता हो तो वो पापकार्य करनेवालेकों–पैदाही नही करै, और जगत्में तो अैसेही मनुष्य ज्यादे नजर आते हैं ! कभी कोइ कहेगा कि–वनाये गये जव तो अच्छेथे; लेकिन पीछेसें विगड गये. तौ वनाने वाले ज्ञानीकों अैसाभी ज्ञान होना चाहियें कि ये पीछेसें विगड जायेंगे; वास्ते इनकों वनानेही न चाहियें. साधारण मनुष्य भी जो

किसी कार्यका बुरा परिणाम आनेका ज्ञान लेवै तौ वो कार्य नहीं करता है, तब जो सर्वज्ञ है वो तो तीनू कालका स्वरूप जान सकै तौ फिर पीछेसें विगड अैसे प्राणीयोंकों क्यों बनावै? फिर इश्वर समदृष्टिवाला होनेसें एककों मनुष्य बनावें और दूसरेकों जानवर बनावै, एककों सुखी बनावै और एककों दुःखी बनावै अैसा होवैही नहीं. उनका विचार तौ सबकों सुखी बनानेकाही होना चाहियें, और वैसा तो जगत्में किसी जगहभी नजर नहीं आता है. उसीसें मालूम और सावित होता है कि जगत्का बनानेवाला इश्वर नहीं है. इश्वरकों जगत् कर्त्ता मानना ये वास्तविक नहीं है. फिर कितनेक कहते है कि—यह तौ सब इश्वरकी इच्छाद्वारा ही बनता है. यह कहनाभी असत्य है; कयोंकि जो जो धर्मवाले मुक्तिकों मानते है और मुक्ति मिलानेके लिये उद्यम करते है उनके शास्त्रमें अंतमें क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारोंसें मुक्त हो जाता और समभावमें रहना उसींका नामही मुक्ति कही है. तब शोचोकि दूसरोंकों तौ इच्छासें मुक्त होना कहते है और आप यह जगत् उपजानेकी इच्छा करते हैं ये बात कयोंकर संभवै? जैसे आधुनिक समयमें कितनेक धर्मगुरु नाम धारण करनेवाले आप खुद द्रव्य रखते है, स्रीका आनंद लेते है और उनके दूसरे सेवक लोगोंकों उपदेश करते है कि—" द्रव्य अस्थिर है, अर्थ अनर्थका मूल है, स्रीकी सोवतसें अनेक प्रकारके कर्म बंधे जाते हैं; वास्ते तुम लोग द्रव्य और स्री इन दोनुका त्याग करो जिससें तुमकों बहुतही लाभ—फायदा होगा! " इस दृष्टांत मुजब जगत्के करनेवाले इश्वर आप तो खुद राग द्वेषसें मुक्त हुवेही नहीं है. और दूसरोंकों मुक्त होनेका कहते है; वास्ते अैसा कथन इश्वरका होवैही नहीं. अैसी वातें करनेवाले इश्वरके स्वरुपकों नहीं समजते हैं और नाहक इश्वरकों दूषण लगाते हैं. इश्वर तौ समस्त प्रकारकी राग द्वेषकी परिणतीका त्याग करनेवाले होते हैं. किसी प्रकारकी उपाधि उन्होंकों होतीही नहीं; संसारी काम कोइभी उन्हें करनेका नहीं होता है. संसारी काम तो देहधारी मनुष्य—प्राणी करते है. इश्वर देह रहित हुवेले हैं. अपने

आत्मस्वभावद्वारा सब पदार्थोंकों जानते देखते हैं; लेकिन उसमें परिणमते नहीं हैं. इश्वरका सच्चा स्वरुप इस मुजब होनेसें वै जीव या पुद्गलके कर्त्ताही नहीं हैं. जीव और पुद्गल पदार्थ अनादि कालसें स्वभाविकपनेसेंही है अैसा समझ लेना.

४२ प्रश्नः—आत्माके चेतन गुणको कर्मजड होनेसें किसतरह ढांप सकै? या वेष्टित हो सकै?

उत्तरः—अपनी नजरसें प्रत्यक्ष देखते हैं कि बुद्धि अरूपी है; तदपि मदिरापान करनेवालेकी बुद्धि भ्रष्ट होजाती है और उसका केफ चढता है तब ज्यौं त्यौं बकता है, तों मदिरा जड होनेपरभी बुद्धिकों क्यों ढांप देती है? फिर केफ उतरता है उस पीछे बुद्धि मुकामपर आती हैं, तैसें कर्मभी अैसाही पदार्थ है, उसके संयोगसें आत्माका ज्ञान गुण लुप्त होता है. जैसें परदेमें रही हुइ वा मैलके जथ्थेसें लिप्त हुइ वस्तुओंका सच्चा स्वरूप नजर नहीं आता है, तैसें कर्मरूप मेल लगनेसें आत्माकी शक्ति और स्वरूप नजर नहीं असकता है.

४३ प्रश्नः—आत्मा निरंतर कर्मसेंकरकें आच्छादित हुवाही रहता है कि उसमें फेरफारभी होता है? और वो किसी वक्तभी शुद्ध होगा या नही?

उत्तरः—आत्माके ज्ञानकों कर्मकी नशा लगाहुवा हैं. नशा करनेवाले मनुष्यकों यदि कोइ भारी फिक्रकी वात करै या तौ खटाइ वगैरः नशा उतर जानेकी चीज खिला देवे तो उसका नशा उतर जाता है, वैसें प्राणीकाभी गुरुमहाराजके योगसें या पूर्वके क्षयोपशमद्वारा जब अपने आत्माका सच्चा स्वरूप समझा जाता है और पुद्गलके संगसें अनादि काल संसारमें परिभ्रमण करनेका समझा जाता है, तब उससें भय पाता है और कर्मका नशा उतर जाकर ज्ञानदशा जाग्रत होती है. उस वक्त शोचता है कि, 'जो मैं सुख मानता हुं वो तो जडपदार्थद्वारा मात्र मान लियाहुवा सुख है, उससें मेरे आत्माकों तौ सुख नहीं मगर उलटा कर्मबंधनरूप दुःख है. फिर वो सुख जैसें फांसी चढानेवाले मनुष्यकों अच्छी अच्छी चीजें खानेकों देते हैं किंतु थोडी देर पीछे फांसीपर लटका दिया जाता है

उनके जैसा है. संसारसुखकी लीनताभी ऐसीही है; सबब कि अभीके समयमें बडेमें बडा बहुतकरके आयुष्य सौ वर्षका होता है, तौ उतने समय तक सुख भुक्तना और पीछे उन्सें भये हुवे कर्मबंध नद्वारा नरकमें जाना पडे वहां सागरोपमके आयुष्य होनेसें असंख्य वर्ष पर्यंत दुःख भुक्तना उनके प्रमाणमे मनुष्यभवका सुख कुच्छ हिसावमें नहीं. कभी मरण हुवे बाद नरकमें न जातें मनुष्यगतिमें जानेका होवै तो वहां स्त्रीकी योनिमें अत्यंत अशुचिवाले स्थानकमें वेसुमार दुर्गंधिका अनुभव लेते हुवे उत्पन्न होना ओर वहां उंधे शिरसें नौं मास तक रहना–ऐसे गर्भावासके दुःख भुक्तना पडे. तिर्यंच गतिमें जानेका होवै तौ वहांभी क्षुधा, तृषा सहन करनी पडे ओर दूसरेभी अनेक प्रकारके दुःख भुक्तने पडें; वास्ते ऐसे पुद्‌गलीक सुखकों मैं सुख नहीं मान लुंगा." ऐसी भावना आनेसें सांसारिक सुखकों सुख माननेरूप नशा उतर जाता है. यौं करते हुवे कदापि सदन नशा न उतर जावै तौ उनके निवारणके लिये तप संयमरूप औषधका उपयोग करकें मोहजन्य नशा उतारता है. तप संयमादिद्वारा ज्यौं ज्यौं कर्म नाश होते जाते है त्यौं त्यौं आत्मा शुद्ध होता जाता है. तौ पीछे जो सुख दुःख प्राप्त होता है उसमें समभाव रखता है और शोचता है कि–' देहके साथ रहकर मैंनें जो जो कर्म बांध लिये है वो वो देहके संबंधसें उदयमें आनेसें भुक्तेजा हैं, उसमें मुझे शांतपणेसें दूर–अलग रहनाही योग्य है; किंतु मुझकों दुःख होताहै, मुझकों सुख होता है ऐसा शोचना योग्य नहीं है. ' ऐसी विचारनासें नशा उतरता जाता है और सावधानी बढती जाती है. उनमें भी जैसें दूसरी दफै नशा करता है तौ फिर बुद्धि आच्छादित हो जाती है तैसें गुरुमहाराजके उपदेशसें शुद्ध भाव आनेपरभी फिर संसारके सुखमें गिरजाता है तौ फिर ज्ञान आच्छादित हो जाता है. कितनेक मनुष्य ऐसे दृढ होते हैं कि ओक वेर नशा उतरे बाद उनका गैरफायदा समझकर दूसरी वेर कवीभी नशा नही करेंगे. उसीतरह कितनेक अल्पसंसारी जीव तौ धर्म श्रवण किये पीछे दिन प्रतिदिन आत्माकी शुद्धता किये जाते है और अंतमें सर्वज्ञपना

संपादन करते है, उन्होंका ज्ञान पुनः आच्छादित नहीं होता है, सदा काल अेक समानही रहता है और पुनः उनकों संसारमें भी नहीं आना होता है.

४४ प्रश्नः—कर्मसें रहित हो जाय उनकों फिर कर्म नहीं लगते हैं ?

उत्तरः--राग द्वेषरुप चिकनाइ योगसेंही कर्म लगते हैं. और रागद्वेष है सो कर्मके योगसें होते हैं; वै कर्म निकल गये कि उनका योग नहीं रहता है और रागद्वेषमय परिणति नहीं रहती है, वास्ते कर्म नहीं लगते हैं. जैसें कि दूधकी अंदर घी रहा हुवा है उसकों निकालनेकें लिये पहलें दहीं वनाना, पीछे उसकों विलोकर मख्खन निकालना, पीछे मखनकों तपाकर घी वनाना. वो निकाले हुवे घीका पुनः दूध नहीं हो सक्ता है-घीही कायम रहता है, उसीही तरहसें आत्माके अनुक्रमसें प्रगट हुवे गुण आच्छादित नहीं होते हैं.

४५ प्रश्नः—कर्मआते हैं वो नजर नहीं आते हैं; वास्ते आते हैं अैसा कौनसे अनुमानसें सिद्ध हो शकै ?

उत्तरः—कर्म पुद्गलिक पदार्थ हैं. ठंडी के ठंडे पुद्गल जव अपनेकों स्पर्श करते हैं तव जानते हैं कि ठंडी लगती हैं; परंतु अपन ठंडीके पुद्गल नहीं देख सकते हैं, तोभी निश्चय करते हैं कि ठंडे पुद्गल स्पर्श करने लगे. सुगंधीके पुद्गल नहीं देख सकते हैं, मगर नाँकमें खुशवु मालूम होनेसें समझनेमें आता है कि यहांपर कोइ सुगंधी-पदार्थ है. गर्मी लगती है; लेकिन उसके आतेहुवे पुद्गलोंकों नहीं देखते है. हवा चलती है उसकों नहीं देख सकते हैं; मगर शरीरकों स्पर्श होनेसें जाना जाता है कि हवा चलती है, तैसे कर्म आते हैं वो अपनकों नजर नहीं आते; लेकिन जव कर्म उदय आते हैं और उनके फल देखनेमें आते हैं तव सिद्ध होता है. अगाडीके जन्मोंमें कर्म वांधे हुवे होते है उनके योगसें सुख दुःख प्राप्त होता है. कोइ सुखी, कोइ दुखी अैसा सव जगह मालूम होता है. कोइ मनुष्य वर्त्तमानकालमें अच्छे कृत्य करता है, फिर अकलमें भी खामी नहीं है, दुःख होवै वैसाकार्यभी अभी नहीं करता है; तौ भी वो दुःखी होता है ये सव पूर्व कर्मके योगसें समझना. फिर कितनेक मनुष्य लुचाइ, ठगाइ, चोरी वगैरः करते

हैं, झूंठ बोलते हैं, अच्छे मनुष्यपर कलंक धर देते हैं, हिंसा करनेमें त-
तत्पर होते हैं–अैसे अधर्मी–अधर्मके करनेहारे सुखी मालूम होते हैं, उ-
सका सबब इतनाही है कि इस जन्ममें जो सुख भुक्तता है सो पूर्वजन्मके
कियेहुवे सुकृतके लियेही है अैसा समझना; परंतु इस जन्ममें कियेहुवे
कृत्यके फल आते जन्ममें भूक्तने पडेंगे. क्वचित् इस जन्मके कियेहुवे
कर्म इस जन्ममेंभी उदय आते हैं. कितनेक राजा परस्त्रीके लंपटपनेसें
इसी जन्ममें ही राज्य खोकर कैदमें गिरफतार हो जाते हैं. चोरी कर-
नेवालेभी इसी जन्ममें तुरंत कैद हो जाते हैं–यह सब कर्मकीही विचित्रता
है. जुलावकी दवा अैसी जल्लाद होती है कि उसकी फौरन असर होती
है, और दूसरी दवा अैसी होती है कि जिनकी असर दो चार घंटेके
बाद होती है. मनुष्य विष खाता है उसमें कोइ विष अैसा होता है कि
खा लिया या सूंघालिया के तुरंत मर जाता है, और कोइ विष–झहर
अैसा होता है कि मनुष्यकों दीर्घ–लंबे वक्त तक पीडित करकें फिर मार
देता है, तैसें कर्मभी विचित्र प्रकारके हैं, वै किसीकों तुरंत और किसी-
कों जन्मांतरमें प्राप्त होते हैं. कर्मके अनुसार मनुष्यकों जुदी जुदी यो-
नियें प्राप्त होती हैं. कोइ कहेगा कि इसकी सबूति क्या? तो समझना
कि–किसी वक्त मनुष्य मरकें व्यंतर होता है और वो आकें उनके कुटुं-
बके पूंछे हूवे सभी जवाब देता हैं, उसपरसें दूसरा भव सिद्ध
होता है, और उन्होंकों प्रतीति करा देता है. अपनी करणी
माफक जीव दूसरी गतिमें जाता है. सब बातें कर्मके संबंध-
सेंही बनती हैं. पुनः मंत्रवादि सॉपके मंत्र पढते हैं उस वक्त मंत्रके
अधिष्ठायक देव सॉपके विषकों शरीरमेंसें हरण कर लेते हैं, उसपरसें
देवकी जाति भी सिद्ध होती है. जब दूसरी गति है, तब कर्म विगर दू-
सरी गतिमें कौन लेजावे? इस अनुमानसें भी कर्म सिद्ध होता है.

प्रश्नः—कर्मके संयोगसें परिणाम बिगडते है–और नये कर्मबंधे जाते है–इसी
तरहसें परंपरा चली जाती है तब कर्मसें मुक्त किस प्रकारसें होवे?

उत्तरः—कर्म दो प्रकारके हैं–अेक उपक्रमी और दूसरा निरुपक्रमी–उसमें जे
निरुपक्रमी कर्मबंधे हुवे होते हैं तो भुक्तने विगर छूटकवारा नहीं होता

है, और उपक्रमी कर्मबंधा हुवा होता है तो आत्माकी विशुद्धतासें गिर जाता है और अधिक विशुद्धता प्राप्त होती है. जैसेंकि कितनेक रोग असे होते है कि जन्मपर्यंत–अंततक भुक्तने विगर छूटकारा नहीं होता है और कितनेक रोगकी औषधीका प्रयोग करनेसेंही शांति हो जाती है. जैसें जो गुरुके संयोगसें ज्ञान होता है वो ज्ञानवंत जीव पापका उदय होवै तब शोचता है कि मैंनें अज्ञानतासें कर्म बांध लिये हैं वै भुक्ते विगर छूटकारा ही नहीं है; वास्ते मुजकों विकल्प करना दुरस्त नहीं. बुरे काम किये उनकी यह शिक्षा भुक्तनीहीं चाहियें. असी सुंदर भावना ल्याकर जब जीव समभावमें रहता है तब वो उपक्रम कर्मकों उपक्रम लगता है और उस्सें जलदी उन कर्मका नाश हो जाता है. यहां आत्मा की पुद्गल संयोगसें राग द्वेषरुप परिणति न हुइ वोही चिकनाइ कम हुइ उससें पूर्वके जो कर्म थे वो गिर पडे. फिर शुभ कर्मकों भी उपक्रम लगता है सो इस रीतिसें कि–जब जीवकों पुण्योदयसें धन–दौलत–पुत्र–मकान–दुकान वगैरः सब चीज सुंदर मीलती है, तब जीव अहंकारमें लीन होता है. इस सुबब अहंकार करनेसें शुभकर्मकों उपक्रम लगता है. सबब जो शुभकर्म बंधाते हैं वै मंद राग द्वेषसें बंधाते है और जब अहंकारादि जोर करते हैं तब तीव्र रागद्वेष होता है वो अशुभ है और अशुभ है उस्सें शुभके पुद्गल भुक्ते जावै तब शुभ कमी हुवा यही उपक्रम लगा. वास्ते उत्तम पुरुषकों चाहे उतनी ऋद्धि मिलजाय तौ भीवै अहंकार नहीं करते हैं; लेकिन भावना भाते है कि–" पूर्वमें मैंनें धर्मकरणी की उनके प्रभावसें शुभ कर्म उपार्जन हुवा है अब मोहके वश होकर मैं अहंकार करकें कर्म बांधुंगा तौ फिर दुर्गतिमें जाना पडेगा. यह पुद्गलिक सुख तौ अस्थिर है, संसारी वस्तुओंका योग सो तो वियोग संयुक्त है वास्ते उसमें मद करना वो योग्य नहीं है. फिर असे सुखमें मग्न होना वो भी योग्य नहीं. मुजे तौ आत्मस्वभावमेंही स्थिर रहना वोही योग्य है ". असी भावनाका उपयोग करनेवाले उत्तम जीवके शुभकर्मकों उपक्रम नहीं लगता है; मगर शुभकर्म पुष्ट होते हैं.

४७ प्रश्नः—शुभकर्म पुष्ट होनेसें वैभी मुक्तिकों रोकते है वास्ते पुन्य तथा पाप दोनू त्याग देने योग्य कहे हैं उसका क्या ?

उत्तरः—जैसे शुभकर्म बांधनेके वक्त राजा, चक्रवर्ति, देवता, शाहुकार इत्यादि होकर पुद्गलिक सुख भुक्तनेकी इच्छा रखनेसें जो पुन्य बंधाता हैं तैसे पुन्यकी इच्छा रखनेका तो निषेधही है. अैसी इच्छा तो रखनी ही नहीं; कारण कि अैसी इच्छासें करकें जो पुन्य बंधाजाता है वो पापानुबंधी पुन्य बंधाजाता है. उस्सें वो पुन्य भुक्तनेमें फिर पाप बंधाता है और उनसें आत्मा मलीन होता है, दुर्गतिके दुःख भुक्तने पडते हैं और आत्माकी शुद्धि नहीं होती है; परंतु जिन पुरुषोंको पुद्गलिक सुखकी इच्छा नहीं है और आत्मिक धर्म प्रकट करनेके लिये उद्यम करते हैं उसमें शुभ योगकी प्रवृत्ति होनेसें जो शुभकर्म बंधे जावें उनसें आत्मधर्मकों विघ्न नहीं होता है. सबब कि ज्यौं ज्यौं गुणस्थानक चढता जावै त्यौं त्यौं पुन्यराशि बढती जाती है; मगर उपरके गुणस्थानमें उनकी स्थिति नहीं बढती है. मतलब यह कि जिन जिन पुरुषोंनें श्रेणी मांडी है उनकों मुक्ति नजदीक है. फिर पुन्यराशि ज्यादे और स्थिति अल्प है उससें अल्प कालमें बहुत सुख भुक्त कर वै मुक्तिमें जाते हैं. मुक्तिकी अटकायत नहीं होती. जैसें खेतमें जुवारी बोते हैं उनकों जुवारीकी जरुरत है, कडविनकी जरुरत नहीं है; लेकिन सहजसें कडविन पैदा होती है. उसमें भी फिर पहिले तौ कडविन देखनेमें आती है उस्सें 'यह तो कडविन है' अैसा शोचकर कडविनकों उखाड डालै तौ जुवारी भी न देखै, तैसें शुभ योगकी प्रवृत्ति करने के समय अैसा शोचे कि यह तौ पुन्यकरणी है, इनसें आत्माकों गुण नहीं होगा अैसा समजकर जो सख्स शुभकरणीका त्याग करै उनकों आत्मिकधर्म प्राप्त होनेका नहीं, और योगप्रवृत्ति बंध होनेकी नहीं. उस्सें अशुभ योगकी प्रवृत्तिसें अशुभ कर्म बंधायगा और आत्मा मलीन होयगा; वास्ते संसार सुखके अर्थ शुभ वा अशुभ क्रिया त्यागने लायक है. वो करणी आत्माकों गुण करनेवाली नहीं है. फिर गुणस्थानककी हद मुजब शुभ क्रिया भी त्याग की जाती है. जैसेकी श्रा-

वक पोषध करते हैं तव द्रव्य-पूजा प्रमुख नहीं करते है. और मुनि म-हाराज भी द्रव्यपूजा नहीं करते हैं. फिर मुनिमहाराज ध्यानरुप होते है उन औसरमें आवश्यकादि क्रियाकी भी अभिलाष नहीं करते है. अपने स्वभावमें ही लीन हो जाते हैं. परभावका विचारही नहीं करते, आत्माके गुण पर्यायकी रमणता करते हैं, चिदानंद सुखमें सदा मग्न रहेते है; म-गर उस ध्यानका काल अंतमुहूर्त्तका है. अेक ध्यान ज्यादे वक्त नहीं रहता है वास्ते जिस औसर ध्यान करते हैं उस औसरमें शुभ क्रियाकी अंदर चित्त नहीं रखते हैं और ध्यानसें रहित होवें उस औसर जिन जिन गुणस्थानमें जो जो क्रिया करनी व्याजवी हो वोही करते हैं. अैसे मुनि किसी प्रकारसें स्वप्नमें भी विषयकी वांछना नहीं रखते हैं. और जो विषयकी वांछासें मोहके वश होकर संयम प्रवृत्ति और श्रावकपनेकी प्रवृत्ति छोड देते हैं और मानते हैं कि हम आत्मज्ञान साधते हैं, वो कुछ जैनमार्गकी रीति नहीं है. जैनमार्गके जानेवाले श्री गणधर महाराज तथा आचार्यजी भी अपने गुणस्थान मुजव क्रिया करते हैं. जैसें कि स्थविर मुनिने आत्मस्वरूपकेही प्रश्न किये हैं. और गोतमस्वामीजीनें उ-नके उत्तर आत्मस्वरूपकेही वताये हैं. लेकिन उसवाद "चार महाव्रतरूप संयम था वो पंच महाव्रत रूप संमम प्रतिक्रमण सहित आदर लुं" यह अधिकार श्री भगवती सूत्रजीके पहिले शतकके नौवें उद्देशेमें छपी हुइ प्रतके १३१ मे पानेमे है; वास्ते गुणठाणेकी वर्त्तना मुजव क्रिया आत्म-धर्मम अटकायत नहीं करती है; तदपि जो प्रभुकी आज्ञासें विपराति विचार स्थापन करते हैं वो सर्वज्ञके मार्गकी रीति नहीं है. सर्वज्ञ महाराजजीनें जिस मुजव सिद्धांतमें कहा है उसी मुजव चलनमें ही कल्यान है.

४८ प्रश्नः—आत्मा नित्य है कि अनित्य हैं ?

उत्तरः—आत्मा सदाकाल नित्य है.

४९ प्रश्नः—जीव मरता है अैसा सव जगत् कहता है उसका खुलासा क्या ?

उत्तरः—जीव नहीं मरता है; लेकीन कर्मके संयोगसें करके मनुष्य, तीर्यंच, ना-रकी, देवपना पाता है. उनके शरीर संवंधी पंचेंद्रिय आदि दश प्राण

बांधता है. स्पर्शेंद्रिय सो शरीर, रसेंद्रिय सो जीभ, घ्राणेंद्रिय सो नाक चक्षु इंद्रिय सो आंख, श्रोतेंद्रिय सो कान–यह पांच इंद्रिय तथा मन बल सो मनकी शक्ति, वचनबल सो बोलनेकी शक्ति, कायबल सो श-रीरकी शक्ति, श्वासोच्छास और आयुषये दश प्राण पूर्वक कर्मसें प्राप्त होते हैं और उनकी स्थिति पूरी हो जाय कि उनका विनाश हो जाता है–उ-सको जीव मरता है ऐसा लोग कहते हैं–सबब जो जीवका स्वरूप अरूपी है उसकों कोइ देख सक्ता नहीं, और वो दश प्राणकों देखकर जीता है यों कहते हैं. जब वो प्राण चले गये तब देह जीव रहित होता है उसकों सबब कि जिस शरीरमें जीव रहताथा, उसी लिये जान रहित कहनेकी प्रवृत्ति है. पीछे जिस जगह जानेका कर्म बंधा है उस जगह फिर ये वैसेही प्राण इकठे होते है और उपजते हैं. वस्तुपनेसेंभी आत्माका विनाश नहीं होता जैसें सुवर्णके अनेक घाट बनते हैं यानि सुवर्नकी माला बनाइ और उनकों तोडकर फिर कटीमेखला बनाइ. फिर उसकों तोडकर कडे बनवाये; मगर सब ठौर सुवर्ण तो कायमही रहता है, तैसें जो जीव पंचेंद्रिय मनुष्य होता है वो एकेंद्रिय, बेरेंद्रिय, तेरेंद्रिय, चौरेंद्रिय, नारकी, देवता वगैरः में जैसा जैसा कर्म बांधता है उस मुजब जाता है. वहां आत्मप्रदेशका घाट फेरफार होता है. जैसें कि हाथीके के शरीरमें आत्मप्रदेश महाकायमें व्याप्तमान हुवा रहता है और कंथुए (अति सूक्ष्मजंतु विशेष.) के शरीरमें कंथुए जि-तना फैला हुवा रहता है- जिस मुजबका शरीर हो उस मुजब बडी छोटी अवगाहना बनती है. दीपक करके उसपर टोकरा ढक देवें तो उतनेमेंही प्रकाश पडता है और वो टोकरा उठा लेकर दीपक घरमें रखदेवै तो, तो सारे मकानभरमें उजाला करता है, वैसेंही आत्माकी अवगाहना–फै-लाव–कमी ज्यादे होता है. उसका नाम जैनशास्त्रमे पर्याय कहाजाता है. उस्सें आत्माद्रव्यसें नित्य है और उपर मुजब पर्याय बदल जाता है उन अपेक्षासें अनित्य कहा जाता है. अब आत्मा नित्य हैं वोभी प्रत्यक्षपनेसें समझा जाता है, जीव खुद इस भवमें मरगया नहीं है; मगर गतभवमें मरगयाथा उस्सें बालक, युवान और वृद्ध ये सबकों मरनेका भय है

'शायद मर जाउंगा' वो पूर्वकालमें मरगयाथा उसकीही संज्ञा चली आती है. जैसें कि मनुष्य निंद्वश हो जाता है, तव वेभान अवस्था होती है तौ भी दिनकों कप्पडका धंधा करता होता है तौ कितनेक जन निंदमें धोती या हरकोइ कपडा हाथमें आवै तौ फाडं डालता है वो क्या है ? दिनकों काम किया हो उसके उपयोगकी ही संज्ञा है. तैसें निंदमें विचारभी हुवा करते हैं. जाग्रतावस्थामें जिसकों निरथे वजानेकी आदत है उसका चित्त अन्यकार्यमें होता है तौ भी अंगुलीआं हिलती ही रहती हैं, तैसें पिछले भवकी संज्ञासें इस भवमें कार्य होता है, पिछले भवका तो भान नहीं होता; मगर पिछलेभवमें आदतथी वैसें किये करता है. जैसेंकि वालक जन्मता है और तीसरेरोज वो अपनी माताकों स्तन-पानके लिये बिलग पडता है, उनकों स्तनपान करना किसने सिखाया? अगले जन्मकी संज्ञासेंही स्तन मुंहमें लेकर दुग्धपान करता हैं. कदापि कोइ अैसा कहेदे कि वचेकों उनकी मा मुँहमें देती है,; लेकिन मुँह हि-लाना वो तो वचेकाही काम है, वो काम मातासें वन सके वैसा नहीं है. वास्ते पिछले भवकी वासनासेही वनता है. छोटे वचेकों पैसा वतलाते हैं तौ तुरंत ले लेता है. स्त्रीकों देखकर विषय विकार होता है. स्त्रीभोग किसीने नहीं सिखाया है; मगर पूर्वक अभ्याससें वांछना होती है. फिर पूर्वभवमें धर्म किया होय वैसे वालकके अगाडी धर्मकी वात करें तौ खुश होता है और वो संज्ञा नहीं होती है तौ खुश नहीं होव्रावा है. इस्सें भी सिद्ध होता है कि आत्मा नित्य है.

५० प्रश्नः—कितनेक धर्मवाले चार गति नहीं मानते हैं, फक्त इतनाही मानते हैं कि जीव, इश्वर या खुदा या देवके वहांसें आता है और पीछा वहीं चला जाता है उसका क्या खुलासा है ?

उत्तरः—इस जगतमें जीव जिस धर्ममें उत्पन्न हुवा हो उस धर्ममें जो कहा होवै उसकोंही मानता है. किसी जीवने नीच जातिका कर्म वांधा होवै और वो सर्वज्ञके धर्मसें विरुद्ध धर्म पालता हो; किंतु निकट भवी होता है तौ चित्तमें न्यायकी बुद्धि प्राप्त होती है. और सर्वज्ञके लक्षण तपासता

है. उसमें जिनके लक्षण न्याय युक्त लगें उनकों सर्वज्ञ मानता है. जिनकों इस जन्ममें आत्माका कार्य होनेका नहीं वो मनुष्य दूसरी बातमें कदाचित् हुंशीआर हो; मगर सर्वज्ञके लक्षण तपासनेकी बुद्धिवाला नहीं होता है उस्सें वो सर्वज्ञकों नहीं पहेचानता है, इस्सें करकें जिस धर्ममें पैदा हुवा हो उसी मुजब चलता है. देखियें कि–वै पाप पुन्यकों मानते हैं, तब पाप पुन्यके फल भी भुक्तनेही चाहियें. पापके योगसें नरकमें जाता है वहां दुःख भुकता है. फिर जैसें यहां गुनहा करनेवालेकों कैद करते हैं और पीछा वो मुदत पूर्ण होनेसें बंधीखानेसें छूट जाता है, तैसें नरककी अंदरसेंभी पीछा नीकलता है. अच्छे कृत्य करनेवालोंकों अच्छी पदवी मिलती है, तैसें इस संसारमें पुन्य किया हो तौ देवकी गति मिलती है, उससें कमी पुन्य बंधा होवै तौ मनुष्य गति मिलती है. पाप बंधा होवै तौ एकेंद्रिय, बेरेंद्रिय, तेरेंद्रिय, चौरेंद्रिय तिर्यंचपंचेंद्रिय प्रमुख होता है. फिर इस्सेंभी ज्यादे पाप बांधा हो तौ नरकमें जाता है. इस मुजब जिस गतिमें रहकर जैसे कृत्य किये हो वैसें दूसरी गतिमें फल मिलते हैं. इश्वर कर्मके संयोग विगर एककों मनुष्य और एककों जानवर क्यौं बनावै ? सब समान बनाने चाहियें, वो तो नजर नहीं आता है; वास्ते अैसा मानना हमारे विचार मुजब तो गैरव्याजवी मालूम होता है. जो सर्वज्ञ चार गतियोंका स्वरूप बताते है वोही व्याजवी मालूम होता है. सर्वज्ञके कथनमें कुच्छभी फेरफार नहीं होता है. लेकिन जिसकों सर्वज्ञपना प्राप्त नहीं हुवा है उनकों सर्वज्ञ माननेसें फेरफार आता है. उनका कुच्छ उपाय नहीं; परंतु अर्थी जीवोंकों तौ सर्वज्ञकी पहिचान करनेका उद्यम जरुर करना चाहियें. सबब कि सब बात प्रत्यक्ष नहीं है. जो जो अरूपी पदार्थ हैं उसका, और गतकालमें हो गइ हुइ बाबतोंका और भविष्यकालमें होनेहारी बाबतोंका अनुमान कम हो सकै. विशेष तो उन्होंके कथन मुजबही मानना पडै उसी लिये सर्वज्ञका वर्त्तन, उनका उपदेश, ज्ञान तथा उनके शास्त्र–यह चार वस्तुकी तपास करनी चाहिये जिस शास्त्रमें उत्तम ज्ञान होवै उनकों प्रमाण–मंजूर करना. उंचे ज्ञानवा-

लेकी प्रवृत्तिभी अच्छीही होती है और उस मुजब चलनेसें अपनाभी कार्य हो सकता है.

११ प्रश्नः—जैनशास्त्रमें क्या क्या विषय है?

उत्तरः—जैन धर्मके सर्वज्ञनें स्वर्गके स्वरूपका वर्णन जितना बतलाया है उतना किसी अन्यशास्त्रमें नहीं बताया है. नरकके भेद, वहांकी वर्त्तनाका स्वरूप, तिर्यंचका स्वरूप तथा मनुष्यका स्वरूपभी जो जो सूक्ष्मरीतिसें उन्होंने वर्णन किया है वैसा वर्णन किसी शास्त्रमें नहीं किया गया है. (वो स्वरूप इस जगह लिखनेसें पुस्तक विस्तारवंत हो जावै.) जीवाभिगम, पन्नवणा, समवायांग, सूयगडांगजी वगैरः सूत्रोमें बहुत विस्तारसह उसका वर्णन–स्वरूप दिखलाया गया है. जिज्ञासु हो सो उन उन सूत्रोसें शंका दूर कर लेंगे. तिर्छालोक कि जिस्में अपन रहते है, उसमें समुद्रकी हद जिसने जितनी देखी उतनीही कह दिखाइ है आगे क्या है? वो शोच नही सक्ते हैं. कुच्छभी होना तो चाहिये! लेकिन वो चर्मचक्षुसें देखा नही जावै; क्यौं कि समुद्रमें ज्यादा आगे नहीं जाया जाता है. को लंबसने अमेरिका ढुंढ निकाला उस पहले अमेरिका जाहिर न था, अब तकभी साहसीक इंग्रेज लोग नइ जगह ढुंढ निकालते हैं और आगेभी जिनसें महेनत बन सकेगी वो नइ शोध करेंगे. वास्ते नजरसें देखा उतनाही बस क्यौं कहा जावे? सब पृथिवीका ज्ञान तौ जिनके अंतरंगसें कर्मक्षय होगये होवैं उनकोंही होता है. जब मंत्रसाधन करते हैं तब उनमंत्रका अधिष्ठायकदेव कुच्छ अपना शब्द नहीं सुनते हैं; मगर उनकों अपनेसें ज्यादे ज्ञान है, उस ज्ञानसें वे जान सकते है कि–'मेरा किसीने स्मरण किया है.' देवतासेंभी अधिकज्ञान सर्वज्ञकों है, उसें उन्होंनें असंख्याते द्वीप समुद्रका स्वरूप बतलाया है. गतकालकाभी स्वरूप बतलाया है. फिर कर्मकास्वरूप, कर्मकी वर्गणाकास्वरूप, धर्मास्तिकाय आकाशास्तिकायकास्वरूप, कालकास्वरूप तथा आत्माकास्वरूप बहुत विस्तारसें बतलाया है वो दूसरे शास्त्रोमें मालुम नहीं होता है. यह अधिकार कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, तत्वार्थ, सम्मातितर्क, विशेषाव

श्यकादि शास्त्रोंमें है. वो देखोगे तौ मालूम होगा कि जैनशास्त्रमें कितना सूक्ष्म ज्ञान बताया गया है ? वर्त्तनके विषयमें देखोगे तौं जो आगे लिख गये हैं वें अठारह दूषणसें रहितकी कैसी प्रवृत्ति होती है ? वो भी मालूम हो जायगा. विशेष तौ सिद्धांतमें चरित्रें है वो देखोगे तौ मालूम होगा कि, जिनकों किसी प्रकारकी वांछा नहीं, मात्र उपकारी बुद्धिही है, स्त्रीधन वगैर इच्छा और संगत नहीं, फिर आपकों वडाइभी नहीं, ऐसे देवकों देव कहेने योग्य हैं. फिर जो जीव अपने आत्माका ज्ञान मिलाकर राग द्वेषका त्याग करें वो कर्मसें मुक्त हो जावैं. यहां ऐसा नहीं कहा है कि मेरेकों मानोगे तोही काम फतेह होगा. जो आत्माकी शुद्ध परिणती मुजब चलेगा उसका काम फतेह होगा. इस तरहका जिनका शुद्ध उपदेश है उन्होंकी बताइ हुइ बावते बहुतही प्यारी लगती हैं हमारे कहनेसें कुच्छ नहीं; मगर न्यायबुद्धि धारण करकें निष्पक्षतासें जैनशास्त्र और अन्यमतके शास्त्र देखोगे तौ तुमकों वेशक मालूम होगा, वास्ते फुरसुद लेकर निरंतर ज्ञानाभ्यास करना. ज्ञानाभ्याससें जीवकों कर्मके आवरण हठते जाते है और बुद्धि निर्मळ होती जाती है.

६२ प्रश्नः—जैनशास्त्रमें कितने प्रकारके कर्म कहे हैं और वे कर्मखप–क्षय हो जानेसें क्या क्या शुद्धता होती है ?

उत्तरः—जैनशास्त्रमें आठ प्रकारके कर्म कहे हैं यानि ज्ञानावरणीयकर्म १, दर्शनावर्णीयकर्म २, मोहनीयकर्म ३, वेदनीयकर्म ४, नामकर्म ५, गोत्रकर्म ६, आयुकर्म ७, और अंतरायकर्म–यह आठ हैं. उसमें पहले कर्मकी प्रकृति ५, दूसरेकी ९, तीसरेकी २८, चोथेकी २, पांचवेकी १०३, छठेकी २, सातवेकी ४, और आठवेकी ५ ऐसे उत्तर प्रकृति १५८ हैं. औरभी प्रकृति भेद विस्तारवंत हैं–यानि एक एक प्रकृतिभी बहुत प्रकारकी हैं.

प्रथम ज्ञानावरणीय कर्मका स्वरूप इस मुजब हैः–ज्ञान पांच प्रकारके हैं यानि मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्यव और केवल ये पांच है. उसमें मतिज्ञान उसकों कहते है कि, मतिसें करकें जान–समझ लेना सो आत्माका उपयोग, पांच इंद्रिये और मन इनके योगसें ज्ञान होवे वो मतिज्ञान मतिज्ञानसें पिछले भवका ज्ञान होता है. परंतु आवरण

लगनेसें सब जीवोंकों नहीं होता है. मतिज्ञानसें जितनी शक्ति–विचारशक्ति खुल्ली हैं, उतना ज्ञान हो सक्ता है, क्यौं कि कितनेक मनुष्य बहुत लंबे विचार करशक्ते हैं, कितनेक अनुमानसेंभी विशेप विचार कर सक्ते हैं और कितनेक नहीं कर शक्ते हैं. उसका सबब यही है कि जिनके कर्म अल्प हैं उनकों बुद्धि विशेष है और जिनके कर्म ज्यादा हैं उनकी बुद्धि कम होती है. फिर दूसरी तरहके भी आवरण–ढकन होते हैं. जैसें कि कितनेक अनेक जातीकी लिपी पढेहुवे होते हैं, तर्क वितर्कभी बहुत कर सक्ते हैं, याददास्तीभी बहुत होती है, उस्से जो कुच्छ पढते-वांचते हैं सो याद रहजाता है, पढना होवै तो थोडेही वक्तमें पढजाते हैं; परंतु वो बुद्धिका फक्त संसारके काममें उपयोग करते हैं, धर्मके काममें उपयोग करनेके आवरण खुल गये नहीं, उस्सें धर्मका सच्चा अभ्यास नहीं करते हैं और निष्पक्षपात संबंधसें देख नहीं सक्ते. कितनेककों अैसे आवरण होते है कि धर्मका ज्ञान मिलानेमें अच्छी बुद्धि है उस्सें शास्त्र देखकर शास्त्रकी सुंदर बातका न्यायबुद्धिसें निश्चय करते हैं. पीछे साररूप शास्त्रकी बात ग्रहण करते हैं और तत्त्व विचारणा करते हैं. कितनेकके अैसे आवरण होते हैं कि संसारमें बुद्धि नहीं चलती और धर्ममेंभी नहीं चलती. दोनू प्रकारसें बुद्धिकी न्यूनता होती है. कितनेकी सब तरहसें बुद्धि खुल जाती है और सब काममें न्यायकीही बुद्धि प्राप्त होती है. सच्ची बातकोंही सच्ची जानता है बहुत प्रकारसें मतिज्ञानके आवरण नाश हो गये होवै तबही अैसी बुद्धि प्राप्त होती है. कितनेकोंमें बुद्धि कम होवै; लेकिन सत्यवादी पुरुषका संग करनेकी बुद्धि जाग्रत हुइ है उस्सें कम अकल होनेपरभी उनके कथन मुजब चलकर अपने आत्माका काम कर सकता है. कोइ कोइ जीव कर्मके आवरणके योगसें मूक, अंधे और बेहेरे भी होते हैं. इस्सें ज्ञान बढा नहीं सकते हैं. फिर कोइ मूक और तोतले होवै; मगर कानके आवरण खुल्ले हैं उस्सें धर्म सुनकर अपने आत्माका काम कर सक्ते हैं; लेकिन दूसरेका उपकार नहीं कर शक्ते. बधिर होते हैं; मगर आंखके जोरसें सुनकर उसका विचार कर अपना काम कर सक्ते हैं. इस मुजब मतिज्ञानावरणी कर्मसें करकें आत्मका ज्ञान आच्छादित होता है उसकों मतिज्ञानावरणी कर्म कहते हैं.

श्रुतज्ञान तो शास्त्र और अक्षरका नाम है. यह ज्ञान मतिज्ञानके संगही रहता है. जहां मतिज्ञान वहां श्रुतज्ञान और जहां श्रुतज्ञान वहां मतिज्ञान होताही है. ये दोनुका आवरण होना और खुलना साथही रहता है. मतिसें जो अंतरमें विचार होती है उसमें

अक्षर है सो श्रुतज्ञान है. उनमें जिस जीवकों समकित हुवा है उस जीवकों मति श्रुति अज्ञान कहाता है. कोइ शंका करेगा कि संसारमें वहुत बुद्धिवंत होते हैं उनकों अज्ञानी क्यौं कहे जाँय ? तौ उनके जवाबमें-संसारमें बुद्धिका उपयोग करनेसें फिर नये कर्म बांध लिये और अपना आत्मधर्म जैसा है वैसा जानकर प्रकट करनेका उद्यम करना. वो तो हुवा नहीं और उलटा आत्माकों मलीन कर दिया, तब वो ज्ञान सो अज्ञानही कहा जाता है. अब जो पुरूष ज्ञानवंत पुरूषकी और ज्ञान-शास्त्रकी निंदा करता है, पढनेके वक्त अंतराय करता है, पुस्तकपर बैठ जाता है, पुस्तकपर मस्तक रखता है, थुंक लगाता है, पुस्तक आगे मोजूद होनेपरभी आहार निहार करता है, ज्ञान पढनेकी मरजी न होनेसें उलटा द्वेष रखता है-इत्यादि ज्ञानकी आशातना करता है, वो पुरुष ज्ञानावरणी कर्म बांधकर आत्माकों आच्छादित करता है. और जो पुरुष ज्ञानवंतकी और ज्ञानकी वहुत मानपूर्वक वहुत प्रकारसें भक्ति करता है, ज्ञान पढनेका रात दिन अभ्यास करता है, दूसरोंकों ज्ञान पढनेमें सामिल करता है, शक्ति होवै तो आप धन खरचकर दूसरोंकों पढाता है, ज्ञानके भंडार करता है. फिर जो जो लिपी संसारी विद्याकी हैं वै पढकर कोइ मनुष्य हुंशीआर हुवा होवै तो धर्म समजना सुलभ होवै वडी पदवी मिलावै और सुखी होवै तो सुखसें धर्मसाधन करै, शासनकों दीपावै; वास्ते सब प्रकारसें ज्ञान पढानेमें महान् लाभ है अैसा समजकर उनमें धन खर्चता है. इसी तरह ज्ञानाराधन करनेसें कर्मके आवरण कमती होजाते हैं. विशेष प्रकारसें तत्त्व विचारणा करनेसें वहुत आवरण नाश होते हैं और आत्मा शुद्ध होता है. यह मति श्रुतज्ञानके आवरणका तथा वहीं कर्मक्षयका स्वरूप समझना.

अवधि ज्ञानावरणीकी प्रकृति अवधिज्ञानकों ढक देती है. जिनकों अवधिज्ञान होता है, उनकों चक्षु आदि इंद्रियोंकी जरुरत नहीं पडती है; आत्मासेंही मालूम होता है. जिसकों सौ कोषका ज्ञान हुवा हो वो सौ कोषपर जो होता होवै सो अपने स्थानमें रहा हुवा जान सकता है. गत कालकाभी जान सकता है. जिसकों लोकावधिज्ञान हुवा होवै उसकों सारे लोकमें जो जो पुद्गलिक पदार्थ हैं उन सबका ज्ञान होता है. गुदस्त-भूतकालमेंभी असंख्याते कालका ज्ञान होता है. और जिनकों इन कर्मसें करके आवरण लगे होवै उनकों वो ज्ञान बिलकुल नहीं होता है; लेकिन ज्यौं ज्यौं फिर आत्माकी शुद्धि होती जाती है और राग द्वेषरूप उपाधि कमती हो जाती है

त्यौं त्यौं अवधिज्ञान प्रगट होता है. किसीकों थोडे आवरण हठ गये होवै तौं थोडे क्षेत्रमें जो अदृश्य पदार्थ होता है वो आत्मासें जान सकता है. पीछे उन करतेंभी ज्यादें आवरण हठ जाय तौ ज्यादे क्षेत्र तथा ज्यादे कालका ज्ञान होता है. जैसें अपन किसी गाँवकों जाते हैं तब आंखसें तो गाँव नहीं देख शकते हैं; मगर अंतरंगमें शोचते हैं तौ जाने वो गाँव नजरके आगे रूजु है वैसा देखते हैं, तैसेंही अवधिज्ञानसें भी विगर देखे हुवे पदार्थ अंतरंगमें मालूम होते हैं. इनके छ भेद हैं. उनका विस्तार नंदीसूत्र तथा आवश्यकसूत्रजी वगैरः में विशेषतासें देख लेना. इस ज्ञानकों ढक देवै उसकों अवधिज्ञानावरणीकर्म कहते हैं. यह ज्ञान देवताओंकों होता है, उस्सें मंत्रका स्मरण करनेके साथही उनकों खबर होती है और आते हैं. उनमेंभी जैसे जिन देवके आवरण खुलगये होते है उनकों उस मुजब ज्ञान प्रगट होता है. ये गतिमें विशुद्ध परिणामवाले जाते हैं, इस्सें कंमी जास्ती भी एककों यह ज्ञान होता है. बिलकुल न हो अैसा नहीं होता है. वहां भी मिथ्यादृष्टिवंत देव हैं उनकों विभंग अज्ञान होता है—उसका सबब यह है कि उनकों आत्मतत्त्वका ज्ञान नहीं होता है; लेकिन परोक्ष पदार्थकों जान लेनेकी शक्ति होती है. सम्यक्दृष्टि है उनकों तो अवधिज्ञान कहा जाता है; क्यों कि उनकों तत्त्वज्ञान होताहै. वै पुरुष तो देवताके सुखकोंभी तृणके समान गिनते है और मनमें भावना भाते है कि—"पीछले भवमें कर्मसें मुक्त होनेके लीये पिछोनेके लिये तप संयम वगैरः साधन किये; मगर वै साधन पूर्ण प्रकारसैं नहीं किये, उस्सें यह देवगतिमें संसार वर्त्तना करनेका हुवा और जन्म मरणके दुःख दूर नहीं हुवे. यह देवके सुख अस्थिर हैं और कर्मबंधनके कारण हैं; वास्ते यह देवायु पूर्ण हुवे बाद मानवभव पाउं तौ अब पूर्ण प्रकारसें प्रभुजीकी आज्ञा मुजब धर्म आराधन करुं कि जिस्सें पुनः भवचक्रमे भ्रमण न करना पडै." अैसी भावना करता है. फिर रत्नमय पुस्तक पढता—वांचता है, शाश्वते जिनमंदिरमें जिनबिंब हैं उनकी विस्तार सह भावयुक्त द्रव्य तथा भावपूजा करता है. तीर्थंकर भगवान् विचरते होवै वहां जाकर उन्होंकी भक्ति करता है, धर्मोपदेश सुनता है, और आत्मस्वभावमें रहनेमें सुख समझकर विचारता है, देवता संबंधी अैसे ज्ञानकों अवधिज्ञान कहते हैं; किन्तु अवधिज्ञानकें पूर्ण आवरण क्षय नहीं हुवे. पूर्ण आवरण तौ मनुष्यगतिमैंही क्षय होते हैं. जिनकों केवलज्ञान होता है उन्हींके ही संपूर्ण आवरण क्षय होते है.

मनःपर्यव ज्ञानावरणीय कर्म सो मनपर्यव ज्ञानकों आच्छादित कर देता है. मनपर्यव ज्ञानके आवरण जिनके क्षय हो जाते हैं या दूर हठ जाते हैं वे मनके भाव याने मनमें शोची हुइ वात जान लेते हैं. वो भी अपने आत्मासेंही जानते है. उनकों इंद्रियोकी जरूरत नहीं पडती है. यह ज्ञान संसार त्यागी, संयमी मुनि छठे सातवे गुणस्थानकमें वर्तनेवालोंकोंही होता है. उनमेंभी थोडे आवरण हठ गये होवै तो वे ऋजुमति मनपर्यव ज्ञानी कहाते है. वो पुरूष मनमें चिंतन किये हुवे पदार्थ जानता है. उन करतें विपुलमति मनपर्यवज्ञानी वहुत विशुद्ध जानता है. वो ज्ञानकी विशुद्धि ज्यादा है; सवव कि विपुलमति मनपर्यव ज्ञानवाले वही भवमें केवलज्ञान पाते हैं, उस्सें मनके विचरा विशुद्धतासें जानते हैं. यहांपरं कोइ कहेगा कि अवधिज्ञानी रूपी पदार्थ जानं सकते है, उनमें मनके विचारभी रूपी होनेसें उनकोंभी जान सक्ते हैं; वास्ते यह ज्ञान अलग वतलानेका क्या सवव है? उसका खुलासा यही है कि–अवधिज्ञानवाला याँ मनपर्यव ज्ञानवाले जैसा संपूर्ण नहीं जान सक्ता है. अवधिज्ञानवालेकों उसी भवमें केवलज्ञान प्राप्त होवे अैसाभी निश्चय नहीं है. फिर मनपर्यव ज्ञानवाला मनके भाव सिवा दूसरे पदार्थ नहीं जान सक्ता है–अैसा एक दूसरमें फरक है. सवव कि कर्मके आवरण जिसकों अवधिज्ञानके हठ जाते हैं उनकों अवधिज्ञान होता है और जिसकों मनपर्यव ज्ञानके आवरण हठ गये होवै तो मनपर्यवज्ञान होता है. किसीकों पहिले मनपर्यवज्ञान और किसीकों पहिले अवधिज्ञान होता है–इस मुजव जिनके कर्मावरण जिस तरह हठते हैं उस मुजव ज्ञान प्रकटता है. ज्ञानके नामभी उस मुजव अलग अलग हैं. केवलज्ञानावरणी पांचमी प्रकृति सो केवलज्ञानकों आच्छादित करदेता है. केवलज्ञानके आवरण जिनके नाश होते हैं उनकों इंद्रिये और मनकी जरूरत नहीं होती है. अपनी आत्मशक्तिसेंही रूपी अरूपी सव पदार्थ, अतीत, अनागत और वर्त्तमानकालका ज्ञान होता है. वो ज्ञान कैसा है? जैसे दर्पन–आयनेमें सव पदार्थका भास पड़ता है, वैसें आत्मामें सव पदार्थ मालूम होते हैं. मालूम होनेमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं रहती है, एक एक पदार्थने अतीत कालमें अनंत स्वरूप धारण किये हैं उसमें अनंत पदार्थ है उन सवके स्वरूप एकही साथ मालूम होते है–अैसी वो ज्ञानकी अद्‌भुत शक्ति है अैसा ज्ञान प्रकट हुवे वाद उनकों संसारमें फिरना नहीं रहता है–उनकों मुक्तिही मिलती है. अैसे ज्ञानवाले पुरुष संपूर्ण प्रकारसें धर्मदर्शानेमें शक्तिमान होते हैं. उनकों जन्म मरण नहीं होता है.

यह पांच प्रकारके ज्ञानकों ढक देवै उनका नाम ज्ञानावरणी कर्म कहते हैं.

दूसरा दर्शनावरणीय कर्म याने आत्माका दर्शन गुण देखनेकों रोकनेहारा जो कर्म वो–उसके विषे समझना कि ज्ञान और दर्शन संग वर्त्तता है. प्रथम सामान्य उपयोग सो दर्शन और विशेष उपयोग सो ज्ञान. जैसें एक मनुष्यकों देखा उस वक्त मनमें आया कि यह कोइ मनुष्य है! वहां तक सामान्य उपयोग और जब अैसा समझ गया कि यह तौ जिनदास है, जैनधर्मी है, शाहुकार है, अच्छा मनुष्य है अैसा विशेष प्रकारसें समझ गया तब विशेष उपयोग सो ज्ञानका है. अैसीं रीतिसें हरएक पदार्थमें पहला सामान्य उपयोग और पीछे विशेष उपयोग होता है. अब सामान्य उपयोग चार प्रकारका है याने चक्षुदर्शन–चक्षुसें करकें देखना उसमें आवरण होवे तौ अंध होवै और थोडें आवरण होवै तो रातकों नहीं देखता है–दिनकों देख सकै, कोइ दिनकों ओर कोइ रातकों विशेष देख सक्ता है, कोइ नजदिकके पदार्थ देख सकै, दूरके न देख सकै; मगर आवरणके लियेसें संपूर्ण देख सकै नहीं सो चक्षुदर्शनावरणीय कर्म कहाजाता है. १

अचक्षुदर्शन—आंख सिवायकी इंद्रियोंसें सामान्य बोध होवे सो चक्षुदर्शन शरीरकों कुच्छ स्पर्श होवै और स्पर्श हुवा अैसा समझा जाय; लेकिन काहेका स्पर्श हुवा ? वो नक्की न कहा जाय वहां तक सामान्य उपयोग. नाककों खुशबु आइ; मगर काहेकी खुशबु आइ ? वो नहीं कहा जाय वहां तक सामान्य उपयोग. मुँहमें रख्खे हुवे पदार्थके स्वादका निश्चय न होवै वहां तक सामान्य उपयोग. कानमें शब्द पडा; मगर क्या शब्द है वो नकी न होवै वहां तक सामान्य उपयोग. यह उपयोग अचक्षुदर्शनके हैं. उनके आवरण उस मुजब किसी मनुष्यकों स्पर्श होवै मगर उनकों नहीं समझ सकै, कितनेक नाकसें खुशबु नहीं जान सकते हैं, मुंहसें स्वाद नहीं जान सकते हैं, कानसें सुन नहीं सकते हैं–यह दर्शनावरणी कर्मका प्रभाव है. फिर जितनी इंद्रियोंकी शक्ति है उतनी परिपूर्ण नहीं चलती वो भी आवरणसेंही नहीं चलती. अचक्षु–चक्षुदर्शनका संपूर्ण आवरण केवलदर्शन पानेकी वक्त नाश होता है. २, अवधिदर्शनरूपी पदार्थका आत्मासें सामान्य पनेसें समझ लेना सो अवधिदर्शन, उनका आवरण जहां तक है वहां तक अवधिदर्शन नहीं होता है. ३

केवलदर्शन—केवलदर्शनका आवरण जहां तक होना है वहां तक केवलदर्शन

प्राप्त नहीं होता; लेकिन इतना फरक है कि केवलदर्शनका उपयोग पीछे होता है और केवलज्ञानका उपयोग पहिला होता है. उनका सबब यह है कि जिनकों केवलज्ञान होता है उनको फौरन बोध होता है-उनकों कोइ अनुक्रमसें बोध नहीं होता है, पहिला विशेष होता है पीछे सामान्य होता है. वो इस प्रकारसें कि जैसें कोइ मनुष्यके सब प्रकारसें लक्षण समझलीए बाद उनकी सब हकीकत पूछनी नहीं पडती है-सबब कि वो सामान्य हो जाती है. और एक वक्त पूरा बोध हुवे बाद सामान्य होता है. यह अधिकार नंदीसूत्रजीमें विस्तारसें है.

पांच निद्रा है वो भी दर्शनका आवरण है. जंहा तक मनुष्य निंदवश होवे वहां तक कुच्छ समझ-देख नहीं सक्ता. उनमेंभी आवरणकी तारतम्यतासें फेरफार है वो निद्राका अलग अलग स्वरूप समझनेसें मालूम होगा. जीवकों उंघमें-निंदमें कुच्छ सहज स्पर्श होवे या शब्द सुन्नेमें आवे तो तुरंत जागृत हो जाता है. और जागृत होनेसें बिलकुल दिलगीर नहीं होता है, वो 'निद्रा' कोइ मनुष्यकों जगावे तो बहुत दफे जोरसें अवाज देवे या बहुतही शोरगुल मच जाय तब जागृत होवे और दिलमें दुःख पावे. जगानेवालेपर गुस्सा करे-एसी सक्त निंद उसकों 'निद्रानिद्रा' कहते हैं. बैठे बैठेही निंद आ जावे वो 'प्रचला.' चलते चलतेही निंद लेवे वो 'प्रचला प्रचला' और पांचला 'स्थिणर्द्धि' निद्रा छ महीने तक आती है. वो निंद ऐसी सक्त आती है कि वो मनुष्य निंदमेंही निंदमें उठ खडा होकर हस्तिके दंतूशल निकाल-उखाड डाले उतना उस निंदमें बल होता है. वो निंदका आवरण बहुतही सक्त है उस निंदमें अर्द्ध वासुदेवके जितना बल होता है; मगर निंद जाती रहे तब बल नहीं होता है. उस कालमें तो वो निंद वालेकों अपने बलसें दुगना तिगुना बल होवे ऐसा कर्मग्रंथके बालावबोधमें कहा है. ऐसी निंद नरकगामी जीवकों होती है. यह पांच निद्रामें सामान्य उपयोग आच्छादित हो जाता है उस्सें दर्शनावरणीकी ये पांच प्रकृति और चार आगे कही गइ सो मिलकर नौ हुइ-ऐसें दर्शनावरणी कर्म नौ प्रकारसें है. इस कर्मका क्षय होनेसें सामान्य उपयोगका आवरण होवे सो नाश हो जाता है उस्सें केवलदर्शन प्राप्त होता है. और संपूर्ण आवरण केवलदर्शन प्राप्त होनेके वक्त नाश होते हैं; तब केवलज्ञान और केवलदर्शन साथही प्राप्त होते हैं.

तीसरा मोहनीकर्म—यह कर्म आत्माकों शोकग्रस्त कर देता है. जैसे शराब पिया होवे उनको करने लायक या न करने लायकका विचार नहीं रहता है, वैसें मोहनीकर्मके जोरसें

जीवकों अपने आत्माका क्या गुन है ? और प्रवृत्ति करनेकी है ? उनका उपयोग नष्ट हो जाता है, और शरीर, धन, कुटुंब, पुत्र, परिवार, स्त्री आदि पदार्थोंमें मग्न हो कर उन संबंधी अनेक काममें आसक्त हो जाता है. अपने प्राणसेंभी ये वस्तुये प्यारी मानता है, जो जो अस्थिर पदार्थ हैं उनकों स्थिर मान लेता है. कोइ आत्मतत्त्वकी बात करता है तौ वो सुझेकीभी चाहना नहीं करता है. कदापि किसीकी सोबतसें सुझेकों जावें तौ भी सुझेमें लक्ष नहीं होता है. कदाचित् कानमें शब्द पड जावै तौ उनका शोच विचारभी नहीं करै और कभी शोचे तौ अैसा शोचे कि शास्त्रमें कहा है उन मुजब कौन चलता है ? शास्त्र सुनकर उलटे उंधे चलते हैं और पराये दूषण ढुंढ निकालते है. कोइ गुणवंत श्रावक होवै, सम्यक् दृष्टिवंत होवै और संसारमें रहा होवै. तौ उनकौं कहे कि शास्त्रमें संसारकों असार कहा है और तुम वैसी बात जाननेवाले हो तो फिर असार संसारमें क्यौं लुब्ध हो रहे हो ? फिर कोइ मुनिराज किसी सबब के लिये अपवाद सेवन करते होवै तौ उनकी निंदा करै. उनका सबब यह कि शास्त्र सुनकरकें जो मोहनीकर्म थोडाभी दूर हुवा होता तौ आत्माके साथ विचार करता और आपकें दूषण देखता; परंतु मोहनीकर्मका जोर ज्यादा है उसीसें शास्त्र सुनकर-भी उलटा विचार करके मोहनीकर्म ज्यादा बांधता है, और आत्माकों ज्यादा मलीन करता जाता है. फिर अन्याय, लुच्चाइ, ठगाइ, और चोरी करनी, दूसरेके सिर कलंक देना, दूसरेकी निंदा करनी, दूसरेकों संकटमें डालना, जीवहिंसा करनी, अहंकार ममकार करना, मदसें करकें उन्मत्त होना, झूंठा बोलना ओर दूसरेके पाससें झूंठा बोलानेका यत्न करनेमेंही सावधान होना, अपनी औरत, पराइ औरतकाभी विचार नहीं रखना ये सभी मोहनीकर्मके लक्षण हैं. कितनेक जीव तौ विषयमें अैसें लुब्ध हो जाते है कि अपनी माता, बहिनी और लडकी के साथभी अत्याचार करनेमें भी शंकि नहीं होते हैं.—ये सब जोर मोहनीकर्मकाही है वो अनादिकालसें लगा हुवा है उनके प्रभावसें आत्माके गुन जो चारित्र तथा समकित है वो ढके जाते हैं. वो मोहनीकर्म दो प्रकारका है—याने चारित्रमोहनी और दर्शनमोहनी दो प्रकार हैं और ये दोनूकी अट्ठाइस प्रकृतिये हैं. उसमें चारित्रमोहनीकी पचीस प्रकृति नीचे लिखे मुजब है:—

अनतानुबंधी, क्रोध, मान, माया और लोभ. अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया

और लोभ. प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ. संजलका क्रोध, मान, माया और लोभ. हास्य, रति, अरति, शोक, भय, दुगंछा, स्त्रीवेद पुरुषवेद, और नपुसकवेद— यह पचीस कषाय हैं उनकी विस्तार सहित पहिचान नीचे मुजब हैं.

अनंतानुबंधी क्रोध जीसकों होता है उसके मनमें बहोतही द्वेष होवै. जिस वक्त इस क्रोधका जोर होवै उस वक्त शरीरभी लाल लाल हो जाता है. जिसकेपर द्वेष होवै उवसें मरने तकभी वैर नहीं छोडै. मरनेके वक्तभी कहता जाव कि यह भवमें वैर पूरेपूरा नहीं लिया गया है तो आगामिक जन्ममेंभी वैर लडंगा. अपने पुत्र वगरः कों भी कहवे कि मैंने फलानेंके साथ वैर रख्खा था वास्ते तुमभी उनके साथ वैर रखकर चलना. वक्त हाथ लगै तब उनकों नुकशान करनेका मत भूलना. स्हामनेवाला मनुष्य शान्त होवै ओर खमानेके वास्ते आवै तो उनकी साथ लडना शुरु करै. अगर उनका किंचित् भी काम आपके हस्तक आया हो तो उनकों वडा भारी नुकशान कर देवै. नुकशानी करनेकी तुरंत शक्ति न चले तो मौका हाथ लगनेसें हानि पहुंचानेमें बिलकुल कसर नहीं रख्खे, ऐसी जो कषायकी परिणती है उनका नाम शास्त्रमें अनंतानुबंधी क्रोध कहा है. जैसें पत्थरके बीच चीरा पडगया होवै वो चीरा फिर नहीं जुड सकता है यानि असलके मुवाफिक बेमालूम नहीं हो सकता है, वीसी तरह अनंतानुबंधी क्रोधवालेका क्रोध मरने तकभी शान्त नहीं होता है, उन क्रोधके प्रभावसें जीव नरकमें जाता है और महा तीव्र दुःख भुकतता है. उन क्रोधके प्रभावसें जीव समकितभी नहीं पाता है; क्योंकि वो दूर हुवे बादही जीवकों समकित उदय हो सकता है.

अनंतानुबंधी मान पत्थरके थंभके समान होता है. जैसें पत्थरका थंभ झुकानेसें नहीं झुक सकता है, वैसे अनंतानुबंधी मानवाला अपनी बडाइमें इतना मस्त रहता है कि महा गुणवंत मुनिराज होवै उनकोंभी वंदना नहीं करता है. फिर आप धर्मगुरु होकर धन, स्त्री वगैरः का उपभोग करै. और दूसरे गुणवंत पुरुषोने स्त्री धनका त्याग कीया होवै, समताभाव आदर कर संसारसें विमुख हो गये होवै वैसे पुरुषोंकों आप नमस्कार करने लायक है; तदपि आप नमस्कार नहीं करता है; लेकिन उनके पाससें आप नमस्कार करानेका यत्न करता है. कभी आप धनवंत होवै; और वो धन कभी चला जानेसें आजीवीकाभी पूर्ण न होती होवै; तौभी किसीकी नौकरी न करै,

आपके मनमें अहंकार ल्यावे कि 'क्या हम वडे दर्जेके मनुष्य होकर किसीकी नौकरी करें?' फिर किसीने कुच्छ खराब शब्द कहा हो तौ 'वो हमकों कौन कहेनेवाला' अैसा गर्व करकें स्हामनेवालेका प्राण लेनेमेंभी नहीं डरै. फिर कभी मान छोड देनेसें अपना प्राण वच जाता हो तौभी मान न छोड देवै. अैसें अहंकारीका कठिन अहंकार उसकोही अनंतानुबंधी मान कहेते हैं. अैसा मान जीवन पर्यंत रहता है.

अनंतानुबंधी मायावाला पुरुष वहुतही कपटी होता है. मुँहसें अत्यंत प्यार बतलाता है; परंतु विश्वास रखनेवालेका प्राण लेने तकभी नहीं डरता है. आपकों किंचित् फायदा होता हो तौ पुष्कळ कपट करता है. जैसे वांसकी गांठ टेढी होती है वो किसी उपायसें सीधी न हो सकें, वैसें अनंतानुबंधी मायावालेका कपटभी छुडाया नहीं जाता है. वो कपटीजीवका जगतमें कोइ विश्वास नहीं रखता है.

अनंतानुबंधी लोभ वहुतही कठीन होता है. चाहे उतनी दौलत मिल जावे-यावत्-चक्रवर्तीकी ऋद्धि मिल जाँय; तौ भी मन तृप्त नहीं होवे, खानेके लिये चाहे उतने पदार्थ मिल जावे; तौभी उसका दिल तृप्त न होवे, खानेके वहुत लोभके लिये भक्षाभक्षकाभी विचार नहीं करता है, अपना धर्मभी नहीं शोचता है, और आपकी कुलमर्यादामें जो चीज न खानेलायक हो; मगर वो चीज खानेकी मरजी हो जाय तौ याचना करनेमेंभी निडर हो जाता है. क्यौं कि पैसेका लोभ होनेसें आप तौ पैसा न खरच सकै और खानेकी मरजी तौ होती है, उस्सें याचना न करने लायक जगहपर भी याचना करता है. चोरी करनेमें निडर हो जाता है, अन्याय करनेमेंभी जरासीभी डर नहीं रखता है, इस मुजव पांचो इंद्रियोंके विषयमें लुब्ध होता है. हरएक विषयके वास्ते अकृत्य करता है. लोभी मनुष्यकों फक्त एक पैसा मीलता हो, और उससें स्हामनेवालेका प्राणभी चला जाता हो तौभी उस्की दरकार नहीं रखता है. हरसूरतसें भी अपना मुतलव हाथ कर लेता है. राजाका तकसीरवार होनेमेंभी उनको भय नहीं रहता है—अैसा लोभ मरनेका वक्त आ पहुंचे तौभी नहीं छोडे. कितनेक इस्सी वर्षके वुड्ढे हो जावै; तोभी अपने लडकेकों तीजोरीकी कुंजी—चावी सुंपरद नहीं करते हैं. जेवर—दागीने वगेरः हो वो मरनेके वक्त तकभी अंगपरसें नहीं उतार डालते हैं, मरणांत रोग हो आनेपरभी औषधके पैसे न खरचै, अनेक प्रकारके दुःख सहन करलेवे, कोइ दस गाली दे देवै, मार मार लेवै; तो भी कुच्छ लालच हो तो वो सब सहन

कर लेता है. कितनेक अनाजके व्यौपारी वहुतही लोभीष्ट होते है; वो चातुर्मासके लिये मालका संग्रह कर रखते हैं और अैसी भावना रखते हैं कि दुकाल पडै तौ अच्छा; दुष्काल पडनेसें धन ज्यादे हाथ लगै; मगर दुकाल पडनेसें दुनियोंकों कितना दुःख उठाना पडै, उनकी विलकुल फीकरही नहीं करते है. यों शोचते भी अच्छी मेघवृष्टि हो गइ तौ दिलमें वडे दुःखी होकर दिलगीरीमें गर्क हो जाय. ये अनंतानुबंधी लोभ-का स्वभाव किरमज के रंग जैसा है. किरमजका रंग चाहे उतना धोवै तोभी चला नहीं जावै, जला देवै तौ भी भस्म किरमजी रंगकी नजर आवै, अैसें अनंतानुबंधी लोभ मरन पर्यंत नहीं छूटता है. ये अनंतानुवंधी क्रोध, मान, माया और लोभ चारों नरकके देनेहारे है. ये चारों जहांतक कायम होवै वहांतक समकितकी प्राप्ति नही हो सकती

अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों अनंतानुवंधी क्रोध, मान, माया, लोभसें कुच्छ नरम होते हैं. जैसें सूखे तालावके भीतर जो चीरे पडते हैं वो ज्यादेमें ज्यादे वर्ष दिन तक कायम रहते हैं, जव फिर वारिश—मेघवृष्टि होवै, तव वै चीरे मिट जाते हैं, वैसे किसी जीवके उपर क्रोध हुवा हो, स्हामनेवाले मनुष्यने चाहे उतना नुकशानभी किया हो; मगर संवत्सरी प्रतिक्रमण करनेके वक्त सव जी-वोंकों खमा कर सवकों मित्रके समान गिन लेवै; और किसीके पर गुस्सा न रख्खे उसने कुच्छ काम करनेकों दिया हो तौ उनकेपर द्वेषबुद्धि न ल्याते खुशीसै वो काम कर देवै उसका नाम अप्रत्याख्यानी क्रोध जानना. अप्रत्याख्यानी मान दांतके खंभे जैसा होता है. पत्थरका स्तंभ तौ कभी झुकताही नहीं; लेकिन दांतका स्तंभ पानी वगैरःउपाय करनेसें झुक सकता है. वैसे अप्रत्याख्यानी मानवाला पुरुष सद्गुरूके उपदेशसें अथवा दक्ष पुरुषके समझानेसें अपना अहंकार छोड देता है. चाहे वैसा मान रखता हो; मगर वो मान एक वर्षसें ज्यादे मुद्दत तक नहीं रह सकता है. अ-प्रत्याख्यानी मायावाला अनंतानुवंधी मायावालेसें कम मायावाला होता है. अपनी सहज मुलतबके लिये स्हामनेवालेकों भारी नुकशान पहुंचे वैसा कपट नहीं करता है. अप्रत्याख्यानी मायाकों मेंढाके सींग जैसी कही है, वो वक्रता ज्यौं उपाय करनेसें मिट जाती है, त्यौं यह मायावाला पुरुष कमती कपट करता है, और कितनेक काम कपट रहित भी करता है. अप्रत्याख्यानी लोभ शहरकी गटरके कीचडके रंग समान होता है. ये रंग एकदम तो जाताही नहीं, मगर कोइ खार आदिके संयोग युक्त वडी भारी

महेनत करै तौ उसका दाग जाता है. वैसेंही यह लोभ भी अनंतानुबंधी लोभसें कुच्छ कंमें होता हैं. लोभके वास्ते किसीकों भारी नुकशान नहीं करता है. ये अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभसें जीव तिर्यंचकी गतिमे जाता है. श्रावकपना नहीं पा सकता है. यह चारों कषाय जब जाते रहै तब जीव श्रावकपना या पांचवा गुणस्थानक पाता है.

अप्रत्याख्यानी क्रोधसें प्रत्याख्यानी क्रोध नरम होता है. उसकों किसी जीवके उपर द्वेषं हुवां हो-तौ भी चौमासी प्रतिक्रमण करनेके वक्त सब जीवोंकों खमाता है. इस्सें पीछे किसी जीवके उपर द्वेष नहीं रहता है. रेतीमें जैसें लकीर खींची हो तौ थोडे वक्तके बाद वो लुप्त हो जाती है तैसें ये क्रोध थोडे वक्तमें शांत हो जाता है. प्रत्याख्यानी मान लकडेके खंभे जैसा होता है. लकडेका खंभ दांतके खंभसें थोडी महेनत करनेपर भी झुक सकता है, तैसें ये मान भी थोडे वक्तमें शांत हो जाता है. प्रत्याख्यानी माया गायके मूत्रकी वक्रता समान होती है. चलते चलते गाय जैसे पेशाब करै और उसकी टेढी आकृति जमीन पर पड जाय वैसी प्रत्याख्यानी माया टेढी होती है, मगर जल्दी नाबूद हो जाती है. ये मायावाला पुरुष थोडे वक्तमें सरल हो जाता है, कठिन कपट उनसें होही सकता नहीं. अप्रत्याख्यानीसें सरल होता है. प्रत्याख्यानी लोभ गाडेकी कीलकै दाग समान होता है. शहरकी गटरके कीचडके दागसें गाडेकी कीलका दाग थोडी महेनतसें चला जाता है; क्योंकि गटरका कीचड बहुत मुद्दत तक सडजानेसें ज्यादे चिकनाइवाला होता है. गाडेकी कीलके दाग समान ये लोभ सहजहीमें शांत होता है. प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ जहां तक कायम होवै वहांतक साधुपना प्राप्त नहीं हो सकता है. यह कषायके परिणामसें जीव मनुष्यगतिमें जाता है; क्योंकिं यह कषाय पतले है.

संजलका क्रोध, मान, माया और लोभं-ये चारों प्रत्यानी क्रोध, मान, माया, लोभसें हलके होते हैं. संजलका क्रोध पानीमें कीहुइ लकीरके जैसा है. पानीमें लकीर करतेही बेमालूम होजाती है, वैसें किसी सबबके लिये गुस्सा हो जाय, मगर तुरंत शांत हो जावे. कोइ कठिन सबब मिलनेसें कठिनता धारण कर लेवै तौ भी पाक्षिक प्रतिक्रमण किये बाद तौ बिलकुल भी द्वेष नहीं रहेता है. ये क्रोधकी ज्यादमें ज्यादे उत्कृष्ट स्थिति पंद्रह दिनकी है. उस्से ज्यादे वक्त ये क्रोध कायम नहीं रह सकेगा.

यह क्रोधवालेके अंतरंगमें विशेष क्रूरता नहीं होवै. संजलका मान वैतके स्तंभ समान होता है. जैसें वैतके खंभेकों झुकानेमें देर नहीं लगती है, तैसेही मानदशा विशेष वक्त नहीं रह सकती है. संजलकी माया भी बहुतही कम होती है. सहजहीमें कपट रहित हो जावैं. वांसकी छोल जैसें थोडी देरमें सीधी होजावै, तैसें ये कपट भी नहीं जैसा ही होनेसें नाश हो जाता है. संजलका लोभ हलदीके रंग समान होता है. जैसें हलदीका रंग उडजानेमें देर नहीं लगती है, वैसेंही यह लोभ दूर होनेमें देर नहीं लगती है. संजलका क्रोध, मान, माया और लोभ जहांतक हो वहांतक मोक्ष नहीं मिल सकता है. यह संजलके कषाय जब जॉय तब मुक्तिकी प्राप्ति होय.

उपर कहे गये चारों प्रकारके क्रोध, मान, माया और लोभ नाश हो जाँय तब मोक्ष मिलता है; वास्ते भवीजीवोंकों मुनासिब है कि इन्होंको दूर करनेके लिये उद्यम करना. यह ज्यौं ज्यौं कमती होते जावै त्यौं त्यौं आत्मा शुद्ध होता जाता है. यहांपर कोइ प्रश्न करेगा किं, संजलके कषाय तो पंद्रह दिनही रहते है तौ बाहुबलीजीकों संजलका मान वर्षदिनतक क्यौं रहा? इसके संबंधमें कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजीने स्वकृत योगशास्त्रमें और यशसोमसूरिने कर्मग्रंथके बालावबोधमें खुलासा किया है किं बालजीवोंकों अपने कषाय कैसे है? वो समझनेमे सुगम पडे वास्ते वो स्थिति कही है. वस्तुतः तौ अैसा समझना कि अति कठिन कषाय सो अनंतानुबंधी, उस्से मंद हो सो अप्रत्याख्यानी, उस्से भी मंद हो सो प्रत्याख्यानी, और उन्से भी मंद हो सौ संजलका कषाय समझना. प्रसन्नचंद्रराजर्षि काउस्सग्ग ध्यानमें थे, उस वक्त अैसे परिणाम बिगडे हुवे थे कि यदि उस वक्त मृत्यु हो जावै तौ नरकमें जावै. सबब कि उनकों उस वक्त अनंतानुबंधी क्रोध होने पर भी अंतर्मुहूर्त तक ही रहा. यदि कालके उपर एकांत लक्ष देवै तौ वो अनंतानुबंधी क्रोध क्यौं कहा जाय? फिर कोइ पुरुष समकितसें पतित हो जाता है उस वक्त अनंतानुबंधीका उदय होता है, फिर पीछा अंतर्मुहूर्तमें समकित पाता है, तब वो उदय दूर हट जाता है. इस्सें अनंतानुबंधी अंतर्मुहूर्तही रहा. यह कषायकों दूसरा कषाय नहीं कहा जाता है. तात्पर्य यह कि कठिन कषाय होवैं और कम मुद्दत तक रहै; तौभी अनंतानुबंधीही समझना. उससें मंद सो अप्रत्याख्यानी, उससें मंद प्रत्याख्यानी, और उससें भी मंद संजलका समझना. कितनीक दफै स्थितिसें भी समझा जाता है, एकांत नियम नहीं है. बाहुबली-

जीकों वर्षदिनतक कषाय रहा मगर वो मंद कषाय था उस्से संजलका जानना. य सोळे कषाय हुवे.

अब नौ नोकषाय कहते हैं. नोकसाय शब्द, देशनिषेधवाची है. नोकषाय नहीं कषाय–देशसें नहीं. कारण कि कषाय नहीं; मगर कषाय पैदा होनेके कारण हैं. इनके सेवनसें कषाय पैदा होते हैं. किसी मनुष्यकी हँसी–दिल्लगी करनेसें स्हामनेवालेकों द्वेष पैदा होता है और वो मनुष्य अपनेपर द्वेष करे उस्से अपनकों कषाय पैदा होवै; वास्ते वो कषायके कारण कहाते हैं. फिर मश्करी करकें खुशी होवै और राग पैदा होवै तौ वो भी कर्मबंधनकाही कारण है. जीवकों जहां तक हास्यमोहनी कर्म है वहांतक आत्माका शुद्ध स्वरुप प्रकट नहीं होता है; दुनियांमें भी मश्करीखोर कहाता है. वास्ते ज्यौं वन सके त्यौं हास्य करनेकी आदत छोडदेनी चाहियें. सर्वथा छोडदेना तो जब जीवकों केवलज्ञान पानेके लिये क्षपकश्रेणी मांड देवै तबही बन सकता है. रतिमोहनी सो पुद्गलिक पदार्थोंसे जो जो अनुकूलता मिल जाय उस्से राजी होना. अरति सो प्रतिकूल पदार्थसें दिलगीर होना. भयमोहनी सो भयसें वेर वेर डरतेही रहना. मेरेसें उपवास होगा या नहीं? मेरेसें श्रावकपना, मुनिपना कैसे बन सकेगा? ऐसें डरता रहवै और धर्मकार्यमें वीर्य नही स्फुरावे; जो जो चीज नहीं की हुइ हो वो अभ्यासद्वारा बन जाती है; मगर डरनेसें–भयसें अभ्यास नहीं करै तौ कोइ दिन न बन सकेगी. उसी तरहही संसारी कार्यमें भी जिनकों मोहनीका भय उदय हुवा है वो हरएक कार्यमें डरताही रहता है. यहांपर कोइ प्रश्न करेगा कि–'पापसें डरे उनका क्या खुलासा है?' उस विषयमें यह खुलासा है कि पापसें अवश्य डरतेही रहना चाहियें, मगर धर्मसें नहीं डरना. हिम्मत रखकर उद्यम करना, शरीरादिकमें रोग वगैरः हो तौ शोचकर कार्य करना, शक्ति होनेपर भी डर कर बैठ रहवै उनसें कोइ वक्त भी धर्म नहीं सधाया जायगा. वास्ते भयमोहनीका ज्यौं बन सके त्यौं त्याग करना. शोकमोहनी सो कोइ अपना कुटुंबीक या मित्र बीमार हो जाय वो मर जाय तब शोकातुर होवै, रोवै, कूटै, अनेक प्रकारके विलाप करै उस्से बहुत कर्मबंधन होता है. व्योपारमें नुकशान होवै या कोइ देवाला निकाल देवै और आपका धन जाय तब शोक करै. आपकी अनुकूलता मुजब मकान, नौकर, वाहन न मिलनेसें, या प्रतिकूल मिलनेसें भी शोक करे. इनमें जिनकों मोहनीकर्मका

जैसा जोर उस मुजब शोक होता है. कितनेक उत्तम पुरुषोंको शोकमोहनी कर्म होवै तो शोचते है कि-"यह कुटुंब, शरीर, मकान वगैरः जो जो संसारी पदार्थ हैं, वै सब अथिर हैं. अथिर पदार्थका तो नाश होनेकाही हौ तो फिर मुझे किसलिये विकल्प करने चाहियें? जहांतक पुन्योदय था वहांतक सब पदार्थ स्थिर रहे, जब पापका उदय हुवा तब नाश हो गये; वास्ते किसलिये शोक करकें कर्मबंधने चाहियें? आत्मधर्मही मेरा है, दूसरी कोइ वस्तु मेरी नहीं है. मात्र संसारि मेरेसें नहीं छूटता है. उस्सें मैं मेरा मेरा करता हुं और व्यवहारोचित वर्त्तन करता हुं. वस्तुधर्मसें वस्तु मात्र जड है और मैं चैतन हुं." इस तरहका विचार करकें आप शोकसें मुक्त रहता है. उनकों कर्मबंधन भी नहीं होता है. संपूर्ण शोकका नाश तौ क्षपकश्रेणीमेंही होता हैं. दुगंछा सो दुर्गंधीवाली वस्तु देखकर मुँह विगाड देना; तथा जो जो वस्तु अपनकों नापसंद हो उनसें मुँह विगाडना वो दुगंछा कही जाती है. अब जिन पुरुषोंने अपने आत्म-धर्मकों जान-पहिचान लीआ है उनकों तो दुर्गंधि आनेसें कहते है कि ये पुद्गलके अैसेही धर्म हैं, अथवा ये पुद्गल अैसे धर्मके हैं. उनमें मैं किस वास्ते मुँह विगाडुं? या जडपदार्थके उपर क्यौं द्वेष करुं? यहांपर कोइ कहेगा कि-तब क्या गंदकीमें ही बैठ रहना? तौ उसका जवाब यह है कि-गंदकीके पुद्गल शरीरमें प्रवेश करनेसें-घुस जानेसें रोगोत्पत्ति होती है. वास्ते अव्वल तौ आपके मकानमें खालकुंवे, टट्टी वगैरः गंदकीकी चीजेंही न रख्खै. और मोरी भी साफ रख्खै. पानी वगैरः वपरासमें लेवै तो पानी सूखकर निर्जीव जगोपर अलग अलग डाल देवै कि जो जल्दी सूख जावै. गंदकीमें जीवकी उत्पत्ति होती है और उसके उपर पानी वगैरः गिरनेसें वो जीवोंका नाश होता है, तौ आत्मार्थी पुरुषोंकों कीसी जीवकों दुःख हो वैसा कामही नही क-रना; वास्ते अैसी गंदकी घरमें न रख्खै. और जहां अैसी जगह हो वहां रहवे भी नहीं; लेकिन दुनियांकी अंदर सभी जगह स्वच्छ नहीं होती है. तब वैसी जगह देखनेमें आ जावें तौ द्वेष न करै. उनकों तौ क्रमसें सर्वथा दुगंछा मोहनीका नाश होता है और जीव अनेक प्रकारसें अैसी दुगंछा कीये-करते हैं उससें कर्मबांधकर आगें अै-सेही कर्म भुक्तने पडेंगे. वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं दुगंछाका त्याग करदेनाही मुनासीब है. स्त्रीवेद उनकों कहते हैं कि स्त्री पुरुषकी अभिलाषा करै, पुरुषवेद उसकों कहते है कि पुरुष स्त्रीकी अभिलाषा करै, और नपुंसकवेद उसको कहा जाता है कि स्त्री

और पुरुष इन दोनुकी अभिलाषा करें. यह तीन वेद कहे जाते हैं. और यह वेद सं-
सारका बीज है. उन्में सर्वथा कठिन वेदका उदय नपुंषकवेदवालेकों होता है. वो
रात दिन विषय विकारमेंही चित्त रखता है. उनका विकार शांत होनेका सबबही
नहीं, उस्सें इच्छाऐं हुवेही करती हैं. नपुंपकसें स्त्रीकों विकार कम होता है और
स्त्री करतें पुरुषकों विकार कमती होता है. अब यहां कोइ शंका करेगा कि-पुरुषकों
स्त्रीके आगे अर्ज-प्रार्थना करते हुवे अपन अपनी आंखोंसें देखते हैं, मगर पुरुषके
जितनी स्त्री, पुरुषकों प्रार्थना करती हुइ नजर नहीं आती, तो उसका खुलासा यह है
कि स्त्री मुँहसें प्रत्यक्ष प्रार्थना नहीं करती है; लेकिन नेत्रकटाक्ष वगैरः बहुतसी चेष्टा
करती है और उनके सबबसें पुरुषका चित्त विकारवंत नहीं होवै तौभी विकारी हो
जाता है. और स्त्री मनमें कामविलास चाहती होय तौभी पुरुषके पास बहुतही आ-
जीजी करवाती है; तथापि चित्तमें मलीनता रहती है, उस वास्ते स्त्रीमें सर्वज्ञजीने
ज्यादा विकार कहा है. उन्में भी जो सती स्त्रीऐं है-जिनकों स्वप्नमें भी परपुरुषकी
इच्छा नहीं होती है. वे स्त्रीऐं तो नमस्कार करनेही लायक हैं; कारन कि जगत् का-
मविषयमेंही पडा हुवा है और उनकी झपटसें गुणिपुरुष भी फँस जाते हैं. वास्ते
उत्तम स्त्री होती हैं वोही ऐसा शीलव्रत पालन कर सकती हैं. ऐसे शीलशाली पुरुष
भी अपनी स्त्रीके साथ, या तो सुशील स्त्री अपने पतिके साथ कुत्तेकी तरह हमेशां
भोगक्रीडाकी वांछना नहीं करते है. फकत ऋतुके समयमेंही अपनी इच्छा शांतिके
लिये अनातुरतासें कामविलासका उपयोग करते हैं और कामसेवनके वक्त शोचते हैं
कि-ज्ञानीमहाराजनें स्त्रीकी योनीमें बहुतसे जीवोंकी उत्पत्ति कही है. जैसें एक भुंग-
लीमें रूइ भरकर पीछे उसमें लोहेकी सलाइ खूब तपाकर घुसाड देवे तो वो रूइ जल
जाती है, वैसेही स्त्रीकी योनिमें पुरुषचिन्हके प्रवेशसें उन्में रहे हुवे जीवोंका नाश
हो जाता है. उस्से ये बडी हिंसाका कारन है. फिर वही स्थानमें मूत्रादि दुर्गंध है,
उसका एक छांटाभी लग गया हो तो उस्कों मनुष्य धो डालते हैं, वैसी खराब दुर्गंधी
है. वही स्थानकी क्रीडा करनी वो अज्ञानताकीही प्रबलता है. फिर भोगसें शरीरकी
स्थिति भी कितनी नरम-शिथिल हो जाती है? ऐसा मालूम होनेपर भी उन्सी का-
र्यमें सुख मान लेना वोभी अज्ञानताकीही प्रबलता है. यहांपर कोइ कहेगा कि-ये
सभी कारण अपनी और परस्त्रीमें बरोबरही होते हैं, तो अपनी और पराइ स्त्रीमें

पापका क्या फेरफार है कि परस्त्रीका त्याग करनेके वास्ते सभी धर्मवाले पुकारते हैं ? ' उसका खुलासा यही है कि-पराइ स्त्रीका मालिक है वो तौ अपनी स्त्रीकों दूसरेके साथ बदकाम करनेकी परवानगी नहीं देवै, उस्से उनकी स्त्री पतिकी चोरीसें बदकाम करै और उसके पतिकों मालूम हो जाय तौ बने वहांतक उस स्त्रीकों जानसें मार डालेगा. और यदि जारपुरुप पकडा जायगा तौ उनकों बेजान कर देगा. और कदाचित् स्त्री और जारपुरुपके उपर जोर न चल सकेगा तौ गुस्सेके मारे खुद आप जान निकाल देगा. कभी नरम स्वभावका होगा तौ मरेगा नही; लेकिन उनके दिलमें बडा रंज-दुःख भरा रहेगा. रात और दिन उसीही दुःखमें गुजारेगा. इस्सें साफ मालूम होता है कि परस्त्री बडी भारी हिंसाका कारन है. फिर बदचलनवाली स्त्रीओंकों अपना खाविंद दूसरे जारपुरुषोंके साथ खेलने न देगा तौ वो स्त्री अपने पतिकों जानसें मारदेवें. अगर मार देती हैं वैसी बहुतसी वातें सुने-देखनेमें भी आती हैं, तौ इस बदकामसें बडी जीव हिंसाओं होती हैं. फिर परस्त्रीका मैं सेवन करताहुं तो भी मैं सेवन करताहुं अैसा कहा भी नहीं जाता. इस्सें जूंठ बोलनेके सबबसें मृषावादकाभी दोष लगता है. फिर परस्त्रीके उपर इच्छा होती है वो अत्यंत विषयकी इच्छा वाली होती है उस्सेभी ज्यादे कर्मबंधन होता है. फिर अपनी स्त्री तौ हमेशां नजर आगेही होती है उसलिये सर्वदा भोगकी विचारणा नही होती और पराइ स्त्रीके लिये तौ रात दिन विचारणाही हुवा करती है, कामधंधा भी नहीं सूझ सकता और विकल्पही किये करता है. वो विकल्प कर्मबंधनकाही हेतु है. विकल्पका पाप मनुष्य सामान्य समझते हैं; लेकिन विकल्प समान दूसरा ज्यादा पाप नहीं है. वो पाप कितना बांधाजाता है सो ज्ञानीमहाराजही जानसकते हैं और उसीसेंही उन्होंने उस्के समान दूसरा बडा पाप नहीं बतलाया. उन्हीकोंही बडा पाप-कठीन पाप कहा है और भी जितने जितने धर्मवाले हैं उन्ह सभीने भी परस्त्रीमें बहुत पाप दर्शाया है. संसारमें परिभ्रमण करनेका बीज स्त्रीभोग है. भोगेच्छाके लीये स्त्रीए पुरुपकी दासी बनकर जींदगी पूरी करती हैं. इंग्रेज लोगोंमें पुरुष स्त्रीका दासत्वपना करते हुवे नजर आते हैं. और जो अति कामी या परस्त्रीलंपट होते हैं वैभी स्त्रीओंके दास बनते हैं, कामवासनाके लीये जेवर पहेननेकी और जेवरके लीये धन पैदा करनेकी उपाधि करनी पडती है. अैसें अनेक प्रकारकी विटंबना कामके लीयेही संसारमें भुक्तनी पडती है.

वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं कामका अभिलाष छोड देना. संपूर्ण प्रकारसें तो अभिलाषका त्याग क्षपकश्रेणीमेंही होगा तभी पूर्णतत्त्व प्राप्त होगा. यह नौ नौकषाय और सोला कषाय मिलकर पचीश हुए. वो मात्र मोहनीकर्म है–याने ये कषाय होवें वहांतक पूर्ण चारित्र केवलज्ञानीका यथाख्यात वो नहीं आवें. वास्ते उनका त्याग करनेके लीये बहुतही उद्यम करना. ये प्रकृतियें जितनी जितनी कम होवेगी उतना उतना आत्मा विशुद्ध होवेगा–वही धर्म है. और ज्यौं ज्यौं ये कषायोंकी वृद्धि होती जायगी त्यौं त्यौं कर्मबंध बढता जावेगा. और दुर्गतिके दुःख तथा जन्ममरणके दुःख भुक्तने पडेंगे. कोइ कहेगा कि–वै दुःख किसीने देखे नहीं है. तो कहेंगे कि–मनुष्यके दुःख देखते हो? कि भंगी लोगोंकों रात दिन मैला उठाना पडता है और वैसा झूंठा बिगडा हुवा खाना भी मिलता है. फिर कितनेक लोगोंकों पहेननेके लीये कपडे भी नहीं मिलते हैं. ठंड–धूपका दुःख भुक्तना पडता है. कितनेककों कोढरोग, जलोदर, विस्फोटक, दमा वगैरः रोग होते हैं. अैसें अनेक रोगोंकी वेदनाओंका दुःख रात दिन सहन नहीं होता है तब चिल्लाते हैं–रोते हैं, तो अैसे दुःख सख्त पापके योगसेंही प्राप्त हुवे हैं. ज्यादे पापसें नरकके दुःख होते हैं वो नास्तिकवादी विगरके सभी धर्मवाले मानते हैं. वास्ते शंका करनेकी जरूरत नहीं है. पापके फल तो अवश्य भुक्तनेही पडेंगे. वास्ते ज्यौं बनसके त्यौं राग द्वेषकी परिणती कम करदेनी कि जिस्सें पाप कम बंधा जाय और अनुक्रमसें सब प्रकारपूर्वक राग द्वेषसें मुक्त हुवा जाय.

कोइ सख्स यहांपर प्रश्न करेगा कि 'देवकी गति संजलके कषायसें बंधी जाय तो सम्मकृदृष्टिकों अप्रत्याख्यानादिकका उदय तथा श्रावककों प्रत्याख्यानादिकका उदय कहा है, तो किस प्रकारसें देवगति बांध सके?' इसका उत्तर यही है कि जिस वक्त देवगतिका आयु बांधे उस वक्त संजलके कषायका उदय होता है, दूसरे कषायोंका गौणपना होता है. अैसेही मिथ्यादृष्टिकों भी जानना. दर्शनमोहनीके तीन प्रकार है याने सम्यक्तमोहनी, मिश्रमोहनी और मिथ्यात्वमोहनी ये तीन है. इनमें पहेले मिथ्यात्वमोहनीका स्वरूप लिखते हैं. जिस जीवने मिथ्यात्वमोहनी कर्म बांधा हुवा है, उसके प्रभावसें अठारह दूषणरहित श्री वीतराग देव है उनके ऊपर द्वेष भाव रखता है. (सातवे प्रश्नमें अठारह दूषण कह चुके है वहांसें देख लेना.) अठारह दूषण भरित देवकों देव मानता है. जो गुरु हिंसामें तत्पर, झूंठबोलनेवाले,

चोरीकाभी नियम नहीं, मैथुनमें अत्यासक्त, धन और स्त्री रक्खे, रातदिन तृष्णाभी बनी रहै, और धन वगैरः के लाभार्थ सेवकोंकों उपदेश दीया जावे. अैसे निर्गुणीकों गुरु करकें स्थापन करै, उन्कोंही तरणतारण गुरु मान लेवै. और जिन पुरुषने ये पांचों अव्रतका त्याग कीया है, पांचों महाव्रत अंगीकार कीये हैं, पांचों इंद्रियोंके तेइश विषय छोड दीये है, फक्त कामके लायक वस्त्र रखते हैं, आहारभी आपके वास्ते न करते है या करवाते हैं, और न अच्छे आहारकी अनुमोदना भी करते है. फक्त गृहस्थने आपके घर जो रसोइ बनाइ हो, उनमेसें थोडीसी वस्तु-भोजन पदार्थ लेते हैं, स्वादकी चाहना नहीं करते हैं, आत्माकों अच्छा लगे अैसें विचरते हैं, रात दिन शास्त्राभ्यास कर रहे है और विकथाका तो त्याग करदीया है. अैसे महानुभव महात्मा पुरुषकों गुरु नही मानता है. और कठोर मिथ्यात्वके जोरसें अैसे पुरुषोंमें दूषण न होनेपर भी दूषण आरोपण करता है. रातदिन अैसे गुणवंतकी निंदा करता है. फिर अैसे पुरुषोंने जो धर्म प्ररुपण कीया है उनकों अधर्मही मानता है. और दया मूलके नाशरुप हिंसाअें, अविनय, अज्ञानता, विषय तथा पुद्गलका पोषण है उसकों धर्म मानता है. अगर तौ जो दयामूल, विनयमूल, हिंसाका त्याग, असत्यका त्याग, चोरीका त्याग, स्त्रीसेवनका त्याग, पैसेका त्याग-ये रूप व्यवहार धर्म, तथा आपके आत्म स्वरूपमें रहकर रागद्वेषकी परिणतीसें मुक्त हो, सब प्रकारसें मोहका नाशकारक उद्यमरूप जो निश्चय धर्म उनकों अधर्म मानता है. ये मिथ्यात्वमोहनी कर्मके जोरसें धन, स्त्री, पुत्र, परिवार, मकान, दुकान, कपडे, पात्र-बरतन वगैरः पदार्थकों जीव अपना मानता है, और उस संबंधी जीव विचित्र प्रकारका अहंकार ममकार करता है और पीछे नये कर्म उपार्जन करता है. ये मिथ्यात्वमोहनी जिन पुरुषसें दूर हो जाती हैं, उनकों संसारदावानलकें जैसा मालूम होता है. जैसें कोइ मनुष्य जंगलमें गया हो और वहां चारों औरसें आग लग गइ हो तौ उसमेंसैं निकल जानेके लीये अनेक उद्यम करता है, तैसें यह जीव संसारमें रहा हुवा विचारता-शोचता है कि-यह धन कुटुंब सब पदार्थ नाशवंत है, संयोगसें मिले हैं और वियोगसें जानेवाले हैं, पूर्व कृतकर्म संयोगसें जाते हैं और पूर्वकृतकर्म संयोगसें प्राप्त होते हैं. उन्में मैं जो राग रखता हुं उससें समय प्रतिसमय नूतन कर्म बंधाते हैं और मैरा आत्मा मलीन हुवा जाता है.। अनादि कालसें संसारमें परिभ्रमण करता हुं वो वही जड पदार्थोंके ऊपर राग धरनेके सबबसेंही

करता हुं; लेकिन इस भवमें तौ भवितव्यताके योगसें ये सब वस्तु पर हैं असा वि- छानकर ये सारे पदार्थोंमें निरिच्छकता करकें सभी वस्तुका संयोग त्याग करनाहीं योग्य है. कब ये सब वस्तुका त्याग करके मैं मेरे आत्मधर्ममें प्रवर्तुं और कुच्छअपने आत्माका साक्षात् ज्ञान प्रकट करुं. असी दशा मिथ्यात्वमोहनीके जानेसें होती है. अब मिश्रमोहनीका स्वरूप लिखते हैं. इस मोहनीसें कुच्छ शुद्ध देवगुरु धर्मके ऊपरसें द्वेष दूरहुवा और अशुद्ध देवगुरु धर्मके ऊपरसें राग-प्रीति कम हुइ मालूम होवे. फिर पुद्गल भावके अंदर संपूर्ण आसक्त था सो उन्मैंसें मिथ्यात्वके पुद्गल जानेसें आसक्त भाव कम होवै, उससें अपना आत्मधर्म प्रकट करनेकी कुच्छ मरजी होवै. मिथ्यात्वपनमें तौ कुलका धर्म कर- ताथा; मगर वो मिथ्यात्वमोहनी चली गइ और मिश्रमोहनी हुइ, उसके प्रभावसें करकें अपना धर्म प्रकट करनेके लिये उद्योग करना शुरु करे. फिर ये मिश्रमोहनीका काल अंतर्मुहूर्त्तका है और उन अंतर्मुहूर्त्तमें भी दो श्वासोश्वाससें नौ श्वासोश्वास तकका हैं, इस्सें असा सुंदर भाव आत्म हितकारी होवै; लेकिन वो भाव प्राप्त हुवे पर भी अल्प समयके सबवसें अपनकों जानना दुष्कर हो पडता है. ये मिश्रमोहनीके पुद्गल भी मलीन हैं, उससें सच्चा तत्त्व नहिं पहिचाना जाता है; इसके लिये ये भी दूर क- रनेके योग्य होनेसें उसकुं छोड देनेका उद्यम करना चाहियें. ये दोनूका (मिथ्यात्व और मिश्रका) अभाव हो जानेसें सम्यक्तमोहनी प्राप्त होवे, उस सम्यक्तमोहनीका स्वरूप कहते हैं. शुद्ध देव गुरु धर्मके ऊपर राग प्रकट होवै, झूंठे देव गुरु धर्मके ऊपर राग नहीं रहेवै, आत्मतत्त्व प्रकट करनेका कामी होवै, गुरुमहाराज और उत्तम श्रावकोंकी अच्छी तरहसें संगति करै, उन्के पाससें धर्मोपदेश सुनै, देव गुरुकी अच्छी तरहसें भक्ति करनेमै तत्पर होवै, जीव, अजीव, पुन्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नौ तत्त्वोंकौ जानै, और जानकर उनपर जैसें आगमोंमे कही है वैसी ही श्रद्धा रक्खै, असा तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा रक्खे, केवल धर्ममय चित्त हो जावे और संसारमें पडा हुवा भी संसारी सुखकों दुःख रूप समझ लेवै.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि—सम्यक्त्वमोहनी तौ मोहनी कर्मका प्रभाव कहा है और यहां तौ तुमने गुनवंतपनेका वर्णन कीया उसका सबब और समाधान क्या है सो बतलाइये?

यह शंकाका समाधान यही है कि—ये सम्यक्तमोहनीके प्रभावसें जीवादिक

पदार्थोंकी यथार्थ श्रद्धा होवै; लेकिन उन नौ तत्त्वका विस्तार पूर्वक जो सूक्ष्म ज्ञान है उसके भीतर सम्यक्तमोहनीवालेकी बुद्धि मोहकों प्राप्त हो जाती है, यथार्थ अनु-भवगम्य आत्मतत्त्व न कर शकै-इस सववसें आत्म स्वरूप धमडा देता है; वास्ते वो त्याग करने योग्य कही है. मगर मिथ्यात्व और मिश्र ये दोनू मोहनी करतें इसमें (सम्यक्त मोहनीमें) धर्मरूचि वढती है, उसके लिये ये गुणोंका दर्शाव कीया है. जैसें आंखोंमें जव अवस्था या दोषप्रकोपके सववसें रोशनी कम मालूम पडै-छाउं छा जावै-कमदेखा जावै, तव चस्मे लगानेसैं पदार्थ पहिचाने जाते हैं, तो चस्मोंकी तारीफ़ ही करते हैं; लेकिन जिसकों चस्मे लगानेकी जरूरत नहीं है-आंख साफ और रोश-नीदार और अच्छी तरहसें देख सक्ता है वो तो चस्मेकी तारीफ नहीं करेगा; क्यों कि वो जैसा देख सक्ता है वैसा चस्मे लगानेवालेभी साफ साफ नहीं देख सक्ते हैं. और इसी सववसेंही चस्मे लगानेवालेभी वस्तुतासें यही, इच्छा रखते हैं कि आंखकी झांख दूर हो जावै, और चस्मे न लगाने पडै तो अच्छा होवैवैसेही जव तक मिथ्यात्वमोहनी है उसकी अपेक्षासें सम्यक्त-मोहनी अच्छी है; परंतु सम्यक्तमोहनीभी मिथ्यात्वमोहनीके पुद्गल हैं, वास्ते ये सम्यक्तमोहनीके पुद्गल त्याग होवै तव जीवकों क्षायकसम्यक्त होता है और तवही यथार्थ पूर्ण स्वरूप समझा जाता है, कुच्छभी शंका नहीं रहेती है और सर्वज्ञ प्रभुनें सूक्ष्म ज्ञान शास्त्रकी अंदर जो दर्शाया है वो सव ज्ञानीमहाराजके कथन मुजव सुल-भतासें समझ सक्ता है. और जिसकों सम्यक्तमोहनीका जोर है उनकों यथार्थतासें कुल् वातें नहीं समझी जायगी-कुच्छभी शंका रहेगी; क्यों कि सम्यक्तमोहनीवालेसें मिश्रमोहनीवालेकों ज्यादे शंकाए पडै, और उन करतेंभी मिथ्यात्वमोहनीवालेकों तो वहुतही शंकायें पडती हैं. सव वस्तु बिपरीतही समझनेंमें आती है-जो शुद्ध मार्ग होवै वो विपरीत-अशुद्धही मालूम होता है. कुच्छ कुच्छ मिथ्या पुद्गल हठते जायें, उतना उतना सहज कुच्छ सचा मालूम हो आवै; वास्ते हर एक प्रकारसें मिथ्यात्वमोहनी, मिश्रमोहनी और सम्यक्तमोहनी ये तीनूके नाश निमित्तका उद्यम करनाही योग्य है.

पूर्वोक्त तीनू मोहनीकी सत्ता, वंध और उदयसें संपूर्ण प्रकारसें नाश हो सक्ता है या होता है, तव क्षायकसमकितकी प्राप्ति होती है. फिर ये तीनू मोहनीका नाश होनेके साथही अनंतानुवंधी क्रोध, मान, माया, लोभकाभी नाश हो जाता है-उससें भी क्षायकसमकित प्रकट होता है और वो क्षायकसमकिती उसीही जन्ममें मोक्षको

प्राप्त करता है. कदाचित् सम्यक्त्व प्राप्तिके अव्वल यदि दूसरी गतिका-नारकी, देवताका आयु बांध लीया हो तौ दूसरी गतिमें जाय, और वहांसें मनुष्यजन्म पाकर मोक्षमें जावै. कदापि युगलियोंमे जावै तौ युगलियौंमैंसें देवगतिमें जाकर फिर मनुष्यगति पाकर मोक्षमें जाता है; मगर इनसें ज्यादे भव नहीं करने पडते हैं अथात् तीसरे भवमें मोक्ष प्राप्त होता है, यही क्षायकसमकितकी अजब खूबी है.

फिर जिनकों सम्यक्त्वमोहनीका संग नहीं छूटा है उन्कों क्षयोपशमसम्यक्त्व होता है; उनके उदयसें अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ नाश होते है. सत्तामें मिथ्यात्व रहता है, उदयमें नहीं रहेता. ये समकितवालेकों भी मुक्तिका निश्चय होता है; लेकिन क्षायकवालेकी तरह तद्भवमैं मुक्ति जानेका निश्चय नहीं हैं. जब ज्यादे विशुद्धता होवै और क्षायकसम्यक्त्व प्राप्त करैं तब मुक्ति हांसिल होवै. यदि क्षायक सम्यक्त्व प्राप्त नहि हुवा हो तौ मुक्ति प्राप्त नहीं होती है. क्षयोपशमसम्यकत्वकी स्थिति कायम रहेवै तौ ६६ सागरोपम तक रहती है. और सम्यक्त्व सहित आयुष भी देवलोकका बांधै, अगर देवता नारकी होवै तौ मनुष्यकाही बांधता है, ऐसा ये सम्यक्त्वका प्रभाव है. दर्शनमोहनीकों दूर करनेके फल जान लेकर ज्यौं बन सके त्यौं इनका त्याग करना. ये तीनू मोहनी और पचीस चारित्रमोहनी ये सब मिलकर अठ्ठाइस मोहनी कर्मकी प्रकृति जानो. इनका सर्वथा त्याग करनेसे केवलज्ञान प्राप्त करता है. जब तक ये मोहनीकर्म है वहांतक पूर्ण गुण भी प्रकट नहीं होते हैं. और ये प्रकृतियोंमें वर्त्ताव रखनेसेंही पुनः कठिन कर्मकी ग्रंथी बंधाकर जीव संसारमें परिभ्रमण करने लगता है. भवभ्रमणाकी वृद्धिका मूलकारण मोहनी कर्मही है; वास्ते इनका त्याग करनाही उचित है. राग द्वेषकी प्रकृतिके लिये जीवकों इस लोककी अंदर भी अपयश और परलोकमैं भी दुःख होता है. जिन जिन वस्तुओंका धर्मपदमैं निषेध किया है उन उन वस्तुओंका आदर करनेसें इस जन्ममैं और अपर जन्ममैं दुःखके सिवा और कुच्छ हाथ नहीं लगता है; वास्ते समभावसें मोहनी कर्म क्षय करनेका उद्यम करनेमें तत्पर रहेना चाहियें.

अब वेदनी कर्मका स्वरूप कहते हैं. वेदनीके दो प्रकार हैं-शाता वेदनी और अशाता वेदनी, याने सुख वेदना सो शाता वेदनी और दुःख वेदना सो अशाता वेदनी कही जाती है. जिसनें पूर्वभवके भीतर नीतिमार्ग अनुसार चलन रक्खा है,

सत्य भाषन किया है, दया पालन की है, चोरीका त्याग कीया है, परस्त्रीका त्याग और अपनी स्त्रीमें संतोष, किंवा त्याग किया है, किसी जीवकों दुःख न होवै वैसा वर्त्ताव रख्खा है, और धनकी तृष्णाकों त्याग कर परोपकारमैं वा सच्चे देव गुरुवोंकी भक्तिमैं द्रव्यका सदुपयोग किया है अर्थात् अैसी पुण्यकरणी करनेसें शाता वेदनी कर्म बांधा होवै उनके प्रभावसें अपनी प्रकृतिके अनुकूळ सुखके पदार्थ मिलते हैं. और जिसने इन्सें विपरीत कृत्य किये हैं–जैसें कि जीवहिंसा करनी, झूठ बोलना, पराइ वस्तु उठा लेनेका जिंसकों डरही नहीं, कामभोगमे अत्यंताशक्ति और उसीके प्रभावसें अपनी या पराइ स्त्रीका भी कुच्छ शोच विचार नहीं होनेसें बहुत कामांध हो गया होवै, याने अपनी वहेनी या लडकीके ऊपर भी बद निघाह करनेका जिसकों शोच नहीं होवै, जिस स्त्रीके ऊपर नजर पड जावैं उसीके साथ भोग करनेकी चाहना करै. मतलबमैं सब स्त्रियोंके साथ कुछ योग नहीं बन सकता है तौ भी मनकी इच्छासें कर्म बांध लेता है. कदाचित् इच्छित स्त्रीयोंमेंसें कंइएक स्त्रीयोंका योग मिलभी जाता है तौ उन्में भी बहोत लुब्ध होकर काम सेवन करता है. नही सेवने योग्य स्थानपर चुंबन प्रमुख भी कर लेवै. और दूसरोंकों ठगनेको लिये विश्वासघात करै उससे दूसरे मनुष्योंकों दुःख होवै वैसे कृत्य करनेमें तत्पर रहेवै, शुद्ध देव गुरु धर्मकी हेलना–निंदा करै, खोटे मनुष्यकी प्रशंसा करै, बुरे कामोंमें तत्पर रहेवै, अहंकारी, कषायवंत, अति क्रोधी और अैसेही महा आरंभकारी कृत्य तथा दुराचरण सेवन करनेसें अशाता वेदनी कर्म बांधता है. उन्में भी एक दूसरेकी प्रकृतिमें तफावत्त रहता है. बुरा काम दोनू मनुष्य समान करें तौभी एक सख्स मनुष्यकों मार कर उसका प्राण निकाल देवै और दूसरा प्राण लेकर भी पीछे उस मृतक कलेवरके टुकडे टुकडे कर डाले और उस बाद तेलमें भूनकर छोड देवै. इस तरह दुष्टतामें तफावत्त होता है. और यही तफावतसें कर्म बांधनेमें भी तफावत रहता है. इस लिये समझना चाहियें कि जिसन दुष्ट कठिन प्रकृतिके सबळ योगसें कार्य किये हैं उसकों कठिन अशाता वेदनी कर्मबंध होता है और भुक्तनेके वख्त भी कठिन वेदना भुक्तनी पडती है. और जिसने मंदतासें कर्मबंध किया होवै तो उस्कों मंद वेदना भुक्तनी पडती है. यह कर्मका नाश भुक्तनेसेंही होता है. उसमें अज्ञानी लोग तो दुःख भुक्तते हैं तौ भी परमात्माकों दोष देकर कहते है कि–' हे भगवान् ! मैंनें तेरा क्या बिगाडाथा

कि मुझे अैसा दुःख दिया!' फिर कोइ कहते है कि–' अरे! मुझसें अैसें दुःख सं-हन नहीं हो सकते हैं. ये दुःख कब दूर होगा?' इत्यादि कहकर डॉकटर–हकीम-वैद्यके ऊपर गुस्सा करते हैं, या तो अपने घरके मनुष्य किंवा नौकर चाकरके ऊपर चिल्लाकर धूमधाम मचाते हैं. और रोग चिंतवनाके अरिष्ठ फल प्राप्त होते हैं. इस तरह अनेक जीव गेरवाजवी विकल्प किये करते हैं, उस्सें जीव पुनः उन्सें भी ज्यादे कठिन कर्म बांधता है. और जो धर्मिष्ट जीव हैं वो तौ दुःख आता है तब अपने कर्मका दोष निकाल कर शोचते है कि–' गत जन्मोंमे मैनें अज्ञानतासें दुष्ट आचरण किये होंगे उस्सें वो कर्म मुझकों भुक्तनेही चाहियें. जैसे सरकारका गुन्हा किया हो और उसकी शिक्षा मिल चूकी हो तौ वो सरकारके हुकम मुजब यदि शिक्षा न भुक्तेंगे तौ सरकार ज्यादे शिक्षा करेगी, तैसें मैं विकल्प करुंगा और समभावसें अैसा दुःख न भुक्तुंगा तौ फिर नये कर्म बंधे जायेगे, तौ मेरी आत्मा ज्यादे मलीन होगी; वास्ते मुझकों जो जो दुःख प्राप्त हुवे हैं वोः दुःख समता भावसें भुक्तनेही चाहियें कि जिस्सें फिर अैसे कर्म न बंधे जॉय, अैसी वर्त्तना करनेकी आवश्यक्ता है.

फिर भावना भावे कि मैं तौ चेतन हुं, अनंतज्ञान दर्शन चारित्रवंत मेरी आत्मा है; लेकिन जडकी संगतिसें मैनें नहीं करने लायक काम किये; मगर उस वक्त मुझकों मेरी आत्माका ज्ञान नहीं था. अब तौ मैं जानता हुं कि मेरा जाननेका धर्म है वास्ते सुख दुःख आजावे उस्कुं जानना किंतु मुझकों दुःख होता है–पीडा होती है अैसे विकल्प करना यह मेरा धर्म नहीं है. अैसे विचार करकें समभावमें रहता है उसके तौ पूर्वके बंधाये हुवे कर्मभी नष्ट हो जाते हैं और नये कर्म नहि बंधे जाते हैं. फिर जो मुनिराज है वै तो अपने ज्ञान ध्यानमें तत्पर रहते है, उस्सें अपना स्वभाव छोडकर दुःखकी तर्फ उनका ध्यान नहीं जाने पाता है उस्से किंचित्‌भी उस संबंधका विचार नहीं करना पडता है. जैसें कि कोइ मनुष्य भवाइ–नाटक देखनेकों जावै, वहां खडे खडे अपने पैर दुखने लगें तौभी तमाशा देखनेमें ध्यान होनेके सबबसें पैरके दुखनेकी तर्फ ध्यान या लक्ष नहीं जा सकता है, वैसेंही मुनि महाराजभी अपने आत्म तत्त्वके ध्यानमें लीन हुवे होते हैं उस सबबसें दुःखवेदनामें उपयोग नहीं जा सकता है. अैसे पुरुष तौ ध्यानके प्रभावसें अपने बंधे हुवे निकाचित कर्मकुं शिथिल कर डालते हैं और पीछेसें तुरत उन कर्मोंका नाश करकें मोक्ष प्राप्त करते हैं. इसलिये आत्मार्थिज-

नोंकों तो ज्यौं वढे त्यौं समभावकों वढानाही चाहियें–कि जिस्सें कर्म नाश होकर आत्माकी मुक्ति हो जाय. और तवही अव्यावाध सुखकी प्राप्ति होवै. इस मुजब वेदनी कर्मका स्वरूप समझ लेने योग्य है.

अव नाम कर्मका स्वरूप कहेंगे. नाम कर्मकी १०३ प्रकृतियें हैं. और उनके नांव नीचे मुजब हैं–गतिनाम कर्म याने मनुष्य, तिर्यंच, नारकी और देवता इनचारों गतियेंसें जिन गतिमें जानेका पूर्वजन्मके भीतर कर्म वांधा होवें उन गतिमेंही जावै. १, दूसरा जातिनाम कर्म याने एकेंद्रि, वेरेंद्रि, तेरेंद्रि, चौरेंद्रि, पंचेंद्रि, यह पांच जाति हैं, इनमेंसें जितनी इंद्रि प्राप्त करनेकी प्रकृति वांधी होवै उतनीही उन गतिमें वांधे, २, तनुनामकर्म याने तनु–शरीर पांच प्रकारके हैं–उदारिक, वक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण. इन पांचोंमेंसें उदारिक शरीर जो अपने हैं वो, और तिर्यंचमेंभी उदारिक शरीरवाले होते हैं. तथा देवता और नारकीकों वैक्रिय शरीर होता है. पारेकी सदृश अलग अलग हो जानेपरभी पुनः एकत्र हो जैसाका वैसा वनजावे वो वैक्रिय कहा जाता है. नारकीमें पेदा होतेही शरीरके टुकडे टुकडे हो कर फिर जुड जाते है. और परमाधामी दुःख देनेके समयभी काटते व्हेरते हैं तौभी शरीर असल स्थितिवाला हो जाता है; मगर विनाश नहीं हो जाता है. देवतायेंभी अपनी इच्छानुसार छोटा वडा शरीर करलेते हैं वोभी वैक्रिय शरीरका स्वभाव है. आहारक शरीर तौ अतिशय ज्ञानी कि जो चौद पूर्वधर है उनकों यह शरीर करनेकी लब्धि होती है. वै किसी समयपर कुच्छ शंका पडनेके सववसें मुठी प्रमाण शरीर वनाकर शंका निवृत्तिके लिये भगवंतके पास भेजते हैं और वो वहुतही अल्पकालमें जाकर पीछा आता है. वो शरीर वैसे मुनि महाराजके सिवा किसिकोंभी प्राप्त नहीं होता है. तैजस शरीर वो शरीरकी अंदर आहारकों पाचन करता है. और कार्मण शरीर वो अत्यंत सूक्ष्म शरीरकी अंदर रहता है. जिस वख्त जीव इस गतिमैसें मरण पा कर दूसरे स्थानक जाता है उस वख्त ये तैजस और कार्मण संग संग जाते हैं. कर्मभी कार्मण शरीरमेंही रहते हैं. उदारिक वैक्रिय शरीरकी साथ ये तैजस, कार्मण शरीर हम्मेशां रहते है. यह शरीर, नामकर्म जिस तरहका वांधा होवै वैसा प्राप्त होता है. ४ उपांग नामकर्म याने उदारिक अंगोपांग, वैक्रिय अंगोपांग, और आहारक अंगोपांग यह तीन शरीरके अंगोपांग है वो जैसा वांधा होवै वैसे अंगोपांग होते हैं. ५ पंद्रहवंधन हैं, याने उदारिक उदारिक वंधन, उ-

दारिक तैजस बंधन, उदारिक कार्मण बंधन, उदारिक तैजस कार्मण बंधन, वैक्रिय वैक्रिय बंधन, वैक्रिय तैजस बंधन, वैक्रिय कार्मण बंधन, वैक्रिय तैजस कार्मण बंधन, आहारक आहारक बंधन, आहारक तेजस बंधन, आहारक कार्मण बंधन, आहारक तैजस कार्मण बंधन, तैजस तैजस बंधन, कार्मण कार्मण बंधन और तैजस कार्मण बंधन—इस तरह पंद्रह बंधन हैं. वै पूर्वके बांधे हुवे कर्मके साथ नवीन कर्मका एकजीव पना करदेते हैं. जैसें मिट्टीका वरतन टूटा फटा होवै तौ चयडाके संयोगसें सावित हो जाता है वैसें पूर्वके कर्म संगाथ नवीन कर्मकों जोड देते है. ६ पांच संघातन वै पांचों शरीरके नाम मुवाफिक हैं. वै प्रकृति कर्मके दलियेंकों खींचकर कर्मकी नजदीक करते हैं और पीछे बंधन नाम कर्मकी प्रकृतियें ऊपर लिखी गइ है वै एकजीव कर देती है. अब छः संघयणके विषयमें खुलासा करते हैं. वज्रऋषभ नाराच संघयण याने शरीरकी हड्डीके सांधे अैसे होते है कि एक दूसरेके परस्पर मणिवंध पकड गये होवै उसी तरह हड्डीके बंधके सांधे आगे होते है उसकों मर्कटबंधे कहते है. उसपर पाटा होवै और बीचमें वज्रमय खीली होवै—अैसे मजबूत सांधे होवैं उसकों वज्रऋषभनाराच संघयण कहते हैं. ये संघयणवाला शरीर बहुतही बलवान् होता है. तद्भव मुक्तगामी जीवकों अवश्य यह संघयण होता है. क्यों कि यह संघयण विगर क्षपकश्रेणी न कर सकै, और क्षपकश्रेणीके सिवा केवलज्ञान प्राप्त नहीं होवै. यहांपर कोइ शंकाशील शंका करेगा कि क्या यह संघयणवाला अवश्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है ? तौ उस विषयमें हम समाधानके लिये खुलासा करेंगे कि यही संघयण वालाही मुक्ति वरे अैसा नियम नही है; मगर ये संघयणवाला प्रभुकी आज्ञा मुजब सुकृत्य करेगा तौ मुक्ति पावैगा, और प्रभुकी आज्ञा विरुद्ध चलैगा तौ दुष्ट कृत्यके जोरसें यावत् सातवी नरकमें जायगा. सातवी नरक भी यह संघयण विगर प्राप्त नहीं हो सकती है; क्यौं कि संघयण बलवान् होवै तभी अतिशय बुरे या अच्छे काम करसकता है. और बुरेके परिणाममें नरक और अच्छेके परिणाममें स्वर्गापवर्गकी प्राप्ति हो सकती है. दूसरा ऋषभनाराच संघयण है, वो वज्रमय खीलीसें रहित होता है, बाकी सब वज्रऋषभ सादृश कृति होती है. तीसरा नाराच संघयण है. उनके दो बाजु मर्कटबंध होता है; मगर वज्रमय खीली ओर पाटा यह नहीं होते हैं. चोथा अर्धनाराच संघयण है. उसमें एक बाजुपर मर्कटबंध होता है. पांचवा कीलक संघयण है.

उसमें दो सांधेके बीचमें खीली होती है. छट्ठा छेवट्ठु संघयण है. उसमें हड्डीके अग्रभाग एक दूसरेके साथ अडकर रहते हैं. अभी यही संघयण है; लेकिन जिस वक्त श्री तीर्थंकर प्रभु विचरते थे उस वक्तमें छउं संघयणवाले मनुष्य थे. जिसने जैसा पुण्य संचय किया हो वैसा संघयण प्राप्त होता है. आधुनिक समय महाविदेह क्षेत्रमें ये छउं संघयणवाले मनुष्य विद्यमान हैं. ७

संस्थान नाम कर्म उनके छः भेद हैं. पहिला समचौरस संस्थान है, वो नाभिसें दोनू खंभे तक डोरी नापकर वोही डोरी पद्मासन लगाकर बैठेहुवे सख्सके गोठन-घूंटन तक नापनेसें समान याने नाभिसें खंभे और नाभीसें पद्मासनवालेके घूंटन तक भरनेसें दोनू बाजु बरोबर लंबाईमें होवै तौ उसकों समचौरस संस्थान कहा जाता है. इस संस्थानसें शरीर बहुत सुंदर मालूम होता है. दूसरा न्यग्रोध संस्थान-वो संस्थानवालेके शरीरका उर्द्धभाग और अधोभाग बेहुदा होता है. इससें कम खुबसुरतीवंत तीसरा सादी संस्थान होता है. उससे भी हलके दर्जेका चौथा वामनसंस्थान होता है. पांचमा कुब्ज संस्थान कि जो बडा बेडोल होता है. और छट्ठा हुंडक संस्थान, वो सब संस्थानोंसें विपरीत लक्षणवाला होता है. यह शरीरके संबंधी संस्थान हैं. पूर्वजन्मोंमें जैसा संस्थान नाम कर्म बांधा हो वैसाही शरीरका संस्थान प्राप्त होता है. ८

अब वर्णनाम कर्म याने वर्ण पांच हैं-हरा, राता, पीला, श्याम और स्वेत-उज्वल-गौर ये पांचुं वर्णमेंसें जिस वर्णका नाम कर्म बांधा हो वैसाही शरीरका रंग होता है. ९ गंधनाम कर्म याने गंध-सुगंध और दुर्गंध ये दो है. जिसने जैसे शुभाशुभ कर्म बांधा होवै वैसा शरीर अच्छे बुरे गंधवाला होता है. १० रसनाम कर्म याने रस पांच हैं-चरपरा, कडुक, खट्टा, मीठा और तूरा ये पांचमेंसें जिसने जैसा कर्म बांधा होवै उनकों वैसेही रसवाला शरीर प्राप्त होता है. ११ स्पर्शनाम कर्म याने हलका, भारी, रूखा, स्निग्ध, ठंडा, गरम, कोमल और कठोर-यह आठ स्पर्श हैं. उनमेंसें जो नाम कर्म प्राप्त किया हो वही स्पर्श मुजब शरीरका स्पर्श होता है. १२ आनुपूर्वी, नामकर्म याने मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी और नरकानुपूर्वी-यह चार हैं. इनमेंसें जिस गतिके अंदर जीव जानेवाला हो उस गतिमें वही गतिके आनुपूर्वी पुद्गल उस्सें ले जाते हैं. ये आनुपूर्वीका उदय जब अजल-मरण आ पहुंचे तब

होता है. १३ चलन गति नाम कर्म याने शुभ विहाय और अशुभ विहाय ये दो गति हैं, हाथी और बेहलके समान चाल चले सो शुभविहाय, और ऊंट किंवा गदहेकी तरह चाल चले सो अशुभ विहाय गति कही जाती है. इन दोमेंसें जिस गतिकी कर्म प्रकृतिका बंध हुवा होवे उसी प्रकृतिकीचाल प्राप्त होती है.

१४ त्रस नाम कर्म याने चलने हिलनेकी जैसी शक्ति उपार्जनकी हो वैसी प्राप्त होवे. बादरनाम कर्म याने दूसरे मनुष्य देख सकें वैसा शरीर प्राप्त करै. पर्याप्त नाम कर्मसें जीव पूर्ण पर्याप्ति बांध सकै. प्रत्येक नाम कर्मसें एकही शरीरमें एकही जीव होवै. स्थिर नाम कर्मसें शरीरकी हड्डी स्थिर होवै. शुभनाम कर्मसें नाभिके ऊपरका भाग-अंग जगत्में पूजनीक कहा जावै. सौभाग्यनाम कर्मसें जीव मात्रकों प्रिय लगे. सुस्वरनाम कर्मसें अवाज मीठा प्राप्त होवें. आदेय नाम कर्मसें हरकिसीकों वचन कहे वो मान्य करै-उनके वचनका कोइ अपमान न कर सकै. यशनाम कर्मसें जगतमें यशवाद प्राप्त करै-काइभी उनका अपयश न बोले. स्थावरनाम कर्मसें जीव स्थावरपना बांधता है-जिस्सें पृथिवी, अप, तेउ, वाउ और वनस्पतिपना प्राप्त करै. सूक्ष्म नाम कर्मसें जीव ऐसा शरीर बांधे कि उसकों कोइ भी न देख सकै. अपर्याप्तनाम कर्मसें पर्याप्ति पूर्ण किये विगर मरणके शरण होता है. साधारण नाम कर्मसें एक शरीरमें अनंत जीवोंको रहनेका होवै. आस्थिरनाम कर्मसें केश, कान, रुधिर, अस्थिर होवैं. अशुभनाम कर्मसें नाभिके नीचेका अंग अपूजनीक होवै. दुर्भाग्यनाम कर्मसें सब जीवोंको अनिष्ट लगै. दुस्वरनाम कर्मसें सब जीवोंको अनिष्ट लगै. दुस्वरनाम कर्मसें कर्णकटु अवाजवाला होवै-उनका गाना किसीकोंभी पसंद नहीं आवै. अनादेयनाम कर्मके प्रभावसें किसीकोंभी सच्ची बात कह देवै तौभी दूसरे मनुष्यकों पतीज लायक मालूम न होवै-कुछभी बोले सो किसीकोंभी पसंद न पडै. अपयशनाम कर्मसें सब जगह अपयश पावै. पराघातनाम कर्म बांधा होवै उन्सें पर जीव वलवान् होवें तौभी वो जीवका मुख देखै कि भय पावें, उच्छ्वास नाम कर्मसें श्वासोच्छ्वास बराबर ले सके और उनमें कुछ कसर होवें उतनी अडचण-हरकत होवै. आतापनाम कर्मसें सूर्यबिंब समान तेज न सहन कर सकै वैशा दिव्य तेजवंत होवै. उद्योत नामकर्मसें चंद्रमा तारेके समान शीतलस्वभावी और उद्योतकारक होवै. अगुरुलघुनाम कर्मसें बहुत भारी शरीर न होवै और न बहुत हलका होवै-मतलबमें जैसा चाहियें वैसाही

होवै. निर्माण नाम कर्मसें शरीरके अवयव जहां चाहिये वहां कायम होवै. उपघात नाम कर्मसें शरीरमें रसोली याने अर्बुद, प्रतिजीव्हा, चौरदंत, खीली वगैरः उपद्रव होवै और शरीरकी अंदर पीडा होवै. तीर्थंकरनाम कर्मसें तीर्थंकरकी पदवी पावै, असंख्य देव जिनकी सेवामें हाजीर रहै, समवसरण प्रमुखकी रचना होवै, प्रभुका मुख देखनेसें आनंद होवै, प्रभुका दियाहुवा उपदेश ग्रहण करै, बालजीवोंको धर्म प्राप्तिका मुख्य कारण है; क्योंकि जो मनुष्य चमत्कारके रसिक है. वै रत्नमय समवसरणमें प्रभुको विराजमान हुवे देखकर पहिलें तो उन्के दर्शनकी इच्छा उत्पन्न होवै, बाद देवता वगैरः देशना सुनते होवै वोह देखकर भगवानकी तर्फ विशेष प्रतीति पैदा होवै, वास्ते भगवानकी अमृतमय देशना सुन लेवे कि आसन भविजीव तुरत प्रतिबोध प्राप्त कर लेवै.

इस मुजब नामकर्मकी १०३ प्रकृति हैं. उनमैसें कितनीक पुण्य उदयसें और कितनीक पापके उदयसें जैसी जैसी प्रकृति बांध ली हो उस मुजब जीवको प्राप्त होती है. उसमें भी अशुभ नामकर्मकी प्रकृति उदय होती है तब अज्ञानी जीव दिलगीर होते हें. और शुभ नामकर्मकी उदय होती है तब खुश होते हैं, वो खुशी और दिलगीरी अशुभ कर्म बांधनेका स्थान है. ज्ञानवान् पुरुष अशुभ-शुभ चाहे सो उदय होती है, तब उनमें खुशी या दिलगीर नहीं होते हैं. वै यों मानते हें कि 'जैसे पूर्वभवमें कर्म बांधे गये है वैसे उदय आये है तो उनमें मेरे राजी या दिलगीर होनेका सबब क्या है ? कुछभी नहीं' ऐसा शोचकर आप समभावमें रहते हैं, उस्सें अनुक्रमसें विशुद्ध होकर कर्मसें मुक्त होते हें और अरूपी गुण प्रकट करता है उसीसें सिद्धिको प्राप्त करते हैं.

अब गोत्रकर्मका स्वरुप कहते हैं. गोत्रकर्मके दो भेद हैं याने उंचगोत्र और नींच गोत्र. उंचगोत्रके भी आठ प्रकार है कि जो पन्नवणाजी सूत्रमें बताये गये है याने उंच जाति, उंच कुल, सुंदर स्वरुप, उत्तम बल, धनवंतता, ठकुराइ–राज्यपद–बडा होदा शेठाइ वगैरः और विद्यानता–यह आठ वस्तुकी प्राप्ति उंचगोत्रके प्रभावसें होती है. और नीच गोत्रके प्रभावसें यही आठ वस्तु विपरीत रुपमें प्राप्त होती हें. कर्म भी समभावसें ज्ञानी पुरुष भुक्तते हैं और उनको व्यय कर अगुरु लघु गुण पैदा करके सिद्धमें रहते हैं.

अब अंतराय कर्मका स्वरूप कहते हैं. अंतराय कर्मकी पांच प्रकृति हैं याने दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय—ये पांच हैं. उनमेंसें दानांतरायके प्रभावसें देने लायक वस्तु हाजिर है, लेनेवाला पात्रभी विद्यमान है, तौ भी दान नहीं दे सकै. लाभांतरायके उदयसें लाभकी प्राप्तिही न होवै. भोगांतरायके उदयसें भोग्य पदार्थ मोजूद होवें; तदपि उनका उपभोग न कर सकै. उपभोगांतरायके जोरसें उपभोग वस्तु जो वेर वेर भोग्यमें आवे वैसी प्राप्त हुवेपर भी शोक वगैरः आ पडनेसें उपभोग न कीया जावै. और वीर्यांतरायके जोरसें वल वीर्य प्राप्त न हो सकैं. या प्राप्त होवै; तदपि धर्मके काममें वीर्य स्फुरा सके नहीं. यह पांचो प्रकृतिका सर्वथा अंत केवलज्ञानकी प्राप्तिके समय हो सकता है, तौ भी थोडा थोडा नाश तौ आगेभी होता है, उस्सें उतना काम हो सकता है.

अब अंतिम आयुकर्मका स्वरूप कहते हैं. मुख्यपनेसें मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकी—इन चार प्रकारके आयुमेंसें जिन गतिका आयु बांधा होवै उन गतिमें जीव जाता है.

इस प्रकारके आठों कर्म कीये जाते हैं उससें करकें जीव संसारमें परिभ्रमण करता है. जब ये आठों कर्मका नाश हो जावै तव सिद्ध भगवान् होता है. सिद्ध हुवे बाद पुनः संसारमें आगमन नहीं होता है याने जन्म जरा मरणका केवल अभाव होताहै.

१२ प्रश्नः—उक्त कथित आठों कर्म क्या क्या करनेसें जीव बांध सकता है?

उत्तरः—ये आठों कर्म बांधनेके वहुत कारण हैं; तौभी मुख्यतासें ५७ हेतु हैं सो इस मुजब हैं:—पांच मिथ्यात्व याने अभिग्रह मिथ्यात्व, अनभिग्रह, अभिनिवेशिक, संशयीक और अनाभोग—ये पांच हैं. उनमेंसें पहिलेके प्रभावसें, कुगुरु, कुदेव, कुधर्मका झूंठा हठ ग्रहण कीया गया है वो छोडता नहीं. मेरे वापदादे जो करते आये हैं वोही करूंगा. दूसरी तरहसें जो पुद्गलिक वस्तुकों मेरेपनसें अति आग्रह करके मान वैठा है वोभी मिथ्यात्व है. दूसरे अनभिग्रह मिथ्यात्वसें सुदेव, और कुदेव ये दोनूकों समानतासें मान लेवै; लेकिन गुणिकों गुणिपनेसें मान लेना और निर्गुणिकों छोड देना ये नहीं कर सकै. तीसरा अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके प्रभावसें सच्चे देव गुरु धर्मकों पहिचाने; मगर ममत्वके वशसें उन्होंका आदर न

करै; मगर हेलना करै. चौथा संशयीक मिथ्यात्वके जोरसें सर्वज्ञके वच-
नमें संशय करै. और अनाभोग मिथ्यात्वके प्रभावसें धर्म कर्मकी कुछ
भी खबर न होवै, जड जैसा मनुष्य होवै और धर्मकी बिल्कुल रुचि होवै
नहीं. ये पांच मिथ्यात्वसें करकें जीव कर्म बांधता है. फिर बारह अव्रत
याने पांच इंद्रिय और छट्ठा मन यह छः और छ काय. उनमें पांच इंद्रियोंके
और मनके विषयमें लुब्ध रहै. और पृथिवीकाय याने मिट्टी, निमक,
धातु वगैरः, अप्काय याने पानी, तेउकाय याने अग्नि, वाउकाय याने
पवन, वनस्पतिकाय याने हरी पत्ती फूल फल वगैरः और त्रसकाय
याने बेरेंद्रिय, तेरेंद्रिय, चौरेंद्रिय, पंचेंद्रिय-उन्मेंभी पंचेंद्रियवाले मनुष्य, तिर्यंच-
पशु-गाय-भैंश-घोडा-बकरा-गीदड-हरिण वगैरः, तथा पंखी, और समु-
द्रके छोटे बडे मच्छ मघरमच्छ वगैरः, बहुत प्रकारके सांप आदि है, वो
और देव तथा नारकी-यह चार जातिके पंचेंद्रिय जीव हैं. ये छःकायके
जीवोंकी हिंसा करै उनसें जीव कर्म बांधता है. फिर पच्चीस कषाय
(जो इस ग्रन्थके पचासवे प्रश्नके उत्तरमें मोहनी कर्मके स्वरूप मध्य चा-
रित्रमोहनीकी पच्चीस प्रकृतिये कही गइ हैं वही पढकर ध्यानमें ले समजमें
रख्खीये कि) उनके सेवनेसें जैसी जैसी कषायकी प्रकृति होती है वैसा
वैसा कर्म बांधता है. कर्म बांधनेका बीजही वो है, और तिव्र मंद कषाय
के ही संबंधसें कर्म बंधे जाते हैं. और पंदरः योग याने मनके चार वचनके
चार और कायाके सात ऐसें १५ हैं. उनमेंसें मनके चार योग कहते हैं. सत्य
मनयोग याने सच्चे विचार करना. असत्य मनयोग याने खोटे विचार करना.
सत्यासत्य मनयोग याने सच्चाहै मगर झूंठाहैं, जैसें कोइ एकाक्षिकों काना कह
नेसें उनकों महा दुःख होता है. और दूसराभी जो जो छिद्र सच्चेहैं मगर प्रकट
करनेसें उस जीवकों महा संताप होता है. देखो! ये सच्चा कहनेसें दुःख
होता है; वास्ते ऐसा सत्य बोलनेसें असत्य कथनका कर्म बांधा जाता है.
चोथा असत्यसत्य मनयोग याने जैसें कोइ स्त्री किसी सबबके लिये पु-
रुषका पोशाक पहेनकर आइ होवै उनकों देख पहिचान ली; मगर दिलमें
खियाल आया कि 'यादि इनकों स्त्री कहुंगा तो इनका छुपा भेद खुल्ला

हो जायगा और उस्सें नुकशान होगा, ' इस बातके रक्षणार्थ पुरुषके वेषमें देखकर पुरुष नामसें कहकर बुलावे. वो जानता है कि मैं सत्यरूप जानता हुं तौभी असत्य प्रकाशता हुं उसें यह असत्य है; तथापि उन वेषधारीका मान समालनेके लिये असत्य प्रकाश किया जाता है वास्तं असत्य नहीं—अैसें हर किसीकों नुकशानीसें बचालेनेके सबबसें कहा जावे वो असत्य है; लेकिन मृषा नहीं. इस मुजब मनमें चिंतन करना वो मन योग कहा जाता है. और बोलना वो वचनयोग कहा जाता है. वचन योगकेभी इसी मुजब चार योग समझ लैना. कायाके सात योग सो उदारिक काययोग, वैंक्रिय काययोग, आहारक काययोग, उदारिकमिश्रकाययोग. वैक्रिय मिश्रकाययोग, और आहारकमिश्रकाययोग ये मिश्रकाययोग जिस वक्त उदारिकादि शरीर तैयार नहीं हुवे थे उन्के पेस्तर होता है. सातवा कार्मण काययोग एक भवमेंसें दूसरे भवमें जानेके वक्त रस्तेमै उदय होता है. उस बाद जीव आकर अपने पिताका वीर्य और माताका रुधिरका पहिला आहार ग्रहण करता है, उसके बाद जब तक शरीरकी शक्ति नहीं बांधी गइ हो तब तक उदारिक मिश्रयोग है. उसके पींछे उदारिक काययोग होता है. यह सातों योगोमेंसें जो जो योग प्रवर्त्ते उस मुजब कर्म बंधाते हैं. इस मुजब पांच मिथ्यात्व, बारह अव्रत, पचीश कषाय और पंद्रह योग—ये सब मिलकर ५७ हुवे सो कर्म बांधनेकेही हेतु हैं. उसमें जीतने जीतने प्रवर्त्तमान होवै उसमाफक जीवकर्म बांधता है. वास्ते यह सत्तावन हेतुमैसें जितने दूर हो सके उतनोंकों दूर करनेका उद्यम करना.जब सब हेतु व्यतीत हो जावेंगे तब तौ सिद्ध गतिंही प्राप्त होयगी.

प्रश्न ५४:—जैन दर्शनके भीतर कर्म बांधतेके साथ, उसका अटकायत किया जावै, और पुरातन—पूर्वके बांधे हुवे कर्म नाश किये जावैं उसके वास्ते क्या उपाय बतलाया गया है?

उत्तर:—चौदह गुणस्थानक कहे हैं, उसमैं क्रमसें गुण वृद्धि करकें अंतिम गुणस्थानक पाकर जीव मोक्ष सिद्धि प्राप्त करता है. वो गुणस्थानक इस मुजब हैं:—

पहिला मिथ्यात्व गुणस्थानकके भीतर जीव मात्र रहे हुवे हैं, उसके प्रभावसें विपरीत बुद्धि होती है. पर वस्तु याने पुद्‌गलिक पदार्थकों शरीर, धन, कुटुंबादिककों मेरा मानकर उसमें लुब्ध हो रहा है वहांतक संसार है.

दूसरा सास्वादन गुणस्थानक, सो जीव उपशम समकित पाकर पीछे हठते हैं और ज्हांतक मिथ्यात्वकी भेट नहीं भइ है, वहांतक उनके वीचका जो छ आवलिकाका उत्कृष्ट काल है उतने देर ठहरने वाला है. जैसें किसी मनुष्यनें क्षीर सक्करका भोजन किया होवे और पीछेसें वमन होता है तौभी उस वक्त उसकी मिष्टता मुखमें मालूम होती है, वैसें समकितसें पड जाता है, तौभी समकित संबंधीके कुछ अच्छे अध्यवसाय रहते हैं, उसका नाम सास्वादन गुणस्थानक है. यहांपर किसीकों शंका हो आवेगी कि पहिले दूसरे गुणस्थानकमें विशुद्ध अध्यवसायसें चढता है उनका स्वरूप चाहियें, यहां उसके वदलेमें न्यून भावका दूसरा स्थानक कहा यह क्या? उसके उत्तरमें यही समाधान है कि जो ज्ञानी महाराजने ज्ञानके भीतर वढते घटते अध्यवसायके स्थानक देखे, उसमें एक एकसें वढते हुवे अध्यवसाय देखे, मगर दूसरी पायरीके अध्यवसाय किसीके चढते हुवे देखनेमें आयेही नहीं याने पतित होतेही मालूम हुवे, उसीसे यहां पतित अध्यवसायका स्वरूप कहा. वढते हुवे तो पहिले गुणस्थानकके भावसें विशुद्ध भावरूप तीसरे गुणस्थानके भाव होते हुए नजर आये, उसीलिये पहिलेसें तीसरे गुणस्थानक जाता है.

तीसरा मिश्र गुणस्थानक है. यह गुणस्थानके प्रभावसें मिथ्यात्व भावका नाश होता है; मगर समकित योग्य नहीं होते हैं. वीचके अध्यवसाय होते है सो मिश्रभाव कहा जाता है. (इसका ज्यादा स्वरूप मिश्रमोहनीका दर्शाव पेस्तर दिखाया गया है उससें वाकेफगार होना.) जव मिश्रमोहनीका नाश होता है तव जीव समकित पाता है और चौथे गुणस्थानककी भी प्राप्ति होती है. यहां पर कोइ शंका करेगा कि– 'जिनकों धर्मकी अंदर रागभी नहीं है और द्वेषभी नहीं है, अैसी प्रकृतिवाले तीसरा गुणठाणा पाते हैं; तथापि ये गुणठाणेवालेकों तो मुक्तिकी नियमा कही है. तव जितने जैनी हैं उन्की तो सवकी मुक्तिकी नियमा हुइ?' इसके समाधानमें यही खुलासा है कि मुक्तिकी नियमा तो, मिथ्यात्व भाव ही–शरीर, धन, पुत्र उसपर मेरेपना वर्त्तता है सो भाव जव दूर हो जावे और अंतरंगमें शुद्ध भाव होवे तव होती है. फिर इस ग्रंथके १८ प्रश्नमें विशुद्ध मार्गानुसारीके गुण कहे हैं, वो गुण प्रकट होवे

है तब भवकी नियमा होती है. वो मार्गानुसारीके गुण प्रकट नहीं हुवे है और उस गुणके अभावसें अन्याय प्रवृत्तिमे तौ कुशल रहे है; तदपि जैन अैसा नाम धारण करते हैं, तौ उससें भवकी नियमा नहीं होती है; लेकिन श्रावक नाम धारण करकैं अन्यायकी प्रवृत्ति करै उससें जैनधर्मकी लघुता तौ होती है. तौ जिससें लघुता होती है याने जिन जैनोंके लिये लघुता होती है उनसें मुक्तिकी नियमा कैसें होवै ? यहां पर कोइ और भी शंका करेगा कि–' जैनकुलमैं उत्पन्न होना सो तो पुण्य प्रभावसें कहा है; तथापि मुक्तिकी नियमा न हुइ ये क्या ? ' इसके समाधानमैं यही कहेंगे कि जैनकुलमैं उत्पन्न होनेसें तो वडा फायदा है; क्यौं कि उद्यम करै तो यथार्थ आत्मज्ञान प्रकट करनेका साधन है और उद्यम करकें मिलावे तो आत्माकी अज्ञानता दूर हो जावै और मुक्ति पावे, या तौ मुक्तिकी नियमा भी होवै; परंतु वो जैनकुलमैं जिस मुजव परमात्माने धर्मप्रवर्त्तना करनेकी आज्ञा दी है उस मुजव न करै, जो अन्यायादिकका निषेध करनेका कहा है वो भी दूर न करै और नाम मात्रसें श्रावकपना धारण कर लेवै तौ उससें मुक्तिकी नियमा कैसे होवै ? ये तौ गत जन्मांतरोंमें पुण्य उपार्जन कियाथा वोभी निकमा गुमा दिया; वास्ते प्रभुकी आज्ञा मुजब चलनेसें गुण होगा और जिनके अंगमै मार्गानुसारीके गुण आये हैं वो तौ तीसरे गुणठाणेका स्पर्श करकें चौथा गुणठाणा पावेगा; क्यौं कि कितनेक जीव जिनाज्ञा पालन कर सकते नहीं, लेकिन धर्म सत्य है अैसा मनमैं जानते हैं और जैनधर्मपर राग है तौ यह भी परंपरासें करकें मुक्ति प्राप्त करनेका सबब है.

चौथा अविरति समकित गुणठाणा सो क्षायकभावसें पावे तौ अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, समकित मोहनी, मिश्रमोहनी और मिथ्यात्वमोहनी–ये सात प्रकृति, सत्ता, बंध, उदय–यह तीन प्रकारसें भी नाश हो जाती है उनकों क्षायक समकित होता है, और जिसकों क्षयोपशम समकित होवें उसकों तौ ये सातों प्रकृति सत्तासें रहती है; मगर बंधमैंसें दूर हो जाती है. उस विषयमें यही खुलासा है कि तीन मोहनी हैं, उसमें बंध तो मिथ्यात्वमोहनीका है, मिश्र, समकितमोहनीका बंध नहीं है–सबब यह कि यह तीन नाम मिथ्यात्वमोहनीके विभाग पडनेसें होते हैं. जैसेंकि चावलोंके उपर तूस हैं सो चावलोंका ढक्कन है; परंतु तूस दूर हो जावें तौ भी तूसका अंश रहता है, वो निकल जाते हैं तब उसका नाम कुशकी (भूसा) कहा

जाता है. और कुशकी निकल गये बाद भी चावलोकों पानीसें धोते हैं तब वह पानीका नाम चावलोंका धोवन कहा जाता है. अैसें नाम और स्वभावमै भी तफावत रहता है उसी मुजब मिथ्यात्वके पुद्‌गल हठ जाते है; तदापि कुशकीरूप पुद्‌गल रहते हैं उनका नाम मिश्रमोहनी कहा जाता है. फिर वो जाती है तौभी सहज अंश रहती है उसका नाम समकितमोहनी है. यह तीनु प्रकृति मिथ्यात्वकी हैं उसस मिथ्यात्वका बंध है, सो क्षयोपशम समकितवालेकों दूर होता है. अब उदयसें अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्वमोहनी और मिश्रमोहनीका नाश होता है, और समकितमोहनीका उदय रहता है तौभी ये समकितवालेकों मुक्तिकी नियमा है. एक वक्त समकितका स्पर्श करकें कदापि त्याग दिया होवै तथापि पुनः प्राप्त करेगा और अंतमैं मोक्ष सुख अनुभवेगा. फिर उपशमभावका उपशम समकित होता है, वो उपशमभावका चौथा गुणठाणा पाता है. वो उपशम समकितवालेकों सातों प्रकृति सत्तामै रही हैं; मगर उदय तथा बंधमैं नहीं है. ये चौथे गुणस्थानकवालेकों समकितके ६७ बोल प्राप्त होते हैं. [महोपाध्याय श्री यशविजयजीने समकितकी सज्झाय की है, उस्मै उन बोलोंकी सविस्तर हकीकत है, वो पढकर समझ लैना.] उनमैंसें पांच-लक्षण यहां कहते है:—

पहिला उपशम लक्षण सो—अपराधीके संग भी रोषभाव न रख्खे, किसी मनुष्यने चाहे वैसा अपराध किया हो और उसीका कोइभी काम उनके हाथमें आया हो तौभी उनका काम अपना अपराधि है अैसा जानकर न विगाडै.

दूसरा संवेग लक्षण सो—देव मनुष्य सुखके सुखकों सुख न जानै. संसारकों उपाधि जानै. आत्मा जितना कषाय प्रकृतिसें मुक्त होवै और आत्माका गुण प्रकट होवै उतना सुख माने तथा केवल मुक्तिकी अभिलाषा रहै सो संवेग लक्षण है.

निर्वेद सो—संसारमैं रहा है; मगर संसारमैंसें निकलनेका अतिशय चित्त हुवा है, संसार कैदखाने समान लगता है. कब ये संसार उपाधि जडभावकी छोडदुं ,और मेरे सहज स्वभावमे रहुं ! अैसी भावना रातदिन बनी रही हैं. कोइ कहेगा कि—'अैसे भाव है तथापि संसारमैं क्यों पड रहा है ?' इसके उत्तरमै यही है कि पूर्वके भोगकर्म तीव्र बांधे होवै उस बंधनके सबब जीव छोड सकता नहीं. छोड देवै तौभी निकाचित कर्म पीछे उदय आते हैं. कर्मकी गति विचित्र है: मगर वो विचित्र कर्म

दूर करनेका उपाय तत्त्वरमण है. वो ज्यौं ज्यौं विशुद्ध होवै त्यौं त्यौं जडता नाश होती है.

चौथा अनुकंपा लक्षण सो-दुःखी जीवका दुःख दूर करनेका शक्ति मुजब उद्यत्र करै. शक्ति है तौ दुःखीका दुःख दूर करनेमैं लापरवाह न रहै. यह द्रव्यानुकंपा कही जाती है. और भावअनुकंपा सो धर्म रहित जीवकों अपनी ज्ञानशक्तिसें धर्मोपदेश करकें धर्मका संस्कारी करें. यहां कोइ शंका करेगा कि-१२ प्रश्नमें तौ गुरुमुखसें अर्थ श्रवण करना कहा है, तब क्या श्रावकके मुखसेंभी धर्मका उपदेश श्रवण करना? इसके समाधानमें यह खुलासा है कि-श्रावककों भावदया लक्षण यही है कि धर्मका संस्कारी करवा; वास्तें मुनिमहाराजका योग न होवै तो वडील-वयोवृद्ध-तपोवृद्ध-ज्ञानवृद्ध श्रावक होवै सो धर्मका उपदेश सुनावे और दूसरे श्रावक श्राविकाए सुनैं. श्रावककों धर्म श्रवण करानेका अधिकार श्री भगवतिजीमैं, तथा धर्मरत्न प्रकरणमें है. और उपदेशमालामें तथा आवश्यककी चूर्णीमें भी कहा है. देखियें वंदिताके भीतर भी यह गाथा मौजूद है:—'पडिसिद्धाणं करणे। किच्चाण म करणे पडिक्कमणं ॥ असद्दहणे अतहा। विवरीय परूवणाअेय.' इस गाथाके अर्थमें अर्थदीपिकाके कर्त्ताने विस्तारसें वर्णन किया है. फिर श्री शांतिनाथजी महाराजके पूर्वभवोंमें पोषह लेकर शास्त्र सुनाया था अैसा अधिकार है. औरभी वहुत जगह पर यह वातकी प्रतीतिके पुरावे मौजूद हैं. वास्ते उचित है कि श्रावक अपनी शक्ति मुजब धर्मोपदेश करै और जीवकों हरएक रीतिसें धर्ममें जोडदेवै सो भावदयाका लक्षण है.

पांचवा आस्तिक्यता लक्षण सो-जिनराजने प्ररुपे हुवे आगमोंपर, पंचांगीपर आस्ता होवै और वोभी शंका रहित होवैं; क्यौं कि जो जिनेश्वर है सो राग द्वेष रहित है उस्सें उन्होंकों कम ज्यादा कहनेकी जरुरत नहीं अैसा निर्धार किया है. फिर जो आगम है सो न्याय युक्त हैं. आगमके वचनोंमें किसी जगहपर शंका उत्पन्न होवै वैसा हैही नहीं. जो जो वाते हैं सो सो न्यायसें सिद्ध हैं. पुनः जो जो वस्तु आगममें कही गइ हैं उन करते अधिक विवेचनादिके साथ दर्शाइ हुइ कहीं अन्यशास्त्रोंमें नजर नहीं आती है. आत्माकों रागद्वेषसें मुक्त करना सो जैनशासनमें कहा है. वोही वेदांत, न्याय, सांख्य, बौध-ये सव दर्शनवाले कहते हैं; मगर जैनसें अधिक मोक्षसाधन दूसरे दर्शनोंमें मालूम नहीं होता है. पुनः सूक्ष्म आत्मस्वरूपकी वातें जितनी जैनमें वतलाइ गइ हैं उतनी दूसरे कोइभी दर्शनमें मालुम नहीं होती है. फिर निजस्वरूपमें जोडनेवाले

व्यवहारिक साधन भी जैनमै बताये हैं, उन्सें अधिक साधन दूसरे दर्शनोंमें मालूम नहीं होते हैं. और जैनकें साधनोंसें जल्दी राग द्वेषकी प्रकृति शांत होती है. पुण्य पापके मानने वाले नास्तिक सिवा यवन भी हैं; मगर जैनसें ज्यादे मानने वाले कोइभी नहीं हैं. जैनमैं पुण्य पापके स्वरूप बहुतही अच्छी तरहसें दिखलाये गये हैं. और मोक्ष साधनके उपाय जो जो दिखलाये है, वै वै सब दूसरें दर्शनसें जैनने अधिक दिखलाये हैं. उससें चित्तमैं जैनदर्शन उपर अतिशय आस्ता हुइ है. फिर नास्तिकताका मत न्यारा पडता है. वो मत कुछ व्याजवी नहीं हैं. उस मतका कुछ स्वरूप बतलाना चाहता हुं; वास्ते रायपसेणी सूत्रमैं केशीगणधर महाराजनें परदेशी राजाकों समझाये हैं वो कथन नीचे मुजब सारांशरूप हैं:—

परदेशी राजानें प्रश्न किया कि–' आप कहेते हो कि–जीव और शरीर भिन्न है और जैसा करै वैसा भुक्ते, तौ मेरो बाप नास्तिक मतवाला था, बहुत हिंसा वगैरः करताथा, वो मर गया है, वो नरकमैं जाना चाहियें, और वैसाही हुवा होवै तो नरकके दुःख देखकर वो मुजे यहांपर आकर कहेता कि, मैंनै पाप किये हैं, उसीसें नरकके दुःख सहन करता हुं; वास्ते तुं भी पाप न कर, धर्म कर कि जिस्से दुःख न भुक्तने पडै. जो अैसा आकर कहे तौ मैं शरीर और जीवकों अलग अलग मान लुं.' यह सुनकर केशीमहाराजने कहा कि–' हे परदेशीराज ! तेरी सूर्यकांता नामक रानी है वो सब प्रकारके वस्त्राभूषण पहेनकर बैठी हो, उस वक्त कोइ तोफानी बदनिगाहवाला पुरुष उनकी साथ बदचलन चलावे और वो तुं देख लेवै तौ उसकुं घर जाने दै या जानसें मार डालै ?' परदेशीराजाने कहा–' उसकों तो शूलीपें चडा दुं, अनेक विटंबना करुं, उसकों घरपर कभी न जाने दुं.' तब केशीमहाराजनें कहा कि–' जैसें तुं उसका बिनाश करै और घरपर न जाने दे, वैसें नरकमेंसें परमाधामी भी आने क्यौं देवे ? और न आने देवै तौ किसतरहसें आने पावै ? वहांही दुःख सहन किया करै.' फिर परदेशी राजानें दूसरा प्रश्न किया कि–' मेरे बापकी माता बहुत धर्मीष्ट थी, वो हमेशां पौषध प्रतिक्रमण किये करती थी, दान देती थी वो तुमारे कथन मुजब देवलोकमैं जानी चाहियें, तो वो देवका सुख अनुभवती है तब यहां आकर मुजे क्यौं धर्म करनेका नही कहेती हैं कि मैं देवलोककी अंदर बहुत सुख भुक्तती हुं उस वास्ते तुं भी धर्म करनेसें वैसाही सुख प्राप्त करेगा, जो अैसा कहे तो मैं सच्चा मान लुं कि जीव भिन्न है. और शरीर भी भिन्न है.'

केशी महाराजनें कहा-' तुं स्नान मंजन कर सुंदर मूल्य वस्त्राभूषण पहेनकर पवित्र पूजाके उपकरण लेकर देव पूजनेके लिये चला जा रहा होवै उस वक्त कोइ मनुष्य कहे कि यह विष्टाके कमरेमें आओ, विश्राम ल्यो, खडे रहो, बैठो, सो जाओ, अैसा कहै तो तुं वहां जायगा ? '

परदेशीराजाने कहा—' जाना तौ दूर रहा; मगर उसका कथन मात्रभी न सुनुं. ' अैसा सुनकर केशी स्वामीने कहा-' इसी मुजब देवलोककी अंदर देवता पैदा होता है, वहां दिव्यसुख, दिव्यभोग-अतिशय सुंदर महा सुगंधमय है, उनमें लीन होता है, उसके साथ स्नेहग्रंथी बंधता है, और अत्रके सगेसंबंधीका स्नेह तूटता है; तथापि अत्र आनेका विचार करता है कि मैं दो घडी बाद जाउंगा: लेकिन वहां के आयुष लंबे होनेसें वहांकी दो घडी व्यतीत होनेमें अपने दो हजार वर्ष चले जाते इससें यहांके जो सगे होते हैं, उनका अल्प आयुष होनेके सबबसें कितने जन्म व्यतीत हो जाते हैं, कहो अब कैसें मिलाप होवै ? और यहां न आनेका दूसराभी सबब है कि-मानवक्षेत्रकी अंदर उदारिक शरीरके लियेसें निहारादिककी बदबु चारसो या पांचसो योजन तक उछलती है, वो बदबुके सबबसें सुगंधमय पदार्थोंमें निवास करनेवाले देव यहां नहीं आ सकते हैं, तौ तुझे किस तरह तेरे बापकी माता यहां आ कर कुछ हाल कह सकै ? यहां आनाही दुर्धर है. '

परदेशी राजाने प्रश्न किया कि-' मैंने एक दिन एक चोरकों लोहकी मजबूत छिद्र रहित कोठी में घुसेड रख्खा था, पवन जा सकै वैसाभी बारीक छिद्र नहीं था; तथापि कितनेक दिनोंके बाद वो कोठीकों खोलकर देखा तौ वो चोर मर गया मालूम हुवा. जब शरीरसें जीव अलग था तौ उनका जीव किस रस्तेसें बहार निकल कर चला गया ? शरीर और जीव एकही है, वास्ते भिन्न कहना झूंठा है. '

केशी गणधरने कहा—' सुन, एक बडे मकानमै भूमिगृह है उस भूमिगृहमें जाकर कोइ सख्स उनके सब बारी जाली वैगरः हवा आने जाने के मार्ग-छिद्र बंध कर पीछे ढोल बजावै तौ ढोल बजानेका आवाज बहार आ सकता है या नहीं ?'

परदेशी राजाने कहा—' बेशक आ सकता है ! ' केशी महाराजने कहा-' जैसे सब छिद्र बंध करदेने परभी ढोल बजानेका आवाज बहार आ सकता है, तैसेंही सब छिद्र बंध करनेपरभी जीव चला जा सकता है. '

परदेशी राजानें फिर प्रश्न किया—' मैनें एक चोरकों लोहेकी कोठीमें पूरकर सब छिद्र बंध कर दियेथे, उससें वो मर गया, मगर जब वो कोठीकों खोलकर देखा तो उनके कलेवर मैं कीडे पडे हुवे नजर आये, तौं वो कीडे किस तरह अंदर उत्पन्न हो सकै?'

केशी महाराजने कहा—' लोहेकों अग्निसें तपाकर लालचोळ बना देते हैं तब उसमैं अग्नि दाखिल होता है. कहिये, उसमैं छिद्र तौ नथे, तौभी क्यौं कर अग्नि दाखिल हो सका? जैसे लोहमै अग्नि दाखिल होते मालूम न हुवा वैसेंही अरुपी जीव कलेवरमैं दाखिल हुवे, मालूम न हो सका. '

परदेशी राजानें प्रश्न किया—' कोइ युवान, बुद्धिमान या निरोगी मनुष्य बाण छोडै उस मुजब रोगी, बाल्यावस्थावाला बाण छोड शकेगा? मतलब यह कि वो नहीं छोड सकेगा. तुमारे कहने मुजब जीव तो वै दोनुमै है; मगर शरीरकी न्यूनता होनेसें वैसा तफावत मालूम होता है; वास्ते शरीर है सोही जीव है.

केशी महाराजने कहा—' कोइ युवान पुरुष है और बलवानभी है; मगर उनके पास पुरानी कावड है, तौ वो कावडसें भार उठा सकैगा? अर्थात् नहीं उठा सकैगा; क्यौं कि कावड टूट जावै. उसी तरह जीवके साथ शरीरका संबंध है; मगर शरीर निर्बल है, बाल्यावस्थावंत है, तौ उससें बाण छोडना क्यौं हो सकै? मतलबमैं नहीं छोड सकै. '

परदेशी राजानें फिर प्रश्न किया—' एक चोरकों मैनें जीते हुवे तोल लिया और उस पीछे शस्त्र विना उसका जान निकाल दे फिर तोल किया तौं वजनमें कुछभी तफावत मालूम न हुवा. वास्ते जीव जूदा होता तो तोल कम ज्यादा होता; मगर अैसा न हुवा तौ जीव शरीरसें जूदा है अैसा संभव नहीं होता है. '

केशी महाराजने कहा—' चमडेकी धमन खाली होवै उस वक्त उसका तोल कर लेवै और फिर उसमैं पवन भरकर तौल करै तौभी तोलमै बिलकुल तफावत नहीं होता है. उसी मुजब जीव है उसमैं वजन नहीं होता है; क्यौं कि अरुपी है, वास्ते कम ज्यादा तोल हुवा मालूम नहीं हो सकता है.

परदेशी राजाने कहा—' मैनै एक पुरुषके शरीरमें सब जगह जीवकों देखा; मगर कहीं मालूम न हुवा, तौ पीछे उसके टुकडे कीये और फिर जीवकों देखा तौ

भी मालूम न हुवा, तौ फिर बहुत बारीक टुकडे करके देख लिया मगर जीवका पता न मिला; वास्ते जीव जूदा नहीं है.'

केशीमहाराजने कहा—' कोइ पुरुषमंडली जंगलमैं गइ और रसोइ बनानेके लिये वहां अग्नि पैदा करनेके वास्ते लकडेके बहुतसे टुकडे करके देखा; मगर अग्नि देखनेमै न आया, तब सब उदास हो बैठे. उनमैसें एक बुद्धिशालीने कहा कि तुम सब न्हा धोकर देवपूजन करना शुरु करो, मैं अग्नि उत्पन्न करकें रसोइ तैयार कर लुंगा.' पीछे उन बुद्धिमानने जंगलकी अंदरसें अरणीका लकडा ढुंढ निकाला और उनके दो टुकडे करकें एक दूसरेके साथ घिसना शुरु किया तौ फौरन अग्नि पैदा हुवा और उससें रसोइ पकाकर सबकों भोजन कराया. उसी मुजब शरीरके टुकडे करनेसें जीव नजर नहीं आता है, जैसें बुद्धिमानने बुद्धिबलसें अग्नि पैदा किया; लेकिन लकडेके टुकडे करनेसें अवलमैं अग्नि पैदा न हुवा और न नजर आया, उसी मुजब शरीरके टुकडे करनेसे जीवं नजर नही आता है; लेकिन ज्ञानवंत पुरुष ज्ञानबलसें जीवकों देख सकता है.'

परदेशी राजाने प्रश्न किया—' यह दृष्टांत बतलाये, मगर जब प्रत्यक्षपनेसें जीवकों हाथोंमें पकडकर बतलाया जावै तब मैं सच्चा मानुं ?'

केशी महाराजने कहा—' यह दरखतके पत्ते किस सबबसें हिलते हैं ? कोइ देव हिलाता है ?'

परदेशी राजानें कहा—' पवनसें हिलते है.'

तब केशी महाराजनें कहा—' पवनकों तुं देख सकता है ?'

परदेशी राजानें कहा—' मैं नहीं देख सकता हुं.'

तब केशी गुरुने कहा—' पवन देखनेमैं नहीं आता है तौ भी पवनही हिलाता है ऐसा ज्यौं मान लेता है त्यौंही जीव नजर नहीं आता; मगर लक्षणसें मालूम होता है और केवलज्ञानी महाराज प्रत्यक्ष देख सकते हैं–दूसरे नहीं देख सकते हैं.'

इस तरह युक्तिवाले प्रश्नोत्तर होनेसें परदेशी राजाने नास्तिक मत छोडकर जीव अजीवादि नौ तत्त्वकी श्रद्धा करकें श्रावकके व्रत अंगिकार किये.

इस मुजब बहुत तरहसें नास्तिकवाद शास्त्रमैं निराकरण किया हुवा नजर आता

है, उससें प्रभुमार्ग और आगमपर पूर्ण श्रद्धा-आस्ता हुइ है. स्वप्नमें भी संशय नहीं होता वही आस्तिक्यता लक्षण ध्यानमें लेना.

यह पांचों लक्षण सम्यक्त्व दृष्टिवालेकों होते हैं. उनकों शोचना और जो न होवे तो इन्होंकों प्रकट करनेके लिये योग्य उद्यम करना. मुख्य उद्यम यह है कि-हरएक धर्मकी वातें सुनकर आत्मामें विचार करना कि मेरेमें यह गुण नहीं है वास्ते प्रकट करनेका उद्यम करुं. परंतु सम्यक् दृष्टिकी धर्म सुनकर दूसरेकी तर्फ नजर न जावे कि अमुक निर्गुणि है. वो तो जिन जिन पुरुषमें गुण होवे वो ग्रहण करे. अन्य दर्शनकी भी अच्छी रीतभात होवे तो उसकी निंदा न करे. उसपर महोपाध्यायजीने कहा है कि-' दर्शन सकलके नय ग्रहे. ' याने जो जो दर्शनवाले जो जो नयसें धर्म करते होवे वो वो नय विचारसें जान लेते हैं और आप अपने सातों नयके विचारमें रहते हैं. फिर जैनदर्शनमें भी पंचमकालके प्रभावसें कदापि क्रिया फेरफार मालूम होवे; तो भी मध्यस्थ दृष्टि रखनी. लेकिन एकांत खींचातानमें नही पडना. योग्य जीव होवे और कदापि क्रिया उनके गच्छाचार मुजब करते हो अथवा दूसरे आप अपने गच्छकी रीति मुजब करते होय उसकी निंदा न करते हो तो अपन भी उनके साथ मध्यस्थ रहना; मगर खींचातान करनी नहीं. खींचातानसें बहुत विकल्पमें पडनेका होता है. और धर्म है सो निर्विकल्प दशाहीमे है; वास्ते जो जो काम करना उन उनमें निर्विकल्प दशा होवे वैसी क्रिया करनी. सोवत करनी उनमें भी स्वगच्छी होवे और उनकी सोवत करनेसें विकल्प होता होवे, और परगच्छी होवे मगर उसकी सोवतसें निर्विकल्पदशा होती होवे तो उनकी सोवत करनी दुरस्त है. हरेक रीतसें राग द्वेषकी प्रकृति कम होवे वैसाही करना. वाद विवाद करनेसें स्हामनेवालेकों गुण होवे अथवा जैनशासनका जय हो अैसा होवे तो करना; लेकिन नाहक कंठशोष होवे वैसा वाद करना वो वेमुनासिव है. हरिभद्रसूरीजीने अष्टकजीमें अैसे वादका निषेध किया है; वास्ते जिसमें दूसरेकों या अपने आत्माकों गुण प्राप्त हो वैसा होवे तो वाद चर्चा या धर्मकथा करनी. और ये गुणठाणेवाले युंही करे. आत्मधर्मका लाभ होवे उसीमेंही काल निर्गमन करे. संसारमे रहा है; मगर सांसारिक सुखकों वेठ (विगर पैसे और विन मरजीकी मजदूरी.) रुप जानता है; लेकिन उसमे प्रसन्न नहीं होता है. जो जो संसारि काम करता है उसमें शोचता है

कि यह कृत्य मेरे करने लायक नहीं है; मगर गत जन्ममै कर्म बांधे हुवे है उसीसें मैं इसीमैं बंधा हुवा हुं, इस उपाधीसैं नहीं निकला जाता है; लेकिन जब रागद्वेषकी प्रकृतिसें मुक्त होकर यह संसारकी जालमैसें निकलुंगा और मेरे देखने समझनेके स्वभावमैं चलुंगा वही मेरा कार्य है. अवी भी जो जो शुभ अशुभ कर्मके उदय होवै उसमै मेरें लीन होना वो मेरा स्वभाव नहीं है. मै जहां तक संसारमै रहा हुं वहांतक मुझे मेरे स्वभावमें रहकर उदय आइ हुइ क्रिया करनी है. सहजहीमै समकितके प्रभावसेंही आप लीन नहीं होते हैं, पुद्गलका तमाशा देखते है और आप अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्रमैही मग्न हो रहे हैं. ये गुणमैही आनंद मानते हैं. संसारी-आनंद तो अस्थिर है; वास्ते वो आनंदकी तो स्वप्नमैभी इच्छा नहीं करते हैं अैसा समकितका प्रभाव है. यहांपर कोइ शंका करेगा कि-श्रेणिकराजा क्षायक समकितीथे; तथापि उन्होने कुछभी व्रत क्यौं न किया? संसारसें अैसी उदासीनता होनेपरभी क्यौं व्रत न ग्रहण किये? इसके समाधानमैं यही कहेंगे कि-श्रेणिकराजाने समकितकी प्राप्तिके पेस्तर नरकका आयु बांध लियाथा उसीसें नरकमें जानेवालेथे वैसी सवबसें त्यागभाव नहीं हुवा. मगर उन्होंके दिलमै तो त्यागभाव वना हुवाही रहाथा और विरती तो पांचवे गुणठाणेसें होती है; वास्ते कुछभी व्रत नहीं करनेसें समकितमें दूषण नहीं; लेकिन सब जीवकों अैसा नहीं होता है. क्यौं कि मार्गानुसारीपना आता है वहांसेही विरतिके भाव हो आते है. योग दृष्टिका स्वरूप कहा है, वहां पांचवी दृष्टि पाता है तब समकित पाता है और पहिलेसें चौंथी दृष्टि तक मार्गानुसारीपना कहा है. उसमै पहिली दृष्टिमैही व्रत प्राप्त होवे अैसा कहा है; वास्ते बहुतसे जीवकों तो यथाशक्ति विरतीके भाव होतेही है. किसी जीवकों अंतरायका उदय होवै तो व्रतकी अंदर वीर्य स्फुरा न सकै ओर जिसकों वीर्यांतरायका क्षयोपशम हुवा है वै तो वीर्य स्फुरा या करै-जो जो पर वस्तुका त्याग बन सके उतना करै और श्रावकके गुणठाणरूप व्रत तो पांचवे गुणठाणमैं करै.

पांचवा देशविरती गुणस्थानक जब प्रकट होवै तब अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभका नाश होता है. उन्हीके साथ दूसरी प्रकृतिये भी उदय बंधसें नाश होती है, वो कर्मग्रंथ देखनेसें मालूम होगा. इस गुणस्थानपर देशसें अव्रतका नाश होता है, उसीसें समकित गुणस्थान करते भी विशेष करकें परभावकी इच्छा दूर हो जाती है. संसारसें भी ज्यादे उदास होते हैं. खान-पान-वस्त्र-धन-धान्यकी इच्छा

कम हो जाती है. मनमैं तौ संयमके भाव वर्त्तते है; मगर पूर्वकर्मके जोरसें प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभका उदय रहा है उससें संयम नहीं ले सकता है; लेकिन हृदयमेंसें संयमकी भावना नावूद नहीं हुइ. संसारी काम करता है सो वेठरूप करता है और विरतीमैं भी आनंदादिक श्रावकने वहुतही सख्ताइ की है, वो वात उपासकदशा सूत्र देखोगे तो मालूम होवैगा. अव श्रावक किस मुजव विरति पाले? उसका वयान करते हैं. पहिले स्थूल प्राणातिपात व्रत लेवै; क्यौं कि जो गृहस्थावासकी अंदर आरंभादिक कार्य किये विगर निर्वाह नहीं हो सकता है, उससें सर्वथा या समस्त प्रकारसें दया पालनी वो नहीं वन सकता है. वहां श्रावककों सवा वसेकी दया मुनिकी अपेक्षासें कही है. संपूर्ण दया पालनी सो वीस वसेकी दया है, वो त्रस-हिलते चलते जीव, स्थावर-पृथ्वि, अप, तेउ, वाउ, वनस्पति-ये त्रस और स्थावर दो प्रकारके जीव हैं उन सवकी दया पाले तव २० वसेकी दया पलती है; परंतु स्थावर तौ खाने पीनेके काममैं आते हैं उसीसे उन्होंकी दया नही पल सकती है, वास्ते दस वसे चले गये. पीछे दस वसे त्रसकी दयाके रहै उसकी अंदरसें भी अग्नि वगैरः के आरंभादि करनेसें त्रस जीवका नाश होता है उससें वो भी न पल सकै, वास्ते उनमैंसें भी पांच वसे चले गये. उस वाद भी आरंभके काम सिवा कोइ राजा प्रमुख है उनका गुन्हा किया है तौ अपराधीकी दया भी संसारमें रहेसें नही पल सकती है वास्ते पांचमैंसें ढाइ चले जाते हैं, तव वाकीमें ढाइ रहै. उसमें भी सापेक्ष हिंसाका त्याग नहीं होता है, जैसैं कि शरीरमें जीव पडे है किंवा अपने स्वजन सज्जनादिकके शरीरमें जीव पडे हैं, अव वो जीवकों दूर करनेके लिये उद्यम करनाही पडता है. तव वो जीवोंका नाश हो जाता है, उससें वो दयाभी नहीं पली जाती हैं, तौ ढाइ मैसे सवा गया तौ सवा वाकीमें रहा याने अनारंभ अपराधसैं निरपेक्ष त्रस जीव मारनेका त्याग करता हे. उस मुजव पहिला व्रत धारण करै.

दूसरा मृषावाद व्रत वो किसी उत्तम पुरुषसें सर्वथा मृषावादका त्याग होवै तौ वैसा करै और वैसा न वन सकै तो पांच वडे झूंठ कहे है उनका त्याग कर देवै. याने कन्यालीक-कन्याका विवाह जोडनेमैं झूंठ न वोलना; क्यौं कि जो उलटा सूधा समुझाकरके संयोग जोड देवै उससें उनकों जन्मभर दुःख सहन करना पडै; वास्ते उस काममें झूंट वोलनेका त्याग करना. गोवालीक याने गाय-भैंश-वहेलके काममें

झूंठ बोल अर्थात् किसी बहेलकी पांच कोश जानेकी ताकत है और दश कोश जा सकता है ऐसी प्रतीति देवै, उससें बिचारेकों वो खरीदनेवाला पांच कोशके बदलेमें दस कोश चलाता है जिस्सें जानवरकों बडा दुःख होता है; वास्ते ऐसे संबंधमें झूंठ नहीं बोलना. भोमालीक याने जमीनके काममें झूंठ बोलनेका त्याग करना-मतलबमें जो दो तसू जमीनके बदलेमें ऐसी लडाइ होती है कि जिसके लिये हजारों रुपये कचहरी चडनेमें बरबाद किये जाते है; वास्ते उस संबंधमें बडा विकल्प होता है. ऐसा समुझकर मृषा बोलना नहीं. थापणमोसा अर्थात् किसीने विश्वाससें अपने वहां कुच्छ चीज रखी होवै और जब मालधनी मंगनेकों आवै उस वक्त उस चीजका इन्कार करना कि 'तूने मेरे वहां कब चीज रख्खीथी ? क्या गले पडता है ? वाह !' ऐसा जवाब देना उसकों थापणमोसा कहा जाता है. उस बिचारेकों वो रकम न मिलनेसें आजीवीकाका भंग होता है और उसी सबबसें बडाभारी दुःख होता है; वास्ते ऐसी बातमें झूंठ नहीं बोलना. झूंठी गवाह याने खोटी साक्षी पूरें, उनसें राजा दंड देवै, लोग गाली देवै और अपकीर्ति होवै, वास्ते ऐसे काममें झूंठ नहीं बोलना. ऐसी वातोंसें यह लोकमें धर्मिष्ट मनुष्यकी बहुत लघुता होती है और आते भवमें महान् दुःख भुक्तने पडते हैं. इस मुजब दूसरा व्रत अंगिकार करै.

अदत्तादान याने पराइ वस्तु किंचित्भी न लेनी, वोभी सर्वथा पालना चाहियें; लेकिन सर्वथा न पल सकै तो रस्तेमें किसीकों लुंट लैना किसीकी घर फोडकर चोरी करना, दूसरी कुंजी—चावी लगार माल निकाल लेना या किसेके खीसेकी-जेबकी अंदरसें कुछ निकाल लैना ऐसी चोरी अगर सरकारी दाणचोरी वगैरः का त्याग करना.

मैथुनव्रत अर्थात् स्त्रीसंभोग या पुरुषसंभोगका सर्वथा त्याग बन सकै तो करना और न बन सकै तो अपनी स्त्रीसें संतोष रखना और दूसरी स्त्रीओंके साथ विषय सेवनका त्याग करना.

परिग्रहव्रत अथात् जितना धन धान्य घर दुकान आभूषण स्त्री वगैरः होवै उतनेमैही संतोष रख्खै, और उनसें ज्यादा प्राप्त करनेका त्याग करै. या आपकों जितनी इच्छा होवै उतनी छूट रखकर उनसें ज्यादा न रखनेका नियम कर लेवै. ऐसा करनेसें तृष्णा शान्त होती है. तृष्णा शान्त होवै तो बुरे काम करनेकी जरूरत

नहीं रहती है और धर्मसाधन करनेकाभी वक्त ज्यादा मिलता है; उस्सें आणंदजी वगैरः श्रावकने आपके पास जो धन-द्रव्य था उतनेसेंही संतोष किया था.

दिग्विरमणव्रत अर्थात् चारों दिशाओंमे तथा उर्द्ध, अधो-नीचे ऊपर जानेकी मर्यादा कर लेवै कि इतने योजन तक जाना. येभी कब होता है कि अतिशय धन मिलानेकी, विविध पदार्थ देखनेकी, अनुभव करनेकी तृष्णा कम होती है तब बन सकता है. फिर जितना योजन जानेका नियम किया है उस हदसें बहार जाकर हिंसा करनी, झूंठ बोलना, चोरी करनी, मैथुन सेवना, व्यौपार करना, ये सब काम करनेका सर्वथा बंध हो जाता है, उस्सें यह व्रत बहुत लाभकारक है.

भोगोपभोग व्रत अर्थात् एक बेर भोगवै सो भोग-खान पानकी चीज, और बेरबेर भोगवैं सो उपभोग याने दागीने वस्त्र स्त्री वगैरः वस्तु जगतकी अंदर हैं उन सबकी कुछ हमेशां जरुरत नहीं पडती है; क्यौं कि जितनी वस्तुओंसें निर्वाह करना चाहें उतनी वस्तुओंसें हो सकता है. क्यौं कि उनका चित्ततो आत्मभावीसें हुवा है. फक्त संसारमें कारणसर रहा है; लेकिन उनमै लीनता नहीं है. वास्ते अपने खाने पीने पहेननें ओढनेकी जितनी जरुरतकी चीजे होवै उतनीही रखकर बाकीकी चीजोंका त्याग कर देवै. वो चौदह नियममे आता है उनकी मर्यादा कर लेवै. पुनः व्यौपार करनेमैभी बहुत सावद्य व्यौपार जो पंद्रह कर्मादान याने बहुत पाप करना पडै उससें कर्मका आगमन होवै सो कर्मादान कहा जाता है. उन कर्मादानोंका बन सकै तो सर्वथा त्याग करना और न बन सकै तो निर्वाहके योग करैः मगर उनके सिवा न करैं. वो पंदरह कर्मादान इस मुजब हैः—

इंगाली कर्म—अग्निके आरंभसें जो व्यौपार होवै सो-कुम्हारका निमाह, चूनेकी भट्टीयें, हलवाइ, लुहार, रंगारे, अग्निसें चलनेवाले सांचेसें काम करनेवाले, तथा कोलसे बनाके बेचनेवाले और दूसरे ऐसेंही व्यौपार करनेवाले होवे वसा व्यापार बंध कर देवै.

वन कर्मः—वृक्ष कटानेका धंदा, उसमें खेतीका काम, बाग बगीचे बनानेका कामका समावेश हो जाता है.

साडी कर्मः—गाडे रथ वगीये बनाकर वेचनेका धंदा-रोजगार करै.

भाडी कर्मः—गाडे, ऊंट, मकान वगैरः बनाकर भाडा पेदा करनेका व्यौपार करै.

फोडी कर्मः—जमीनें फोडनेका काम–उसमैं त्रस जीवोंका नाश होता है.

दांतका व्यौपार–न करै; क्यौं कि हाथियोंके दांत निकलवानेमैं हाथीकों वडा दुःख होता है. पुनः वो दांतोकों काटकर उनके टुकडे वनानेके वास्ते पानीमें डालने पडते हैं उसमेंभी वहुत जीवोंकी हिंसा होती हैं.

लाखका व्यौपारः—उसमें वहुतसे जीवोंकी उत्पत्ति होती है वास्ते त्यागने योग्य है.

रसः—घी तेल गुड सक्कर निमक वगैरः नरम पदार्थके व्यौपारमें भी जीवहिंसा होती है.

केश व्यापारः—ऊंन वेचनेका और मनुष्य वेचनेका व्यौपार नहीं करना.

विष व्यौपारः—अफीम, वछनाग संमल वगैरः झेरी चीजोका तथा शस्त्र–तलवार भाला छुरी कटार आदि हैं जिनसें दूसरे जीवका प्राण नाश होवै वो व्यौपार नहीं करना.

यंत्र व्यौपारः—चक्की वगैरः यंत्र रखकर उससें काम कर देवै.

पीलन कर्मः—घाणी–तल एरंडी गंडे पीलनेकी किंवा कपास पीलनेका चरखा, रू वगैरः की गठडीयें वांधनेके सकंजे आदि कि जिस्सें वहुतसें जीवोंका नाश होता है उसका त्याग करना.

निर्लंछन कर्मः—लडका लडकीके कान नाकमैं छंद करावै, बहेलके वृषण कटावै, जानवरोंकों डाम देवै उसकों निर्लंछन कर्म कहा जाता है उसका त्याग करै, क्यौं कि इस्सें जीवोंकों वडा दुःख होता है.

अग्नि मारफत लाह्य लगाना—दव लगाना, खेतरोंकों और जंगलोंकों जला देना उसमैभी वहुतसें जीवका सत्यानाश निकल जाता है; वास्ते त्याग देना.

सर याने सरोवर तालाव कुंवे टांकेके भीतरसें पानी निकालकर खाली करनेका धंदा नहीं करना; क्यौं कि उससें पानीके जीवोंका निकंदन हो जाता है; वास्ते ये भी त्यागने योग्य है. मतलवमैं ऊपर कहे गये पंद्रह कर्मादानोंका त्याग कर देवै.

यह व्रतवाला बाइस अभक्षकाभी त्याग कर देवै. वे बाइस अभक्ष कौनसे है?

पीपलके फल, पीपलीके फल, गूलरके फल, वडके फल, कुठुंवरके फल, मांस, मदिरा, मस्का, सहत, रात्रिभोजन, विदल याने मुंग उडद मठ चिने वगैरः के साथ छांश दुध दहीं खाना, शायद गरम किया जावै तौभी जोश आये वाद काममैं लैना, तौ अभक्षका वाद नहीं लगता है. गरम न किये हुवे दही वगैरः के साथ मुंग उडद

चिने आदिका संयोग होता है उससें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होती है; वास्ते उसका त्याग करना. सब जातिकी मिट्टी, सचित्त निमक, हिमालयमें जम जाता हुवा पानी-वरफ, ऑले, जहर, बैगन कि जिसकी टोपीमे त्रसजीव रहते हैं, उसका नाश होनेके सबबसें उनका त्याग करनाही दुरस्त है, बहुबीज याने जिस फलके अंदर एक दूसरे बीजके बीच अंतर नहीं हैं वैसे फल, (अनारमैं बहुतसे दाने होते है मगर एक एकसें-अलग बीज रहते हैं-बीच परदह होता है. वास्ते वैसे फल बहुबीज नहीं गीने जाते हैं.) तुच्छ फल-बेर वगैरः कि जिसमै खानेका भाग कम और फैंक देनेका भाग ज्यादा होवै वैसे फल, धूप दिखाये विगरका आचार, गत दिनकी बनाइ हुइ रसोइ, अनजाने फल, अनंतकाय (जो चीज भांगनेसें समान दो टुकडे हो जावै वैसी वस्तु.). या कंदमूल-ये बाइस अभक्ष याने न खाने लायक चीजें हैं-उसका श्रावक अवश्य त्याग कर देवै. इस मुजब भोगोपभोग व्रतकी मर्यादा करै; सबब कि जो पुद्गल भावकी वांछना नहीं है; लेकिन आत्मभावकीही वांछना है, उससें जो निभ सकै उनके सिवाकी चीजोंका त्याग कर देवै. निर्वाहकी चीजोंका त्याग न करै, तौभी मतलब जितनीही छूट रख्खे.

अनर्थ दंड अर्थात् आपके वास्ते अथवा स्वजन कुटुंबके वास्ते जो करना सो अर्थ; मगर उस सिवा करना सो अनर्थदंड गिना जाता है.

अपध्यान सो आर्त्तरौद्र ध्यान करना. आर्त्तध्यान उसै कहते है कि-इष्ट वस्तुकें संयैागका चिंतवन करना, वा कानिष्ट वस्तुके वियोगका चिंतवन करना, अग्रशोच-याने भविष्यका चिंतवन करना, ओर रोगके वियोगका चिंतवन करना अथात् ' अैसे रोग दूर रहो-मत आओ ' अैसा शोचना रौद्रध्यान उसै कहते है कि-दुष्ट संकल्प करना. उसके चार प्रकार हैं अर्थात् हिंसानुबंधी-हिंसा करनेका चिंतवन करना, मृषानुबंधी-झूंठ बोलनेका चिंतवन करना, चौर्यानुबंधी-चोरी करनेका चिंतवन करना, परिग्रह रक्षणानुबंधी-परिग्रहके रक्षणका चिंतवन करना ये चार प्रकारका रौद्रध्यान है. ये रौद्र और प्रथम कहा गया सो आर्त्त यह दोनुं छोड देनै ही लायक हैं.

हिंसाप्रदान अर्थात् हिंसाके उपकरण तैयार कर रख्खे और मांगे उसकों देवै.

पापोपदेश याने पाप होवै वैसा विना प्रयोजनसें उपदेश देवै; जैसें कि-किसकों कहै-तुं मकान क्यों नहीं बनवाता है ? क्यों मकानकों नहीं रंगवाता है ? चूल्हा क्यों

नहीं सुलगाता है? कपडे क्यौं नहीं धुलाता है? इस तरह अपने स्वजन कुटुंबके मनुष्य सिवा दूसरे मनुष्याकों कहा करै कि जिस्सें जीवहिंसा, झुंठ, चोरी वगैरः काम करैः वास्ते अैसा कहना छोड देवै.

प्रमादा चरित—अर्थात् दिनकों सो जाना. दस शेर पानीसें स्नान किया जावैं वैसा होवै तौभी ज्यादा पानी ढोला करै. फुरसद है तौभी ज्ञानाभ्यासमैं आलस रख्खै. राजकथा-राजाओंके संबंधी कथा करै, देशकथा-देशावरोंकी कथा करै, स्त्री कथा-स्त्रीये संबंधी वातें करै, भक्त कथा-भोजन संबंधी वातें कहा करै, मगर अैसी कथाओमें अच्छि बुरी विचारणा दर्शानेसें किसी वक्त बहुत नुकशान होता है, जैसे कि राजा वगैरः कि बात करता होवे और वो बात राजाके कानपर जा पहुंचे तौ राजा दंड देवैः वास्ते श्रावक अैसी विकथायें न करैः क्यौं कि जो आत्माभावी है, अपने आत्मभावमैंही रहता है, मात्र निरूपायसें संसारमै रहा है उसकों वैसी वार्तोसें क्यां मुतलब है? यदि फुरसद मिल जाय तौ अपना आत्मध्यान करैं, वा शास्त्राभ्यास करै कि जिस्सें कल्यान होवे.

सामायिक व्रत—दो घडीका है, उसमै समता युक्त रहै, शास्त्राभ्यास करै, वा दो वक्त प्रतिक्रमण करै, और, उस व्रतमें जो जो पाप लगा होवे वो आलोये करै.

देशावगाशिक व्रत—अर्थात् चारों दिशाओंकी मर्यादा छठे व्रतमें की है, उसमैसें संकोच करै. बारव्रतकाभी संकोच करै. चौद नियमकाभी संकोच करै. ये संकोच करनेसें दिशावगासिक व्रत अलग करता है वो दो घडीसें लगा कर चार घडी, पहेर, दिवस, महीने तकका करै उस्सें बाह्यका आरंभादिकका त्याग हो जाता है.

पोषध व्रत—अर्थात् पोसह उपवास व्रत हमेशां न बन सकै तो ठीक, नहीं तौ पर्वके दिन अवश्य करै कि जिस्से अहोरात्री संयम जैसी प्रवृति होवै, आत्मा समभावमे रहै, रात्रिमै भूमिसंथारासें सो रहेवै-इत्यादि करणोसें शायद संयम लेनेकाभी भाव हो आवे तौ अैसी आदतसें सुगमता प्राप्त होवै. पुनः अैसी करणीसें यहभी परीक्षा हो जाती है कि मेरेसें संयम पल सकता है या नहीं? वास्ते महीनमै दो अष्टमी, दो चतुर्दशि तथा पूर्णिमा अमावास्या किंवा दो अष्ठमी दो चतुर्दशि और पंचमी इन पांच पर्वोंके रोज अवश्य चार या अष्टपेहरका पोषध करै, और वोभी अहार पौषध सर्वथा करे तौ असणं-पकाइ हुइ वस्तु, पाणं-पाणी, सांइमं-मिठाइ मेवा,

साइमं–तांबूल या औषध गुटिका चूर्ण वगैरः चारों आहारका त्याग करै. किंवा देशसें पौषध करै तौ फासुक पानी सिवा तीन आहारका त्याग करै, या आंविल, नीवी, एकासन करै. खरतर गच्छवाले आहारका पौषध सर्वथाही करना चाहियें अैसा कहते हैं; मगर तत्त्वार्थकी टीकामै तथा श्रावक पन्नति सूत्रमै सामायिक संयुक्त देशसें आहार पौषध करनेका कहा है. तथा पंचाशकजीमे पत्र ९, १० की अंदर आहार पौषधसें कहा है. दूसरा शरीरसत्कार पौषध तौ सर्वथाही करना, याने आभूषणे जेवर वगैरः की शोभा कुछभी न करतें मुनिके समान वन जावै. श्रावकपन्नतिमै तथा तत्त्वार्थ वगैरः वहुतसे ग्रंथोंमै आभूषणका त्याग करकें पौषध करना कहा है. यहांपर कोइ शंका करेगा कि क्या सौभाग्यवंती स्त्री अपने हाथकी चूडी वंगडी कडे वगैरः सोनेकी चीजे उतारकर पौषध करै ? इसके समाधानमै यही वचन है कि सौभाग्यवती स्त्री अपने सौभाग्यके चिन्हरूप जो जेवर होवै उसका कभी त्याग न करै–सौभाग्यचिन्हरूप दागीने या चूडी वंगडी तौ वैधव्यदशा होवै तबही उतर सकती है वास्ते अैसी चीजे उतारनेकी जरुरतही नहीं है; लेकिन सौभाग्यचिन्हरूप दागीनेसें ज्यादे दागीने पहेनकर पौषध करनेकी मर्यादा नहीं है. परंतु पुरुष तौ सर्वथा आभूषण त्यागके पौषध करै. कितनेक धनाढय गृहस्थ सामायिक लेनेके लिये गुरुजीके पास जाय तव वडे आडंवरसें जाय; मगर गुरुके पास जाकर सामायिक लेवै तव सव आभूषण उतारकर अपने खीजमतदारकों दे देवै और सामायिक पूर्ण हुवे बाद धारण कर लेवै–इस मुजब शरीरसत्कार पौषध करै. ब्रह्मचर्य पौषधमै सर्वथा मैथुनका त्याग करना अर्थात् मनुष्य देव तिर्यचादि जातिकी स्त्रीका स्पर्श मात्रभी न करै. अव्यवहार पौषध अर्थात् सर्वथा प्रकारसें सावद्य प्रवृत्तिका त्याग करै याने हिंसा–झूठ–चोरी–मैथुन–परिग्रह ये पांचों संवंधोकी प्रवृत्ती सर्वथा प्रकारसें वंध करै. हास्यादिककाभी त्याग करै. कुछभी पाप न लगै उस मुजव चारों प्रकारका त्याग करकें पौषध करै. और उसमै दो वक्त वस्त्रकी पडिलेहणा करै, त्रिकाळ अष्टस्तुतियोंसें देववंदन करै, वाकीका वक्त स्वाध्याय ध्यानमें, काउस्सग्गं ध्यानमें या धर्मध्यानमै गुजारै. किंचित्भी प्रमाद विकथामें काल न गुजारै और हरप्रकारसें रागद्वेषकी प्रवृत्ती कम होवै वैसीही भावना भावै. संसारी भावनाका त्याग करै. यहांपर कोइ शंका करेगा कि भावना किस मुजव भावै ? तौ उसका खुलासा अैसा है कि:—

श्रावक चार भावनासें युक्त बना रहै अर्थात् मैत्रिभावना, प्रमोदभावना, मध्यस्थभावना और करुणाभावना इन चारोंमें सदैव लीन रहै. मैत्रिभावना उसें कहेते हैं कि एकेंद्रिसें लगा कर पंचेंद्रि तकके सब जीवोंके ऊपर मित्र बुद्धि रख्खे; क्यौं कि सत्तामैं सब जीव समान हैं; परंतु कर्मके वश या सबबसें अलग अलग जातिके होते हैं, वास्ते किसी जीवके ऊपर द्वेषभाव नहीं है. सब जीव सुखके अभिलाषि हैं, उससें तमाम जीवोंकों सुखी करनेकी भावना–विचारणा अहोरात्र बनी रहै. अपनी शक्ति प्रमाणे सुख देवै, किसीके साथ वैर विरोध न रख्खे, एक पक्षी वैरसेंभी जीवकों बहोत भवतक दुःख भुक्तने पडते हैं; वास्ते किसीके साथ वैर न रखना. प्रमोदभावना उसें कहते हैं कि–मुनिमहाराज, साध्वी, श्रावक, श्राविकाकों देखतेंही हर्षित चित्त हो जावै. ऐसे पुरुषके संयोगकी सदा इच्छा करै. किसी वक्तभी वियोग न होवै ऐसीही भावना भावै. करुणाभावना उसें कहते है कि–सब जीवपर दयाभाव रख्खे. कोइ जीवकों दुःखी देखै उसकों सुखी करनेकी भावना रख्खे और सुखी करै, परंतु बेदरकार न रहै; क्यौं कि दुःख दूर करनेकी शक्ति है वास्ते दरकार रख्खे. दया करनेमै अपने धर्मवाला या परधर्मवाला है ऐसीभी विचारणा न रख्खे, कोइभी दुःखी हो उसें सुखी करनेकी बुद्धि रख्खे. मध्यस्थभावना उसें कहते हैं कि–पापिष्ट जीवपर भी रागद्वेष न करै. राग करनेसें आते जन्ममै पापिष्टका संयोग प्राप्त होवै उससें धर्ममैं विघ्न आ पडै. द्वेष करै तौ वैरभावसें संयोग मिले और दुःख होवै; वास्ते पापिष्ट जीवकों समुझा सकै ऐसी शक्ति होवै तो समझा देवै और न समुझे तौभी उसकेपर द्वेषभाव न ल्यावै,

पुनः बारह भावनायें है सो भावै. उसमै पहिली अनित्य भावना अर्थात् शरीर धन कुटुंब ये सब पदार्थ अनित्य–अस्थिर हैं. जहां तक ये वस्तु रहनेका संयोग बांधा है वहां तक रहेगा. ये वस्तु कायम रहनेकी नहीं है, तौ ऐसे अस्थिर पदार्थपर राग करना सो कर्मबंधनकाही कारण है. गत जन्मोंमें ये अनित्य पदार्थोंके ऊपर राग धारणा किया है उसीसें अनेक जन्म मरणके शरण हुवा. वास्ते हे चेतन! तुं सदैव नित्य है, तेरे स्वाभाविक गुणभी नित्य हैं, आत्माका सुखभी नित्य है, उसकों छांडकर ये अनित्य पुद्गलमें क्यौं निमग्न होता है? जितने सांसारिक सुख हैं उसमै उनके साथही दुःख रहे हैं. फिर कालांतरमें नरकादि दुःख रहे हैं; वास्ते पुद्गलिक जडपदार्थका संयोग वियोगमै

तुं तेरा स्वभाव छोडकर रागद्वेष करता है सो योग्य नहीं है. जहांतक अनित्य पदा-र्थकी अंदरसें रागद्वेष दूर नहीं हुवा है वहांतक नित्य सुख प्राप्त होनेकाही नहीं. वास्ते हे चेतन! नित्य सुख प्राप्त होवै वैसा उद्यम कर. इस मुजब अनित्य भावना भावैं. दूसरी अशरण भावना इस तरह भावे कि–संसारमै कोइ शरणभूत नहीं है. जिन जिन कुटुंबके वास्ते मैं पाप करता हुं वो मेरे अकेलेकुंही भुक्तना पडेगा. दुःख भुक्तनेके वक्त कोइभी दुःखसें छुडानेहारे नही हैं. इस जन्ममैं रोगादिक उत्पन्न होता है सो मैं अकेलाही भुक्तता हुं, उस वक्त कोइ दुःख लेनेमैं समर्थ नहीं होते हैं. वैसेंही परज-न्ममैभी दुःख पडेंगे उस वक्त कोइ शरणभूत नहीं होवैंगे; वास्ते हे चेतन! तुं अज्ञा-नतासें कुटुंबके लिये अनेक पापारंभ करता हैं. वो वेमुनासिब है. तुं तेरे आत्मभावका विचार कर. ज्यौं वन सकै त्यौं जडभावका त्याग कर. वडे राजाओं जैसेकोंभी दुःखसें कोइ छुडानेवाला नहीं है. नरककी अंदर विचित्र दुःख भुक्तना पडेगा. अैसा शोच करकें सव पदार्थ अनित्य है; लेकिन कोइ शरणभूत नही है. यौं निश्चयकर मोहमें दिगमूढ न हो. तीसरी संसारभावना सो संसारमै सगे संवंधी जो मिले हैं वै सव सार्थिही मिले हैं. जिसकों तुं मेरा है यौं मानता है वो तो उसका स्वार्थ पूरा होगा वहां तक प्यार रख्खेगा ओर जव स्वार्थ पूरा न होगा तव कोइभी तेरा होनेका नहीं. तुं मेरे मेरे करकें नाहक कर्मवंधन करता है; परंतु वो दुःख तेरेही भुक्तने पडेंगे. संसारी सुख है सो भ्रमित सुख है, वस्तुतासें कुछभी सुख नहीं हैं. सुख तो समभा-वमेंही है; वास्ते हे आत्मा! मोह करना युक्त नही हैं. एकत्वभावना इस तरह भावे कि–आत्मा अकेलाही आया है और अकेलाही जायगा. कुटुंबादिक कोइ संग नहीं आनेकाहै जडपदार्थपर मोह करता है वो सव दुःखके साधन है. जो जो दुःख पडते हैं वो पर पदार्थके विषे तुने मेरापणा मान लिया उसके फल हैं. वास्ते हे चेतन! एक आत्मस्वरूपके स्वभावमै रहना वोही मेरा काम है, अैसी भावना भावकर परव-स्तु परसें मेरेपणेका राग दूर करै. अन्यत्त्वभावना उसें कहते है कि–छउं द्रव्य याने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल और जीवा-स्तिकाय यह छउं द्रव्यमें जीवद्रव्य जो मेरा आत्मा उसका स्वभाव चैतन लक्षण है, वो लक्षण यह दूसरे पांच द्रव्यमें नहीं है; वास्ते मेरेसें ये न्यारे हैं. ये आकाशास्ति-काय द्रव्य है सो समस्त द्रव्यका भाजन है उसमै मै वास करता हुं; मगर उनका

स्वभाव अवकाश देनेका है वो देता है; परंतु मैं उस्सें न्यारा हुं. पुनः धर्मास्तिकाय है उसका जीव पुद्गल पदार्थ चलै उसें सहाय करनेका धर्म है सो करता है. जैसें मछलीयोंकों तिरनेकी शक्ति है मगर पांनी विगर न तिर सकती हैं, वैसें जीव पुद्गलकों चलनेकी शक्ति है; लेकिन उसकी सहायता बिना न चल सकै वास्ते उनका सहाय करनेका धर्म है सो करता है. परंतुं मै ये धर्मास्तिकायसें भिन्न हुं. अधर्मास्तिकायका स्थिर रहनेवालेकों सहाय करनेका धर्म है वो करता है. उसमैंभी मेरा स्वभाव नहीं. कालका नइ वस्तुकों पुरानी करनेका स्वभाव है, उसमैभी मेरा स्वभाव नहीं. पुद्गलका जडस्वभाव है. सडना, पडना विध्वंसनताका स्वभाव है वास्ते ये भी मेरेसें भिन्न हैं वास्ते मै ये पांचों द्रव्यसें अलग स्वभाववंत हुं तौभी अनादिकाल मैने अज्ञानतासें मेरापणा मान लिया उसे करकें अनेक जन्म मरणके दुःख सहन किये और मेरा स्वभाव भूल गया, इस भवमै भाग्योदयसें जैनधर्म मिला उस्सें मैने वस्तु धर्म पहिचाना; वास्ते हे चेतन ! अब तेरे ये द्रव्य अन्य समझकर उसमे लीन न होना–इस मुजब भावै. अशुचिभावना इसे कहते हैं कि–यह शरीर मलमूत्रसें भरा हुवा है. यदि उपरसें चमडा मढ़ा हुवा न होता तो महा भयदायक मालूम होता. पुनः शरीरमेंसें मलमूत्र वहन होता है वो मै हमेशां देखता हुं. यह शरीरके नव द्वार खुले हुवेही हैं उनमैसें दुर्गंध निकल रही है. स्त्रीके शरीरमै बारह छिद्र हैं उनमैसेंभी रातदिन अपवित्र वस्तु निकलतीही रहती है. अैसे अशुचिमय शरीरमै प्यार करना सो केवल कर्मबंधनकारी कारण है और वो कर्मबंधसें अैसे अशुचिमय स्थानमै पैदा होना होता है अैसी अशुचि पिताका वीर्य और माताका रुधिर है और वोही शरीरोत्पत्तिका प्रथम बीज है. पीछेभी माता के शरीरमै दुर्गंधमय पुद्गल रहे हैं, उनमैसें ग्रहण करके शरीर बढता है; वास्ते हे चेतन ! अैसे अशुचि शरीरके वास्ते क्यौं मोह करता है ! तुं तेरे आत्मिक सुखमै आनंद कर कि जिस्सें अैसा अशुचि शरीर प्राप्त करना न पडे अैसी भावना भावे. आश्रवभावना उसे कहते हैं कि–मेरा आत्मा चिदानंद मय है; लेकिन मिथ्यात्व अव्रत कषायके योगसें करके प्रवर्त्तता है उस्सें समय समयमै नये कर्म आते है, उसीसें मेरा आत्मा मलीन हुवा जाता है. जितने जितने संसारी संबंध उतने आश्रव आनेके कारण हैं. समय समयमै पुद्गलिक पदार्थपर राग करता है उससें कर्म बांधता है. कर्म बांधनेके बीजभूत रागद्वेषकी प्रकृति है वो प्रकृति हो

कारणभूत शरीर, पुत्र, स्त्री, धन, मकान, अहंकार ममकार ये पदार्थ हैं; वास्ते हे चेतन! ये तुझे करने लायक नहीं है. पुनः पुनः यह मनुष्यजन्म मिलनेका नही है. भाग्योदयसें यह मनुष्यजन्म मिला है इस लिये ज्यौं वन सकै त्यौं आश्रवकी प्रकृति बंध कर दै जिस्सें कर्मबंध न होवै. [यह मिथ्यादिकका विचार प्रश्न ९१ के. जवावमें है वास्ते वो पाठ देख लैना.] संवरभावना याने जो समय समयमै कर्म आते है वों समभावसें रुक जाय वास्ते हे चेतन! तुं समभावमै रहै. समभावकों आनेकें ५७ सबब हैं उन ५७ के सेवनसें संवरभाव होवैगा. पांच समिति, तीन गुप्ति, बाइस परिसह, दस विध यतिधर्म, बारह भावना और पांच चारित्र यह ५७ के सेवनेसें आते हुवें कर्म रुक जाते हैं; वास्ते हे चेतन! तुं संवरके कारण अंगीकार कर ले कि जिस्सें कर्म आ न सकैं. जब तक संवरभावना नहि करेगा तब तक आत्माका कार्य सिद्ध होनेका नहीं है, और भवभ्रमणाभी मिटनेकी नहीं, इस लिये हरप्रकारसें संवरभाव कर. इस मुजब संवरभावना भावे. निर्जराभावना इस तरह भावे कि-पूर्वके कर्मोंकी निर्जरा करनेकौं भावै. अकाम निर्जरा तौ समय समयमें जो जो कार्य भुक्ते जाते हैं वो वो समयमें बनती हैं; मगर उसमें आत्मा निरावरण नहीं होता है; क्यौं कि निरावरण आत्मा करनेकी इच्छा नहीं है. स्वपर उपयोग नहीं है. परभावमें आसक्तता हैं उससें पीछे नये कर्म बंधेजाते हैं; वास्ते हे चेतन! तुं कर्म क्षय करनेकों तत्पर हो, जो जों कर्म उदय होवै वो वो समभावसें भुक्त लै तौ सकाम निर्जरा होवै. पुनः उदय नहीं हुवे है उनकों क्षय करनेके वास्तै बारह प्रकारसें इच्छा रोधरूप समभाव युक्त तप कर कि उससें कर्मक्षय हो जावै. अनशन सो नवकारसी, पोरसी, साढ पोरसी, पुरिमड्ढ, अवड्ढ, एकासणा, वेसणा, नीवी, आयंबिल, उपवास, छठ, अट्ठम, आदि तपश्चर्या करुं कि उससें मेरे कर्मकी निर्जरा होवै और आत्मा निर्मल होवै. उनोदरी तप अर्थात् खानेकों खुराक चाहिये उतना नहीं, मगर उससें कुछ कम खाना उसें उनोदरी तप कहा जाता है. वस्त्राभूषण कम वापरे उसें वृत्तिसंक्षेप कहते हैं, वो मुनि अभिग्रह धारण करते हैं वैसे श्रावक चौदह नियम धारण करते है सो करना. रसत्याग याने छउं विगयोंका त्याग करना, कायक्लेश अर्थात् शरीरकों कष्ट देना. मुनि लोच करते हैं. सूर्यका आतापना वगैरः लेते हैं, वो भावना भावै. संलीनता अर्थात् अंगोपांग संकोच कर सोवै. इंद्रियें और कषायकों वश्य रक्खे. यह

छउं बाह्य प्रकारके तप कहे जाते हैं. अब छ अभ्यंतर तपका संक्षेप स्वरूप कहते हैं. प्रायश्चित याने जो जो दूषण लगे हैं उसका गुरुके आगे प्रायश्चित लेना. विनय अर्थात् देव गुरु ज्ञानका विनय करना और उन्होंका वयावच्च करना. सज्झाय अर्थात् वाचना, पृच्छना, परावर्त्तना, अनुपेक्षा, धर्मकथा यह पांच प्रकारसें स्वाध्याय ध्यान करै. काउस्सग्ग याने काया का एक जगह रखकर हाथ पाउं हिलानेका बंधकर-स्थिर उपयोग करकें जिनगुणग्राम अंतरंगमें करना; और ध्यान अर्थात् धर्मध्यान, शुक्लल ध्यावै-येह छ प्रकारके अभ्यंतर तप है; क्यौं कि ये तप किसीके देखनेमें नहीं आते हैं जिस्सें आभ्यंतर कहे गये हैं. यह बारह प्रकारके तप समभावसै करुंगा तौ मेरे पूर्वके किये हुवे कर्मकी निर्जरा हो जायगी अैसी भावना भावे. लोकस्वरुप भावना यानी चौदह राजलोक हैं, उसमै उर्द्ध-उचा, अधो-नीचा, तिर्च्छो-ये अपन रहते हैं वही ये तीन लोक रहे हैं उसमै सात राज हैं, उसके भीतर नारकीकेजीवकों रहेनेका स्थानक है, औरं कितनेक जगह भुवनपति, व्यंतरके देव रहे है. तिर्च्छे लोकमै मनुष्य हैं, तथा तिर्यंच और व्यंतरके स्थान हैं. ऊपरके सातराजमै ज्योतिषि तथा विमानवासी देव रहते हैं. उनके ऊपर सिद्ध महाराज हैं और ऊनपर अलोक है. यह चोदराजलोक हैं. यह चैादराजलोक जैसें कोइ मनुष्य जामा पहेनकर दोनु हाथ दोनु बाजू कम्मरपर हाथ रखकर खडा रहा होवै उस आकृतिका चोडाइ लंबाइसें रहा है, और उसमै मेरा जीव अज्ञानपणेसें भ्रमण किये करता है वो अज्ञानताकेही फल हैं; वास्ते हे चेतन! अब कुछ ज्ञानदशा प्रगट करकें परवस्तु परसै मोह छोड दे कि जिस्सें तेरा स्वाभाविक गुण प्रकट होवै और सिद्धमैं निवास होवै. इत्यादि विस्तारवंत स्वरूप शास्त्रमें कहा गया है सो भावै. बोधबीज-समकित भावना अर्थात् जीव समकित नहीं पाया उससें अनेक जन्ममरण पाया. वस्तुकों अवस्तुपणेसें मान ली. और अभी मनुष्य जन्म पाया है. वीतरागभाषित शास्त्रका योगभी मिला है; वास्ते वो गुरुमहाराजके द्वारा श्रवण करकें यथार्थ वस्तुधर्म समझकर-तत्त्वातत्त्वका विचार कर, जैसा जो पदार्थ है उसकी श्रद्धा कर कि सहजसें जडपदार्थपर जो तेरा प्यार बंधा हुवा रहा है वो उतर जावै और सहजसें आत्मस्वभावमें प्रीति होवै. आत्माकों आत्माकी रीतिसें जाने बिगर अकेली व्यवहार क्रिया जोवन बहोत वक्त की उससें पुद्गलिक सुख मिले; मगर आत्मिक सुख न मिला; वास्ते हे चेतन! अब औसर प्राप्त हुवा है इस लिये बोधबीज-समकित

प्राप्त कर कि जिस्सें सब करणी गिनतीमे आवे और भवचक्रका भ्रमण दूर हो जावे, अैसा यत्न कर. प्रथम ज्यौं बन सकै त्यौं धनकी उपाधी छोड दे. इस मुजब बोधिबीज भावना भावे. बारहवी धर्म भावना इस तरह भावे कि वीतरागकथित धर्म मिलना दुर्लभ है. रागीद्वेषीके कहे हुवे धर्मसें आत्मकार्य हुवाही नहीं और होनेकाभी नहीं. तीर्थंकर देव हैं सो रागद्वेष रहित हैं, उनके कहे हुवे धर्मसें वीतरागता जाहेर होती है; वास्ते अैसे वीतरागके धर्मकी योगवाइ मिलनी मुश्कील है. वो भाग्योदयसें मिली है तो अब प्रमाद छोडकर जिस यत्नसें रागद्वेषकी प्रकृति कमी होवे और आत्माका शुद्ध स्वरूप प्रकट होवै वैसा यत्न कर. अव्वलमै ज्यौं बन सकै त्यौं उपाधि छोड दै, धनकी विषयकी वांछना छोडकर निर्वाहके जितनी प्रवृत्ति कर कि तुजे अवकाशका वक्त हाथ लगै. अवकाश मिलै उस वक्त एकांतमै वैठकर सब उपाधियोंसें मनकों दूर करकें तेरे आत्माका विचार कर कि–' हे चेतन! तेरा क्या स्वभाव है? और रात दिन क्या प्रवृत्ति कर रहा है? तुं जडप्रवृत्ति करता है; वास्ते समय समयमै नये कर्म आते हैं. और जो जो जडप्रवृत्ति है वो मेरी नहीं, मेरा तो जाननेका स्वभाव है, तो जो जो क्रिया पुद्गल संगसें होती है उससें मुजकों दुःख हुवा, सुख हुवा, अैसे विचार किसलिये किये करता है? तेरा सुख तौ सहज स्वभाविक है. कृत्रिम सुख हैं वो जाता रहेगा और स्वभाविक सुख प्रकट हुवा वो तो जानेका नही है. इत्यादि आत्माका तथा जडस्वरूपका विचार करेगा और उसमै स्थिर हो जावैगा तो आत्मामै अपूर्व ज्ञान प्रकट होयगा, और वो ज्ञानके प्रभावसें आत्माकों सुखका अनुभव होयगा. तो पीछे जडप्रवृत्तिपर हे चेतन! तेरा राग है सो रहेनेका नहीं वास्ते हरएक प्रकारसें निरूपाधिवंत हुआ जावे अैसा उद्यम कर. फिरसें यह जोगवाइ मिलनेकी नहीं है.' इस मुजब धर्म भावना भावै.

यह बारह भावनाका स्वरूप नाम मात्रसे मैंने मेरी अल्पबुद्धि मुजब लिखा है, विस्तारसें पूर्वाचार्योंनें बहुत प्रकारसें लिखा है और वर्त्तमान कालमंभी आत्मारामजी महाराज उर्फे विजयानंदसूरी महाराजनें बहुत ग्रंथ और भावनाओंकी रचना की है, वो देखकर या सुनकर भावनाका दिल हो आवै उस लिये मैने लिखी है.

श्रावक पौषधमै अैसी भावनाए भावे. अैसी भावनाअें भावै उससें धर्मध्यानमै भी आ जावै; वास्ते पौषध करकें बन सकै तौ धर्मध्यान करै. परंतु वो वास्ते श्रावक

कों प्राप्त होनीही मुश्कील है; संबंध कि हरिभद्रसूरी महाराजनें श्रावककों धर्मध्यानकी भजना कही है, उसका परमार्थ अैसा मालूम होता है–बारह भावना वगैरः भावै उसमै वक्तपर ध्यान आ जावै; मगर ज्यादे वक्त तौ भावनामैही जाता है वास्ते पौषधमैं भावना भावै, और वो न बन सकै तौ स्वाध्याय ध्यान करै, आप नया पढै, या पूर्वकालमे पढा होवै सो याद करै, या ज्ञानका बोध फैलानेके लिये प्रश्नोत्तर करै, या वृद्ध श्रावक शास्त्र पढै और दूसरे सुनैं इस तरह पौषधकाल पूर्ण करै; लेकिन पौषध लेकर सज्झाय ध्यानादिकमै तो कुछभी उद्यम न करै, वहां निद्रा करै वा विकथा करै तौ पोषधमै वडा दूषण लगै वास्ते गुणस्थानकी प्रवृत्तिवाला जीव तो प्रमाद विकथा छोडकर अपने आत्मतत्त्वकों प्रकट करनेका प्रयत्न करै. इस मुजब पौषध व्रत वो आत्माकों आत्मस्वभावकी पुष्टि करनी; वास्ते आत्माकी पुष्टि होवै उस तरह पौषधमैं प्रवर्त्तन रख्खै. बाहवा अतिथि संविभाग व्रत उसें कहते है कि पौषधके पारणेके दिन एकासन व्रत करै. पीछे अपने वहां जौ रसवती तैयार हुइ होवै उसमैसें मुनिमहाराजकों देनेके लिये मुनि महाराजकी खोजना करै. भाग्योदयसें मुनि महाराजकी योगवाइ मिल जावै तौ मुनि महाराजकों बुलाकर जो जो वस्तुकी मुनिमहाराजकों दरकार हो वो वो वस्तु देवै और जो वस्तु मुनि महाराजनें अंगीकार की हो उसका शेष रहा होवै उसी वस्तुका आप भोजन कर एकासन व्रत करै. किंवा अैसा अभिग्रह होवै कि जो कुछ वस्तु मुनिराज लेवै वही वस्तुका शेष भाग अपने निर्वाहके लिये प्रासन करै. इस मुजब पौषधके पारणेके दिन अतिथि संविभाग करै, अथवा अतिथि जो मुनिराज उनकों हमेशां आहार पानी देनेकी भावना रख्खे और जब जोग मिल जावै तब जो जो चीजे मुनिराज मागै वो वो चीज घरमै होवै तौ बहुत भावसहित देवै. मुनिराजकों अन्नजल देनेसें बहुतसे प्राणी भव भ्रमणाके पार पहुंच गये हैं. सुबाहुकुमार प्रमुखका अधिकार विपाकसूत्रमैं है वो सुनोगे तो मुनिने प्रतिलाभनेका लाभ क्या है वो मालूम होयगा.

इस मुजब श्रावकके बारह व्रत व्यवहार निश्चयसें हैं और अपने स्वभावमै रहनेकी भावना रहती है; मगर पूर्वकर्मकी प्रबलतासें संयम नहीं लिया जाता है उसीसें संसारमें रहा है तोभी सब जीवोंकों मित्रवत् जानता है. अपना निर्वाह करनेमै कुछ हिंसा होती है उस संबंधीभी रात दिन बहुतही दिलगीरी रहतीहैं; लेकिन अैसा नहीं

शोचै कि अपन कुछ साधु नहीं है, अपन श्रावक हैं उससें सब दरवज्जे खुल्ले हैं, वां-स्ते अपने वहां तो किंचित्भी जीव हिंसा होभी जाती है. अैसा विचार करनेसें निध्वंस परिणाम होते हैं वो न करें. जो जो काम करै वो लाचारीसें करै. जैसें कोइ मनुष्यकों दरद हुवा होंवें तो वो औषध खाता है. वो औषध अच्छा नहीं लगता है; मगर जहां तक रोग है वहां तक खुशीसें औषध खाता है, तौभी भावना यह है कि कब मेरा दरद दूर हो जाय और औषध खाना न पडै, वैसेंही यह शोचता है कि मै कब संसारसें विमुक्त हो जाउं के यह सब संसारी भोगादिक छूट जाय; अैसी भावनासें श्रावक प्रवर्त्ते. यह बारह व्रतोंमै कोइ अतिचार लगै या लगा होवै वो पापकों निंदै. और हमशां दो वक्त पडिकमण करै. (उस्का सविस्तर अधिकार आवश्यकके अर्थसें अति चार तथा विधि जान ले कर उस मुजब करना.)

छट्ठा सर्वविरति वा प्रमाद गुणस्थानक अर्थात् यह गुणस्थानकमै मुनिराज मग्न रहते हैं, उनकों प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ यह चारों प्रकृति उदयसें नष्ट हो जाती हैं, उससें उनके रागद्वेषकी परिणती कम होती है और आत्मा शुद्ध होता है उसके लियेसें संसारके उपरसें राग छूट जाता है, शरीरकी ममताभी छूट जाती है, तब व्यवहारसें पांचों महाव्रत अंगीकार करते हैं यानी प्राणातिपात विरमण व्रत अर्थात् त्रस तथा स्थावर जीवकी हिंसाका त्याग करते है. सब जीवकों मित्रवत् समझकर किसीभी जीवकों दुःख न होवै वैसे काम नहीं करते हैं.

मृषावाद विरमणव्रत सो सर्वथा झूंठ बोलनेका त्याग करते है. और आप झूंठ नहीं बोलते हैं अगर झूंठ बोलता है उसकी प्रशंसाभी नही करते हैं.

अदत्तादान विरमणव्रत सो किसीकी कुछभी चीज दिये विगर नहीं लेवै. मार्गमै पडी हुइ धूलभी मंजूरी मिलै विगर नहीं उठावै. इस अदत्तादानके चार प्रकार हैं याने जीवअदत्त सो कोइ जीवने कहा नहीं कि मुझे मारो, उससें किसीभी जीवकों नहीं मारते हैं और जो मारते हैं उनकों जीव अदत्तका पाप लगता है. स्वामी अदत्त-जिस वस्तुका जो मालिक है उस मालिकके दिये विगरकी चीज कुछभी न लेवै. और लेवै तो स्वामीअदत्तका पाप लगता है. गुरु अदत्त-गुरुमहाराजनें जो जो आहारादि चीजे करनेकी आज्ञा नहीं दी है तौभी वो वस्तु खावे या उपयोगमै लेवै या वर्त्तना करै तो गुरुअदत्तका पाप लगता है, उससें गुरुमहाराजकी आज्ञा मिले विगर कुछभी व

पैनीं न करै. तीर्थंकर अदत्त–परमात्माने जो जो आज्ञा दी है वो आज्ञासें विरुद्ध आचरण करना उसें तीर्थंकर अदत्त कहते हैं. वास्ते धर्मकों सहायकारी आहार वस्त्र पात्र रहेनेका मकान आदि जो जो निर्दोष वस्तु याने आपने न करवाइ है न की है और न गृहस्थनें मुनिके लिये करवाइ है अपने लियेही बनाइ है. और वो वस्तु वर्त्तमानमें अभक्ष नहीं है उससें प्रभुजीनें लेनेकी आज्ञा की है वही वस्तु लेवै. इस मुजब चार तरहका अदत्तदान विरमणव्रत मुनिं पाले.

मैथुन विरमणव्रत सो देवकी स्त्री, मनुष्यकी स्त्री, तीर्यंचकी स्त्री अर्थात् इन्होंकी कोइभी स्त्रीके साथ मैथुन सेवनेका और स्त्रीकों छूनेकाभी त्याग करै.

परिग्रह विरमण व्रत याने धन, धान्य, जमीन, मकान, राछरछीला, चांदी सुना, कुप्यधातु, मनुष्य, जानवर यह नौ प्रकारकु परिग्रहका जिसने त्याग किया है, कोडी मात्रभी जिसकों नहीं रखनी है, इस मुजब सब तरहका परिग्रह छोड देवै. मात्र शरीर ढांकनेके वास्ते वस्त्र पात्र सिवा कुछभी आहार आते दिनके लिये रख छोडनेका नहीं है. इस तरह कोइभी वस्तुकी इच्छा नहीं है उससें परिग्रहका त्याग करते हैं. परिग्रह पापकाही बीज है.

इस मुजब पांचों अव्रत, मन वचन कायासें करकें सेवे नहीं, सेवरावेभी नहीं और सेवै उस्कों अनुमोदेभी नहीं. इस तरह पांच अव्रतका त्याग करकें पंच महाव्रत आदरते हैं और सदाकाळ ज्ञानका अभ्यास कर रहे हैं. यत्किंचित्भी विकथा आलस निंद्रामें वकत्त नहीं गुजारते हैं. ज्ञानका अभ्यास करते हैं. वोभी मान महत्त्वताके लिये नहीं लेकिन अपना आत्मस्वरूप प्रकट करनेके वास्तेही फकत उद्यम करते हैं. हमेशां भावना तो समभावकीही बनी हुइ रहती है. कोइभी पुद्गल भावमें ममता नहीं है. निरंतर आत्मभावना भावनेमैंही मस्त रहे हैं. लेकिन पांच प्रमाद दूर नहीं हुवे हैं, इससें प्रमाद गुणठाणा कहा जाता हैं. सातवा अप्रमाद गुणठाणा है. यह गुणठाणेसें पांच प्रमादका नाश होता है. याने प्रमाद–मद–मदिरा तथा अष्टमद अर्थात् जातिकामद, कुलकामद, बलकामद, रुपकामद, अधिकारकामद, ठकुराइकामद, तपकामद, ज्ञानकामद यह आठ मद–गर्व हैं. विषय–पांच इंद्रीओंके तेइश विषय हैं. अर्थात् स्पर्शेंद्रि–शरीरके आठ विषय है. हलका, भारी, रुखा, स्निग्ध, कोमल, खरसठ–कररा, ठंडा, गरम ये आठ हैं. हलका सो हलका वस्त्र वगैरः चीज मिलै; मगर नापसंद होवै तो

दिलगीर, और पसंद होवै तो खुश होना. भारीमें भारी चीज मिलनेसें राजी या दिलगीर होना. रुखी वस्तुकी प्राप्तिसें राजी या दिलगीर होना. स्निग्ध पदार्थमैंभी राजी या दिलगीर होना. सुकोमल और असुकोमल, ठंडा तथा गरम ये पदार्थ पसंदगीकी मुजब मिलै तो राजी और नापसंदगी मुजब मिलनेसें नाराजी होना, ये स्पर्शेंदियके विषय हैं. रसेंद्रि—जीभ के पांच विषय हैं याने चरपरा, कटुक, कषायल, खट्टा और मीठा—ये पांच रस हैं. खारा रस तो सब रसोंकी अंदर होताही हैं इस लिये अलग नहीं बतलाया गया है. यह पांचों रसमें जो जो रस मिला उसमैं मुनिराज दिलगीर नहीं होते हैं. जिस वक्त जो रस मिला वो समभावसें खाते हैं और यह पांचों रसोंके स्वादमें जो अनुकूल होवै उसकी अंदर राग—प्रिती और प्रतिकूलमें द्वेष वो विषय कहा है. घ्राणेंद्रेय—नाक उनके सुरभी गंध और दुरभिगंध ये दो विषय हैं. अच्छी सुगंधीसें प्रीति और दुर्गंधिसें अप्रीति बतलानी. चक्षुइंद्रियके पांच विषय हैं अर्थात् सुरख, सफेद, पीला, हरा और काला ये पांच हैं. उसमै जो रंग अनुकूल होवै उसके मिलनेसें राग और प्रतिकूल मिलनेसें द्वेष करना सो विषय कहा जाता है. श्रोत्र इंद्रियके तीन विषय याने सचित्त शब्द अर्थात् स्त्री पुरुषका शब्द, अचित शब्द नगारे ढोल वगैरः का शब्द, और मिश्र शब्द—मृदंगादिकका है, उसमैं जिसका शब्द प्रिय होवै उसपर राग और अप्रियपर द्वेष करना सो विषय कहा जावे—इस तरह पांचों इंद्रियोंके तेइस (२३) विषय हैं. उसमैंसें जो अनुकूल मिले उसमै मुनि वो वस्तुका वस्तुधर्म जानते है और जिस वक्त जो मिला उससें अपने शरीरको आधार देते हैं; लेकिन उसमै यह अच्छा यह बुरा है ऐसा मान कर खुश नहीं होते है और दिलगीरभी नहीं होते हैं. मुनि महाराज तो आप खुद कर्मका क्षय करनेके वास्ते तत्पर हुए हैं. आपके पास कुछभी पैसा तो रखतेही नहीं हैं उससें खरीद करना हैही नही. और आपके हाथसें आहारादिक बनाने भी नहीं हैं. गृहस्थके वहांसें जिस वक्त जो चीज मिल जावै उससेंही संतोष मान कर आनंदमें रहते हैं; मगर खुशी या दिलगीरी नहीं होते हैं. इस तरह तेइस विषय त्याग कर दिये हैं, बारह कषाय थे सो तो चले गये हैं. और चार जो संजलके रहे हैं वे भी पतले पड गये हैं. चार विकथायेभी त्याग दी हैं. निद्रा कि जिसका स्वरुप मोहनी कर्ममें कहा गया है वो निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, और थिणद्वी ये तीन् चली जाती है.

इस तरह पांच प्रमादका नाश होनेसें अप्रमाद गुणठाणा कहा जाता हैं. यह गुणस्था-नकमै आत्म विशुद्धि ज्यादे होती है. मगर छठे और सातवें गुणस्थानकका काल अंतर्मुहूर्त्तका है. सो फिर पिछे गिरकर छठे जाता हैं फिर सातवें आता है–ऐसे अ-ध्यवसायमै फेरफार हुए करता है और गुणस्थानमैभी इसी सबबसें फेरफार होता रहता है. उसमैंभी सातवे गुणठाणेका अंतर्मुहूर्त्त लघु हैं और छठेका अंतर्मुहूर्त्त बडा है, इस सबबसें इतना अंतर पडता हैं. पूरे आयुष् तकमै सातवें रहेका काल इकठा करे लेवे तौ दो घडीमै कुछ कम जितना काल होता हैं; लेकिन इस्सें ज्यादा काल नहीं और छठेका बाकी सब काल होता है. यह अधिकार भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके २७२ पानेमै है. अप्रमाद गुणठाणेका ज्यादा अधिकार कर्मग्रंथसें समझ लेना. यह विशुद्ध भावका स्थानक है. इस गुणठाणेमै धर्म ध्यानकी अंदर ज्यादा काल व्यतीत होता है और वो धर्मध्यानके चार प्रकार है अर्थात् प्रथम पाद आज्ञाविचय याने परमात्माकी आज्ञाका ध्यान करै. परमात्माकी आज्ञा कैसी हैं? अविच्छिन्न है. फिर परमात्माके वचन कैसे हैं? निराबाध हैं! किसी प्रकारके दोष नहीं. आत्मा-की सत्ता अनंत ज्ञानमय, अनंत दर्शनमय, अनंत चारित्रमय, अनंत तपमय और अ-नंत उपभोगमय है. ये आत्माकी सत्ता है वो स्वरूपमै रहना यह आज्ञा है. इस तरह प्रथम पादमैं ध्यान करै. दूसरे अपायविचय पादमैं ऐसा ध्यान करे कि जो अनंत ज्ञानमय आत्मा सो मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, योग यह चारों कारणोसें ढका गया है. वो यह जडमै जड जैसी प्रकृति कर रहा है; मगर चेतन! तेरा स्वभाव नहीं. धन स्त्री पुत्र परिवारको देखकर मेरे मेरे कर रहा है, उनके संयोगसें राजी होता हे और वि-योगसें दिलगीर होता है. यह बुद्धि, अनादिके पुद्गलका संयोग बना हुवा है उनके प्रभा-वसें हुवा करती है; लेकिन चेतन! ये तेरे करने लायक नहीं है. आज तक तो अज्ञा-नता थी उस्सें मेरा क्या है? और पराया क्या है? वो ज्ञान न था. अब हे चेतन! भाग्योदयसें जैनशासन मिला है. जिसमै आत्माका स्वरूप अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतचारित्र, अनंतवीर्य. अजर, अमर, अक्षय, अविनाशी, अशरीरी, अगम, अक्रोधी, अमानी, अलोभी, अमायी, अवेदी, अभेदी, अछेदी, अइंद्री, अनाहारी, अकामी, अविषयी, अगंधी, अवर्णी, अरसी, अस्पर्शी, अगोचर, अनूपम, न संज्ञी, न असंज्ञी, न अपर्याप्ता, न पर्याप्ता, न रागी, न द्वेषी, न बाल, न युवान, न वृद्ध, न स्त्री, न पुरुष,

न नपुंषक, सचिदानंदमय, और सहज सुखमय ऐसा आत्माका स्वरूप है; मगर पर संगके सबबसें कुबुद्धि प्राप्त होनेसें जड वस्तुका रागी हो हे चेतन! तुने अनेक दुःख सहन किये. वर्त्तमान कालमैंभी चेतन! जो जो सुख मानता है वो सुख कथन मात्रही है. चेतन! तुं जो जो वस्तुके संसारी सुखकों सुख मानता है; मगर वो क्रम तपास कर देखेगा तो मालूम हो जायगा कि क्या क्या दुःख है? पुनः भवांतरमें नरकादिकके दुःख यह शरीरकी संगतीसें बहुत सहन किये हैं; वास्तें अब हे चेतन! तुं तेरा स्वरूप विचार कर तेरें आत्मिक सुखमें मग्न रहै, और पर संगसें कर्म बांधे जाते हैं सो शोच. तीसरा पाद विपाकविचय धर्मध्यान है उसमैं शोच करें कि. जीवने पर संगसें आठ कर्म बांधे उनकी १५८ प्रकृतियें हैं (और उनका स्वरूप आठ कर्मके स्वरूपमें लिखा गया है वास्ते वहांसें पढकर माहितगारी मिला लेवें.) उसका बंध, जिस वक्त जैसे जैसे अध्यवसाय होवें, वैसे कर्मका बांधना. उसका उदय, नही हुवा है वहांतक रहेना सो सत्ता, पीछे उदय होवें तब सुख दुःख भुक्तनेम आवें. सो उदय कहा जावै. यह बंध चार प्रकारका है. याने प्रकृति बंध-कर्मका शुभाशुभ स्वभाव, स्थितिबंध-कर्म कितने काल तक भुक्तना पडेगा? उसका मान, रसबंध-कर्म तीव्र मंद जैसा भुक्तनेका होवै वैसा रस होवै, प्रदेश बंध-कर्मके दलका मिलना. यह जब जीव कर्म बांधता है तो जिस वक्त जो अध्यवसाय वर्त्तता हो वैसाहीं कर्म बांधता है. उसका उदयकाल प्राप्त होता है, तब दुःख भुक्तने पडते हैं. आत्माकी ज्ञानशक्ति अनंत है; मगर कर्मके योगसें आच्छादित हो गइ है; वास्ते हे चेतन! जो जो सुख दुःख आते हैं उसमै तुं रागद्वेष मत कर. रागद्वेष करनेसेंही यह कर्म बांधे गये है और यह जन्म मरण रोगादिकके विचित्र दुःख भुक्तने पडते है. इसलिये हे चेतन! जो जो कर्मविपाक उदय आये हैं वै वै कर्मके स्वभाव है वैसा बनता है. तेरा स्वभाव तो देखने जाननेका है सो जान ले, किंतु अज्ञानतासें अनादिकालका अभ्यास पडा है उस्सें मुझे दुःख होता है-पीडा होती है ऐसा करता है सो अब तुं मत कर. अब तौ तुं तेरे स्वरूपका विचार कर और समभावसें रहै यही तेरा धर्म है. तुं समभावसें रहेगा उससें रागद्वेषमय प्रकृति नहीं बनेगी, इस्सें सहजसें यह कर्म क्षय हो जायगा. आज दिन तक तुं तेरे स्वभावकों नहीं जानता था. अब तेरा स्वभाव तुंनें जान लिया है तौभी ये जडप्रकृतिमें किसलिये सपडाता है? ऐसा यह तीसरे पादमै

ध्यान करै. चौथा संस्थानविचय धर्मध्यान है–उसमें चौद राजलोकका स्वरूप शोचै. चौदह राजलोकमै जो जो पदार्थ जिस मुजब रहे हैं उसकों शोचै. षट् द्रव्य रहे है उनकाभी शोच करै. षट्द्रव्यका स्वरूप विचार लै, उस बाद आत्माके द्रव्य साथ दूसरे द्रव्यका स्वरूप विचारै कि जो जो गुण आत्मामै हैं वो दूसरे द्रव्यमै नहीं है, तो हे चेतन! किस सबबसें ये द्रव्यमै मेरापणा मानता है? अैसा शोच कर अपने स्वरूपमै लीन होता है. मन वचन कायाभी वही स्वरूपमें स्थिर हो जाता है. अनुभवज्ञान स्वाभाविकतासें प्रकट होता है. यह ज्ञान प्रकट होवै वो अनुभवज्ञानका सुख जानै. ये सुख किसीसें कहा नहीं जाता है. अपने आत्मतत्त्वमै एकाग्रता होनेसें आनंद होता है. वो आनंदका सुख ध्यानसें चलायमान होता है; तोभी कितनीक मुद्दत तक रहता है. वास्ते हे चेतन! तुं तेरे स्वाभाविक सुखमैं मग्न रहेवे तो तेरे रहनेका स्थान लोकाग्रमै सिद्ध स्थान है वहां होगा. इत्यादि चतुर्थपादमै ध्यान करै. यह चारों पादमें स्वरूप विचार लिखा है वो चिंतवन रूप है, और ध्यान तो मन वचनकी एकाग्रतासें अपूर्वज्ञान स्वाभाविक होवे वही कहा जाता है. अैसा कहे उसका समझना कि ध्यानमै श्रुतज्ञानके बलसें प्रथम तो चिंतवन करै और पीछे स्वाभाविक होवै वास्ते चिंतवन करनेसेंही ध्यान होता है. इस मुजब सातवे गुणठाणेमै ध्यानादिककी अंदर वर्त्तन रक्खे.

आठवा अपूर्व–गुणस्थानक है. यह गुणठाणेमै आगे नहीं आये हुवे भाव प्राप्त होते हैं. यह गुणठाणा उपशम भावसें होता है. उनकी प्रकृति उपशम पाती है और क्षायकभावसें ये गुणठाणा होता है. वो सत्ता बंध उदयसें क्षय किये जाते हैं. क्षायक भाववाले तो चढकर केवलज्ञानही पाते है और उपशमवाला तो एकादशवे गुणठाणे तक् चढकर पीछे पड जाते हैं. पीछे पुनः क्षायकभाव प्रगटे ओर चढे वो पडे नहीं. ये आठवे गुणठाणे समकित मोहनीका उदय न होवै; सबब कि सातवे गुणठाणेके अंत तक उसका नाश हो जाता है तब यह गुणठाणा प्रगट होता है. ये गुणठाणेमै शुक्ल ध्यान प्रकट होता है; अव्वलमै तो शुक्लध्यानके बलसें विचार करता है; मगर पीछे स्वाभाविक ज्ञान प्रकट होता है, उससें करके ध्यान करै. भेदज्ञान प्रकट कहेता हैं. यह गुणस्थानमैं अनुभवज्ञान प्रकट होता है सो सूर्य उदय होनेके पेस्तर जैसे अरुणोदय हो उद्योत होता है, वैसे केवलज्ञान रूप उद्योत होनेका है उसका

अव्वलही प्रकाश होता है. यह गुणठाणेमें केवल सहज ध्यान है. कृत्रिम हठादिक ध्यान नहीं है. ये गुणठाणेका सुख तथा ज्ञान जिसकों होता है वोही जानें. महा अद्भुत विशुद्धि है. ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनी, अंतराय ये कर्मउदय रहे हैं; मगर उनके रस नास होते जाते हैं. मोहनीकर्मकी १२ प्रकृतिये रही हुइ होती है; लेकिन वै बहुतही रसरहित हो गइ होती है. अति विशुद्ध अध्यवसाय हुवे हैं. जड चेतनका केवल विभाग करते हुवे चले जाते है. शुक्ल ध्यानका प्रथम पाद पृथकत्ववितर्क सप्रविचार नामक ध्यानमैं ध्याते हैं.

नवम अनुवृत्ति बादर गुणठाणा है. यह गुणठाणेमें अतिशय विशुद्ध अध्यवसाय होतें हैं. आठवेके अंतमै हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुगंछा, यह छउं प्रकृतियोंका अंत हो जाता है. यह गुणठाणेमें ये छउं प्रकृतियोंका उदय नहीं है. यहांपर शंका होगी कि आठवा गुणठाणा पाया वहां उसकी प्रकृतिथी उस विषयमै यह समाधान है कि लोककी रीतिके तो छट्ठे गुणठाणेसें निकल गये हैं; लेकिन आत्माके गुणस्वाभाविक प्रकट होते हैं वो देखकर हर्ष होता है, वो रुप हास्य तथा रति है. तथा अरति परभाव पर है. भयभी अपने भाव चलायमान होवै उसका है. शोकभी कर्मसें आत्मा मलीन हुवा उसका है. दुगंछाभी स्वाभाविक परपरिणती की है. यह षट् स्वाभाविक है. इसका ज्यादे विस्तारपूर्वक स्वरूप विचारसारकी टीकामें किया गया है. यह नवम गुणस्थानकके अंतमैं संज्वलन क्रोध, मान, माया, और स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंषकवेद-इन्होंका अंत होता है, तब दशम गुणस्थानक प्राप्त होता है.

दशवा सूक्ष्मसंपराय नामक गुणस्थान है. यह गुणस्थानमै सूक्ष्म लोभका उदय रहा है, सो अति विशुद्ध भावसें दशवेके अंतमें उस लोभका क्षय हो जाता है. अब जो उपशम भावसें श्रेणी मंड दी होवे वो एकादशवे गुणस्थानमैं जावै; क्यौं कि जो गुणस्थानक उपशम भावका है; क्षायक भावका गुणस्थान नहीं है, उस्सें क्षायक भावाले बारहवे गुणस्थानमै जाते हैं.

ग्यारहवा उपशांत मोह गुणस्थान है. ये गुणस्थानमें मोहनी कर्मका उदय तो नहीं होता है; मगर सत्तासै रहता है, उसके जोरसें परिणाम पीछे हठ जाते है. उस सबब सें यह गुणठाणेसें चढते नहीं लेकिन गिरजाते है. कदापि आयुष् आ रहा होवे और मरण आ जावे तो सर्वार्थ सिद्धि विमानमें जाता है. वहांसे मनुष्य गतिमें आ करकें मोक्ष प्राप्त करता है.

बारहवा क्षीणमोह गुणठाणा है. यह गुणठाणेमें वीतरागपद प्राप्त होता है. यह गुणठाणेमें अभेदज्ञान है, एकत्ववितर्क अप्रविचार नामक ध्यान अभेद ज्ञान है उसका दूसरा पाद वर्त्तता है; उससें अति विशुद्ध भाव होता है. उसी सबबसें यह गुणठाणेके अंतमें ज्ञानावर्णी कर्मकी पांच प्रकृति, दर्शनावर्णीकी छः प्रकृति शेष रही हुइथी, वो और अंतराय कर्मकी पांच प्रकृतिका उदय बंध सत्ता सब प्रकारसें नाश होकर तेरहवा गुणठाणा प्राप्त होता है.

तेरहवा सयोगी गुणठाणा है. यह गुणठाणेमें केवलज्ञान, केवल दर्शन प्रकट होता है. लोकालोकके ज्ञाता होते हैं, गया हुवा अनंतकाल और आनेवाला अनंतकाल है उसमैं जो जो पदार्थ हो गये और होनेवाले हैं वो सबका ज्ञान है. कुछभी वस्तु ज्ञात होनेमें अज्ञात नहीं ऐसा संपूर्ण ज्ञान प्रकट होता है, तब तीर्थंकर महाराजजीकी वैमानिक, ज्योतिषी, भवनपति और व्यंतर यह चारों जातिके देवोंके इंद्र भक्ति करनेकों आते हैं, और समवसरणकी रचना करते हैं, उसमें प्रकट कोट-गढ चांदीका, दूसरा गढ सोनेका और तीसरा गढ रत्नका बनाते हैं. उस रत्नके गढ भीतर प्रभुका सिंहासन रत्नमय बनाते हैं. उसपर प्रभु विराजमान होकर देवध्वनि पूरित देशना देते हैं. वो प्रभुका ऐसा प्रभाव है कि—चारों तर्फ बैठे हुवे लोग प्रभु अपने सन्मुखही हैं ऐसा देखते हैं—सबब यह कि तीनू दिशाओंमें प्रभुके प्रतिबिंब होते है. प्रभुके मस्तक पर अद्धर तीन छत्र रहते हैं. देवता चँवर वींजते हैं. प्रभुके पीछे तेजपुंजरूप भामंडल होता है, उसका तेज सूर्यसेंभी बारह गुना होता है. उपर अशोकवृक्ष होता है, उसकी ऐसी शीतल छांउं होती है कि वहां बैठे हुवे समस्त जीवोंका शोक संताप नाश होता है. आकाशमें दुंदभी बजे, उसमें ऐसी शब्दध्वनि होवै कि 'यही देवकों भजो.' फिर त्रिगढके चारों और जानु प्रमाण सुगंधित पंचवर्णी पुष्पोंकी वृष्टि देवोंकी तर्फसें होती है. इत्यादि रचना देव रचते हैं. वहां प्रभुजी बैठकर धर्मदेशना देते हैं, उस्सें बहोतसे जीव प्रतिबोध पाते हैं; सबब कि केवलज्ञानद्वारा सब वस्तुकों जानते हैं. यदि किसीकों कोइ विषयमें कुछ शंका हो आवे तो वहभी जान लेते हैं उस्सें पृश्न करनेकी जरूरत नहीं रहती है. भगवान आपसेंही सब शंकाका समाधानरूप उत्तर देते है उस सबबसें किसीकों शंका नही रहती है. इस मुजब जबतक आयुष्य कायम रहे वहांतक पृथिवी पर फिरकर भव्य जीवोंकों प्रतिबोध करते हैं. इस प्रकार तेरहवे

गुणठाणमें वर्त्तते हैं. इस गुणठाणमें चार अघाति कर्म रहे हुवे होते है. अघाति कहनेका यही मतलब है कि आत्माके गुणोंकों ये कर्म घात नहीं करते है. और गुण प्रकट करनेमें अटकायत नहीं करते है उससें अघाति कर्म कहा जाता है.

चतुर्दशवा अयोगी गुणठाणा है. यह गुणठाणा जींदगीके अंतका अ-इ-उ-ऋ-ऌ-यह पांच अक्षर बोलनेके वक्त जितना वक्त बाकी रहा होवै तव प्राप्त होता है. ये गुणठाणेमें योग यानी मन वचन और काया इन्होंका रोध होता है और चारों कर्म नाश हो जाते हैं. तथा सव कर्मोसें रहित होता है. चरम शरीरका त्याग होता है. एक समयमें सिद्धमें विराजमान होते हैं. वहां सदैव अवस्थित रहते हैं. फिर संसारमें आनेका नहीं रहता है; क्यों कि संसारमें परिभ्रमणका कारणरूप कर्म है, उसका नाश होता है उससें पुनः जन्ममरण होताही नहीं. संपूर्ण आत्मिकसुख प्रगट हुवा है ऐसे पूर्ण सुखकों प्राप्त करते है.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि जो लोकके अंतमें जाते है वे अलोकमें क्यों नहीं जाते है? इसकी समाधानीमें यह है कि अलोकमें धर्मास्तिकाय नहीं है. लोकके अंत तकही धर्मास्तिकाय है. जीव और पुद्गल धर्मास्तिकायकी सहायता विगर नहीं चल सकते है. उससें आगे नहीं जा सकते हैं. यदि कहेगा कि यहांसें वहां तक आत्माकों जानेका क्या सवव है? उसका उत्तर यही है कि उर्द्ध जानेका स्वभावही है जिस्सें वहांही जाते हैं. इस मुजव चौदह गुणस्थानरूप धर्म है उन्मेंसें जितना वन सके उतना धर्म करे उसी मुजव शुद्ध होता है.

५५ प्रश्नः—इस मुजवका धर्म जैनवालेंही कर सकते है या दूसरेंभी कोइ कर शके?

उतरः—वहुत करकें जैनवालेही कर सकते है; सवव कि-जिसकों वस्तु धर्मका ज्ञान नहीं होता है, वहांतक वस्तुकों वस्तुपणेसें मानना नहीं वन सकता है, उसीसें स्वभाव विभाव नहीं जाना जाता है. और विपरीत जाननेसें क्योंकर मुक्ति होवै? किसी जीवकों स्वाभाविक सहजहीमें वस्तु धर्मका ज्ञान होवै, तो आपके स्वभावमें रहकर परभावका त्याग कर देवै तो गुणस्थानमय धर्म प्राप्त होवै. जैसें कोइ मनुष्यकों मार्गमें चलते चलतेही पॉव जमीनमें घुस जाय और वहांसें द्रव्य प्राप्त होनेसें धनवान हो जाता है, वैसें स्वभाविक बोध हो जावै. मगर वो थोडे जीवोंकोंही ऐसा वन

आता है, बहुतसें जीवोंकों अैसा होना बहुतही मुश्किल है. पूरेपूरा उद्यम करनेसें तौ बहुतसे मनुष्य द्रव्य पैदा करते हैं, तैसे जैनमार्गसें निकट मुक्ति है. अन्य भावसेंभी जैनधर्मकी मर्यादावत्, आत्मिकधर्म आजावै तभी मुक्ति पाते हैं.

५६ प्रश्नः—अैसा समझकर जैनधर्मके उपर राग-प्यार रख्खे और दूसरे धर्मपर द्वेष रख्खे तौ युक्त है या नहीं?

उत्तरः—जिसने जैनधर्म पाया होवै उसकों मुनासिब है कि किसी धर्मके उपर वा किसी मनुष्यके उपर द्वेष न रख्खे; क्यौं कि जैनाचार्योंने तौ कहा है कि–'सकल दर्शनके नय ग्रहे, आप रहे निज भावेरे'–इसका परमार्थ यह है कि, जिनधर्मवाळाओंने मार्ग दर्शाया है उसमें सारभूत क्या है? वो सारभुत जिस पक्षसें होवै सो पक्ष जान लेवै और अच्छे पक्षकी व्याख्या करै, विरुद्ध पक्षकी ओर लक्ष न देवै. आप रहे निज भावे–यानी जैनशासनमें सप्त नयसें मार्गका निर्णय है वही भावमें स्थिर रहेवै; लेकिन किसी जीव पर द्वेप न करै. निंदा न करै–निंदा करनी संसारमैं दुरस्त नहीं है. और वादविवादमभी दूसरे जीवकों या अपने जीवकों लाभ–फायदा होवै अैसी प्रतीति होवै तौ वाद कर. मगर अपने अहंकार ममकार के लिये मत कर. अष्टकर्जीमें पत्र (५२) बारहवे अष्टकमे हरिभद्रसूरि महाराजनें धर्मविवाद करना कहा है; लेकिन शुष्कवाद–कंठशोपरूप–कुछभी फायदा न होवै वैसा वाद करनेका निषेध किया है. फिर जिसकों आत्मधर्म प्रकट करना है तो ज्यौं बन सकै त्यौं वे पुद्गल भावकी प्रवृत्तिसें मुक्त होनेका उद्यम कर रहे हैं. वे दूसरोंकी पंचातमैं क्यौं पडै? जिसकों व्यवहार करणी करनी है वै अैसी करै कि जिसमें आत्म विशुद्धि होवै. और रागद्वेषकी परिणती कम होवै वैसा उद्यम करे. वैसे जीव किसीपर द्वेष रख्खेही नहीं, वो तो हम्मेशां भावदया कर रहते हैं. वास्ते आपको फुरसद मिले जब धर्मोपदेश देवै; उसमैंभी किसीके छिद्र जाहेर होवै वैसा न करै. लेकिन सुनेवालोंकों जिस प्रकार समता बढै उस प्रकार उपदेश देवै.

५७ प्रश्नः—अधर्मि जीवोंके ऊपर द्वेप करैं किंवा नहीं करैं ?

उत्तरः—अधर्मि जीवोंके ऊपर मध्यस्थ रहेवै यानी रागभी न ल्यावैं और द्वेपभी न करै. राग करनेसें अधर्मकी प्रशंसा होवै तौ आपकों कर्मबंधन होवै, और स्वप्रशंसा देखकर दूसरे जीव अधर्म सेवन करैं तो उनका कारणीक बनै. और द्वेष करनेसें वो जीवके साथ वैर बंधन होवै तौ वो कर्म भुक्तना पडै; वास्ते समभावसें रहेवै. अधर्मकी प्रशंसा करनेसें श्रावककों भवभ्रमण करना पडा है. वो कथा अर्थदीपिकामें छपी हुइ कितावके पत्र ७७ मैं है. वास्ते अधर्मिका वहु मानभी न करै.

५८ प्रश्नः—अन्य धर्मवाले धर्मकरणी करते हैं वो निष्फळ जाती है या नहीं ?

उत्तरः—अन्य दर्शनीमैंभी कितनेक जीव केवल अपने आत्माकों कर्मसें मुक्त करनेके लिये जीवदया पालते हैं, असत्य नहीं वोलते हैं, चोरी नहीं करते है, मैथुन नहीं सेवते हैं, परिग्रह नहीं रखते हैं, क्रोध, मान, माया, लोभ पतले पडे हुवेकों ज्यादा पतले करनेका उद्यम करतेही रहने हैं. किसी धर्मपर द्वेप नही ल्यावैं येभी क्रमसें चढती दशाका निशान है. जिस्सें हरीभद्रसूरी महाराजने योगदृष्टिसमुच्चयमैं पातंजलीकों मार्गानुसारीमैं गिन लिये हैं. कितनेक जीव सत्य जैनधर्मपर द्वेप कर रहे हैं और अहंकार ममकार कर रहे हैं, हिंसा करकें धर्म मानते है. ऐसे जो अन्य धर्मवाले होवैं उनका कार्य सिद्ध कैसे होवै ? रागद्वेप है सोही संसारका वीज है और वो तो रातदिन कर रहे हैं, तव उसका लाभ तो सव धर्मवाले कह गये हैं कि संसार फळ–भवभ्रमणही मिलता है. उनका दूसरा फल कहांसे प्राप्त होवै ?

५९ प्रश्नः—जैनमैंभी वहुतसे गच्छ हैं वै सभी शुद्ध हैं या नहीं ?

उत्तरः—जैनमैं शुद्ध आचार्य महाराजका गच्छ तो एक आचार्यका परिवार हो उनकों गच्छ कह गये हैं, उसी मुजब अलग अलग आचार्योंके परिवारकों अलग अलग गच्छ कहेवैं तौ उनमै कुछ एक दूसरेकों हठवाद नहीं है. ऐसे जो जो गच्छ हैं उन सभीमैं धर्मसाधन समान है–सभी मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले हैं. कभी कुछ समझकी तफावतसें किसी किसी ऊवातमैं

एक दूसरे आचार्यके विचारमैं तफावत आता है; तौभी एक दूसरेके ऊपर द्वेष नहीं होता है. दोनू मुक्तिके कामी हैं. उस्सें उनके पीछेकेभी आचार्य ऐसा कहते है कि जिनभद्रक्षमाश्रमणजी यौं कहते हैं और सिद्धसेनदिवाकरजी यौं कहते हैं ऐसैं मध्यस्थ रहते हैं; लेकिन किसीकों ज्यादे कम नही कहते है. वैसैं अपनकोंभी मध्यस्थ रहना चाहीए. जैसे कि खरतरगच्छवाले सामायिकके आद्यमैं करेमिभंतेही कहते हैं और पीछे इरियावही पाडिकमते हैं. इस मुजब आवश्यकजीकी टीकामैं हरिभद्रसूरि महाराजने कहा है. और तपगच्छमैं प्रथम इरियावही पाडिकमते है, उस पीछे करेमिभंते कहते हैं. इस विषयके बारेमैं श्रीमहानिसित्थसूत्रकी अंदर कहा है कि इरियावही कहे विगर कुछभी काम नहीं करना. इन आधार परसें तपगच्छवाले वैसेंही करते हैं. अब दोनू गच्छवाले दोनू शास्त्रकों कबूल करते हैं, तब दुरस्त है कि दोनू गच्छवालोंकों मध्यस्थ रहना चाहियें. जैसे पूर्वाचार्य दोनू आचार्यके दोनू मत दर्शाते है मगर किसीका निरादर नहीं करते है, तैसें अपनकोंभी कबूल करना चाहियें कि यह गच्छवाले इस ग्रंथके आधारसें क्रिया करते हैं, और ये गच्छवाले इस ग्रंथके आधारसें करते हैं. ऐसा कहकर मध्यस्थ रहनां. मगर एकके शास्त्रकों सच्चा और दूसरेके शास्त्रकों झूंठा कहकर रागद्वेषमैं गिरना वो आत्माकों दुःखदायक है. जो प्रवृत्ति पूर्वाचार्यकी नहीं है तौ वो अपनी मतिकल्पनाकीही गिनी जाती है, और शास्त्रसेंभी विरुद्ध है. उसमैंभी वो शांतपणेसें समझ सकें तौ समझाना चाहियें; लेकिन रागद्वेष करना तौ बेमुनासिब है. अपने आत्माकों गुण प्राप्त होवै वैसी प्रवृत्ति करनी; क्यौं कि ठाणांगजीमैं चौभंगी है कि—परगच्छी है और योग्य जीव है उसकों अपने गच्छके हठसें ज्ञान नहीं देते है वो भगवंतकी आज्ञाका उल्लंघन करते हैं. इस्से समझा जाता है कि जो गुणवंत होवै और परगच्छी होवै तौभी उनका अनादर नहीं करना; सबब कि गुणवंत होवै वो सम परिणतिवंत होते हैं, उसके साथ परिचय करनेसें गच्छकी तकरार आनेही नहीं पाती है. एक दूसरेकी भूल होवै सो सुधर जाती है; वास्ते गच्छका हठ करकै तकरारमैं

नहीं झुक जाना. शास्त्र तर्फ दृष्टि देकर विचारना. दोनू शास्त्रमें दो बाते अलग होवें वो कुछ दोनू ग्रहण होती नहीं. और दोनूमेंसें एकभी बात असत्य होतीही नहीं; लेकिन वे दोनूके हेतु अलग अलग होते हैं, वो गीतार्थ जान सकते हैं. आधुनिक कालमें अैसे गीतार्थका वियोग है. भगवतीजीकी टीकामें अभयदेवसूरि महाराजभी गीतार्थका विरह कहते हैं, वास्ते अपनी अल्पमतिसें मुकरर नहीं हो सकता है. इसलिये मध्यस्थ रहकर प्रवृत्ति करनी और जिस मुजब करनेसें हठ कदाग्रह न होवै उस मुजब चलना कि जिस्सें आत्माकी परिणति न बिगडने पावें. ठाणांगजीके चौथे ठाणेमें छपी हुइ प्रतके पत्र २८२ के दूसरे पृष्ठमें इस मुजब लेख है कि:—पुरुष चार प्रकारके है-१ साधुधर्म सो जिनाज्ञा उसकों छोड देवै, और गण-गच्छकी स्थिति यानी गच्छकी मर्यादा नहीं छोडता है. किसी आचार्यनें अैसी मर्यादा कही है कि दूसरे गच्छके यति साधुकों सिद्धांत न देना. अब दूसरे गच्छके यतिकों श्रुत न देवै, न पढावे, वो धर्म जिनाज्ञा छोडता है; मगर गच्छकी स्थिति नहीं छोडता है. जिनाज्ञा अैसी है कि-'जो योग्य होवें उन सभीकों श्रुत देनाही योग्य हैं.' यह पहेले पुरुषकी रीति है. और दूसरा पुरुष गच्छकी आज्ञा छोडकर दूसरे गच्छके यतिकि जो योग्य होवै उस्कों श्रुत देता है. वो पुरुष जिनाज्ञारूप धर्म नहीं छोडता; मगर गच्छ स्थितिका उल्लंघन करता है. तीसरा पुरुष जो अयोग्य अन्य गच्छवाले यतिकों श्रुत देता है, वो पुरुष धर्म और गच्छ ये दोनूका उल्लंघन करता है. और चौथा पुरुष, दूसरेके शिष्य हैं; लेकिन वे श्रुत रखनेके योग्य हैं इस्सें अपने शिष्य बनाकर श्रुत देता है, वो पुरुष धर्म और स्थिति इन दोनूकी मर्यादा पालन करता है. इस मुजब ठाणांगजीमें अधिकार है. उस पर लक्ष देकर कदाग्रहमें न गिरते स्हामनेवालेकों या अपने आत्माकों लाभ होवै सोही प्रवृत्ति करनी. ये चौभंगीमें अैसी शंका होगी कि 'आचार्योंने गच्छकी स्थिति कैसी बनाइ है?' उसके लिये उसी टीकामें कहा है कि-प्रभुके उपदेश रहित आज्ञा बंधी गइ है. सबब कि प्रभुका उपदेश समस्त योग्य जनोंकों ज्ञान देना अैसा

है. इस मुजब टीकामै है. फिर चौथे भांगेवालेके लिये गाथा रख्खी गइ है कि–ये पूजनीक है. उस्से विदित होता है कि ये गच्छकी खोटी रीति परसें चित्तकी रुचि कम हुइ मालूम होती है. तत्त्व केवली गम्य है.

६० प्रश्नः—इस कालमैं देव आता है या नहीं ? न आनेके सबब परदेशी राजाके विवादमैं आगे कह बतलाये है, उसी वास्ते नहीं आ सकते हैं ?

उत्तरः—चार कारणसें देवता आते हैं. यह आधेकार ठाणांगजीमैं चौथे ठाणेमैं छपी हुइ प्रतके पत्र २८६ के पहेले पृष्ठसें संबंध चला है. चार स्थानकमै अभीका पैदा हुवा देवता देवलोकमैं रहा हुवा चाहता है और मनुष्यलोकमैं आनेके वास्ते समर्थ होता है यानी तुरतका उत्पन्न हुवा देवता देवलोकमै दिव्य काम भोगनेके विषे मूर्छित न हुवा होवै वो देव अनित्यता ध्यानमै लेकर यावत् अत्यंत आसक्त मन न हुवा होनेसें चिंतवन करता है कि–मेरे मनुष्य भव संबंधवाले आचार्य, प्रतिबोधक, वा उपाध्याय, सूत्रदाता, प्रवर्त्तक (जो साधुजनकों आचारमै प्रवर्त्तावै), वा स्थविर वा गणीगच्छके स्वामी, गणधर [गच्छके धरनेवाले], वा गणावच्छेदक [गच्छकी सार करनेवाले] ऐसे महाशय कि जिनके प्रभावसें यह प्रत्यक्ष देवसंपत्ति–देवताका शरीर तथा कांति प्राप्त हुइ. जन्मांतरमैं उपार्जन की हुइ पुण्यलक्ष्मी सन्मुख खडी हुइ; वास्ते मैं वहां जाउं और वो उपकारी भगवंतका वंदन करुं यावत् उन्होंकी सेवा करुं. यह पहिला सबब. दूसरा सबब यह होता है कि–तुरतका उत्पन्न हुवा देवता जबतक विषयमै अत्यंतासक्तिकों प्राप्त न हुवा होवै तब तक वो देवता चाहता है कि मेरे मनुष्यजन्म संबंधी माता पिता भार्या भाइ भगिनी पुत्र पुत्री हैं उनकों मिलनेके वास्ते वहां जाउं. उन्होंकी पास जाकर प्रकट हो खडा रहुं. वे सब मेरी दिव्य देव संबंधी विमान वगैरः की संपत्ति, रत्न प्रमुखका दिव्य देवकांति आदि प्राप्त हुइ है वो देखैं; यह दूसरा सबब है. तीसरा सबब यह है कि–तुरंतका उत्पन्न हुवा देवता शोचता है कि मनुष्य भवमैं ज्ञानी श्रुतज्ञानादिक सहित हैं, वा बडे तपस्वि है, वा अति दुष्कर करणीके करनेवाले हैं उन्हकों वंदन निमित्त यावत् सेवा भक्ति निमित्त वहां जाउं. ये तीसरा कारण है. और

चोथा सवव यह है कि–नवीन उत्पन्न हुवा देव मनमें शोचता है कि–मेरे मनुष्य भवके मित्र स्नेही सहचारी वा संगतिक–परिचयवंत है उन्होंके साथ मनुष्यजन्ममें था उस वक्त परस्पर संकेत कीआथा था देवतामें संकेत किया था कि देवताकी अंदरसें प्रथम च्यवन हो मानवमें जावै तव उन्हकों प्रतिवोध देना, ये चार सवव हैं. इस मुजव ठाणांगजीकी अंदर अधिकार है; वास्ते देव यहांपर नहीं आता है ऐसाभी एकांतसें न समझना चाहिये. फिर वीरस्वामीके निर्वाण पश्चात् वहुतसे आचार्य महाराजकी सेवामें देवता आये हैं. देवकी मददसें श्रीसीमंधरस्वामीजीके पास शंकाकी समाधानीके स्वालोंके खुलासे मंगवाये हैं; लेकिन अत्यंत गुणवंत होवै उनकी सेवामें देव आता है. हीरविजयसूरीजी तकके आचार्योंनें देवकी सहाय्यतासें शासनकी वहुतसी प्रभावना की है. फिर आनंदविमलसूरीके वक्तमें श्रावकने देवाराधन कियाथा और उस देवकों पुंछाथा कि–' अभी युगप्रधान कौन हैं?' तव देवने युगप्रधानकी पहिचान होनेके लक्षण कह वतलायेथे. उस्सें श्रावकने तजवीज की तो आनंदविमलसूरीजीकों युगप्रधान मुकरर कीये थे. यह अधिकार हीरविजयसूरीके रासमें है. वास्ते न आवे ऐसा निश्चय नहीं है. (शेठ अनूपचंदजी लिखते है कि–) मुझेभी मुनिसुव्रतस्वामी जीके प्रभावसें कुछ अनुभव हुवा है. फिर व्यवहार सूत्रकी भाष्यमें कहा है कि–किसी मुनिकों गुरुमहाराजका योग न होवै और प्रायश्चित लेना होवै तो अठ्ठमका तप करकें भरुचमें मुनिसुव्रतस्वामीजीका आराधन करना, उस्सें उन प्रभुके अधिष्ठायक आकर प्रायश्चित देवैंगे; सवव कि मुनिसुव्रतस्वामी जीनें और उन्हीके गणधरोंनें वहुतसें प्रायश्चित दीये हैं वो उन्ह अधिष्ठायक देवोंने सुने हुवे हैं उस सववसें वे देवैंगे. कदापि वे देव दूसरी गतिमें चले गये होवेंगे तो उन्हीके दूसरे अधिष्ठायक देव श्रीसीमंधरस्वामीजीकों पुंछ करकेंभी खुलासा देवैंगे, इस्सेभी समझा जाता है कि देव यहां आते हैं. यह अधिकार व्यवहारसूत्रकी भाष्यकी टीकावाली प्रत जो मेरे पास है उसमें पत्र २०६ के दूसरे पृष्ठ मे पहिला उद्देशाकी समाप्तिके भागमे है.

६१ प्रश्नः—सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीका यह पांचों अंग तुल्य मानने आते है. और कोइ नहींभी मानते है, तो उसमें व्याजवी क्या है?

उत्तरः—ये पांचों अंग समान मानने चाहियें; सबब कि सूत्रमैं दश पूर्वधरके वचन तो सूत्र तुल्य कहे हैं. अब भद्रबाहुस्वामी चोदह पूर्वधर हुए, उन्होंने निर्युक्ति रची है, तौ उसमैं तफावतकी भावना ल्यानी वो अज्ञानता है. फिर समवायांग सूत्रमैं ऐसा पाठ पत्र २२८ मैं छपी हुइ प्रतमे है कि- 'कप्पस्स समोसरणंणेयं'–इसका अर्थ किया गया है सो कल्पकी भाष्यसें समवसरणका अधिकार जान लेना. और छपी हुइ भगवतीजीमैं पत्र ९१८ मैं कहा है वो सिद्धगंडिआसें जान लेना.

यहां पर कोइ शंका करेगा कि समवायांगजी तौ गणधर महाराजने गुंथन किया है, और भाष्य पीछेसें रचा गया है, तैसेंही सिद्धगंडिआभी पीछेसें रचा गया है, तौ उसमैं वो अधिकार कहांसें आया? उसके उत्तरमैं यह समाधान है कि जिस वक्त देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीनें शास्त्र लीखे उस वक्त ज्यादा लिखान न बढ जावै उनके लिये एक दूसरे शास्त्रकी भलामण की. जैसें कि भगवतीजीमैं पन्नवणाजीकी और जीवाभिगमजी वगैरः की भलामण है. अब पन्नवणाजी शामाचार्य महाराजने बनाया है तौ वो भलामण भगवतीजीमैं कहांसें आवे? मगर लिखनेके वक्त एक बात ज्यादे जगह लिखनी न पडे उस्सें उपांग, पयन्ना भाष्यकी ये भलामणें करकें संकोच किया. इसपरसें शोचनेका है कि देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीकों जो ज्ञान था उसमै सूत्रनिर्युक्ति भाष्य वगैरः यादीमै था सो लिखा. तब जो सूत्रमै और निर्युक्ति भाष्यमै शंका होती तौ क्यौं लिखते? उन्होंनें तो अपने पर परमोपकार बुद्धि लाकर सूत्रादि लिखाये. वास्ते इसमै कुछ शंका या फेरफार माननेका बेमुनासिब है. फिर आर्यसुरक्षितसूरीजीनें सूत्रका संक्षेप किया, वो अधिकार हरिभद्रसूरीजीकी रची हुइ आवश्यककी टीकामैं है. वोभी मानवगणकों शंका हो आवैगी कि उन्मेंभी कुछ फेरफार किया होगा; लेकिन आर्यरक्षितसूरीजीके पाटपर दुर्बलीपुष्प हुवे. उनके वक्तमे गोष्टामाहिल हुवे. उस समय देवताके द्वारा पुंछवा लिया था कि- 'आर्यदुर्बलीपुष्प कहते हैं वो सचा है या गोष्टामहिल कहते हैं वो सचा है?' श्रीसीमंधरस्वामी महाराजजीने देवताकों कहा कि–'आर्यदुर्बलीपुष्पका कथन सत्य है. गोष्टामहिल निन्हव है.' यह अधिकार उत्तराध्ययनजीकी टीकामे है. इससें सबूत होता है कि आर्यरक्षितसूरीके पाटपर आर्यदुर्बलीपुष्प हुवे है तौ वे आर्यरक्षितसूरीके वचन

मानते थे, वे वचनोंकी प्रतीति श्रीसीमंधरस्वामीजीने दी; तौं यह वार्त्ताभी सिद्ध हुइ. उस पीछे जिनभद्रगणीक्षमाश्रमणजी हुवे, उन्होंने भाष्य रचना की, और चूर्णी आचार्यने बनाइ. और उनमेंसें कितनीक टीका हरिभद्रसूरीजीने बनाइ. वैसेंही दूसरे आचार्यकी बनाइ हुइभी उन्होंने प्रमाण रख्खी. उन हरिभद्रसूरीजीकों शासनदेवने १४४४ ग्रंथ रचनेका कहा. अब शोचिये कि पांच अंगमे विरुद्ध होता तौ हरिभद्रसूरीजीकी श्रद्धाभी विरुद्ध ठहरती, तो शासनदेव रचनेका क्यौं कहे? मगर शासनदेवने शुद्ध पुरुष जानकर हरिभद्रसूरीजीका मान्य किया-सच्चा माना तौ १४४४ ग्रंथ रचनेके लिये कहा. वास्ते ये पांच अंग शासनदेवताने योग्य जान लिये थे, इस प्रमाणसें इसमे कुछभी विषमवाद गिनना नहीं. और गिने तौ वो सख्स भगवंतकी आज्ञाका लोपनेवालाही ठहरे. फिर अभयदेवसूरीजीने टीकायें बनाइ तौं उन्होंनेभी शासनदेवके कहनेसेंही टीकायें बनाइथी. इस तरह बहुत प्रकारकी ये पांचों अंगोंकों छाप है. फिर दूसरी तरह शोचो कि सूत्र तौ सूचकमात्र है और सबका खुलासा तो पंचांगीसेंही मिल सकता है. जो लोग पंचांगीकों नही मानते है वैभी गुप्त रीतिसें टीकायें देख कर शोचते हैं तभीही अर्थ हाथ लगता है; वास्ते पंचांगी प्रमाण करनेसें यथार्थ बोध होता है.

६२ प्रश्नः—उनसठवे प्रश्नमे कहा गया है कि-दश पूर्वधरके वचन प्रमाण करना अैसा शास्त्रमें कहा है, और देवार्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी तौ दश पूर्वधरभी न थे तब वो कथन किस तरहसें प्रमाण कीआ जावे. ?

उत्तरः—देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने कुछ नइ रचना नहीं की है. गणधर महाराजकी पाट परंपरामे जो पुरुष चले आये उनकी पाससें आपने धारणा कीथी उस मुजब लिखा; वास्ते उसमे कुछ पूर्वकी न्यूनताके बारेमे शंका ल्यानेकी जरूरतही नहीं है.

६३ प्रश्नः—बाह्य वा अभ्यंतर तपश्चर्या करनेसें निर्जरा होवे कि पुण्य बंधा जाता है?

उत्तरः—जो पुरुष स्वसत्ता परसत्ताका ज्ञान पा चुके है वे पुरुष शरीरकों जड करकें जानते हैं. फिर जानते हैं कि जो जो कर्म उदीरणा करकें उदय होता है और समभावसें भुक्तनेसे नये कर्म बंधाते नहीं पूर्वके बांधे हुवेभी एक कर्मके साथ दुसरेभी शिथिल कर्म रहे है. तब समभाव आनेसें शिथिल कर्म तौ प्रदेशसें भुक्ते जाते हैं, तब जो पुरुष कर्म खपानेके लिये

उदीरणा करे उसकों तौ अवश्य समभावही होवै. वास्ते वो प्रदेश उदयके कर्मकी निर्जरा होती है. दूसरे कर्म जो निकाचित होवै वोभी शिथिल होवै, मात्र एक उत्कृष्ट स्थानवर्ति निकाचित कर्म है वो भुक्तें विगर अलग होते ही नहीं, और मध्यम स्थान वर्त्ति तौ ज्ञानसहित तपसें नाश होती है. यह अधिकार विशेषावश्यमें है. तप करनेमें अशाताभी होवै तौ उसकीभी निर्जरा होती हैं. फिर शुभ योग रहे हैं उस्सें पुण्यभी बंधा जाता है; परंतु पुद्गलिक सुखकी इच्छा नहीं है उस्सें वो पुण्यभी मुक्तिकों सहाय्यकारी होवै; लेकिन मुक्तिकों रोकनेवाला नहीं है. वास्ते तपश्चर्या करनेसें मुख्य पणे निर्जराही होती है. निर्जराके बारह भेद वही तपके बारह भेद कहे हैं. फिर तिर्थंकर महाराजजी और दूसरे मुनि महाराजभी बहुत तपश्चर्या करकें कर्मक्षय कर तद्भव मुक्तिमंदिरमें पधारे हैं, वास्ते जो तपश्चर्यासें पुण्यबंध हो अटक जाता तो वै पुरुषोंकोंभी रुकावट होती वो नहीं हुइ है, उस्से समझा जाता है कि निर्जराही मुख्यपणे होती है.

६४ प्रश्नः—आत्मतत्वका ज्ञान न होवै उसकों तपश्चर्या करनेसें क्या लाभ होवै?

उत्तरः—आत्मज्ञान नही होता; मगर आत्मज्ञानी पुरुषकी निश्रासे रहकर वर्त्तते है वै पुरुषभी कर्म क्षय कर सकते हैं. जेसें कि मासतुस मुनिकों एक चरणभी मुँहपर याद नहीं हो सकता था; मगर गुरुकी आज्ञामें रहकर एक चरणका अभ्यास जारी रख्खा तौ केवलज्ञान प्राप्त हुवा; सबब कि गुरुमहाराज निश्चय–व्यवहार–उत्सर्ग–अपवाद–द्रव्य–भाव ये सभीके ज्ञाता है; वास्ते शिष्यकों थोडा वोध होवै तौभी मुख्य मुख्य बाबत गुरु समझा देवैं. उस्से उनके आत्माका कार्य सहजहीमें हो जाता है. दूसरे मनुष्य साथ वादविवाद न कर सकें; मगर स्वात्माका काम कर सकता है; वास्ते अैसे पुरुषका तप सफल है. गीतार्थ और गीतार्थकी निश्रा यह दो प्रकारका मार्गही कहा है.

६५ प्रश्नः—गीतार्थकी निश्रा नहीं और स्वच्छंदतासें करे उसकों कुछ लाभ–फायदा होवै या नहीं?

उत्तरः—भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र १९८ मे चौभंगी है, उसमें कहा है कि-जो श्रुतसें करकें रहित अज्ञानी बालतपस्वी गीतार्थ अनिश्रितदेश आराधक कहा है, फिर ज्ञाताजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ३४६ में मेघकुमारका अधिकार है. मेघकुमारने पिछले हाथीके भवमें ससेकी दया कीथी उससें उस जगह कहा है कि संसारका अंत लाया. विपाकसूत्रमे-सुखविपाकमें पत्र २६२ सें बाहु तथा सुबाहुकुमारके पिछले भवका अधिकार है. उन्होंने मुनिकों प्रतिलाभे थे उस वक्त कुछ समकित नहीं था. तथापि वहां कहा कि संसार परित किया उस्सें अंत आया; वास्ते गीतार्थकी अनिश्रासें मोक्षकी कामना युक्त धर्मकरणी करता है वोभी सफल होती है. परंपरासें लाभ मिलता है; लेकिन अपने अहंकारके लिये गीतार्थकी निश्रा छोड देता है और दिलमें उन्माद करता है कि गुरु क्या करनेवाले हैं ? गुरु जो करनेका कहेंगे वो तो मै करता हुं. ऐसे अभिप्रायसें करनेवालेकों तो फायदा होनेका संभव नहीं है. गुरुकी योगवाइ नहीं मिलती तौभी चित्तकी भावना वर्त्तती है कि-कब मुझे गुरुका योग मिलेगा ? फिर मिलनेसें उन्होंकी आज्ञा मुजब चलुंगा-ऐसे जीवकों लाभ होता है. इस वृत्ति सिवायके अहंकारी प्रमुखकों लाभ नहीं मगर नुकसान तो बेशक होता है.

१६ प्रश्नः—यह लोकके उपर लोककी वांछना रहगइ है और तप वगैरः करै उसकों लाभ किस प्रकार होवै ? फिर उपदेशमालाकी गाथा ३२५ मे कहा है कि अज्ञानी तप करै वो निष्फल होवे वास्ते उसका क्या खुलासा है ?

उत्तरः—मुख्य वृत्तिसें यह लोक परलोककी वांछासे तपश्चर्या वगैरः करनेसें संसार बढावे; मगर प्रथम तो यह लोककी वांछासें करे; तथापि उत्तम पुरुषकी संगति होवै तो उससें किसीकोंभीलाभ होता है. जैसें कि संप्रतिराजाके जीवने पिछले भवमै आजीवीकाके वास्ते संयम ग्रहण कीया था; तौभी वो काल कर (मरन के शरन होकर) के राजा हुवा. वहांभी आर्यसुहस्तिसूरीजीकों देखकरकें जातिस्मरण ज्ञान हुवा और समकित पाया. इत्यादि बहुतसें गुण हुवे. यह अधिकार परिशिष्टपर्वणिमै पत्र २७७ की अंदर छपी हुइ किताबमे है. वास्ते एकांत येभी निश्चय नही है; लेकिन ज्यौं बने त्यों यह

लोककी और परलोककी वांछना कम होवें वहीउद्यम करना दुरस्त है. मगर कितनेक जीव लालचसें करते होवें उसका तपश्चर्यादिकका उद्यम छुडाना नहीं. उनकों उपदेश देकर यह लोक परलोककी वांछना छुडा देनी चाहिये जैसें कि उपाश्रयमें बतासे श्रीफलकी प्रभावना होती है.-अब वो लेनेकों आया, लेकिन वंटनेकी देर है और दरम्यान धर्मश्रवण किया, वो अच्छा लगा और रूचि हुइ, तौ पीछे आत्माका हितभी होवै; वास्ते धर्मकरणी करनेमें किसीकों रूकावट नहीं करनी. और बन सकै तौ परभावकी जो वांछना है वो छुडा देनी ये अच्छा है. हरिभद्रसूरिजी अष्टकजीके आठवे अष्टकमें मेरी पास जो प्रत हैं उसके पत्र; ४१ में लिखते है-कि-जो ये लोक परलोककी वांछनासें तप करता है; मगर अरिहंतजीके भक्तिफळसें मुजकों लाभ मिलेगा अैसी भावना है, उसमै अरिहंतजीके ऊपर राग है वो परंपरासें जोडनेवाला है-इस मुजब ल्याये हैं. फीर पंचाशकजीमेंभी इसी मुजब पत्र १९४ में तपका अधिकार है, उसमैंभी यह बात परंपरासें लाभकारक बतलाइ गइ है. फिर नंदीजीकी टीकामें (छपी हुइ प्रतके पत्र २४१ में.) सबसें कम गृहस्थलिंगसें सिद्ध और अन्यलिंगसें असंख्यात गुणे सिद्ध होवै, उससें साधुलिंगसें जैन के वै असंख्यात गुणे सिद्ध होवें. फिर सिद्ध पंचाशिकामें एक समयमें गृहस्थलिंगसें चार सिद्धि प्राप्त करनेका कहा है; और अन्य तापसलिंग दश सिद्धि प्राप्त करनेका कहा हैं. अब शोच ल्यो कि गृहस्थलिंगमें श्रावक सम्यग्दृष्टि सब आगये तोभी चार सिद्धि प्राप्त करते है. और तापस्यादिककों कुछ समकित मुद्दल शुरूसेंही नहीं, परभी दश सिद्धि प्राप्त करै. उसका सबब इतनाही हैं कि जो समकित दृष्टि श्रावकनें आत्माका और परका स्वरुप और संसार अस्थिर जान लिया है; लेकिन पूर्व कर्मके योगसें संसारमेंसे नहीं निकल सकता है, इस सबबसें विशेष विशुद्ध न होनेके लिये कम जन सिद्धिकों प्राप्त करते हैं. तापस वगैरःका अज्ञानतासेंभी वैराग्य प्राप्ति होनेसें संसार छोड दिया; मगर यथार्थ बोध नहीं हुवा उससें अन्यदर्शनमें पड रहे है; तौभी भवितव्यताके जोरसें सहजसें खोटे दर्शनका मार्ग

देखनेसें वो खोटा मालूम हुवा, और जो वस्तु सर्वज्ञ महाराजजीनें जैसी बताइ है वैसी दिलमें सची मालूम हुइ उससें खोटी वस्तुके ऊपरसें दिल हठ गया. सच्चे पदार्थ जो नव तत्त्व वे ज्यौं हैं त्यौंही उपयोगमें आये, देवका स्वरूप उपयोगमें आया उसी मुजब ध्यानादिकमें कुशल हुवे, द्रव्यसें संसार खोटा जान कर त्याग कर दियाथा वो अब भावसेंही खोटा समझनेमें आया. अपने आत्मिक सहज भावमें रहना वही प्रिय हुवा—इस मुजब ध्यान करना सुगम पडा, उस्सें गृहस्थसें अन्य लिंग ज्यादे सिद्ध होते हैं. तापसोंने अज्ञानपनेसें संसार न त्याग किया होता तो गृहस्थकी तरहसें उनकोंभी मुश्केली उठानी पडती. इसपरसें ख्याल करनेका है कि अन्य लिंगमेंभी त्यागभावसें गुण होता है, तो जैनकी तपश्चर्याका अभ्यास है वे अनुक्रमसें क्यौं गुनकौं न जोड दे? वास्ते धर्मकी अभिलाषा है वही गुणदायक है; मगर कितनेक ऐसी क्रिया करकें अहंकार करै कि अपन तो बराबरही करते हैं, बहुत पढकर क्या करना है? थोडेही ज्ञानसें बस हैं. फिर कोइ समझाता है कि ज्ञानाभ्यासका उद्यम करनेका कहता है पर ज्ञानाभ्यास नहीं करता है. प्रभुकी आज्ञा आराधनेकी बुद्धि नहीं—जो जो वस्तुकों बोध नहीं है उसकों मीलानेकी इच्छा नहीं—फक्त जनरंजनार्थके लियेही करता है—उनके वास्ते तो उपदेश मालामें कहा है उसीही तरह तप निष्फल होवै. यह लोककी वांछावाले बहुत करकें देवलोकादिक मिलनेसें देवके सुखोंका अभिलाष है उस्में लुब्ध हो जावे उससें धर्म करना दुर्लभ हो पडे. वास्ते ज्यौं बन सकै त्यौं वांछा तो कम करनी; लेकिन त्यागभावसें विमुख नहीं बनाना. निकट साधन तो प्रभु आज्ञासें चलना और वोभी ज्ञान सहित चलना कदाचित् ऐसा न बन सकै तो ज्ञानसहित आज्ञा सहित करनेकी अभिलाषा रखकर चलै वही उत्तम पुरुषका काम है, जैनकी जो जो क्रियाए हैं उनका अभ्यास करनेसें शुद्ध होता है, उस लिये पंचाशकके पत्र ८.वेमें सामायिकका अंदर उनके अतिचारमेंभी ऐसा कहा है कि मन स्थिर है वो अभ्यास करनेसें स्थिर होता है, वास्ते अच्छा अभ्यास करना और ज्ञानाराधनमें लक्ष र-

खना जो जो प्रभु आज्ञाकी बहार होता है यानी आज्ञा विरुद्ध होता है उसके वास्ते अैसी भावना रखनी कि—जो भगवंतजीकी आज्ञा है उस मु-जब कब चलुंगा ? अैसे भाववालेको कार्यसिद्धि समीप है.

१७ प्रश्नः—यात्रा करनेके लिये तीर्थोंमें जाना उससें क्या फायदा—लाभ है ? जहां अपन रहेते है वहांभी भगवंतजी तो होतेही है तो तीर्थभूमिकी जात्रा कर-नेसें क्या विशेषता है ?

उत्तरः—यात्रा जानेका लाभ, समकित निर्मळ होता है अैसा आवश्यक निर्युक्तिमें भद्रबाहुस्वामी कि जो चौदह पूर्वधर थे उन्होंने कहा है. (वो प्रत हाजिर न होनेसें पत्रांक नहीं दिया गया है.) फिर उपदेशमालामें धर्मदास गणि महाराजनें २३६ वी गाथामें कहा है कि—श्रावक भगवंतके पांचों कल्याण-ककी जगह यात्रा करनेकों जावे. अब जानेसें क्या फायदा होता है ? उसका खियाल करो कि—घरके आगे व्यौपारकी, संसारकी, कुटुंबकी, अैसी अनेक पीडाये—उपाधिये होती है उनके विकल्प करकें धर्मसाधन पूर्णतासें नहीं हो सकता है; लेकिन गाँव घर छोडकर तीर्थयात्राकों जावे जब वे सभी दूर हो जाते हैं, सोबतमें सब धर्मीष्ट भ्रातायें होते है उससें बुद्धिभी शुद्ध होती है और शास्त्रका ज्ञान होता है. फिर मार्गमें गाँव आवे वहांभी कितनेक उत्तम मुनि महाराज तथा श्रावकोंका योग मिले, उनकी पाससेंभी नवीन ज्ञान प्राप्त होवे, और तीर्थोंमेंभी वैसेही उत्तम पुरुषोंकी भेट होवे, उन्होंके समीप रहनेसेंभी ज्ञानका बोध होवे तथा वैराग्य हो आवे—यही लाभ होते हैं. यहां पर कोइ प्रश्न करेगा कि—घर परभी अैसे पुरुषोंकी भेट हो सकती है. तो उसके उत्तरमें यही खुलासा है कि घरपर अैसा पुरुष कभी कभी आ जावें तो लाभ होता है मगर तीर्थस्थलमें वैसे उत्तम महात्मा बहुत प्राप्त हो सकते हैं, वास्ते ज्यादे लाभ होता है. और तीर्थस्थलमें तीर्थंकर महाराज, गणधर महाराज तथा मुनि महाराज जहां जहां निर्वाण पद पाये है वहां वहां; जानेसें वे महान् पुरुष याद आते हैं और उन्होंके गुणानुवादका गान किया जाता है, उस्सें बुद्धिकी शुद्धि होती है. फिर वे महान् पुरुष जिस प्रकारसें गुणवंत हुवे वो मार्गपर वहन करनेकी

अभिलाषा होती है और संसारमें उदासीनता होवै. तथा आत्मतत्त्व खोज नेकी इच्छा होती है. परभाव रमण दूर होवे, अपने आत्माका गुण प्रकट करनेका उद्यम लब्ध होवे. जैसी जैसी विशुद्धि होवे वैसा वैसा उद्यम करै. अतिशय विशुद्धिवाले जन पहाडमै गुफार्ये है वहां एकांतमें बैठकर अपने आत्माकी जडके विभाग करैं. भेदज्ञान करैं. धर्मध्यान शुक्लध्याना-दिक ध्यावै और वडा लाभ उपार्जन करैं. औरभी बुद्धि शुद्ध होनेका सवव हैं कि—उत्तम पुरुषोंके अंगमै जो पुद्गल [रजकण–परमाणु] इकठे हुवे हैं वे बहुत उत्तमही एकत्र हुवे हैं. जैसें कि क्षपकश्रेणि मांडनेकी इच्छा होवै तौ वज्ररुषभनाराच संघयण चाहियें—उस संघयण विगर उत्तम ध्यान न कर सके. तव पुद्गलकीभी सहायता चाहियें. तथा उत्तम पुरुष यानी जिसकी मुक्ति होनेकी है ऐसे पुरुषके शरीरमैं जो ध्यानमै वृद्धि होवै वैसे पुद्गल एकत्र हुवे है, वै पुरुष तीर्थस्थलमैं निर्वाण प्राप्त हुवे हैं उससें वहां वे पुद्गल विखरे हुवे हैं; वास्ते वहां अच्छे पुद्गलोंका वहुत वडा हिस्सा होता है वो अपनमै दाखिल होता है. यदि बहुतसा काल हो गया है, तदपि वैं सब उत्तम पुद्गल कुछ नाश नही हो जाते हैं, उस्सें तीर्थस्थलपर भाग्यवंत जीवकों श्रेष्ठ पुद्गलोंका स्पर्श होता है और उसीसें बुद्धि शुद्ध होती है. उनमेंभी जिस पुरुषकों विशेष अच्छे पुद्गलोंका स्पर्श होता है उनकी विशेषतासें बुद्धि विशुद्ध होती है. कवचित् भाग्यहीनकों अच्छे पुद्गलोंकी स्पर्शना नहींभी होती है, बुरे पुद्गलोंकाही स्पर्श होता है वो उनके कर्मकी विचित्रता है; परंतु मुख्यता तौ वहां अच्छे पुद्गलों-कीही है, उसी लिये क्रमसें ज्यादे लाभ होनेकाही कारण तीर्थयात्रा है. अपने गाँवमैं जिन विंब होवै; मगर ये कारण सभी नहीं प्राप्त होते हैं वास्ते शास्त्रकारोंने यात्रा जानेमैं लाभ वतलाया है. उसी सववसें यात्रा करके ऐसे साधन साध्य करै कि जिस्से बहुतही फायदा होवै.

६८ प्रश्नः—सामायिक पौषध और प्रतिक्रमणके अंदर आभूषण रक्खे जाँय या नहीं?

उत्तरः—पंचाशकजीमैं सामायिक व्रताधिकार पत्र १८ में है, वहां आभूषण उतार डालनेका कहा है, और पोषधाधिकार पत्र १९–२० मैंभी आभू-

षण उतार डालनेकी आज्ञा दी है. फिर भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ९७७ में शंखजीका अधिकार है, वहांभी आभूषण उतारकर पौषध लिया है. फिर दूसरी तरह भी समझनेका है कि समायिक संयुक्त जो पौषध करता है उसमें आहारका पौषध देशसें तथा सर्वसें है, और शरीर सत्कारादिक पौषध सर्वथा करनेका कहा है तौ फिर आभूषण क्योंकर रख्खे जाँय? फिर तत्त्वार्थमेंभी पत्र २४२ में आभूषण पहरकर सामायिक पौषध करना योग्य नहीं असा कहा है. सौभाग्यवती स्त्रीयें जो अहिवा-तन-सधवाचिन्ह रूप शृंगार पहरती हैं और किसी समयभी जो शृंगार परित्याग करने योग्यही नहीं वैसे भूषण रख्खे जावै; मगर उस शिवा-यके भूषण स्त्रीयेंभी पौषधादिकमें त्याग कर देवै असी आज्ञा है.

१९ प्रश्नः—कोइ मुनी संयमसें भ्रष्ट हुवे है वे प्रवृत्ति नही कर सकते; मगर शुद्ध प्ररुपणा करते हैं तौ उनके मुखसें धर्म श्रवण करना या नहीं?

उत्तरः—शुद्ध प्ररुपक गुण उपदेशमाळामें बहुत प्रशंसनीय कहा है. असे पुरुषोंकों शास्त्रमें संवेगपक्षी कहे हैं. शुद्ध प्ररुपकपणा प्राप्त होना बडा कठिन है, और जिनकों वो गुण प्राप्त हुवा होवै तौ उन्की पास धर्म श्रवण करना चाहियें. उन्होंका विनयभी करना उचित है. कितनेक कहते है कि जैसे तैसेके पास जावें सही मगर उन्कों वंदना न करै. असा कहना अयोग्य है; सबब कि जिनके पास श्रवण करना है और ज्ञान लैना है, तौ बेशक वंदनाभी करनी चाहियें. और वंदना करनी योग्य नहीं तो श्रवण कर-नाभी योग्य नहीं. लेकिन संवेगपक्षीकी मुख्य परीक्षा इतनीही है कि दूसरे त्यागी पुरुष हैं, अच्छी तरहसें संयम पालन करते हैं वो पुरुषकी निंदा नहि करैगे, मगर उनका बहु मान करैंगे, उनको सेवा भक्तिकी प्रेरणा करैंगे; क्यौं कि आपसें संयम पलता नहीं, मगर समकितगुण आपमें रहा है, उससे वे अपने आपके दूषणकी निंदा करैंगे. और आपसें अधिक संयम पाळते है उन्का अवश्य बहुमान करैंगे. गुणवतका असा स्वाभाविक धर्म है, और असे पुरुष है वै श्रावककों सेवा करनेही योग्य है. वर्तमान समयमें बकुशकुशल संयमभी है; वास्ते अल्प दूषण देखकर

मुनिपणेकों निषेधनेसें बडा भारी दूषण होता है, इसलिये शुद्ध प्ररुपक पर बहुत लक्ष रखना. गुणीकी निंदा होवै तौ फिर दूसरे मरतबे गुणिका योग मिलना दुर्लभ हो जावे. निर्गुणिकी साथ राग-प्रीति हो जावे तो गुणिजनपर द्वेष हो आवै, तो पुनः धर्मकी प्राप्ति दुर्लभ हो जाती है. वास्ते अपने आपके आत्माकी हिफाजत रखकर शुद्ध प्ररुपणा करते हैं तौ वै अवश्य सेवा करनेके लायक है.

७० प्रश्नः—साधुजी महाराजके पास कोइ शख्स दीक्षा लेनेकों आवै तो उन शख्सके माता पिताकी आज्ञा मिल चुकी है या नहीं अैसा निश्चय कर पीछे दीक्षा देवै या उस विनाभी देवै ?

उत्तरः—माता पिताकी आज्ञा मिल चुके वाद दीक्षा लेनेकी मर्यादा है; मगर वो मर्यादा अष्टकजीमें हरिभद्रसूरी महाराजने दर्शाइ है उनका रहस्य निम्न लेख मुजब है:—

दीक्षा लेनेवाला अपने मा वापकों समझाकर आज्ञा मांगै, और मावाप आज्ञा देवै वो उत्तम है; लेकिन मातादिक आज्ञा न देवै तौ आप खुद, साधुका वेष पहरकर घरमै रहवै और रजा माँगे. अैसें कितनेक दिन घरमै रहवे तथापि रजा न मिलै तौ उस पीछेसें घरमैंसें चल धरै और गुरुके पास जाकर संयम अंगीकार कर लेवै. इस विषयमें वहां अैसाभी तर्क किया है कि-'इस तरह घरसें चला जाय तब घरमे रहे हुवे मावतातादिक दुःखी होवैं उनका दोष दीक्षा लेनेवालेकों लगै ?' इसका जवाव अैसा दीया है कि-किसीके माता पिता रोगी हैं और वै किसी गाँवकों जाते होवै तथा इस वख्त उनका पुत्रभी साथ होवै और उस मुशाफरी दरम्यान बडी भारी बीमारी प्राप्त हो जानेसें पुत्र औषध लेनेकों कहीं चला जाय और कदाचित पीछेसें माता पितादिमेंसें किसीका मरण हो जावै तो उसका दोष पुत्रकों नहीं लगता है. इसी तरह माता पितादिककों समजानेपरभी आज्ञा न देवै तो वो दीक्षा लेनेवालेकों दोष नहीं लगता है जैसें पुत्र औषधी लेनेकों गया और पीछेसें मातादि मरण पावें तो उसकों दोष नहीं, तेसेंही वो पुत्रभी जाने कि मैं दीक्षा लेकर और ज्ञानवंत होकर पीछे माता पिताके मनोगत अज्ञानजनित रोग मिटनेका वोध करुंगा. अैसी भावनासें जावै और पीछेसे मावापादिकका मरण हो जावे तो उनकों दोष नहीं होता है. अैसा अधिकार अष्टकजीके पत्र

९२ मै पचीशवे अष्टकजीमें है. वैसेही पंचवस्तुमेंभी दीक्षाका अधिकार बहुत लिखा गया है, वहांभी बहुतसे तर्क किये है कि-'मातापिता वृद्ध है और पुत्र दीक्षा लेवै तौ उस पुत्रके दयाके परिणाम किस तरह कायम रहे?' उनका जवाब ऐसा दिया है कि दीक्षा लेनेवालेकों जगतमे जितने जीव है वे सबके साथ अनंताकाल व्यतीत हुवा, उस्सें मातपिताका संवध हुवा है, तब एक मातापिताकी दया पालन करे कि भवोभवके मातापिताकी दया पालन करै? उनके चित्तमें तौ चौदहराजलोकके जीवकी दया है, उनमै मातापिताकीभी दया करनेकों तैयार है; लेकिन उसके कहने मुजब वे नहीं करते है तौ फिर किस तरहसें दया पालन करै? नहीं तो उसके भाव तौ दयाकेही हैं. ऐसे ऐसे कितनेक प्रश्न कहे हैं वो पहेले हिस्सेमैही पांच वस्तुये हैं. (वो प्रत हाजिर न होनेसें पत्रांक नहीं लिखा है.) यह अधिकार तर्फ निगाह करनेसें गुरुकों मातापितादिक दीक्षा लेनेवालेकों रजा देवै तभीही दीक्षा देवै ऐसा संभव नहीं है. लेकिन दीक्षा लेनेवालेकी परीक्षा तौ वेशक करनी चाहियें. उसके वारेमै पंचाशकजीके पत्र ३२ में दीक्षा लेनेवाला समवसरणकी रचना करै वहां प्रथम जगह शुद्ध करनेके लिये काजा निकालै, पीछे गंधोदकसें छंटकाव करै, पीछे समवसरणमै प्रभुजीकी स्थापना करै, तथा पर्षदाकीभी समवसरणमेंही रचना करै. पीछे दीक्षा लेनेवालेकी आंख पर पाटा वांधकर हाथोंमे पुष्प देवै, वे पुष्प तीन दफै समवसरणमें डाल देवै उसमैसें एक दफैभी पुष्प अंदर गिरे तौ दीक्षा देवै और तीनू दफे पुष्प वहार-समवसरणकी मर्यादा के वहार गिर जावै तो दीक्षा न देवै. ऐसा अधिकार पंचाशकजीके पत्र ३४ मै हैं, तथा पत्र ११७ मै दूसरा अधिकार है-उनमै दीक्षा लेनेवाला श्रावककी पडिमा वहन करै; सबब कि पडिमा वहन की होवै तौ उनकों दीक्षा पालनी कुछ मुश्किल नहीं पडती. फिर इसमै काल विलंब होवै उसके वास्ते गुरुकी निगाहमे आवै तौ छः महिने तक अपने साथ फिरावे, उस पीछे योग्य मालूम होवै तौ दीक्षा देवै. और जीव विशेष योग्य होवै तो तरत शिष्यकों दीक्षा देवै, ऐसीभी प्रणालिका है; वास्ते दीक्षा देनेका काम गरुकी आधीनतामै है. गुरुमहाराजकों जेसें योग्य लगै वैसें कर लेवै. मगर श्रावक बिना विचारसें दीक्षा देनेवालेकी निंदा करै तौ वो उससे महा दूषण उपार्जन करता है. गुरुनिंदाका वडा भारी दूषण है. गुरुकी भक्ति करनेमें रहना

रुके शरीरकी मलीनता लगनेसें अंग रहित जीव हुवे हैं. यह अधिकार वासुपूज्यजीके चरित्रमें है. वास्ते जैसें बन सके तैसें गुरुमहाराजका अवर्णवाद नही बोलना. गुरु-गम्भालाभ देखकर काम कर लेवै, वो अपनी समझमे नहीं आ सकता है.

११ प्रश्नः—श्रावक प्रतिक्रमण करता है वे हरएक वस्तुओंके क्या क्या हेतु हैं ?

उत्तरः—प्रतिक्रमणहेतुगर्भित ग्रंथ कि जो जयचंद्रसूरीजी कृत हैं, उनके और क्षमाकल्याण मुनीने हेतु दर्शाए हैं उनके आधारसैं लिखता हुं कि—गुरु-महाराज होवै तौ गुरु समीपमे प्रतिक्रमण करना, और न होवे तौ स्थाप-नाचार्यजीकी समक्ष करना. वे स्थापना दश प्रकारसें कही हैं. उनमैंसें जिस स्थापनाका योग मिल जावै उसकी स्थापना करकें नवकार मंत्रका उच्चार करै; क्यौं कि नवकार मांगलिकरूप है. सब प्रकारके मांगलमै नवकार मुख्य मंगल है; वास्ते प्रथम नवकार पढकर पीछे पंचिंदियका पाठ पढै. सबब कि पंचिंदियमें आचार्यमहाराजके गुणोंका वर्णन है वैसे आचार्यकी स्थापना की है, इस हेतुसें पढै. बाद इरियावही पडिकमै; क्यौं कि हरएक धर्मकरणी शुद्ध होकर करनी चाहियें. उस इरियावहीमें पापकी आलोयणा होनेसें शुद्ध हो सकता है. फिर जो पाप आलोयणासें शुद्ध न होवै वो कायोत्सर्गसें शुद्ध होवै उस वास्ते काउस्सग्ग करनेका है; मगर वो काउस्सग्गके आगार रखने चाहिये, उस वास्ते तस्सउत्तरी अन्न-त्थऊससीएणं कहेना. पीछे एक लोगस्सका काउस्सग्ग करना. उसका सबब यही है कि एक लोगस्समै चंदेसुनिम्मलयरा तक पचीस श्वासो-श्वास होते हैं वे नही गिने जावै, वास्ते लोगस्स गिनेसें प्रभुका ध्यान होवै और वो वक्तभी पूर्ण हो सकै. काउस्सग्ग पूर्ण कर पीछे पूर्ण लो-गस्स कहेना उसका सबब कि सामायिकके अंदर प्रथम देववंदना करनी चाहियें वो लोगस्समें हो जाती है. बाद मुहपत्ति पडिलेहनेका आदेश गुरुके पाससें मांग लै और मुहपत्ति पडिलेहवै. उसका सबब कि गुरुकों वंदना करनेमें पंचांग एकट्टे होवें, उसमै किसी जीवकी विराधना हो जावे वास्ते मुहपत्ति पडिलेहनी कि जिस्से जीव होवै सो दूर हो जावै—उस वास्ते मुहपत्ति पडिलेहवै. बाद सामायिक संदिसाहु ? यानी सामायिकका

आदेश दो. पीछे गुरुजी आदेश देवें. फिर दूसरी दफै गुरुजीकों कहेवै कि सामायिक ठाउं? तब गुरु आदेश देवें. पश्चात् मंगलार्थ नवकार पढकर इच्छकारी भगवन् पसाय करी सामायिक दंडक उच्चरावोजी, पीछे गुरुजी उच्चरावें. गुरुके पास व्रतका उच्चार करना उस्से गुरुका विनय होता है, पीछे गुरु न होवै तो श्रावकमैं जो वृद्ध-ज्ञानवृद्ध होवै वो करेमिभंतेका पाठ उच्चरावै. अब सामायिक लेनेकी तथा प्रतिक्रमण करनेकी रीति खडे खडेही है. बैठे बैठे हुवे प्रतिक्रमण करनेका प्रायश्चित एक आंबिलका श्राद्धजितकल्पमै कहा है; वास्ते शक्ति होवै वहां तक बैठे हुवे प्रतिक्रमण करना योग्य नहीं है. फजरका प्रतिक्रमणभी खडे खडेही करनेका है. पडिकमणाहेतुगर्भित देखोगे तो मालूम होगा कि सामायिक लिये बाद खमासमण देकर बेसणेसंदिसाहु? यानी मैं बैठुं? तब गुरु आदेश देते है. उस पीछे पुनः खमासमण देकर बेसणेठाउं? यानी आदेश होनेसें बैठता हुं. इससेंभी साबीत होता है कि बैठे हुवे प्रतिक्रमण करनेका होता तो ऐसा आदेश लेनेकी कुछभी जरुरत न रहती; लेकिन खडा रहाथा उस्से बैठनेकी रजा मांगनी पडी. अब बैठकर सज्झाय ध्यान करना, उस वास्ते सज्झाय संदिसाहु? यानी सज्झाय करुं? गुरु कहेवें कि करो. तब फिर ज्यादा विनय बतलानेके लिये कहे के 'करुं?' तब फिर गुरु कहेवै उस बाद तीन नवकार पढकर सज्झाय ध्यान करना. नवकार पढनेका मतलब यही है कि हरएक कार्य मांगलिक पाठ सहित करना दुरस्त है. अब जिसकों प्रतिक्रमण करना हो तो वो प्रतिक्रमणमै छट्ठा पच्चख्खाणका अंतिम आवश्यक आता है उस वक्त प्रत्याख्यानका काल-वक्त व्यतीत हो गया होता है. वास्ते मुहपत्तिका आदेश मांगकर मुहपत्ति पडिलेहवै और शरीरकी उस्से शुद्धि कर लेवै. मुहपत्ति पडिलेहनेकी वक्त खमासमण दे आदेश मांगकर मुहपत्ति पडिलेहवै ऐसा सेनप्रश्नमैं कहा है. पीछे द्वादश वंदन करै; क्यौ कि पच्चख्खाण गुरुके पास करना है वास्ते उन्होंका विनय करनाही मुनासिब है, वो विनय करकें गुरुमुखसें पच्चख्खाण करै. बाद चार थुइ सहित देववंदन करै; सबब कि हरेक कार्यमैं प्रथम देववंदन करनाही चाहियें. देववंदनमै प्रथम स्तुति अरिहंतजीकी भक्तिकी पढै,

दूसरी स्तुतिमें समस्त अरिहंतजीकी भक्ति होती है, तीसरी स्तुतिमें ज्ञानकी स्तुति होती है, और चौथी स्तुतिमें समकित दृष्टि देव शासनरक्षक है उनकी यादीके निमित्त पढे–इस मुजब चार स्तुतिका हेतु है. नमुथ्थुणं पढकर चार खमासमण देकर चार पुरुषकों वंदन करते हैं यानी प्रथम भगवान् हुं. ये भगवंत तथा किसी जगह धर्माचार्यजिनके द्वारा धर्म प्राप्त हुवा है उनकोंभी भगवान् वंदनमें वंदना करनी. वास्ते भगवान्कों वंदना करनेके वक्त भगवान् वा धर्माचार्यकों उपयोगमें लेवे. आचार्य तथा उपाध्याय और साधु ये चारोंकों वंदना करै. पीछे इच्छकारी भगवन् पसाय करी समस्त श्रावककों वंदना करुं? श्रावककों वंदनके निमित्त पडिकमणाहेतुगर्भितमें तथा धर्मसंग्रहमें तथा ज्ञानविमलसूरीकी बनाइ हुइ प्रतिक्रमणविधिकीसझायमैभी हैं, वो सझायमालाकी बुकके पत्र २०४ में है. और प्रवृत्तिभी कितनेक ठोर पर है. इस मुजब वंदना कर रहे बाद देवसी पडिक्कमणे ठाउं? यानी अब देवसी प्रतिक्रमण शुरु करता हुं. दिनके पापका सामान्यपणेसें मिच्छामिदुक्कडं देना; देवसिअदुच्चितिअ कहे बाद करेमिभंते कहनेसें प्रथम आवश्यक शुरु हुवा. पहेला सामायिक आवश्यक कहा जाता है, ऐसा वारंवार कहनेकी मतलब इतनीहीं है कि प्रतिक्रमण करना सो समता परिणाममें रहकरकें करना. पुनः पुनः करेमिभंते कहनेसें समताकी वृद्धि होती है, बाद देवसि अइयारोकओ कहकर तस्सउत्तरी पढ पीछे आठ गाथाका काउस्सग्ग करना. उसका सबब यह है कि आगे पाप ओलोचना है वो काउस्सग्गमें रहकर याद कर लेनी हैं; उस वास्ते कायोत्सर्ग करना. पीछे लोगस्स कहना. यह दूसरा आवश्यक है. चोविसथ्था नामक यह आवश्यकमें चोविश जिनेश्वरजीके गुणग्राम करनेके हैं. बाद मुहपत्ति पडिलेहवे. तत्पश्चात् गुरुके आगे पाप ओलचना है वास्ते उन गुरुकों वंदना करनी चाहियें; वास्ते द्वादशाव्रत वंदन करना; यह तीसरा आवश्यक है. पीछे देवसी ओलाउं कहकर सामान्य प्रकारसें ओलोचनारूप देवसिं अइआरोकओ कहकर गमणागमण, अठारह पापस्थानक आलोय लेवे; बाद वंदितु कहनेके प्रारंभमें, मंगलार्थ नवकार

कहकर समभावकी वृद्धि निमित्त करेमिभंते और सामान्य आलोचनारूप देवसि अइआओकओ कहकर विस्तारसे पाप आलोयणके वास्ते वंदितु केहवै. यह चौथा आवश्यक है. समता परिणामसें स्थिरतायुक्त वंदितु कहना और जो जो अतिचार आवैं उनके दूषण लगे होवैं तो उनकी निंदा करै. महान् वैराग्यभाव ल्याकर पापकों आलोय लेवै. वंदितु पूर्ण हुए वाद जैसें राजाके आगे अर्ज किये वाद नमन करनाही योग्य है, तैसे पाप ओलये वाद गुरुजीकों नमन करनाही लाजिम है; वास्ते वंदन कर अभुट्ठिओ अभ्यंतर खमाना दुरस्त हैं. उसमें जो गुरुजीकों खमाये वाद पाप आलोचना शुद्ध न होवै वो काउस्सग्गसें शुद्ध होवैं वास्ते काउस्सग्ग करना. गुरुवंदना करकें समस्त जीवोंकों खमानेके लिये आयरिय उवजझाये कह कर समभाव की वृद्धिके वास्ते करेमिभंते कहेवै, वाद जोमेदेवसिओ अइआरोकओ कहकर पाप निंदकै काउस्सग्गके आगारादिक हितार्थे तस्सउत्तरी पढकर चारित्राचारकी विशुद्धिके लिये दो लोगस्सका काउस्सग्ग करना, यह पांचवा आवश्यक है. काउस्सग्ग पूर्ण हुवे वाद प्रभुस्तवनाके निमित्त प्रकट लोगस्स कहेना. सव्वलोए कहकर समकित शुद्धि होनेके वास्ते एक लोगस्सका काउस्सग्ग करना. वाद पुष्करवरदी कहकर ज्ञानकी शुद्धिके वास्ते एक लोगस्सका काउस्सग्ग करना. यहांपर कोइ शंका करेगा कि—चारित्र शुद्धिका काउस्सग्ग दो लोगस्सका क्यौं है ? उसके समाधानमै यही जवाव है कि चारित्राचारमै ज्यादे दूषण लगतें हैं वास्ते ज्ञानी माहाराजने दो लोगस्सका काउस्सग्ग कहा है. तदनन्तर सिद्धाणंवुद्धाणं कहकर श्रुतदेवता आराधनके वास्ते एक नवकारका काउस्सग्ग करना, उसका सवव यही है कि श्रुतज्ञानसें समस्त धर्म मालूम होते है और अमलमै लिये जाते हैं. तौ श्रुतदेवकी साह्यता मिलनेसें श्रुतधर्मकी वृद्धि होवै. मल्लवादिजीकों कोइभी गुरुका योग नही था; मगर श्रुतदेवका आराधन किया था उस्सें श्रुतदेव प्रसन्न हुवे और बौद्धकी साथ जय मिलाया. बौद्धलोगोंकों देश बहार निकाल दिये, वास्ते श्रुतदेवताका काउस्सग्ग करके स्तुति कहनी. तत्पश्चात्

क्षेत्रदेव आराधनार्थ एक नवकारका काउस्सग्ग करना; सबब कि जिसके क्षेत्रमें रहना उस क्षेत्रका देव प्रतिकूल होवे तो धर्माराधनमें विघ्न होवे. वास्ते निर्विघ्नतासें धर्माराधन होनेके लिये अेक काउस्सग्ग और स्तुति करना चाहिये. यह अधिकार आवश्यकसूत्रकी काउस्सग्ग निर्युक्तिमें कहा है. फिर भत्तपच्चख्खाणपयन्नामें कहा है कि-मुनि संथारा करै उस वक्त कुल संघ क्षेत्रदेवताका काउस्सग्ग करै; सबब कि अनशन करनेवाले मुनिको कोइ देव उपसर्ग न करै. उसी मुजब यहांपरभी ज्ञानदर्शनचारित्रद्वारा मोक्षमार्ग साधक पुरुषके दुरित हरनेके लिये कहना है, सो अैसे मुनिकी भक्ति है; वास्ते करनेके योग्य है. बाद मंगलार्थ नवकार पढ मुहपत्ति पडिलेहवे, और छठ्ठा आवश्यकमें पच्चख्खाण करना है उस वास्ते गुरुको वंदना करै. अवसर हो जानेके सबबसें पच्चख्खाण प्रथम करालिया गया है उस्सें पुनः नहीं करना मगर छउं आवश्यककी संख्या बतानेकी मर्यादा है. छउं आवश्यक पूर्ण हुए उस्की प्रसन्नता प्रदर्शित करनेके लिये देवकी स्तुनिरुप नमोस्तु वर्धमानाय, नमुथ्थुणं स्तवन कहना. बाद १७० जिन वंदनरुप वरकनक केहवै. स्त्रीयोंको उक्त पाठ पढनेकी मना है वास्ते वे संसारदावाकी स्तुति पढें. तदनन्तर भगवन् प्रमुख वंदन कर अढाइद्वीपके समस्त मुनियोंको नमन करनेके वास्ते अड्ढाइज्जेसु कहकर उस बाद कुछ दिवस संबंधी पाप रह गया होवै उनके लिये देवसिप्रायश्चितका चार लोगस्सका काउस्सग्ग करना. पीछे लोगस्स कह कर सज्झायका आदेश लेकर सज्झाय ध्यान करना यहांतकके हेतु वहां बतलाये गये हैं वो दाखेल किये गये है.

राइपडिक्कमणेमें प्रथम कुसुमिण दुसुमिण उड्डावणियं राइय पायच्छितविसोहणत्थंका चार लोगस्सका काउस्सग्ग करना शुरु होता है. उनका हेतु यही है कि स्वप्न संबंधी दोष निवारणके वास्ते करना. अगर जो निद्रामें-स्वप्नमें चतुर्थव्रत-ब्रह्मचर्यादिकमें दूषण लग गया होवै तो १०८ श्वासोश्वासका काउस्सग्ग करनेका फरमान है; वास्ते सागरवरगंभीरा तक लोगस्स पाठका काउस्सग्गमै उपयोग करना. बाद भरहेसरकी सज्झाय कहेवै-क्यौं कि उत्तम पुरुषके नाम-स्मरण होवे. बाद एक लोगस्सका काउस्सग्ग चारित्रविशुद्धिके वास्ते रात्रिमें कांचित् दूषण लगे होवै उस वास्ते करना. बाद

दर्शनविशुद्धि निमित्त एक लोगस्सका तथा ज्ञानकी विशुद्धि निमित्त अष्ट गाथाओंका काउस्सग्ग करना और उसमें जिस व्रतमें दूषण लगा होवे उसको याद करना. यह काउस्सग्ग वंदित्तु कहनेके अव्वल करनेके आते है उसका सबब इतनाही है कि प्रथम यह क्रिया होवे तो निद्रा ज्यादे मुक्त हो जावे और उस्से पाप पूर्णपणेसें ओलोये जावे; वास्ते राइप्रतिक्रमणमै पेस्तर आते हैं. वंदित्तु बाद कायोत्सर्ग करना है उसमै तप सम्बंधी भावना भावै कि-हे चेतन! तुं तपश्चर्या कर. भगवंतश्रीजीने छमासी तप करकें बहुतसे कर्मनाश कीए हैं वैसै तुंभी छमासी तप कर, वो न बन सकै तौ एक उपवास उस्सें कम कर. यौंभी न बन सकै तो दो या तीन उपवास कम कर, अैसें उनतीस उपवास कम करने तक भावना भावै. तदनंतर पांचमासी, चौमासी, त्रिमासी, द्विमासी, एकमासी तपकी उक्त संकल्प मुजब न्यूनोपवास करते करते जो बन सकै उसकी भावना भावै. पुनः हे चेतन! अैसाभी न बन सकै तौ चौतीसभक्त अगर बत्तीस, अट्ठाइस, छब्बीस और चोवीस भक्तका त्याग कर. और अैसाभी न हो सकै तौ दो दो भक्त कम करते करते अंतमै चोथभक्त तकभी त्याग कर. और येभी न हो सकै तौ आयंबिल, नीवी, एकासना, बैसना, पुरिमड्ढ, साढपोरिसि, पोरिसि, नौकारसी-मतलबमैं जो यथाशक्ति बन सकै वो तप कर; मगर विगर पच्चखाणसें मत रहा कर. अैसा चिंतवन करै. तदनंतर काउस्सग्ग पूर्ण कर प्रकट लोगस्स कहकर मुहपत्ति पडिलेहवै. वंदन कर तीर्थवंदना करके पच्चक्खाण कर लेकर विशाललोचनका पाठ प्रमोदार्थ पढकर चार स्तुतिसें देववंदना करनी. पीछे भगवान् प्रमुखकों वंदन कर अड्डाइज्जेसु खामे. यदि पौषध पेस्तर लिया होवे तौ बहुवेल प्रमुखका आदेश लेवै. इस मुजब हेतु मेरी समजमैं आये हुवे है सो लिखे हैं. क्षमा माँगनेके वक्त हाथ नीचे रखकर खामनेका हेतु यही है कि गुरुके चरन पर रखता हुं अैसा संकल्प सिद्ध करना. स्थापना करनेके वक्त हाथ स्थापनाजीके सहामने रखते है उस्का हेतु यही है कि ये स्थापनाचार्यजीकी स्थापना करता हुं. वंदना करनेके वक्त मुँहपत्तिको दोनू हाथोंकी दशों अंगुलियें लगाकर मस्तकसें स्पर्श करना; क्यौं कि गुरुके चरनकी धूरी सिरपर चढाता हुं अैसा बतलानेका है वास्ते वैसे करना चाहियें. ये सभी विनयकी निशानी है, और वीतरागदेवका धर्म विनयमय है; वास्ते ज्यौं बन सकै त्यौं बडेका विनय करनाही उचित है. विनयसें करकें ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी वृद्धि होती है.

७२ प्रश्नः—प्रतिक्रमण कौनसे वक्त करना मुनासिब है ?

उत्तरः—दोनुं प्रतिक्रमण संध्यामेंही करने चाहियें यानी संध्याका प्रतिक्रमण (देवसि) अर्द्ध सूर्य व्हार होवै उस वक्त वंदितुं कहना चाहियें. उस करते मोंडाँ अगर जल्दी करनेका प्रायश्चित ज्ञानविमलसूरीजीकी बनाइ हुइ स्वाध्यायमें कहा है. कदाचित् किसी सबबके लिये अपवादसें अैसीभी आज्ञा है कि—देवसि प्रतिक्रमण जल्दी करलेने की आवश्यकताही होवें तो दुपहरके बारह बजे बाद और मोंडा करै तौ रात्रिके बारह बजे तक किया जावै और राइ प्रतिक्रमण जल्दी करना हो तो रात्रिके बारह बजे पेस्तर किया जावै. इस मुजब प्रतिक्रमणहेतुगर्भितमें कहा है. उसका सबब यही है कि कुछ जरूरी कार्यमें फँस गया होवै और बिलकुल वक्त न मिल सका हो तो प्रतिक्रमण करनेका नियम भंग न हो जावें उस लिये ये फरमान किया गया है. क्यों कि जीवकी अैसीही आदत होती है कि एक दिन कामका क्रम छोड दिया जावें तौ फिर हम्मेशां वैसाही प्रमाद हो आता है. वास्ते अपवादसें यह समयका फरमान किया गया है; लेकिन बनते तक मुकरीर वक्तपरही करना योग्य है. कुछभी उपाय समय हाथ करनेका न रहा होवै तभी अपवादका फरमान उपयोगमें लेना चाहिये; क्योंकि हरिभद्रसूरीजीने कहा है कि—समयपर खेती करनेसै सफल होती है; मगर बे मोसममें करै तो निष्फलता हाथ आती है. वास्ते अकालमें क्रिया करनेसेंभी वैसीही निष्फलता मिलती है, इस लिये जो जो धर्मक्रिया करना हो वो मुकरीर किये गये वक्तमें करै कि जिस्से फल प्राप्त होवै.

७३ प्रश्न—प्रतिक्रमणके भीतर षट् आवश्यक है उसमें कौनसे कौनसे आचारकी शुद्धि होती है ?

उत्तरः—सामायिक आवश्यक वा प्रतिक्रमण आवश्यक और काउस्सग्ग आवश्यकसें चारित्राचारकी विशुद्धि होती है; क्योंकि सामायिक लेनेसें सावद्य यानी पाप उसका त्याग होता है उससें चारित्रकी विशुद्धि होती है. प्रतिक्रमण पापकी निंदा गर्हा करनेसें अतिचारकी विशुद्धि होती है उस्सें चरित्रकी

विशुद्धि होती है. काउस्सग्ग करनेसें कायाका वोसिराना होता है, एक आत्माकी अंदर उपयोग स्थापित होता है उस्सें समभाव वृद्धि पाता है, प्रभुके गुणमें एकाग्रता होती है.वही चारित्र है; वास्ते चारित्राचारकी शुद्धि होती है. चउविसथ्था यानी लोगस्ससें दर्शनाचारकी विशुद्धि होती है. पच्चख्खाण आवश्यकसें तपाचारकी विशुद्धि होती है और वंदन आवश्यकसें ज्ञानाचारकी विशुद्धि होती है; सबब कि गुरुजीका विनय करना ये ज्ञानका आचार है और छठें आवश्यकमें वीर्य स्फुरायमान करना है वास्ते विर्याचारकी शुद्धि होती है. हम्मेशां संसारमें वीर्य स्फुरायमान कर रहा है वो बलवीर्य है. धर्ममें वीर्य श्रावककों स्फुरायमान करनाहे वो श्रावककों बालपंडित वीर्य कहा है और मुनि आराधकपणेसें प्रवर्त्तते हैं वे पंडित वीर्य है. इस मुजब छवुं आवश्यकसें पांचों आचारकी विशुद्धि होती है.

७४ प्रश्नः—ज्ञान पढनेसें वा श्रवण करनेसें अगर बांचनेसें क्या लाभ होता है?

उत्तरः—ज्ञान दो प्रकारका है यानी एक बाह्य और दूसरा आभ्यंतर. उसमें जो बाह्य ज्ञान वो संसारके व्यौपार रोजगार धन पैदा करना, कला कौशल्यता, विषयसेवन इत्यादि बाबतका जो ज्ञान है वो आत्माका हित करनेवाला नहीं है; मगर भवभ्रमणा वढानेका कारणभूत है. और स्वर्ग नरकका स्वरूप जानना उस्सें वस्तुबोध होता है, तथा उत्तम पुरुषोंके चरित्र श्रवण करना और श्रावक, मुनिके बाह्यके व्रताधिकार जानना वोभी बाह्य ज्ञान है; मगर अंतरमें गुण होनेका कारणभूत है; क्यौं कि उत्तम पुरुषोंने जो जो मार्गसें अंतरंग ज्ञान मिलाकर आत्मा निर्मल किया वैसें करनेका आलंबन है, और अंतरंगविशुद्धिके कारण है. बाह्यसें त्याग हुइ भइ वस्तुका अभ्यास पढनेसें उनके पर इच्छा नहीं जाती है. ये सुज्ञजनके अनुभव गम्य है. ऐसा होनेसें उन चीजोंके संबंधी विकल्प नाश हो जाते हैं, तो आत्माकी निर्विकल्पदशा जाग्रत होती है. फिर व्रतोंसें संसार संबंध छूट जाता है, तो उस सबंधी कारण नाश हो जाते हैं, उस्सें उनके विकल्पभी नाश होते हैं. पुनः हिंसा असत्य भाषण प्रमुखका त्याग होता

है, तब किसी जीवके साथ क्लेश विकल्पभी नहीं होवें; वास्ते ये बाह्यज्ञानसें व्रतादिक अच्छी तरहसें पालन करै तो ऐसे अंतरंग गुणका कारण होवै. अब दूसरा अंतरज्ञान उससें आत्मा क्या पदार्थ है? यह शरीर मालूम होता है वह क्या पदार्थ है? ये शरीरादिककी प्राप्ति काहेसें होती है? ये वर्त्तना होती है वो स्वाभाविक है या विभाविक है? आत्मा नित्य है या अनित्य है? छवं द्रव्यके भावके क्या धर्म हैं? छवं द्रव्यके क्या क्या गुणपर्याय हैं? निश्चय स्वरूप क्या है? व्यवहार स्वरूप क्या है? और विभाविक आनंद वो क्यों? इत्यादि स्वपर स्वरूपका बोध यह बोध होनेसें होवै. बाद एकांतमै बैठकर अपने आत्मस्वरूपमै स्थिर चित्तकर बाह्यप्रवृत्ति उद्योग हठाकर एक आत्मज्ञानमै लीनता करै. पेस्तर श्रुतज्ञानके जोरसें अपने आत्माके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव शोचै कि द्रव्यसें आत्मा द्रव्य एक पदार्थ हैं. द्रव्य किसकों कहेवै? जिनका तीनों कालमै विनाश नहीं. जो विनाशी द्रव्य है वो उपचरित द्रव्य है. फिर द्रव्य किसकों कहेवै? गुणपर्यायसें युक्त सो द्रव्य कहा जावै. वो आत्मद्रव्य क्षेत्रसें असंख्यात प्रदेशमय है. सूक्ष्मजंतुमै सूक्ष्मजंतु जितने क्षेत्रमें रहते हैं सो जुगलियोंके तीन गाउ प्रमाण शरीर हैं, उसमैं उन प्रमाणसें विस्तारयुक्त रहते हैं. पुनः केवलज्ञानी महाराज केवलिसमुद्घात करते हैं तब कुल चौदह राजलोकमैं आत्म प्रदेश फैलाते हैं, तब अखिललोक प्रमाणसें क्षेत्र है. कालसें अनादिकालका है वो कोइ दिन अंत होनेका नहीं, उससें अनंत है. भावसें अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतचारित्रै, अनंतवीर्य, अव्याबाधसुखमय, अगम, अगोचर, अलक्ष्य यह यादि अनंतगुण वो आत्माका भाव है. ऐसा भाव जानकर आत्मा परभावमैसें चित्तकों हठाकर भावे कि-धन कुटुंबादिक जो पदार्थ हैं वे मेरे नहीं हैं. यह शरीर है वोभी मेरा नहीं है; सबब कि जो मेरी वस्तु है वो नाश नहीं होती, मेरेसें अलग नहीं होवै. और यह शरीर तो नाश होता है. मेरा और इसका स्वभाव अलग है. ये शरीर सो पुद्गल पदार्थ है, पुद्गलके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव न्यारे हैं. पुद्गल द्रव्य सो परमाणु है और वैसे अनंत पर-

माणु मिलकर जो पदार्थ हुवा है उनकों स्कंध कहा जाता है, उनका ये शरीर बना है. अैसेही स्कंध बिखरकर पीछे परमाणु हो जाते हैं. फिर इसमै जडता स्वभाव है उससें मेरे द्रव्य और शरीरके द्रव्य न्यारे हैं. पुनः क्षेत्र जितना बडा शरीर वा स्कंध है उतना क्षेत्र अवकाश कररहते हैं. परमाणु है सो एक आकाश प्रदेश अवगाहकर रहते हैं; वास्ते आत्मा और पुद्गलका क्षेत्र भिन्न है. कालसें परमाणु अनादि अनंत है, शरीरादि स्कंधसादि सांत है. यानी आदिभी है और अंतभी है. भावसें अचेतन यानी जडभाव वर्ण गंध रस स्पर्शमय है तौ भावसेंभी आत्माके गुणसें शरीर जो पुद्गल द्रव्य उसका भाव भिन्न है. इस तरह पुद्गल द्रव्यका स्वरूप जानता है. आप जडभावसें भिन्न होता है. अैसेही चारों निक्षेपेसें शोचै. नामसें जीव वा आत्मा अैसा नाम है. जीव और स्थापना निक्षेपा सो जीव अैसे अक्षर लिखना, वा मूर्ति बनानी. द्रव्य निक्षेपा सो असंख्यात प्रदेशमय-ये तीन निक्षेपे तो व्यवहार हैं. भाव निक्षेपेसें आत्माका अरुपि स्वरूप, अव्याबाधस्वरूप, अक्षयस्वरूप, सभी वस्तु जानने देखनेका स्वभाव अैसा आत्माका स्वभाव जानता है. जो जो पुद्गलदशाकी प्रवृत्ति मनका चिंतवन बन रहा है वो मेरे स्वभावका नहीं. अैसा निश्चय होनेसें जो जो जडप्रवृत्ति उसकेपर उदासीन वृत्ति होवै. यहांपर कोइ शंका करेगा कि-'उदासीन वृत्ति और वैराग्य भिन्न है?' इसके समाधानमै यही उत्तर है कि शास्त्रमै वैराग्य किसकों कहते है? जो परवस्तुपर भाव जाता है उनकों पीछे हठाकर अपने मनकों दूर हठा लेता है, उसकों उदासीन वृत्ति होवै तो कुछ चिंतवन नहीं करना पडता है; क्यौं कि जो जो वस्तुसें उदासवृत्ति हुइ है उसके पर दिल नही जाने पाता है वास्ते भिन्न है. अैसे विचार कर आत्मस्वरूप अनुभवगम्य है उससे सहजसेंही उसकी बाह्यदशापर चित्तप्रवृत्ति नही जाती है. मात्र अपने स्वरूपमै मग्न होती है, सुख दुःख समान मानता है, वोहकी वोही वस्तु मानताही नहीं. सुख दुःख भुक्तनेकी तौ चित्तवृत्ति होतीही है; क्यौं कि अपने स्वभावमैंही मग्न हो रहे हैं. विषयकी तो स्वप्नमैंभी इच्छा नहीं. ये

कर्मसंयोग यह शरीरमें रहा है उसके आधारसें चाहिये वो निरवद्य चीज औसरपर मिल गइ तौभी आनंद है और न मिलगइ तौभी आनंद है. जैसें कि ऋषभदेवजीकों वर्षदिन तलक शुद्धमान आहार न मिला तौभी उनकों विकल्प न था और समभावसें वक्त व्यतीत किया. वैसैही उदासीन वृत्तिवंत होते हैं वो तो अपने स्वरूपकों अपनी वस्तु मानते हैं, उस्मै जितनी कसर है उतनी उतनी पुद्गलभावकी प्रवृत्ति करते हैं; मगर उनमैं कोइभी परभावकी इच्छा नहीं होती, अगर हो आवै तो वहांसें वैराग्य लाकर मनकों पीछा लोटाते हैं. यौं करनेसें ज्यादे विशुद्धि होती है तब उस वस्तुपरसें उदासीनता भाव होता है. पुनः अपनकों कितनी हद प्राप्त हुइ है वो देखनेके वास्ते परमात्माने सप्त नयसें स्वरूप बतला दिया है और सप्त नयके ज्ञानसें बाह्यप्रवृत्तिका अंतरग वृत्तिका ज्ञान होता है उससे अपना स्वरूप शोचता है. उनमैभी अपना स्वरूप भासन होता है: वो अनुयोगद्वार सूत्रकी छपी हुइ प्रतके पत्र ६२८–५२८–४१ मे है: वहांसें देख लैना. यहांपर मात्र उनके नाम लिखता हुं. सप्त नय–नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय, एवंभूतनय, ये सप्तनय हैं. उसमै एक एक नयका विषय विशुद्ध है. नैगमसें संग्रह, संग्रहसें व्यवहार, व्यवहारसें ऋजुसूत्र, ऋजुसूत्रसें शब्द, शब्दसें समभीरूढ और उस्से एवंभूतनय है, सो पूर्ण वस्तुको माननेवाला है, तैसै आत्माकी प्रवृत्ति संपूर्ण गुण प्रकट होवै तब एवंभूतनय धर्म मानै. वहांतक जो जो आपकी कसर है उस्सें मुक्त हो आत्माका शुद्ध स्वरूप प्राप्त करनेकी भावना भावै. ज्यौंज्यौं अंतरंगमैं स्थिरता करनेका अभ्यास करै त्यौं त्यौं क्षयोपशमभाव वृद्धि होवै और ज्ञान विशुद्धि होवै, नवतत्वका स्वरूप शोचै उसमै त्याग करने और आदरनेके योग्य पदार्थका स्वरूप विचारै. आठों कर्मका विचार करै. उनके सत्ता बंध उदय उदिरणाका स्वरूप शोचै. नौ अनुयोगसें आत्माका स्वरूप शोचै. संतपय–आत्मपद है वो हयात है, वो कृत्रम नहीं है. द्रव्य प्रमाणमें शोचै कि जीव अनंत है वे सत्तामै तुल्य हैं. अपने अपने स्वभावसें न्यारे हैं. क्षेत्र विचारमै जहां

तक शरीरमें रहा है वहां तक शरीर प्रमाणसें है. जब शरीरसें न्यारा होता है तब जो अवगाहना होवै उस मुजब उसका तीजा हिस्सा संकोचन कर सिद्धमै रहता है, उस मुजब आकाश प्रदेशकी स्पर्शा कुछ अधिक है. कालसें अनादिकालका है और जो जो सिद्धि पाता है तब संसारका अंत होता है और हम्मेशां सिद्धमैं रहता है, अभवि जीव अनादि अनंत संसारमैंही रहता है. अंतरंगसें शोचते मालूम होता है कि जीवका अजीव होनेका नहीं. और पुद्गल भंगमैं रहा है वहां तलक पुद्गलके रुप अनेक बनते हैं; मगर वस्तुपणेसें रुप बदल जाता नहीं. भाग-हिस्से शोचनेसें समस्त जीवं अनंत है, उसके अनंतवे हिस्से मै हुं. भाव विचारनेसें पांच भाव है, उसमै उदयिक भावके इकीस भेद हैं, सो कर्मसंयोगसें हैं उसके नामः—अज्ञानपणा है जिस्से अपने आत्मा स्वरुपसें भूलपर जो पुद्गलिक पदार्थपर मेरेपणेका ममत्वभाव बन गया है, ये पहेला भेद. दूसरा भेद असिद्धता–सो आत्मा सत्तासें सिद्ध स्वभाव है सो अवराने के सबबसें असिद्धता हुइ है, तीसरा भेद जो असमयपणा–आत्म स्वभावमै समभावमय रहना सो छोडकर विषयादिकके अंदर राग द्वेषकी परिणती हुइ उससें धन शरीरमै, कुटुंबादिकमैं मूर्छितपणा बन गया है सो छवं लेश्या के छ भेद उसमै प्रथम कृष्णलेश्या कही जाती है. नील-लेश्या सो कर्म संयोगसें बुरे परिणामका होना; जैसैं कि छवं लेश्यावाले जामनके फल खानेकों गये, उस्मै कृष्णलेश्या वालेनें कहा कि ये वृक्ष काट डालो ओर पीछे उनके फल खाओ. अैसे दुष्ट परिणाम सो कृष्णलेश्या वालेने कहा कि इस दरख्तकी डालीयें काट डालो. अैसे परिणाम होवै वो नीललेश्या. कापोतलेश्यावालेनें कहा कि जिन जिन डालीपै जामन लगे हुवे हैं उन उन डालियोंकों काट डालो. अैसा शोचै सो कापोतले-श्या. तेजोलेश्यावालेने कहा कि डालियें काटनेकी कुछ जरूरत नहीं, फकत जामन लगे हुवे होवै वही पतली डाली नीच ल्यो, सो तेजोलेश्या पद्मलेश्यावालेने कहा कि फकत जामन जामन चुन ल्यो–अैसे परिणाम होवै सो पद्मलेश्या. और शुक्ललेश्यावालेने कहा कि जामन पककर नीचे

गिर गये है उनकोंही वीनकर खाओ. झाडकों छुनेकीभी क्या जरूरत है? अैसें परिणाम होवैं सो शुक्लेश्या. इस मुजव छउं जातके परिणाम कर्म संयोगसें होते हैं सो छउं भेद. कषाय सो क्रोध-मान-माया-लोभ. चारों गति सो मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकी. तीनवेद सो-पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद. और मिथ्यात्व सो विपरीत वुद्धि-स्वरुपकों भूलकर विपरीत परसुखमै लीनता. ये इकीस भेद कर्म उदयसें वनते हैं अैसा मानकर जो जो वस्तु अपनी मान चित्त वदला देता है और ये स्वरुपकों परस्वरूप जाने इस रीतिसें ये भाव शोचै-विचारै. दूसरा प्रणामिकभाव उसके तीन भेद हैं-भव्यपणा, अभव्यपणा और जीवितव्यपणा है. तीनभेदमै जीवितव्यपणा है. तथा भव्यपणा अभव्यपणाके प्रणाम विचारै और जो हाथ लगै सो भावै. तीसरे उपशम भावके दो भेद है- उपशम चारित्र सो उपशम श्रेणिमै प्राप्त होवै तथा उपशम भावका समकित उस श्रेणिमैभी होवै और उस विनाभी होवै सो है या नहीं वो विचारै क्षायक भाव, उसके नौ भेद है सो क्षायक समकित, यथाख्यात चारित्र, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतदान, अनंतलाभ, अनंतभोग, अनंतउपभोग और अनंतवीर्य ये नौ भेद क्षायकभावके हैं सो प्राप्त करनेका भावै. क्षयोपशमभावके अठारह भेद हैं. सो चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीनं दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, क्षयोपशमसमकित, देशविरती और सर्व विरती-यह अठारह भेदमैसें जो जो भाव क्षयोपशमभावसें प्राप्त होते है सो क्षायकभावसें करनेका भावै. ये भाव विचारकें अल्प वहुत्व विचारै कि आत्मा पंदरह भेदसें सिद्धि प्राप्त करता है उसमै कौनसें भेदसें वहुतसे जीव सिद्धि प्राप्त करते है? वो आगमसें जान लेवै कि मुनिपणेसें १०८ अेक समयमें सिद्धि प्राप्त करते हे. दूसरे सव लिंगसें कमसिद्धि प्राप्त करते हैं; वास्ते मुनिपणेमैं प्रवर्तनेका भावै. मुनिभावमैं जो जो कसर-न्यूनता है वो प्राप्त करनेका भावै. सम भावकी वृद्धि करै. फिर षड स्थानकों ध्यानमै लेवै अर्थात् प्रथम स्थानक चेतन लक्षण सो ध्यानमैं लेवै कि आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, तप, उपयोग ये छउं लक्षणमय है. दूसरा स्थानक यही है कि-आत्मा

नित्य है, अविनाशि है. जन्म मरण पुद्गल संयोगसें बनता है वो मेरा स्वभाव नहीं है. तीसरा स्थानक शोचै कि–आत्मा अपने स्वभावका कर्त्ता है और कर्म संयोगसें पुद्गलिक भावका कर्त्ता बन गया है, वहांसें उपयोग बदल डाले. चौथा स्थानक भोक्तापणा शोचै कि निश्चयनयसें अपने स्वभावका भोगी है, परभावका भोगीपणा पर संयोगसें है. पांचवा स्थानक ध्यानमै लेवै परमपदका विचार करै कि आत्माका पद और सिद्धका परमपद समान है, कर्मके संयोगसें भेद पड गया है, वो भेदसें रहित आपका परमपद है. उस मुजव रहनेका भावै. छट्ठे स्थानकमै शोचै कि ये परमपद प्राप्त होनेके कारण संयम और ज्ञान ये दो हैं; वास्ते दोनू वस्तुओंमैं वर्त्तना करै. इस तरह भावनाअें भावनेका ज्ञान सो ज्ञान श्रवण करनेसें होता है और अैसें भावसें स्वाभाविक अनुभव ज्ञान प्रकट हुवे बाद ज्यौं ज्यौं स्वभावकी अंदर स्थिर होवै त्यौं त्यौं आत्माकी निर्मलता अनुभव ज्ञानकी वृद्धि और निज तत्व प्रकट होवै; वास्ते हर हमेशां सुंदर भावनाओंका उद्यम करना. पुनः हेमाचार्यजीने ध्यानकी बहुतसी रीतियें योगशास्त्रमै बतला दीहै, वहांसें देखकर ये उद्यम विशेष प्रकारसें करना. अंतिम उद्यम यही है वास्ते आत्मार्थि पुरुष जो जो निवृत्तिका वक्त हाथ लगै वो वो वक्त पर ध्यानका अभ्यास करै यही श्रेय है.

९५ प्रश्नः—किसी गच्छवाले कहते हैं कि छउं पर्व और कल्याणक दिवस सिवा पौषध नहि करना उसके संबंधमै सत्य क्या है ?

उत्तरः—ये बात न्यायसें और शास्त्रसें विरुद्ध मालूम होती है; सबब कि परमात्मा श्रीका तौ यही उपदेश है कि–' समय मात्र प्रमाद नहि करना. ' वो उपदेश आत्मार्थि जनोंके दिलमै रमण कर रहा है. हर हम्मेशां भावना तौ अप्रमादकीही वर्त्तती हैं; मगर कर्मके संयोगसें–पूर्व कर्मके जोरसें उन प्रकारकी विशुद्धि नहीं हो सकती है उस्सें संयम अंगीकार नहीं करते तौ भी पर्वके दिन पौषध तौ अवश्य करते हैं, और पर्वके दिन सिवा दूसरे दिनोंमैभी वक्त हाथ लगै तौ वो वक्त प्रमादमै क्यौं गुजारैं ? उस दिनभी अवश्य पौषध व्रत धारण करै, शास्त्रमै तौ

जहां जहां अधिकार होवै वहां वहां पर्वके दिनकाही होता है; सवव कि गृहस्थ संसारके प्रबंधमे फंसा हुवाही होता हैं. यदि फंसा हुवा न होता तो संयमही अंगीकार करता; लेकिन फंसा हुवा होनेकेही सववसें संयम अंगीकार नहीं करता है; उस वास्ते हम्मेशां न वन सकै वोही हेतुसें पर्व दिन अवश्य पौंषध करै. इसी लिये तिथियोंका दर्शाव किया है. अैसा आशय तत्त्वार्थके पत्र २४३ मे हैं कि—"सपौषधोपवासकोत्रयपक्षयोरष्ट-म्यादि तिथिमभिगृह्य निर्श्चत्य चुध्यान्यतमांचोति प्रतिपदादि, तिथि मनेन-वान्वासु तिथिषु अनियमं दर्शयति नावश्यतयान्यासु कर्त्तव्यः" इस मुजब तत्त्वार्थकी टीकामें हैं—यानी अष्टमी प्रमुखके दिन अवश्य (पौंषध) करना-वास्ते अष्टमीदर्शाइ है, और दूसरी प्रतिपदादितिथिके दिन अवश्य कर्तव्य नहीं. इस्सें कुछ निषेध किया है अैसा नहि कहा जाता है—मतलवमें अव-काश मिले तौ वेशक पौषध और तिथियोंमैभी करै. अगर जो शख्स इस बातका निषेध करते है उनका तो इलाजही क्या है—उनकी बुद्धिकीही वि-चित्रता है. आत्मार्थियोंकों तो जिस वक्त मोका हाथ लगै उसी वक्त धर्म प्रवर्ति करनी वही श्रेय हैं. पुनः प्रतिक्रमणेमैभी तपचिंतवनका काउ-स्सग्ग आता है उस्में छ मासी तपसें न्यूनक्रमसें चिंतवन किया जाता है. वोभी तिथि विगरके दिनोंमें चिंतवन नहीं करना चाहियें; सवव कि उप-वास आहार पोषध है और पर्व तिथि विगरके दिनोंमें नहीं करना है तौ चिंतवन किस वास्ते करना चाहियें? लेकिन ज्ञानीका मार्ग तो हर हम्मेशां धर्मकरणीकाही है. ज्ञानीयोंनें शास्त्रकी अंद्र तप चिंतवन करनेका कहा है तप चिंतवनका अधिकार योगशास्त्रमें तथा प्रवचनसारोध्धारकी छपी हुइ किताबके पृष्ट ३७ में है. इस सिवाभी वहुतसें शास्त्रोंमें है, वास्ते वक्त मिलं जावै उसी वक्त पोषध करना यही दुरस्त है. पुनः वहीं प्रवचन सारोद्धारके पत्र ४० मे अनागत तप पच्चख्खाणका स्वरूप कहा हैं कि—अगात पर्यूषणादिक पर्वके दिन किसी सववके लिये तप वन सकै वैसा योगं नही है तो उस्सें पीछेसें करै. या तौ अतित तप यानी पेस्तरभी करै तौभी कुछ हरकत नहीं. इस अधिकारसें समझा जाता है, कि पर्वके पेस्तर

या पीछेभी तप करें तो कुछ हरकत नहीं है. तप है सो आहार पोषध है वास्ते पर्वके दिन सिंवाभी पोषध करनेमें कोइ नुकशान नहीं किन्तु लाभही है. फिर ये पक्षवाले यौंभी कहते है कि—'हम्मेशां उपवासका पच्चखाण करना; मगर ज्यादे एकदम पच्चख्खाण करना नाहि.' ये बातभी शास्त्रसें भिन्नता धराती है; सबब कि येही तप चिंतवनमें जितने भक्तका अभी एकदम पच्चख्खाण किये जाते है वितनेही भक्तका चिंतवन है. दूसरा चिंतवन दूसरी तरहसें है. फिर पच्चख्खाण भाष्यमे और प्रवचनसारोद्धार आदि बहुतसी जगे पच्चख्खाणके अधिकार है, वहां चोथ भक्तादि पच्चख्खाण करनेके कहे हैं. ये आदि शब्दसें उपवाससें अधिक पच्चख्खाण सिद्ध होते हैं. वास्ते अधिक पच्चख्खाण चोवीस भक्त तक करनेमें हरकत नहीं है, और जो हरकत होवै तो ये चिंतवन जूंठा हो जाता है. क्यौं कि बन सकै वहां रुक जानेका कहा है और वहां तक ही चिंतवन करनेका कहा है. पीछे काउस्सग्ग पूर्ण करकें पच्चख्खाण करनेका है; वास्ते बन सकै उतनाही पच्चख्खाण करना वही रीति अच्छी है.

७६ प्रश्नः—पजुसणमें कल्पसूत्र ही वांचना अैसी परंपरा प्रचलित है उस्का क्या सबब है?

उत्तरः—कल्पसूत्रमे मुख्यत्वतासें साधुका आचार है, वो वर्ष वर्ष दिन पर सुनेमें आवै तो समस्त मुनि महाराजोंका उपयोग स्मृत रहवै. फिर जबसें सभाकी अंदर बंचाया जाता है तबसें श्रावक प्रमुखकों प्रभुके अद्भुत चरित्र यानी कठिन तपश्चर्या, कठिन आचार, कठिन दुःख प्रसित होने परभी अपने उपशांतपणेमे रहे हुवे, कठिन दुःख देनेवाले परभी समताभाव—किंचित्भी द्वेष नहीं, अतिशय ज्ञानशक्ति अैसी दशा श्रवण करनेसें प्रभुपर आस्तिकता वृद्धि होवै; क्यौं कि पुरुषकों देव मानै उनके आश्चर्यकारक चरित्र सुनेसें अवश्य रागकी वृद्धि होवै और भगवान् गणधर मुनिमहाराजादिक ऊपर राग बढे और आज्ञा आराधे वही सम्यक्त निर्मल होनेका सबब है. अैसे सबबसें उपकारी पुरुषोनें हम्मेश कल्पसूत्र वांचनेका रीवाज रख्खा मालूम होता है.

७७ प्रश्नः—अंजनशलाका कौन कर सके ?

उत्तरः—प्रभुकी अंजनशलाका आचार्य महाराज करैं-ऐसी षोडशंजीमैं हरिभद्रसूरी-जीने कहा है. और दूसरे भी प्रतिष्ठाकल्पोंमैं मुख्यपणेसें वैसाही कहा है. फिर कुलप्रभसूरीजीके शिष्य नरेश्वरसूरीजीने समाचारी रची है उसमै आचार्य करै सो सूरिमंत्रसें करै और आचार्यके अभावमै उपाध्यायादिक वर्द्धमान विद्यासें करैं ऐसी रीति है. एक प्रतिष्ठा कल्पकी पुरानी प्रत मैने देखीथी उसमै श्रावक करै ऐसाभी कहा है, और वो मंत्रभी अलग बताया है. अब यहांपर कोइ शंका करैगा कि-'हीरविजयसूरिजीनें हीर-प्रश्नमै श्रावक प्रतिष्ठित प्रतिमाजीकों अपूजनीय कही है. उसका क्या सबब ?' इसके समाधानमें यही है कि ऐसी प्रतिष्ठित हुइ प्रतिमाजी मुनि-के वासक्षेपसें पूजनीय होती है. उससें जाना जाता है कि जिस प्रतिष्ठा क-ल्पमै श्रावकका मंत्र बतलाया है; उसका यही सबब होगा कि आचार्य, उपा ध्याय जीका योग न बनें ऐसा होवे और प्रभुभक्ति करनेकी जरुरत है तो खुद श्रावक प्रतिष्ठा कर लेवें. और जब आचार्यजी वगैरःका योग मिल जावै तब उन्होंकी पाससें वासक्षेप करा लेवैं. इस तरह वो वार्त्ता वजूद भरी मालूम होती है. कोइ कोइ कहते है किं आचार्यजी वासक्षेप करैही नहीं, श्रावकही करै; मगर ये अयोग्य वार्त्ता है, सबब कि त्रेसठ शलाक पुरुषके चरित्रमैं कापिल केवलीजीनें प्रतिष्ठा की है. उसके पीछेभी बहुतसें आचा-र्योंने की है ये वार्त्ता विश्वविदित है; वास्ते मुख्य वृत्तिसें तो छत्तीस गुण युक्त विराजित आचार्य महाराजही योग्य हैं.

७८ प्रश्नः—इस कालमैं धर्मसाधन करनेवालोंमै कितनेक दुःखी मालूम होते हैं और अधर्मिजन सुखी दृष्टिगोचर होते हैं उसका सबब क्या ?

उत्तरः—अधर्मि जीव हैं उनकों पिछले जन्मकी प्रायः अधर्मकी संज्ञा चली आती है उससें अधर्मकी बुद्धि होती है, पिछले जन्ममै अधर्म सेवन किया है, वो कुछ मनुष्यमैंसें बहुत करकें मनुष्य नही होवै. अधर्मि प्रायः नरक तिर्यचमैं जावै, तब उन भवके पाप नरक तिर्यचमें भुक्तकर मनुष्य होवे तब उसकों कितनेक दुःख कमती होने है; लेकिन वो सुख पानेसें फिरकें

पापकर्म करता है उससें नरक तिर्यंचकी दुर्गति पावे. वहां दुःख भुक्ते ऐसें जीवोंकों मनुष्य भवमें सुख है, वैभी आगत कालमें दुःखके हेतु है; वास्ते अधर्मिकों सुखी देखकर मनमें सुख शोचनेकी जरूरत नहीं हैं और धर्मिष्ठ जीव तौ मनुष्य किंवा देवगतिमेंसें आता है, वहां धर्म तो किया हुवा है; मगर कितनेक हिंसादिक पाप किये होवें वे यहां भुक्तता है उसें दुःखी मालूम होता है; लेकिन वो जीवकों धर्मके परिणाम है उससें वो समभावसें भुक्तता है उसी सबबसें वो निर्जरा करकें अति विशुद्ध होकर मुक्ति वा सद्‌गति पाता है; वास्ते गुणीकों देखनेमें दुःख है सो सुखका हेतु है और निर्गुणिका सुख है सो उसकों दुःखका हेतु है. ऐसा जानकर धर्ममें प्रवर्त्तना तथा दुःख आनेसें समभाव रखना वही आत्माको हितकारी है.

७९ प्रश्नः—श्रावक आराधक होवे तौ कितने जन्ममें सिद्धि प्राप्त करे ?

उत्तरः—आयुरपच्चखाण पयन्नामें कहा है कि संथारा कर सब वस्तु वोसीराके सब जीवके साथ खमतखामणे करकें आराधना किये बाद काल करे तौ उत्कृष्टे सात भव होवे. इस्से अधिक भव नहीं होवे; वास्ते अवश्य आराधक होनेकी भावना हम्मेशां करना और आराधना करनेका अंत वखतमें उद्यम करना.

८० प्रश्नः—भगवंतजी विचरै तब मार्गमें क्या क्या वस्तुयें साथ होती हैं ?

उत्तरः—उवाइजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ५९ में नीचे लिखी हुइ वस्तुयें आकाशमें साथ चलती हैं:—

धर्मचक्र आगे चलता है, मस्तकपर तीन छत्र साथ चलते हैं, दोनु तर्फ चम्मर धरे हुएही रहते हैं, सिंहासन पादपीठ सहित साथ चलता है, और धर्मध्वज आगे चलता है. यें वस्तुयें साथ चलती हैं. तथा चौंतीस अतिशय और पेंतीस वाणीके गुणोंसें विराजमान होते हैं. पुनः देवभी साथ बहुत रहते हैं. इस तरहसें विचरते हैं.

८१ प्रश्नः—गर्भमें जीव उत्पन्न होता है वो किस प्रकार उत्पन्न होता है ? और बढता है सो किसतरह बढता है ?

उत्तर—इस बाबतका अधिकार तन्दुलविआली पयन्नेमे है, वो शुरुवातसेंही चला है. स्त्रीकी नाभिके नीचे दो नाडीयें हैं उनकी आकृति नाडी सहित कमल फूलके सदृश होती है. उसके नीचे स्त्रीकी योनि है. जीव उत्पन्न होनेका स्थान अधोमुख कमलके आकार होता है. नीचे आम्रकी मंजरी जैसी मांसकी मंजरीयें है वे ऋतुकालके वख्त खिलनेसें तब रक्तश्राव होता है, उसका नाम ऋतु कहाता है. वो ऋतु आये बाद पुरुषके संयोगसें वीर्य श्रवता है वो वीर्य तथा स्त्रीका रुधिर ये दोनुका अधोमुख कमलमें संयोग मिलता है तब उसमे जीव उत्पन्न होता है. वो जीव प्रथम समयमें वीर्य तथा रुधिरका आहार करता है. तदनंतर कालांतरकाल व्यतीत होनेसें बढता है. सात दिन तक चावलके जल समान होता है, बाद सात दिनमें पानीके बुदबुदेकी समान होता है. तत्पश्चात् सात दिनके बाद मांस पेशी वत् एक मासमे आम्रमज्जासादृश होता है. दूसरे महिनेमे विशेष बढकर मजबूत पेशी–ग्रंथीवत् होता है. तीसरे महिने उससेंभी ज्यादे बढता है और माताको दोहले–मनोरथ उत्पन्न कराता है. पुन्यवंत गर्भ होवे तो अच्छे धर्मके काम करने–करवानेकी तथा अच्छे पदार्थ खाने पीनेकी इच्छायें होती है.और पापिष्ट गर्भ होता है तो अधर्म और अयोग्य वस्तुयें खाने पीनेकी इच्छायें उत्पन्न कराता है. चोथे महिने गर्भ बढनेसें माताके अंगोपांगभी बढते है. पांचवे महिने गर्भके पिंडमेसें पांच अंकुर फटते है यानी दोनुं हाथ, दो पाँव और एक मस्तक ये पांच वस्तुयें होती हैं. यह देखकर अज्ञानी जीव कहते है कि पांचवे महिने गर्भमे जीव संचरता है; लेकिन ऐसे अज्ञजनोंको सोचना चाहियें कि पांच महिने तक जीव कहां रहा था ? जीव न था तो आकृति कैसें हुइ और किन सबबसें गर्भ बढता था ? वास्ते जीव तो अव्वलसेंही उत्पन्न होता है और उस पीछे उपर बतलाये मुजब बढता है. छठे महिने पित्त और रुधिर उपजता है. सातवे महिने सातसो नाडियें, पांचसो मांस स्थान और नौ बडी धमनी नाडीयें ये तैयार होते है. आठवे महिनेमें सब अंगोपांगकी पूर्णता बनती है. यह अधिकार भगवान् श्री वीरस्वामीजीने कहा कि तुरंत गुरुभक्त गौतमस्वा–

मीजीने पुंछा कि–" भगवान् ! गर्भमैं रहा जीव निहार करता है ? या नहीं ? " भगवंतश्रीने कहा " नहीं. " तब फिर प्रश्न किया कि–"कवल आहार करता है ? " तबभी प्रभुश्रीने कहा " नहीं. " रोम आहार आदि करता है वो माताकी रसहरकी–रसवाहिनी नाडी कि जो नाभिके नीचे होती हे सो गर्भके बालककी नाभिके साथ लगी हुइ रहती है, उस द्वारा बालककों आहार मिलता है और सब शरीरमैं फैलता है. माताके रुधिरका भाग उत्पत्तिके वक्त यदि ज्यादे होवै तो पुत्री होती है और पिताके वीर्यका हिस्सा ज्यादे होता है तौ पुत्र होता है; लेकिन रुधिर और वीर्य दोनु समान होवै तौ नपुंसक पैदा होता है. बालकके शरीरमैं मांस, लोही, मस्तककी अंदरका भेजा ये माताके रक्तसेंही होता है. इस लिये ये माताके अंग कहे हैं; और हड्डियें, हड्डिके अंदरकी मिंजी तथा रोम ये पिताके वीर्यसें उत्पन्न होते हैं; वास्ते ये पिताके अंग कहे हैं. इस मुजब उन ग्रंथमै बहुतसा स्वरूप दर्शाया है तथा योगशास्त्रमैं हेमाचार्यजीने और भवभावना ग्रंथ कि जो मल्लधारी हेमचंद्र आचार्यका किया हुवा है उसमैंभी बहुत विस्तार पूर्वक विवेचन है सो वहांसें देख लैना.

८२ प्रश्नः—वासुदेव नरकमैं जाता है उस्का सबब क्या ?

उत्तरः—वासुदेव पुद्गलिक सुखका नियाणा करता है, उससें संयम धर्मकी आराधना नहीं हो सकती है. कृष्णवासुदेवनें श्री नेमिनाथजीसें पूछा कि–'मुजकों दीक्षा लेनेका दिल क्यौं नहीं होता है ? ' तब भगवंतश्रीने फरमाया कि–' पिछले भवमें तुने नियाणा किया है वास्ते इस भवमैं संयम उदय नहीं आयगा; मगर तुं नरकसें निकलकर तीर्थंकर हो मोक्षमै जायगा.' इस मुजब अंतगड्दशांगजीकी लिखी हुइ प्रतके पत्र २३ मै अधिकार है. वासुदेवहिंडमैंभी पांच भव कहे है. तत्त्व केवली गम्य है.

८३ प्रश्नः—पिंडस्थ ध्यान किस प्रकार करना ?

उत्तरः—योगशास्त्रमै हेमाचार्यजीनें बहुत प्रकारसें बतलाया है उनमैंसें दो रीति लिखता हुं. अरिहंतजीका ' अ ' नाभिके विषे सिद्ध महाराजकी ' सि ' मस्तकके विषे, आचार्यजीका ' आ ' मुखपर, उपाध्यायजीका ' उ ' हृद-

यमै और साधुजीका 'सा' कंठमै स्थापन करना. इस तरह पांचो हुर्फ स्थापन कर एकाग्रतासें उन्होंका ध्यान करना ये १०८ वक्त ध्यान करना. उस्से एक चोथभक्तका फल मिलता है. दूसरी तरहसें पत्र १८८ मै चिंतन करनेका कहा है सो पिंडस्थ ध्यान है. वो पिंडस्थ ध्यानकी पांच प्रकारसें धारणा कही है. पृथिवो, अग्नि, वायु, वारुणी और तत्वभु ये पांच धारणा करनी यानी प्रथम जितना तर्छालोक है वैसा क्षीरसमुद्र ध्यावें मतलब कि चारों तर्फ जल है ऐसा ध्यावै और वो जलके वीच जंबूद्वीप है उतना सुवर्णका सहस्र दलमय कमल चिंतवै, वो कमलके वीचमै सुवर्णमय मेरुपर्वत कर्णिकारूप चिंतवै, वो कर्णिकाके ऊपर श्वेत सिंहासनपर अष्टकर्म छेदन करनेकों उद्यमवंत ऐसा मैं वहां वैठाहुं ऐसा चिंतवै. इस प्रकार एकाग्रतासें चिंतवन करै सो पृथिवी धारणा कही जाती है. पीछे अपना नाभि कमलमै सोला पांखडीका कमल चिंतवै. ये सोला पांखडीके कमलकी मध्य कर्णिकाके मध्यभागमै महामंत्र सिद्धचक्र वीज 'अर्हं' एसा मंत्र स्मरण करै. वाद कमलकी सोला पांखडीयोंपै अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः एक एक एकस्त्र स्थापन कर उन्होंका स्मरण करै. पीछे 'अर्हं' ऐसा महामंत्र बिंदुकला सहित रेफ एसा अक्षर है, वो रेफ अक्षरमैंसें थोडा थोडा वहार निकलता हुवा धुम्रशिखा–धुम्र चिंतवै ओर उसीका स्मरण करै. पीछे धुम्र निकलती हुइ अग्निकी चिनगीका समूह निकलता हुवा ध्यावै. पीछे अग्निकी ज्वाला दिशि विदिशि आकाशव्यापित महाज्वाला स्मर लेवै और ज्वालाके समूहसें अष्टकर्मरूप अधोमुख कमल कि जो अष्ट पांखडीयोंका है उसकी हरएक पांपडीपै एक एक कर्म स्थापन करकै उनके रहनेका स्थान हृदयकमल, उसकों जला देवै यानी इस मंत्रके ध्यानसे ध्यानरूप सवल अग्नि प्राप्त हुइ है वै अग्नि दहन करती है. उससें वे कर्म जलते है ऐसा ध्यावै. तदनंतर देहसें वहार दूर प्रकाशवंत अग्निनिकोण है उस्कों ध्यावै. वो त्रिकोणके तीनू कौनेमै एक एक स्वस्तिक स्मरण कर वो त्रिकोण अग्निरेफ स्मरण करकें पीछे अंतशरीरमै महामंत्रसें उत्पन्न हुवा जो अग्नि वो अ-

ग्निकी ज्वाला जाजुल्यमान है उस्सें देह और अष्टदल कर्म, स्थापित किये गये कर्मको जलाकर खाक कर देवै, जिस्सें आत्मा शांत होवै ऐसा ध्यावे, वो अग्निधारणा कहलाती है. अब वायुका स्मरण करै यानी वायु कैसा है? तीन भुवन–स्वर्ग–मृत्यु–पातालकों पूरित कर रहा है, पर्वतकों भी उन्मूलन करता है, समुद्रकोंभी क्षोभ करता है, मर्यादा मुक्त कराता है. ऐसा अति प्रचंड वायुसें करकें अंगकी धारणासें देह तथा अष्ट कर्म रूप कमलकों जलाकर खाक किया है, उस भस्मकों ध्यानरूप वायुसें उडाये पीछे वायु स्मरण शांत कर देवै. ये वायु धारणा कहलाती है. बाद जल धारणाकों अमृत रूपिणी अति बहूल वर्गवंत वृष्टि करती हुइ मेघमाला परिपूर्ण आकाशमै स्मरण करै. वो कलाबिंदु सहित वरुणांकित मंडल वारुण बीज स्मरण करै. बाद वरुणबीजसें पैदा हुवे अमृतरूप जल प्रवाहसें आकाश भर देवै, अग्निधारणासें अग्निपूरसें देह तथा कर्म जल गये है उनकी भस्मकों ध्यानरूप जलकी वृष्टिसें प्रक्षालन करना सो वारुणीसें स्मरण करै. ये वारुणी धारणा कहलाती है. अब पांचवी तत्व धारणा सो सप्त धातुसें रहित, निष्कलंक, निर्मल, चंद्रबिंब समान उज्वल ऐसा सर्वज्ञ सब वस्तुके ज्ञाता उन समान अपने आत्मापनकों भावै बहुत तेज मय अज्ञानतिमिरसें रहित मणिमय सिंहासनपर बैठे हुवे देव दानव गांधर्व सिद्ध चारणादिकसें सेवित अनेक अतिशय करकें शोभायमान सब कर्मोसें करकें रहित, सहजसरूपी, परस्वरूपसें रहित, स्वभाव महिमा निधान ऐसा आत्मा अपने शरीरके बीच पुरुषाकारसें स्मरण करै, वो, तत्त्वभु धारणा कहलाती है. ये पिंडस्थ ध्यान योगीश्वर ध्याते हैं. उसमै अपने स्वरूपमै लीन होनेसें मुक्तिके सुखका अनुभव करते हैं. पुनः वही ध्यानके प्रभावसें योगीश्वरकों दुष्ट विद्या, उच्चाटन, मारण, स्थंभन आदिसें पीडा नहीं होवे. शाकिनी, डाकिनी, लाकिनी, काकिनी, क्षुद्रयोगिनी, भूत, प्रेत, पिशाचादिक भी योगीश्वरोंका असह्य तेज मालूम होनेसें तुरंत भग जाते है. मदोन्मत्त गजेंद्र, व्याघ्र, सिंह, शरभ, अष्टापद, दृष्टिविष सर्प कि जो बहुतही भयंकर होते हैं वे सभी योगीश्वरकों उपद्रव नहीं कर सकते

है, इतनाही नहीं मगर देखनेही स्थंभित हो जाते है वा पलायन कर जाते है. ऐसा पिंडस्थ ध्यानका महिमा है और उस ध्यानसें अंतमै निज सुखकी माप्ति होती है.

८४ प्रश्नः—पदस्थ ध्यान किस तरहसें करना ?

उत्तरः—योग्यशास्त्रके अष्टम प्रकाशके पत्र१९२ मै उस ध्यानकी रीति बतलाइ है-यानी नाभि कंदमै सोला पांखडीका कमल है वो दर पांखडीपें आगे बतलाये गये सोला स्वर क्रमसें स्थापन कर चित्तकी एकाग्रतासें चिंतवन करै. पीछे हृदय कमलमै एक चोवीस पांखडीका कमल चिंतवन करकें उसमै कार्णिका चिंतन कर और दर पांखडीपर 'क' से लगाकर 'भ' तकके चोवीस व्यंजन स्थापन कर कार्णिकामै 'म' स्थापन करै और पीछे उन्का ध्यान धरै. बाद मुखस्थान अष्टदल कमल चिंतन करकें दर पांखडीपर य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ये आठ व्यंजन स्थापन कर चिंतवन करै. इस तरह तीनू कमलके ध्यानमै एकाग्रता कर लेवै ये ध्यानमय रहनेसें सब शास्त्रके पारगामी होवें-त्रिकाळज्ञानी होवें. ये आदि बहुतसें फल बतलाये हैं. दूसरी तरह नवकार मंत्रका ध्यान करना सौ भी पदस्थ ध्यान कहा है उसके ध्यानसें भी खांसी वगैरः वडे १६ रोग नाश वचनसिद्धि प्रमुख होवै. हलुवे कर्मीकी गति पावें, और परमानंद सुख माप्त होवै. पुनः प्रकारांतरसें कहा है कि अष्टदल उज्वल कमल चिंतवन करकें कार्णिकामें मध्य महान् पवित्र मुक्तिसुखदाता आद्यपद सत्याक्षर मंत्र 'नमो अरिहंताणं' चिंतवै. पूर्व दिशा दलमै 'नमो सिद्धाणं' चिंतवै, दक्षिण दलमै 'नमो आयरियाणं' चिंतवै. पश्चिम दलमै 'नमो उवज्झायाणं' चिंतन करै. उत्तर दलमै 'नमोलोए सव्वसाहूणं' तथा अग्नि कोण दलमै 'एसोपंचनमुक्कारो' नैऋतकोणमें 'सव्वपावप्पणासणो' वायव्यकोण दलमै 'मंगलाणंच सव्वेसिं' और इशानकोण दलमै 'पढमं हवइमंगलं' चिंतवन करै. इस तरह नवपदका ध्यान करना और मन वचन कायाकी एकाग्रता करनी इस्से महान् फलकी माप्ति होवें. पुनः प्रकारांतरसें अष्टदल उज्वल कमल मुख मध्य स्थापे और दर दलपर अ, क, च,

ट, त, प, य, श, ये क्रमसें अक्षर स्थापन कर स्मरण करै. पीछे ॐ नमो 'अरिहंताणं' ये अष्टाक्षर अनुक्रमसें स्मरण कर लेवै. बाद ये कमलकी केसरामै सोला स्वर किं जो आगे बताये है उन्होंका स्मरण करै. पीछे सुखसें संचरता, कांतिमंडलमै रहता निष्कलंक उज्वल चंद्रबिंब समान मायाबीज ह्रीँ कार मंत्रका स्मरण करै. तदनंतर उन पांखडीयों के बीच फिरता, आकाशमंडळमै संचरता, मनोमल विनासता हुवा, अमृत श्रवता हुवा तालुमार्गसें जानेवाला, भ्रमध्य हुल्लासित हुवा, जाज्वल्यमान् त्रिलोक्य विभुत्व : रक्षक अचिंत्य महिमाका देनेहारा अद्भुत आश्चर्यकारी चंद्र सूर्यके तेजको जीतनेहारा योतिमय साक्षात् तेजरूप अति पवित्र निःपाप—ये मंत्र एक चित्तसें—मन वचन कायाकी एकाग्रतासें ध्यावै तो जो पाप कर्म किये हांवै वै सभीका नाश हो जावै और श्रुतज्ञान सकल वचनमय शब्द ब्रह्म प्रकट होवै. इस तरहसें निश्चल मन कर छ महीने तक अभ्यास करनेसें मुँहमेंसें धुम्रशिखा निकलती हुइ मालूम होवै और उससें भी ज्यादा एक वर्षतक अभ्यास करनेसें मुँहमैसें अग्नि ज्वाला निकलती हुइ नजर आवै. ओर उनसेंभी ज्यादे अभ्यास शुरु रक्खे तो सर्वज्ञका मुखकमल दृष्टिगोचर होवै. और उनसें भी आगे अभ्यास करै तो अष्टकर्म रहित कल्याण महात्म्य आनंदरुप समग्र-अतिशय संयुक्त-प्रभामंडल नजर आवे साक्षात् प्रकट सर्वज्ञ वीतराग देवकों देखै. पश्चात् निश्चय मन होवै, मनका व्यौपार जीतकर परमेश्वरके स्वरुपकी अंदर एकाग्र मन करकें संसाररुप भयंकर वनकों छोड कर सिद्धिमंदिर-मुक्तिमंदिरमे पहुंच जावै. प्रकारांतरसें योगीश्वर मंत्राधिराज हकारकों उपर और नीचे रेफ संयुक्त कलाबिंदु सहित अनाहत नाद संयुक्त अर्हं कनक सुवर्णका कमलमै रहा निष्कलंक चंद्रबिंब समान निर्मल, अति उज्वल, चपल, आकाशमै फिरता, दशोदिशाओंमे व्यापित, मुखकमलमै प्रवेश करता हुवा, परस्पर भटकता, नेत्रमत्ये स्फुरता, ललाट मध्य रहता, तालु मार्गसें निकलता, अति बहुल शरीरकों आनंद परमनिर्भर सुख उत्पन्न करता, अमृतरस श्रवता हुवा, अति उज्वलपणेसें चंद्रमंडलके साथ स्पर्द्धा करता हुवा और ज्योति शरीरमै स्फुरकर आका-

शमंडलमै संचरता शिव श्री मोक्षलक्ष्मीषु एक भावना श्रीके सब अवयव सं-पूर्ण कुंभक करके यानी श्वासोश्वास स्थिर कर एकाग्रतासें इस मुजब ध्यान करै, उस्सें साक्षात् तत्वकों प्राप्त करै. दूसरेभी वहुत प्रकारसें ध्यान आठवे प्रकाशमै है. वो देखकर ध्यानमै लेना.

५ प्रश्नः—रुपस्थ ध्यान किस तरहसें करना ?

उत्तरः—योगशास्त्रमै नवम प्रकाशके अंदर यह ध्यानका व्यौरा है, उनमैसै किंचित् मात्र यहां लिख वतलाता हुं. अव्वलमै भगवंत समोवसरणमै विराजमान है उन्होंका ध्यान धरना. वै कैसे हैं ? मोक्षलक्ष्मी जिनके सन्मुख है, अष्ट-कर्मके विनाश करनेहारे, अन्य जीवोंकों अभयदानके देनेवारे, निष्कलंक, अति उज्वल चंद्रबिंब समान, तीन छत्र मस्तकपर धारण किये हुवे हैं, उल्लासवत चकचकित भामंडलसें करके सूर्यका तेजभी न्यून मालूम होता है, देवदुंदुभी, भैरी, मृदंग, आदि अनेक वाजीत्रके शब्दसें कर किन्नर गांध-र्वादिकके गीत देवांगना—अप्सरा के नृत्य, और देवेंद्रादिककी सेवा इत्यादि ऋद्धिसें संयुक्त, अशोकवृक्ष युक्त शोभित सिंहासनपर बिराजित हुवे हैं. और चामर डुल रहे हैं, देवदानव दैत्य गांधर्वादि नमन कर रहे हैं, मंदार पारिजातक हरीचदन कल्पवृक्षादि दिव्यवृक्षोंके पुष्पोंसें सुगंधि त हुआ समवसरण, उस समवसरणके कोटमैं मृग, बाघ, सिंह, सांप, हाथी, घोडे आदि तिर्यंच शांतपणेसें स्थित हैं, एक दूसरेका वैरभाव प्रभुके अतिशय प्रतापसें शांत हो गया है अैसे अनेक अतिशय संजुक्त वीतराग भगवान्कों केवली महाराजभी वंदना कर रहे हैं—अैसे सर्व जीवकों पूजनीय परमेष्ठी भगवंत अरिहंत वीतरागका स्वरुप देखकर—मनमै रमण कर ध्यान करै और वै प्रभुके गुणोंमैं एकाग्रता करै. उसकों रुपस्थ ध्यान कहा जाता है. दूसरी तरहभी किया जाता है सो भी कहता हुं—राग, द्वेष, मद, मत्सर, क्रोध, मान, माया, लोभ, अहंकारादिक महा मोहके विकार-सें अकलंकित हैं, शांत हैं, कांति तैजसें करकें चकचकित हैं, मनहर महा सौभाग्यसें करकें संयुक्त हैं, समस्त १०८ लक्षणोंसें युक्त, अन्यदर्शनसें अगम्य योगमुद्रा महात्म्य है, आंखोंकों अमंद बहुत आश्चर्यकारी आनंद

परम आनंदका हेतु है. इंद्रियोंकों जीतकर मन काबूमै रखत्र निर्मल चित्तसें और द्रष्टिका मेषोन्मेषसें दूर रखकर श्री वीतरागजीका प्रतिमाका रूप ध्यावै उसकों रूपस्थ ध्यान कहते हैं.

अैसे अतिशय अभ्याससें योगीश्वर तन्मयपणा वीतराग प्रतिमापणा पावै. अपना सर्वज्ञपणा देख सकै. निश्चयतासें जो भगवंत सर्वज्ञ वीतराग सो मैंही हुं अेसें एक मनसें तन्मयता वीतरागपणा पाया तुं सर्ववेदी सर्वज्ञ मान कर ये वीतरागका ध्यान करनेसें वीतराग होकर मुक्ति प्राप्त करेगा. और रागी देवका ध्यान करनेसें क्षोभण उच्चाटनादिक कर्मका करनेवाला होवेगा. अज्ञानतासें यानी वस्तु धर्मकों यथार्थ पढे विना जो ध्यान करैगा सो असत ध्यान गिना जावेगा और प्रयास निष्फळ होवैगा वास्ते यथार्थ वस्तुके कथन करनेवाले वीतराग देव उन्होंकी आज्ञा मुजब ध्यान करना चाहियें. इत्यादि बहुतसें ध्यानके स्वरूप योगशास्त्रमे हैं वो देखकर ध्यानमै लैना.

८१ प्रश्नः—रूपातीत ध्यान किस तरह होता है ?

उत्तरः—योग्य शास्त्रके पत्र २०४ मै इस ध्यानके वारे मै कहा है कि–अमूर्ति चिदानंद स्वरूप नित्य अव्यय निरंजन निराकार शुद्ध परमात्माका ध्यान करना सोही रूपातीत ध्यान कहा जाता है. इस मुजब योगीश्वर निराकार स्वरूप अवलंबन करता हुवा–निराकार ध्यान करता हुवा ग्राह ग्राहक वर्जित निराकारपणा पावै. (जो कुछ पुद्गलिक इच्छासें जप ध्यान किया जावै उसें ग्राह ग्राहक कहा जाता है; और मनकों तावे करकें जप ध्यान द्वारा किसी देवका आराधन किया जावै उसें ग्राहक कहते हैं.) उससें रहित जो योगीश्वर–पर स्वरूपसें रहित और निराकार परमात्म स्वरूप चिंतवन करता हुवा अैश्य निराकारपणा पावै. मनकों और परमात्माकों जो समरस करै वैसें भावकों एकीकरण कहते हैं, वही आत्मा परमात्माके अंदर एक करकें लय करादेता है, इस प्रकारसें योगीश्वर इंद्रियोंकों जीत मन वश करकें तत्र अव्यय स्वरूप निरंजन निराकार चिंतवता हुवा निरंजनपणा पावै. यह ध्यान अनुभव ज्ञानके जोरसें होता है. ज्यौं ज्यौं आत्मा स्व स्वरूपमै लीन होता जावै त्यौं त्यौं विशेष विशुद्धिसें अपूर्वज्ञान प्राप्त होनेसें विशेष अनुभव होवै. ये ध्यान कृत्रिम नहीं है इससें इसका विस्तार

अल्पतासें बतलाया गया है.

८७ प्रश्नः—जैनमै समाधी चढानेका मार्ग है या नहीं ?

उत्तरः—योगशास्त्रमै बहुत विस्तारसें समाधि चढानेका लेख है और कपुरचदजीके स्वरोदयमैभी समाधी संबंधी बहुत रचनायें कही गइ हैं. तथा दूसरे ग्रंथोंमैंभी बहुतसी जगहपर इसका बयान है. आजकलभी इसके अभ्यासी हैं.

८८ प्रश्नः—कितनेक जैनधर्मि नामधारी तेरापंथी श्वेतांबरी कहते है कि-भगवतीजीमैं पत्र ६१३ की अंदर असंजमीको दान देनेसें केवल पाप होनेका कहा है, वास्ते दान न देना वो दुरूस्त है या नहीं ?

उत्तरः—जैनमार्गकी शैली स्याद्वाद है, उस शैलीके ज्ञानकी ठीक ठीक माहेती मिलाये विना जो सख्स एकांतमार्ग ग्रहण करता है उसके हाथमै सूत्रका परमार्थ नहीं आता है. सूत्रमै जितने वचन हैं वे अपेक्षित हैं, वो अपेक्षा गुरूद्वारा ज्ञान लेनेसें होती है; लेकिन गुरूके सिवा अपनी स्वच्छंदतासें अर्थ करें उस्के हाथमै परमारर्थ किस प्रकार आ सके ? सूत्रके अर्थ निर्युक्तिकारने-भाष्यकारनें-टीकाकारनें कहे है, उसपरसें या वै अर्थ गुरुमुखसें धारण करै तव प्रभुके अभिप्रायका ज्ञान होवै. मगर पुर्वधर पुरुष अर्थ कर गये हैं उनसें विपरीत-दूसराही अर्थ स्वयंपडितशेखर बनकें करलेवै और वैसे मंडुकबुद्धिवाले (अल्पमति) पंथ चलावै और उस कुपंथकों प्रमाण कर लेवै तव तो उनकी अज्ञानताके आगे लाजवाबी हैं—निरूपाय है. प्रभुजीने वर्षीदान दीये हैं वे दानके लेनेवाले असंयमी थें, यदि दानमार्गका निषेधही होता तो प्रभुजी क्यौ दान देते ? प्रभुजी सम्यक् द्दष्टिवंत और तीन ज्ञानके ज्ञाताथे उन्होने जो जानबूझकर-गुण समझकर-कार्य किया है वो कार्य (दानधर्म) सबी गृहस्थोंकों करनाही मुनासिब है. ज्ञाताजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ८५४ मै मल्लिनाथजीने दान दिया था उसका अधिकार हैं. और इन्हींके पिता कुंभराजानेभी चारों प्रकारके आहारका दान दिया है उसकाभी वर्णन पत्र ८५५ मै हैं. जो दान देनेसें केवल नुकशानही होता तों मल्लीनाथजीही निषेध करते; मगर निषेध नहीं किया है. पुनः कृष्ण वासुदेवनें थाच्चांकुमार दीक्षा

लेनेकों तैयार हुवे तब सारी द्वारिकावासी प्रजामै उद्घोषणा कराइ-थाली पिटवाइथी कि-" जो कोइ जन दीक्षा लेवैगा उसके पिछले कुटुंबकी मैं प्रतिपालना करुंगा. " अैसें आशयका अधिकार ज्ञाताजीके पत्र ५४६ मै है. उस्सें विचार करो कि पिछले लोक संयमी नहीं थे मगर असंयमी ही थे, तौभी उन्होंके संरक्षणमै लाभ समझ कर वो काम किया था; वास्ते वो काम दूसरोंकोंभी हितकारक हैं. फिर तीर्थंकर महाराजभी जहां पारणा करते है. वहांभी साढे वारह करोड सोनैयों-अशरफियोंकी वृष्टि होती है-जैसे कि पूरणशेठके वहां श्री वीरस्वामिने पारणा किया तो वो कुछ समकिति न था तौभी वहां सोनैयोंकी वृष्टि हुइथी और वो लेनेहारा असंयमी ही था. और इसी तरह मुनियोंकाभी महिमा करनेके लिये सम्यक्दृष्टि देवेता अैसीही भक्ति करते हैं; मगर ये सम्यक्दृष्टिके किये हुवे अैसे कृत्य प्रभुने निषेधे नहीं, तो उस्से सबुत होता है कि ये कृत्य गृहस्थोंके आचरने योग्यही है. पुनः रायपसेणी सूत्रमै परदेशी राजाकों केशि गणधर महाराजाने धर्म पाये पीछे कहा है कि-'हे परदेशी! तुं रमणिक होकर पीछे अरमाणिक मत होना.' उस वक्त परदेशी राजाने कहा कि-'मैं मेरी ऋद्धिके चार हिस्से करुंगा उनमेंसें एक हिस्सा दान-शालामै दउंगा. ' यह अधिकार रायपसेणी सूत्रकी छपी हुइ प्रतके मूल पाठ पत्र २८० मै है. इस्सेंभी खुल्ला मालूम होता है कि दान देना ये मुद्देकी बात है. हां, दानका निषेध है वो मात्र कुपात्रकों सुपात्र बुद्धिसें देना उसकाही है. बाकी अनुकंपासें दुःखी जानकर देना तथा शासन प्रभावनासें देना उनका किसी ठोर निषेध-मना नहीं है. आगमकी परूपणा गुरु मुखसें धारण करकें करनेसेंही बरोबर समुझा जावै. पुनः आत्माका दानगुण तो स्वाभाविक है; मगर जहां तक दानांतराय होवै वहां तक वस्तु बराबर नही समुझी जाती है-दान नहीं देना अैसाही दिलमै विचार आवै. पुनः जहां जहां तीर्थंकर महाराज वा आचार्य महाराज समोसरे है अैसी बधाइ देनेवालोंकों बहुत प्रकारसें प्रीतिदान दीए है उनमेंसें एक अधिकार लिखता हुं:-चित्रसारथीनें केशि महाराज समोसरे

तब वधाइ ल्यानेवाले वनपालक (जंगल खातेका अमलदार) कों दान दिया था. ये अधिकार रायपसेणीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र २१२ मै है वहांसें दरकार हो तौ देख लिजीयें. यदि दानमै लाभ न होता तौ सम्यक्दृष्टि क्यौं दान देवै? उसमै प्रभु भक्तिके भावका उत्साह है वास्ते भारी लाभ है उस्सें दान दीये है. 'ये दानमै धर्म नहीं'—ऐसा कथन करै उसकों शोचना चाहियें कि—भगवंतकों वंदन करनेके लिये जानेके वक्त काममै लिय जाता रथका नाम मूल पाठमै बहुतसी जगेपर 'धर्म-रथ' ऐसा कहा गया है और ज्ञाताजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र १४९ मै वही वार्त्ता है. वास्ते हरएक वस्तु सब शास्त्रोंका विचार करकें ग्रहण करनी चाहियें. दानके वारेमैं ऐसा कहते है कि—'असंयमीकों दान देवै उस्सें वो पुष्ट होवै और आरंभ करै उसकी हिंसा लगै वास्ते नहीं देना.' ऐसा कहनेवालेकों समझना चाहियें कि—तेरापंथी अपने गुरुकों दान देते हैं, और चलकर जायेंगे उसमें पाउंके नीचे कितनेक त्रसजीव तथा पेटमै आहारके योगसें कृमि आदि पैदा होंगे और निहार—दस्त करेंगे उस वक्त वै नाश होंगें तो ये सब हिंसा लगेगी. तथा वडीनीत करेंगे उस विष्टामै जीवोत्पत्ति होगी और फिर नाश हो जायगी उसकीभी हिंसा लगेगी; वास्ते तुमारे गुरुवोंकोंभी आहार नहीं देना चाहियें. लेकिन जरा गौरसें शोचो कि शुद्ध संयमी मुनिमहाराज अपना आत्मसाधन करते हैं वही अपने देखनेका है पर दूसरा विचार लेनेकी कुछ जरुरत नहीं. मात्र आहार पाणीके आधारसें सुखपूर्वक धर्मसाधन होगा. उसी तरह दुःखी जीवकों दान देनेसें आहार संबंधीके संकल्प विकल्परूप उस्का दुःख दूर होगा और उसकों संतोष होगा वही लाभ शोच कर दान देनेका है. अपन कुछ दुष्ट काम करनेके वास्ते आहार नहीं देते हैं, उस्सें वो दूषण अपनकों नहीं लगता है. फिर तेरापंथी लोगोंकों धर्मोपदेश करते हैं और वो उपदेश सुनकर अज्ञानपणेसें तपस्या करता है सो तपस्या करनेसें देवलोकमै वा मनुष्यमै उत्पन्न हो पुद्गलिक सुख भुक्तेगा वो पापभी धर्मोपदेशककोंही लगना चाहियें, वो कभी ऐसा कहें कि

उन्हकों तो धर्मोपदेश देना है उस्सें वो पाप नहीं लगता है, तो हम कहते है कि दान देनेवालेकोंभी स्हामनेवालेकी भूख्का दुःख दूर करना है–दूसरा विचार नहीं. जीव छुडानेवालेकों जीवकों मरता हुवा बचानेकी चाहत है–अभयदान करनेका भाव है, दूसरा भाव नहीं है; वास्ते करुणाभावका लाभ है. वो पीछेसें क्या करेगा? उसका दोष अभयदान देनेवालेकों नहीं लगता है. हरएकवस्तुमै भाव वलवान् है. गुरुवंदन करतेहै. वंदन करनेकों जाते है उनमैंभी मार्गमै–उठने वैठनेमै हिंसा होभी जावै; मगर वंदनके लाभार्थ करते हैं उस लिये वो शोचना युक्त नहीं. तैसेही दान देनेमें भाव वलवान है. पुनः भगवंतजीनें सब दानोंमें अभयदान वलवंत कहा है. ये अधिकार सुयगडांगजीकी प्रतके पत्र ३१८ मै मूल पाठकी अंदर है और उसका अर्थ टीकाकारने पत्र ३२० मैं विस्तारसें किया है, उसमै वसंतपुरके राजाकी कथाभी है, उनका सार यही है कि–राजाकी रानीने चोरकों गर्दन मारनेसें देहांत शिक्षासें छुडाया है और चोर वच गया है. इसपरसें शोचो कि जीव वच जाय और पीछे वो जीव हिंसा करै उनका पाप यदि आता होता तो अभयदानकी भगवंत प्रशंसाही नहीं करते. जीवकों कोइ मारता होवै तौ वचाना. और कोइ भूंखसें मरता हो तो उस्कों खाना खिलाकर तृप्त करना वो अभयदान है. इस लिये शोचना चाहियें; सबब कि स्याद्वाद मार्ग ध्यानमें लैना. सूयगडांगजीके दूसरे श्रुत स्कंध—पंचम अध्यायमें छपी हुइ प्रतके पत्र ८७१ वे आलावेमें कहा है कि–' कोइ खुदग अैसा कहे कि एकेंद्रियसें लगाकर पंचेंद्रिय तकके जीवका विनास होनेका समान पाप है, या एकांत समान पाप नहीं है. अैसा कहवै तो अनाचार. (ये दोनू वोल एकांतसें वोलनेमें अनाचार कहा है). अव इसके शब्दका कुच्छ दूसरा अर्थ निकलनेका नहीं; मगर प्रभुजीने गणधर महाराजजीका परमार्थ दर्शाया है वही पाठ परंपरासें चला आया है उसी आधारसें पूर्व पुरुषोंनेंभी अर्थ भरे हुवे होवै उससें अर्थ पाते हैं–इसका खुलासा टीकाकारने किया है, वहां देखनेसें मालूम हो जायगा. फिर पत्र ८७३ की अंदर आलावा है उसमें कहा है कि:—

आधाकर्मी आहार करनेसें कर्मसें करकें लिप्त हो जाय अैसा एकांतमें कहना अगर तो आधाकर्मी आहार करनेसें अलिप्त रहता है अैसाभी न कहना चाहियें-ये वातें एकांतसें वोले उससें अनाचार कहा जाता है. इसपर शोचेनाकि जो भगवतीजीके पाठके आधारसें दानका निषेध है; मगर टीकाकारने पाठके अर्थमें साफ साफ लिख है और दूसरे स्थानकी गाथा रख्खी है कि-अनुकंपा दान जिनेश्वरजीने नहि निषेध किया है-अैसा स्पष्टार्थ है. उसी मुजब पूर्व पुरुषके अभिप्रायसें तो दानका निषेध किसी जगहपर नहीं है. सूयगडांगजीके शिरोलिखित पत्रका अर्थभी टीकाकारके खुलासेसें आ जायगा. वैसाही अर्थ अपनकोंभी ग्रहण करना चाहियें. जो अर्थ, सूयगडांगजीके पाठका मुंहसेंही प्रमाण सिवा कहा करे तो वो सच्चा क्यौं माना जाय? आधार क्या है? और जिस जीवका मिथ्यात्व दूर न हुवा हो वो कल्पित अर्थ मान लेगा; मगर जिस जीवका थोडा थोडा क्षयाउपशम हुवा होगा वो तो महा पुरुषके किये हुवे अर्थ मुजवही प्रमाण करेगा. वास्ते आत्मार्थिकों रीतसर कहना और वो न समझ सकै तो कंठशोष न करना वही श्रेष्ठ है. पुनः वे लोग आचारांगजीमें हिंसा निषेधक पाठ वताते हैं; लेकिन वो पाठ सव मुनिमहाराज सर्वथा हिंसा त्यागीका है. आचारांगजीमेंभी पत्र २२४ में (छपी हुइ प्रतमें) जो आश्रवके सवव वही संवरके होते हैं. और जो संवरके सवव हैं वही आश्रवके होते हैं. इसमें परिणाम विशेषकी मुख्यता दर्शाइ है. वैसें हरकिसीमें परिणाम विशेष विचार लेना. फिर ठाणांगजीके पत्र ५६१ की अंदर (छपी हुइ में) दशम स्थानांगमें दश प्रकारके दान वतलाये हैं, उसमें अनुकंपादान अभयदान कहा है, और अधर्मदान अलग वतलाया है.

फिर केवल अधर्ममें तुमारे विचार मुजव अनुकंपादान होता तो अधर्मदानमेंही उसका समास होजाता, अलग वतलानेकी फिर जरूरतही क्याथी? परंतु अनुकंपादान और अभयदान अधर्ममें न होनेसें अलग दर्शाया गया है वास्ते जिस मुजब भगवंत आप खुद दान देते हैं उसी मुजव श्रावकके अभंगद्वार कहे हैं कि श्रावक शक्ति मुवाफिक दान देवै सम्यक्त्वदृष्टिके सडसठ वोल कहै हैं-उसीके भीतर चोथा अनुकंपा लक्षण कहा गया है, द्रव्यसें दुःखीकों दान देकर सुखी करै, और भावसें धर्म प्राप्त करवा कै धर्मसें सुखी करै. ये लक्षण होनेपरभी क्यों दान नहीं देवै? अवश्य समकित द्रष्टिवाला दान देवेही देवै. सुपात्रकों कुपात्र

देना वो महान् दोषरूप है और वैसेही कुपात्रकों सुपात्र बुद्धिसें देना महान् दोष है. जिस सबबके लिये देना वो भाव विचार कर देना उसमें दोष नहीं है. उपाशकदशांगजीमें सगदाल पुत्रने गोशालेकों दीया है वहां कहा है-तेरे तप संयमसें करके नहीं देता हुं; लेकिन वीरप्रभुके गुणग्राम करता है वास्ते देता हुं. अब गोशाला मिथ्याद्रष्टी था तोंभी प्रभुगुणग्रामका पक्षकारक समझकर दीआ सो लाभही है. फिर वंदित्तुं सूत्रकी गाथा २३ में अंतपदके भीतर कहा है कि 'असइपोसं च वज्जा' पापीकों पोषन करनेमें अतिचार है; मगर इसका अर्थ किया है कि व्यापारके निमित्त अैसे जीवोंका पोषन करै-वेचै-पैसा कमा लेवै उस बाबतका अतिचार है. अनुकंपासें करकें पोषन करनेका अतिचार नहीं है. हेमाचार्यजीनेभी इसी मुजब अर्थ किया है. इन सब बोताका सारांश इतनाही है कि बहुतसें ग्रंथोंमें ये बात है; वास्ते अैसे मनुष्यकी बातों कमशक्तिवालोंकों नहीं सुन्नी चाहिये. महान् आचार्य हो गये हैं उनके वचनोपर लक्ष देना जिस्सें आत्माका हित होवै. और शक्त्यानुसार दानभी देना यही उत्तम मार्ग है.

८९ प्रश्नः—अैसे जैनमें बहुतसे मत हैं, क्या उन लोंगोंकों आत्माका डर नहीं होगा?

उत्तरः—कितनेक जीव डर रखनेवाले होवै; मगर पूर्वकर्मकी प्रेरणासें उलटा अर्थही सच्चा मालूम पडै इस्से बिचारे क्या करें? फिर कितनेक लोगोंकी बुद्धिही मंद होती है उस्सें जो मतमें पडे हैं उसी मुजब चलते हैं-या बातें करते हैं-ये सब कर्मकी गति है. अपनभी जैनी नाम कहेलाकर जैनमार्ग क्या है उसकाभी चाहिये उतना ज्ञान नहीं मिला लेते हैं. फिर संसारकों असार जानते हैं; तदपि उसका त्याग नहीं करते हैं, वोभी अपने कर्मकीही गति है. और तमाम जीव कर्मकेही आधीन हैं. वास्ते जीवके उपर द्वेष न रखकर केवल अपने आत्माकी परिणती सुधर जाय वैसा उद्यम करना. ज्यौं बन सके त्यौं संसारकी उपाधी कम करनी. अपनी आजीविका थोडे विकल्पसें चलती होवै; तथापि जियादे धन मिलालेनेकी-खर्च करनेकी लालचके लिये उपाधी करनी वो लायक नहीं है. उपाधी ज्यौं बने त्यौं छोडकर रातदिन ज्ञानाभ्यास करना और उस ज्ञानसें आत्माका स्वरूप देखना. दो घडी एकांतमें बैठकर आत्माका

विचार करना यही श्रेयकर्त्ता है. आत्माकी परिणती विगड वैठे अैसे वा-
दविवादमें व्यर्थ समय न व्यतीत करना, यही हमारी शिक्षा है

१० प्रश्नः—आत्म प्रदेश हिलेहुवे रहनेका अधिकार आचारांगजीमें छपी हुइ टीकाके
पत्र १०२ मैं है उसका सवव क्या है?

उत्तरः—आ चारांगजीमें उष्णोदकवत् उदवर्त्तना कररहे हैं ये वात सत्य प्रत्यक्ष स-
मजी जाती है कि शरीरके सब भागोंमें नसें हिल रही हैं वे पीछी जीव रहित
शरीर हो जाय तब कुछभी नहीं हिलती, उस्से समझा जाता है कि आ-
त्म प्रदेशके चलायमानपणेसेंही हिलती हैं. इस मुजब लोकप्रकाशमेंभी
अधिकार है.

११ प्रश्नः—मुनी कंखामोहनी कर्म वांधे यह अधिकार कहां–किस ग्रन्थमैं है?

उत्तरः—श्री भगवतीजीकी छपी हुइ टीकाके भीतर और बालावोधमेंभी पत्र ७०
में है. तेरह प्रकारके अंतर कहे हैं. उस सववके लिये मुनी शंका करै तो
कंखामोहनी वांधे; वास्तेजिन्न वचनोमें शंका नहीं करनी. कंखा शब्दसें
मिथ्यातमोहिनी कही है, इस लिये ज्यौं वन सकै त्यौं परमात्माके वचन
पर दृढ विश्वास रखना.

१२ प्रश्नः—भुवनपति वगैरः नीचेके देवता देवलोकमें जावें या नहीं?

उत्तरः—भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पाने २५६ में चमरेंद्र गया था अैसा अ-
धिकार है; लेकिन उसमें इतना विशेष है कि अरिहंतजीका, अरिहंतजीकी
मूर्तिका या साधुजीका शरण लेकर जाय तो जा सकता है, उस विगर
नहीं जा सकता.

१३ प्रश्नः—तामली तापसने साठ हजार वर्षतक तपस्या की वो मुक्तिमें गइ कहते
हैं उसका क्या मायना है?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र २३२ में तामली तापसका अधिकार है वहां अल्प
फल कहा है; मगर कुछभी न मिला अैसा नही कहा है. फिर इशानेंद्र
हुआ तोभी अल्प फल कहा है वो मुनीकी अपेक्षासें कहा है; सवव कि
अैसी तपस्या समकित युक्त की होती तो वहुतही निर्जरा होती; लेकिन
वो न हुइ, उस अपेक्षासें अल्प फल कहा है. ऋद्धि तो वहुतसी पाया

है, फिर स्थानकभी अैसा पाया है कि समकित प्राप्त किया.

प्रश्नः—तुंगीया नगरीके श्रावकका अधिकार कहां है?

उत्तरः—भगवतीजीकी प्रतके पत्र १९१ में अधिकार श्रवन प्रमुखके फलका अधिकार है वहां तुंगीआ नगरीके श्रावकका स्वरूप है.

९५ प्रश्नः—अभवी कहांतक पढ सकें?

उत्तरः—नंदीसूत्रकी छपी हुइ प्रतमें पत्र ३९९ में साडे नौ पूर्व तक पढ सकै, अैसा कहा है; मगर श्रद्धा न होनेके सबबसें आत्माका कार्य सिद्ध नही होवै.

९६ प्रश्नः—श्रावकके व्रत लिये बिगर दूसरे फूटकर नियम करनेकी मर्यादा है या नहीं?

उत्तरः—भगवतीजीकी अंदर पत्र ४६१ में अधिकार है. वहां कहा है कि मूल गुन पच्चख्खानीसें उत्तरगुन पच्चख्खानी असंख्याते है; मगर तीर्यंचभी श्रावकके व्रत लेते हैं, उस्से असंख्यात गुने कहे हैं. टीकाकारने विशेषतासें कहा है कि सहत, मख्खन, मांस, मदिराका नियम करै वोभी उत्तरगुन पच्चख्खानी कहा जाता है, इस तरह वहां अधिकार है.

९७ प्रश्नः—छठे आरेमें जो जीव होवेंगे उन्होंका कितना आयुष्य? और वे समकिती या मिथ्यात्वी?

उत्तरः—छठे आरेके जीवोंका आयुष्य १६ सें २० वर्ष तकका कहा है. बहुत करकें समकित रहित वहां रहेवेंगे वगैरः सब अधिकार भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ४७९ में है सो वहांसें देख लेना.

९८ प्रश्नः—पांच इंद्रियोंमें कामी इंद्रि कौनसी और भोगी कौनसी?

उत्तरः—श्रोत्र, चक्षु ये दो इंद्रियें कामी और स्पर्श, रसेंद्री तथा घ्राण ये भोग इंद्रियें हैं; सबब कि ये इंद्रिसें भोगनेसें सुख है—इसका सविस्तर अधिकार भगवतीजीकी प्रतके ४८७ पत्रमें है.

९९ प्रश्नः—श्रावक संथारा करै तब सर्वथा पांचों व्रत अंगीकार करै?

उत्तरः—वरुनत्ताग नटुवेने सर्वथा प्राणातिपात प्रमुखका त्याग किया है. ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ५६० में है, वास्ते कर सके अैसा मालूम होता है.

१०० प्रश्नः—श्रावक रात्रिपोषह करे तब दिया रख्खे या नहीं?

उत्तरः—श्रावक पोषहमें दिया न रख्खे; सबब कि श्रावक प्रतिक्रमण करता है तब दो घडीकी सामायिक है, उसमें काउस्सग्ग करता है तबभी आगार रख्खा गया है कि दिया-विजलीकी उजेइ आ जाय तो वस्त्र ओढ लेना तो कायोत्सर्ग भंग न होवै, इस लिये आगार है. अब शोचो कि अकस्मात् कोइ दिया वगैरः ल्यावै तो कपडा ओढ लेना, तब रख्खा क्युं जाय? यहांपर शंका होगा कि उजेइ यानी उजाला उसमें किस वास्ते वस्त्र ओढना? उसका ऐसा समझना कि उजेइ है सो अग्निकायके जीव है, उनका अपना स्पर्श लगनेसे वे जीव विनाश पाते है ये अधिकार समय सुंदरजीके प्रश्नमें हैं. फिर महानिसिथ सूत्रजीमें चौथे अध्यायकी अंदर पत्र पांचवेमें सुमतिनागीलका अधिकार चला है, उसमेंभी एक मुनिराजने विजलीका प्रकाश हुवा तब वस्त्र न ओढा, उसीसें वहां कहा है कि अग्निकायके जीवोंकी विराधना हुइ, उस्सेंभी अग्निकाय सिद्ध होते हैं. फिर भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ५१८ में अग्नि सुलगानेहारा महा आरंभी याँ बुझानेवाला महा आरंभी? वहां आग सुलगानेवाला महा आरंभी कहा है—वगैरः अधिकार चला है, उस पीछे प्रश्न हुवा कि जैसें अचेतन अग्निकाय प्रकाश करता है वैसें अचित्त पुद्गलकी ऐसी प्रभा होवै या नहीं? तब भगवंतजीने फुरमाया कि—जब मुनि तेजोलेश्या किसीके पीछे छोडता है तब वै अचित पुद्गलका प्रकाश होता है इस्सेभी समझा जाता है कि अग्निकी प्रभा सचित्त कही. फिर मुनि पख्खी अतिचारमें तथा श्रावक पख्खी अतिचारमेभी उजेइ आलोयते हैं.-पुनः श्राद्धजितकल्पमें उजेइका प्रायश्चित कहा है. बृहत्कल्पमेंभी जहां दिएका उद्योत हो वहां किसी सबबके मारे एक दो रोज रहै; मगर विशेष रहै तो प्रायश्चित लगै ऐसा कहा है. पुनः टीकामें सविस्तर अधिकार है कि अणसण किया हो तो दीपक रख्खै. ऐसे सबबके वास्तें दीपक रखनेकी मर्यादा है; लेकिन सबबके सिवा निषेध है.- तो फिर पोषधमें श्रावक पढनेके वास्ते रख्खै वो तो असंभव है; सबब कि 'समणोइव सावओ..' ऐसा पाठ है; वास्ते ज्यौं रात्रिकों साधु दीपक नही रख्खै त्यों श्रावकभी रात्रीमें

दीपक न रक्खे, असी हमारी समझ है. उजेइके वास्ते कपडा ओढनेका अधिकार ढूंढारुवृत्तिमें पत्र २८ के भीतर है, फिर सेनप्रश्नके अंदर प्रश्न ९८ में पत्र ६४ के अंदरभी दीपककी उजेइका प्रश्न है, उसमेंभी काउस्सग्गनिर्युक्तिकी गवाह है. ये कुछ हकीकत देखनेसें दिया रखना बेमुनासीब मालूम होता है.

१०१ प्रश्नः—श्रावक जिनमंदिरका द्रव्य व्याजु रख सकता है ? और पूजनके कार्यमें उनका व्यय करै तो कुच्छ हर्ज है ?

उत्तरः—अभिके वक्तमें श्रावकोंको जिनमंदिरके कर्मचारी जबरदस्तीसें व्याजु देते हैं; मगर श्राद्धविधिमें पत्र १०१ के अंदर श्रावककों जेवर रखकरभी धीरधार करनेकी मना फुरमाइ गइ है; सबब कि श्रावक कम व्याजसें लेवै और जियादे व्याज पैदा कर लेवै, वो फायदा देवद्रव्यके अंदरसें हांसिल किया. फिर श्राद्धविधिमें सागर शेठकी कथा है, उसमेंभी फक्त जिनमंदिरके मनुष्यकों पैसेके बदलेमें अनाज दीआ था. उसमें एक रुपैकी ८० कांगुनी होवै उनमेंसें फक्त १००० कांगुनीका लाभ हांसिल हुवा था उसमें कितना संसारमें भ्रमण किया ? वो कथा जब पढोगे तो बेशक हृदय भेदा जायगा; क्यौं कि उतने लाभकी एवजीमें क्या क्या दुःख उठाने पडे हैं ! वास्ते श्रावककों संकटमें डालनेवाले रुपै देनेवालेही हैं. फिर जिस वक्त श्रावक पैसा लेता है उस वक्त तो अच्छी हालत होती है, लेकिन जब मुश्कीन हालत हो जाय तब बडी फजीती होती है. सबके सब दिन एक समान नहीं रहते हैं. जब दिन पलट जाय और खानेकेभी फाके पडनेका वक्त आ जाय तब शेठीयोंका ल्हेना यदि होवै, तो अव्वलमें आपका ल्हेना वसूल करलेते हैं. यदि आपका ल्हेना न होवै तोभी आपसे एकधर्मी होनेके सबबसें शरमके मारे उसपर जियादे तकाजा नहीं किया जाता है. उस्सें दूसरेका कर्जह वसूल हो जाता है; मगर जिनमंदिरका कर्जह युंही रह जाता है. इसमें मंदिरका द्रव्य जावें और लेने वालेकों बहुत भवभ्रमण करना पडे. देवद्रव्य भक्षणके फल बहुतसें शास्त्रोंमें लिखा है. उपदेशपदमें हरिभद्रसूरीजीने

कोइ देवद्रव्य खाता हो उसकी संभाल न रक्खे, तो उस श्रावकके लिये कितने कटुफल वतलाये हैं और खानेवालेके भवभ्रमणका तो पारही नहीं. पुनः श्रावकको पैसे धीरनेका रिवाज होवै तो खुद शेठियेभी पैसे उठा जाते हैं. और अभीके वक्तमें तो इसी तरह होनेसें जगे जगे औं स्वाहा कर जानेके वनाव वनते हुवे मालूम होते हैं. इस्से वहुतही देवद्रव्यका नाश हुवा है, वो सव भाइयोंके जाननेंमेंही है. फिर षष्टीशतककी टीकामें इतने तक कहा है किं देवद्रव्य वढानेके वास्ते वहुत मूल्य देकरकें भी मंदिरकी चीज लेते हैं और खुद वापरते हैं उस्कों नरकगामी जीव कहे हैं; वास्ते देवदव्यसें तो ज्यौं वन शके त्यौं दूरही रहना.

फिर जिनपूजन करनेंमेंभी सव उपकरण शक्तिवालेकों तो अपने घरसेंही ल्यानेका फरमान है. ओरसिया वगेरः पदार्थभी श्रावक खुद अपनी पदरका धन देकें वना लेवै. जो जियादे धनपात्र है वो ऐसी वस्तुऐं वना रखवावै. साधारन धनपात्र ऐसी चीजें नें वना सकै तोभी केसर-चंदन-पुष्प वगेरः तो हर्गिज वपरासमें न लेवै. वो चीजें तो घरके पैसोंकीही लेवै; क्यौं कि मंदिरके द्रव्यमेंसें ल्याइ हुइ ऐसी चीजें काममें लेनेसें लाभ नहीं होता है. आत्म प्रवोधमें कथा है कि-' एक समकितीकों पीछले जन्ममें देवद्रव्यसें नुकसान हुवा है, उससें ये जन्ममें ऐसा नियम किया है कि में मंदिरमें लाये जलसेंभी हाथ न धोउंगा.' फिर श्राद्धविधिमेंभी कथा है कि-एक लक्ष्मीवाइने देवद्रव्य वढानेके लिये वहुतसें उत्सव कियेथे, उसनें मंदिरके उपगरण वपरासमें लिये, यदि उसका नकराभी दिया, तौभी कुछ नकरा कम पडनेके सववसें भोगांतराय वांधा जिस्सें दूसरे जन्ममें जन्म लिया जवसेंही पियरमें शोक पडने लगे, और सादी हुवे पीछे ससरेके घरमें शोक पडने लगे. पीछे मुनि मिले तव पुंछा कि-'महाराज! मेरे जन्म भरसेंही शोक पडताही मालूम होता है उसका सवव क्या?' पीछे गुरुजीने कहा-पूर्व जन्ममें मंदिरके उपगरण कम नकरा देकर वपरासमें लियेथे उसका ये फल है.' सोचो कि कम नकरेके लिये असा हुवा तो मुफतमें मंदिरकी चीजें घर काममें ल्याकर वपरासमें लेवै तव तो फिर नुकसानीका कहनाही क्या? वास्ते मंदिरकी या साधारनकी, ज्ञानद्रव्यकी चीजोंसें वहुत दूर रहना और कोइभी अंशसें अपने घर काममें न आवे ऐसा खूव खियाल रखना, ये द्रव्यकी न्यायसें वृद्धि करनेमें

तत्पर रहना, और पूजन सेवनमें पदरके पैसेसेंही चित्त प्रफुल्लित रहता है वास्ते सुंदर शुद्ध द्रव्य घरसेंही लेकर वापरना.

साकेतपुर नगरमें सागरशेठ नामक श्रावक रहताथा उसकों धर्मी जानकर श्रावकोंनें मंदिरका द्रव्य सुंपरद किया और कहा कि–' इन द्रव्यमेंसें मंदिरके काम करनेवाले शिलवट, सूत्रधार, मजुदूरकों उनकी मिहनतके पैसे चुकाते रहना.' वो द्रव्य सागरशेठके हाथ आनेसें लोभमें पडा, उससें वो सुतार वगैरःकों नकद पैसे न देतें उसकी एवजीमें अनाज गुड कपडा वगैरः देने लगा. उनमेंसें एक रुपेकी ८० कांगुनी होती है इस तरह १००० कांगुनी उनने पैदा की और वो पैदास अपने घरमें रख्खी. उससें महा पाप उपार्जन किया और विगर आलोचे मरकर वो समुद्रमें जलमनुष्य हुवा. वो जलमनुष्यकों इंदगोली होती है. वो इंदगोली जो मनुष्य पास रखकर समुद्रमेंसें रत्न निकालनेकों जावै तो वो नही डूबता है. उससे समुद्रके उपकंठनिवासि वनियोंने सागरशेठके जीव जलमनुष्यकों पकडकर चक्कीके नीचे दवा रख्खा. छः महीने वाद चक्कीके नीचे दवाकर मर गया और तीसरी नरककों गया. वहां नारकीके दुःख भुक्तकर आयुष्य पूर्ण हुवे वाद पांचसो धनुषके शरीरका मच्छ हुवा. वहां मलेच्छोंने पकडकर अंगोपांग काट डाले उससें मरकर चौथी नरकमें गया. वहांसें निकलकर एक एक भवके अंतरसें पांचवी, छठवी, सातवी नरकमें दो दो वक्त जा आया. ऐसें नरकके परमाधामीकी वेदना क्षेत्रवदना सहन कर पीछे फिर तीर्यंचके भव करके एक हजार कूत्तेके भव भुक्ते, और दूसरेभी एक हजार भव नीचे मुजव लेने पडे.

सूवरके, वकरेके, घेटेके, सस्सेके, हिरनके, सावरके, शियालके, वील्लीके, चूहेके, घूसके, छिपकलीके, पटलागोहके, सांपके, विच्छूके, विष्टाकेकीडेके, शंखके, सीपके, जोकके, कीडेके, पतंगीएके, मच्छरके, कछुआके, गदहेके, भैंसके, व्हेलके, ऊंटके, खच्चरके, घोडेके, और हथ्थीके ऐसे एक एक जातीमें १०००, हजार भव किये. फिर पृथिवीकाय, अपकाय, तेउ, वाउ, वनस्पतीकाय वगैरःमें लाखों भव भ्रमणकर किसी ठौर शस्त्र अस्त्रके प्रहार सहन किये, वडी वडी पीडायें भुक्ति, और वहुत हैरान हुवा. वाद देवद्रव्य भक्षणका पाप वहुत क्षय होनेसें वसंतपुर नगरमें कोटीध्वज वसुदत्तशेठकी वसुमतिके कुखमें पुत्रपणेसें उत्पन्न हुवा. वो सागरशेठका जीव गर्भमें

आया जबसेंही वसुदेवशेठका द्रव्य नाश होने लगा. जिसदिन जन्म हुवा उसदिन वसुदेव मर गया. पांचवे वर्ष उसकी मा मर गइ. लोगोंने उसका निपुन्निया नाम रख्खा. दरिद्रि रंककी तरहसें वडा हुवा. एक वक्त उसकों बुरी हालतमें उसके मामुने देखा तो वो अपने घर ले गया. उससें उसी रातमें उन् निपुन्नियेके पांउके सबवसें चोरोंने घर लूंट लिया. वहांसें वो दूसरी जगइपर गया. वो जहां जावै वहां उसकों चोर लूंट लेवै या आग लगै और आपत्ति पावै. हरकोइ विपत्ति उसकों आ भेटै. अैसी स्थिति देखकर कोइ उसकों खडा नहीं रहने देवें, और लोग निंदे कि ये तो जलती उपाधि है. अैसी अनेक तरहकी लोगनिंदा होने लगी. वो सुनकर उसका मन उद्वेगतावंत हुवा. उस सबबके मारे वो परदेशकों चला गया. तामलिप्त नगरमें रहने लगा. वहां विनयधरशेठ रहता था उसके घर चाकर बन कर रहा. मगर रहा उसी रोज उस शेठके घरमें आग लगी, उसके लिये उसकों बावले कुत्तेकी तरह हकाल दिया. तब पश्चाताप करता—शोचने लगा और पुर्वका किया हुवा निंदनीय कर्मकों निंदने लगा. जो जो कर्म स्ववशपणेसें करता है वो कर्म उदय आवै तब परवशपणेसें भुक्तने पडते हैं. अैसें निंदा करता हुआ वहांसें दूसरी जगहपर गया, और चलता चलता दरियावके किनारेपर पहुंचा. उसरोज धनवान नामक शेठ जहाजपर सवार होकर धन उपार्जनार्थे विदेशकों जानेवालाथा, उसीका नौकर बनकर उनके साथ जहाजमें बैठ गया. जब जहाज रवने होकर कुशलता पूर्वक दूसरे द्वीपकों पहुंच चुका, तब निपुन्निया शोचने लगा कि—यह बडी आश्चर्यकी बात है कि मैं जहाजमें सवार हुआ तौभी जहाज न भागा! न डूब गया!! अैसा शोचता है उतनेमें तो दुष्ट दैवने दंडसें करके जहाजकों भग्न कर डाला. निपुन्निया समुद्रमें डूबा किंतु वहां पाटीआ हाथ आ जानेसें उसके सहारे सहारे किनारे पहुंचा और बच गया. वहार निकलकर नजदीकके गाँवमें वहांके ठाकुरके वहां नौकर बन रहा. तो उस जगे धाड पडी. निपुन्नीएकों ठाकुरका लडका समझकर चोर—धाडुंलोग पकडके ले गये और उसकों अपने रहनेकी जगहपर रख्खा. वहां दूसरे पल्लीपतीने चडाइकर उन धाडपाडुओंकी पल्लीका नाश कर डाला. अैसा होनेसें धाडपाडुओंने निपुन्नियेकों वहांसे मार हकाल दिया. तो वेलके वृक्ष नीचे जा बैठा और वेलका फल गिरनेसें सिरमें चोट लगी, तो वहांसें भागकर हजारांह जगहपर भटका. जहां जावै वहां चोरका, पानीका, आगका, परसैन्यका

और मरनका असे असे उपद्रव होतेही रहे. उसी सबबसें कहीं ठहरने न पाया. सभीने मार हकाल दिया. असे कष्ट उठाते उठाते एक अटवीमें जा पहुंचा. वहां सेलक नामक यक्ष कि जोर बडा प्रभाविक था, उसका उसने एकाग्रचित्तसें आराधन कर. समस्त दुःखभी निवेदन किया, और एकीश रोजका छल्ला पूरा हुवा तो यक्ष ही कहेने लगा–अय भोले आदमी! दर सायंकाळके वक्त मेरे अगाडी सुवेके चंद्रयुक्त बडा सुशोभित मोर नाच करेगा, उन मोरके निरंतर पर खीरते रहेंगे, वै पर लेकर मौज करना.' असा सुनकर निपुन्निया हर्षवंत हुआ, और हरहमेशां सुवेकेपर लेकर मोजमें रहने लगा. जब नौसो पर इकठे हुए तब वो शोचने लगा–'इस घोर जंगलमें कहां तक पडा रहुं? मोरके पर मुठीये भर भरके नौच लुं के बेडा पार हो जाय और चलेजानेकाभी मोका हाथ आ जाय.' दुष्टदैवकी प्रेरणासें उसने युंही किया, तो मोर उडकर सारे इकठे किये पर लेकर चलता हुवा. निपुन्नि या बहुत शोचने लगा–'धिःकार है मेरे बदनशीवकों, जो मूर्खता करके सतावी की तो मिलाइ हुइ चीजभी चली गइ.' सच्च है कि देवकी आज्ञा उल्लंघन करनेसें वेशक निष्फलता प्राप्त होती है. निपुन्निया आया था वैसाका वैसाही चला और जंगलमें भटकने लगा. वहां एक उपकारी मुनीराजका मिलाप हुवा तो नमस्कार कर उसने महाराजके आगे सारा हाल कहकर पिछले जन्मका वृत्तान्त पूछा. मुनीमहाराजने कहा–'हजार कां- गुनी देवद्रव्यमेंसें खाइ है उसी पापके मारे तूने यह जन्ममें और दूसरे जन्मोंमें दुःख पाया है.' असा कहकर सारा पूर्वके जन्मोंका हाल सुनाया. और पीछे देवद्रव्य भक्षणके पापसें निवृत्त होनेका उपायभी कहा कि–'हजार कांगुनी खाइ है, उससे जियादा धन दे देना, देवद्रव्यका रक्षण करना, और देवद्रव्यकी वृद्धि करनी, उससें दुष्टकर्म दूर हो जायगां. सब जीवोंकों भोगलक्ष्मीसुखका लाभ होवै.' असा सुनकर उसने नियम लिया कि उससें हजार गुना द्रव्य देवद्रव्यमें दउंगा. और वस्त्र आहा- रादिमेंसें जो धन बचेगा वोभी देवद्रव्यमें दे दुंगा. थोडाभी द्रव्य में पास न रख्खुंगा. असा मुनीराजके पाससें नियम लिया और शुद्ध श्रावकधर्म अंगीकार किया. उस पीछे जो जो व्यौपार किया उसमें द्रव्य पैदा किया. उससें गत जन्ममें हजार कांगुनी खाइथी उसके बदलेमें दश लाख कांगुनी देवद्रव्यमें दी. तब देवद्रव्यके ऋणसें मुक्त हुवा और उसीसें बहुत उसने धन पैदा किया. पीछे अपना व्याज बढाने लगा और

हुतसा धन पैदा किया सो खोराकी पोषाकी करतें बचा सो कुल्ल देवद्रव्यमेंही दे दिया. इसमुजब बहुत देवद्रव्यकी वृद्धि की. इन वृद्धि करनेके पुन्यसें तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया. समय हाथ आनेसें दीक्षा अंगीकार करकें गीतारथ हुवे. धर्मदेशनादिकसें, देवभक्तिके अतिशयसें करकें जिनभक्तिका पहिला स्थानक आराध कर तीर्थंकर नामकर्म निकाचित करकें कालधर्म पा सवार्थसिद्धिमें पहुंचे, वहांसें चवीके महाविदेहक्षेत्रमें तीर्थंकर पदवी भुक्तकर सिद्धि पावेंगे. इस तरहकी कथा श्राद्धविधिमें पत्र १०१ सें १०३ तक है.

अब साधारन द्रव्य और ज्ञानद्रव्यपर कथा कहते हैं. भोगपुर नगरके अंदर धनवा नामक शेठ था वो चोवीश कोडी सोनैयेका मालिक था. उसकी धनवती स्त्रीने पुत्रकी जोडीकों जन्म दिया. एकका नाम करमसार और दूसरेका नाम पुन्यसार था. एक वक्त पिताने निमित्तियेसें पूछा कि–'ये पुत्र कैसे निकलेंगे?' निमित्तिया कहने लगा–कर्मसार जडप्रकृतिवाला निर्बुद्धि होगा, और विपरीत बुद्धिसें करकें घरका सब धन गुमा बैठेगा. नया धन पैदा न कर सकेगा. बहुत काल तक बडी दरिद्रतासें चाकरी कर दुःखि उठायगा. और पुन्यसारभी है उसीके जैसाही, मगर व्यौपारमें विचक्षण निकलेगा. दोनूकों वृद्धावस्थामें धन पुत्रादिकका सुख मिलेगा.', तदनंतर दक्ष पिताने उन् दोनूकों चतुर उपाध्यायके पास विद्याध्ययनके लिये रक्खे. पुन्यसार सुखपूर्वक सब विद्या पढा; लेकिन कर्मसार बहुत मिहनत करनेपरभी एक अक्षर नहीं शीख सका. बिलकुल पशुतुल्यही रहा, उससें उपाध्यायनेभी पढाना मोकूफ किया. जब दोनू उमर लायक हुवे तब धनवानोंकी लडकियोंके साथ उसीके पिताने सादी करवादी और दोनूकों बारह बारह कोडी सोनैये बांटकर अलग कर दिये. उस पीछे मात तात दीक्षा लेकर देवलोकवासि हुवे.

अब कर्मसारने सज्जन लोगोंकी मना तरफ बेदरकारी बतलाते हुवे व्यौपार किया, अपनी बुद्धिके मारे धनकी हानी हुई और थोडेही दिनोंमें पिताकी दी हुइ दौलत बरबाद कर डाली.

पुन्यसारकों जो दौलत मिलीथी उसकों चोर लूट ले गये. दोनू दरिद्री बन बैठे. स्वजनोंनें उन दरिद्रीओंकों छोड दिये औरतेभी भूखे मरती हुइ उनकों छोड छोडकर पियरमें जा रहीं. धनके सिवा गुणिजनभी निर्गुणि हो जाता है. अपने सं-

संबंधीजनभी चाकरके मिसालभी निर्धन संबंधीको नहीं गिनते हैं. और धनवंतमें थोडीसी चतुराइ होवै तो उसें चतुर कहते हैं. मगर वै दोनू भाइ तो निर्धन होनेसें उन्होंको निर्बुद्धि निर्भागी कहकर बुलाने लगे, तब उन्होंने लाजकेमारे विदेशका रस्ता पकडा और वहां जाकर अलग अलग रहना दुरुस्त मान लिया. कर्मसार किसी धनवानके वहां और उपायके अभावसें नौकर बन रहा. वो शेठ झूंठा बोलनेहारा, अदत्तका लेनेहारा और चाकरोंके पगार भी वक्तसर न देनेहारा होनेसें कर्मसारकों खानेपीनेकी बडी तकलीफ उठानी पडी. पुण्यसारने तकलीफ उठाकरकेंभी कुच्छ धन पैदा किया पर छुपा रख्खा तो धूर्तोंने छल करकें, धन उडा लिया. इसतरह बहुत जगहपर चाकरी करकें, धातुवादीसें खान खोदकर रसायन सिद्ध किये, रोहणाचलपर रत्न लेनेकोंभी गया. मंत्रसाधना कर रुद्रवती वगैरः जडी लेनेका महा पराक्रमभी ११-१२ दफै करकें धन प्राप्त किया; मगर वो हाथ न रहा. कर्मसारकोंभी धन मिलकर फिर चला गया. दैव विपरीत होनेसें मिहनत व्यर्थ जाती है. उस पीछे दोनू भाइ उदास-निरास हो जहाजपर स्वारी कर रत्नद्वीपमें जा पहुंचे. दोनूने सांभल्य रत्नद्वीपकी देवी जानकर मरण अंगीकार करकेंभी उन देवीका आराधन करना शुरु किया. जब आठ उपवास हुवे तब देवी प्रकट होकर कर्मसारसें कहने लगी–'तेरे भाग्यमें धन नहीं है; वास्ते ये काम छोडदे.' औसा सुनकर कर्मसारने आराधना बंध की. पुण्यसारने एकीस रोज तक आराधना शुरुही रख्खी उससें देवीने प्रसन्न हो उसकों एक चिंतामणि रत्न बक्षा. वो देखकर कर्मसार पश्चाताप करने लगा. तब पुण्यसारने कहा–'खेद मत कर. इस रत्नसें तेराभी काम फतेह होगा.' औसा सुनेसें कर्मसार खुश हुवा और दोनू भाइ प्रीतिपूर्वक जहाजपर स्वार हुवे. पूर्णिमाकी रात्री होनेसें पूर्णचंद्र उदय हुवाथा, तब कर्मसार बोला–'भाइ! तेरे पास रत्न है उसका तेज विशेष है या चंद्रका? वो अपन देख लेवै.' औसा सुन पुन्यसारनेभी पूर्वकर्मकी प्रेरणासें रत्न निकालकर हाथमें रख्ख जहाजके किनारेपर बैठ चंद्र, चिंतामणीके तेजका मुकाबला करने लगा. अभाग्यवशसें रत्न समुद्रमें गिर पडा. मनोरथ निष्फल हुवे. दोनू भाइ जैसी हालतसें विदेश गयेथे वैसीही हालतसें दुःख पाते हुवे अपने वतन जा पहुंचे. वहां ज्ञानी गुरुका मिलाप हुवा, उन्हीके चरनमें शिर झुकाकर पीछे पूर्वभव वृत्तान्त पूँछने लगे. ज्ञानी महाराजने कहा–'चंद्रपुर नगरमें जिनदत्त और जिनदास

ऐसे दो श्रावक परमअरिहंतजीके भक्त थे. एक वक्त सब श्रावकोंने मिलकर बहुतसा ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य उन दोनु श्रावकोंकों एक एक द्रव्य संभालनेके. वास्ते दिया. और वै दोनु अच्छी तरहसें संभाल रखने लगे. जिनदासने अपने लिये पोथी पुस्तक लिखायाना और अपने पास दूसरे द्रव्यका अभाव था जिस्से शोचा कि मेरी पोथी लीखी गइ है वोभी ज्ञानकाही ठिकाना है. ऐसा शोचकर ज्ञानद्रव्यमेंसें बारह दाम लेखककों दिये. जिनदत्तने साधारण द्रव्यमेंसें अपने घर बहुतसे प्रयोजनके कार्यनिमित्त दूसरे द्रव्यके अभावसें अपने काममें व्यय कर डाला. यों दोनु श्रावक द्रव्यका विपरीततासें व्यय करनेके सबबसें. मर कर पहेली नरकमें गये. नरकमेंसें निकलकर सर्प हुवे. वहांसे मरकर दूसरी नरकमें गये. वहांसें निकलकर गीधपंखी हुवे. वहांसे मरकर तीसरी नरकमें गये. एक एक दो भवके अंतर सातों नरककी सफर की. एकेंद्रि, बेरेंद्री, तेरेंद्री, चौरेंद्रि, पंचेंद्री, तीर्यंचके बारह बारह हजार भव करकें वारंवार दुःख भुक्तकर बहुतसे कर्म क्षीण हुवे बाद वो दुष्टकर्मके लियेसें उन दोनूकों बारह हजार भव बारह दामकी एवजीमें दुःखपूर्वक भुक्तने पडे. फिर इस भवमें बारह क्रोड सोनेये गुमा दिये. हर वक्त बहुतसी तदबीरसें धन पैदा किया; मगर वो नाश हो गया. दूसरेके घरकी चाकरी कर दुःख भुक्तना पडा. कर्मसारके जीवने ज्ञानद्रव्यका भक्षण किया उससे निर्बुद्धि हुवा—बुद्धिभ्रष्ट हुआ और बहुसा दुःख उठाया. पुण्यसारने साधारण द्रव्यके भक्षणसें बेर बेर धन गुमाया.' इस तरहं मुनीमहाराजके मुंहसे पूर्वभवका चरित्र सुनकर दोनु भाइने श्रावकधर्म अंगीकार किया. और प्रायश्चितके बदलेमें बारह हजार दाम ज्ञानद्रव्यमें और साधारण द्रव्यमें देअेंगे ऐसा नियम ग्रहण कर लिया. तत्पश्चात् दोनु भाइयोंने पूर्वकर्म क्षय हो जानेसें बहुतसा धन पैदा किया. साधारण द्रव्य तथा ज्ञानद्रव्य बारह गुना दिया. और बारह बारह क्रोड सोनैयेके मालिक होकर अच्छे श्रावक हुवे. अच्छी तरहसें ज्ञानद्रव्य और साधारण द्रव्यका रक्षण किया. और इच्छा युक्त ज्ञानद्रव्य, साधारण द्रव्यकी वृद्धि की. श्रावकका धर्म प्रशंसनीय पनेसें आराधकर दीक्षा ले मुक्तिमें पहुंचे. यह कथा सुनकर ज्ञानद्रव्य, देवद्रव्यकी तरह श्रावककों नहीं कल्पे ऐसा खास ध्यानमें रखना. साधारण द्रव्यभी संघका दिया हुवा काम आसक्ता है. आपके हाथसें न ले लैना. संघकोंभी सात क्षेत्रके कार्यमें व्यय करना दुरुस्त है; लेकिन याचकोंकों दैना नादुरुस्त है.

ज्ञान संबंधी द्रव्य या कागज वगैरः साधुकों दिया हो उनकों श्रावक अपने काममें न लेवै. अपने घरका पुस्तकभी उस द्रव्यमेंसें न लिखवावै. गुरुकी आज्ञा विगर गुरुके लहियेके पाससेंभी न लिखवा लेना चाहियें. थोडासा जीनेके खातिर प्रमाणसें अधिक कठोर पाप जानकर विवेकीजनकों थोडासाभी देवद्रव्य किंवा ज्ञानद्रव्य व्यय नहीं करना. वो ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य या देवद्रव्य देनेका कहा हो तो देनेमें विलंव न करना. तुरत देनेसें जियादा लाभ होवै और विलंव करनेसें कदाचित् दुष्ट भाग्योदयसें सब धन नाश हो जाय या मरण हो जाय और दैना रह जाय तो भला श्रावकभी दुर्गतिकों पावै. उसपर कथा कहते हैं:—

महापुर नगरके अंदर धनवान् ऋषभदत्त शेठ था, और वो परम अर्हत्का भक्त था. वो पर्वके दिन जिनालयमें गया, मगर उस वक्त उसके पास नकद पैसे न थे उस सबबसें उधारसें मंदिरका द्रव्य लेकर प्रभुकों चडाया. लेकिन वो द्रव्य तुरंत वापिस न दे दियां; क्यौं कि दूसरे कार्यमें व्यग्रचित्त था उस्सें दैना रह गया. कितनेक दिन बीत चुके बाद धाडपाडुओंने धाड पाडकर उसका कुल्ल धन लूंट ले उस शेठकों जानसें मार चल दियां. शेठ मर कर उसी नगरमें निर्दय दरिद्री भैंसेवाले बीहीस्तीके वहां भैंसा हुवा. वो हमेशां पानीकी पखाले उठाया फिरताथा. नंदी नीची जमीनमें थी और शहेर बडी उंची जमीनमें था, उससें उतना ढाल चडकर रातदिन भार उठाया करताथा. बीहीस्ती निर्दयतासें चमडेकी साटका मार देताथा वो और भूख प्यासभी सहन करताथा. इस तरह रातदिन अैसा दुःख उठाया करताथा, उस अरसेमें जिनमंदिरका कोट नया बनताथा उसमें चुना वगैरःमें पानी डालनेके वास्ते वही भैंसा मारफत पानी लाया जाताथा. उस मंदिरमें श्रावकलोग पूजा करतेथे, उसें देखकर उन भैंसेकों जातिस्मरण ज्ञान हुवा, उस्सें पिछले जन्मका स्वरूप समझनेमें आया. मंदिरका द्रव्य दैना रह जानेसें मैं भैसा हुवा हुं. अैसा समझमें आनेसें वो भैंसेने वहांसें एक कदमभी न उठाया. दरम्यान एक ज्ञानी गुरु आ पहुंचे, उन्होंने उन भैंसेका पूर्वजन्म वृत्तान्त जाहिर किया. उस्से उन शेठके पुत्रने एक हजार गुना द्रव्य देवद्रव्यके देवेमें वसूल करवा दिया. भैंसेके मालिककों पैंसे देकर भैंसेकों छुडा लिया. पीछेसें उन भैंसेनें अनशन किया और अनशन आराध कर देवलोकमें देवपना प्राप्त किया. और क्रमसें मोक्षमें जायगा. यह कथा सुनकर

मंदिरके, साधारणके अंदर जो देनेका कहा हों वो तुरंत दे देना. मंदिरके उपगरण उजमणेमें या उत्सवादिकमें उपयोगमे ले उसका पूरापूरा भाडा-किराया-नकरा न देनेसें लक्ष्मीवतीकी तरह महा हानि होती है. वो कथा इसतरह है कि:—

लक्ष्मीवती वाइ महान् ऋद्धिवंत थी और धर्मवतीभी थी. वो वाइ देवद्रव्य वढानेके लिये उद्यापनादिक पुण्यकार्यके बहुत आडंवर किया करतीथी. लेकिन जो मंदिरके उपगरण लेतीथी उसका नकरा कुछ कम देकर उन उपगरणोंका उपयोग करतीथी. और जन्मभर अैसाही श्रावकधर्म उत्साहपूर्वक आराधन करकें आयु क्षय होनेसें देवलोकमें गइ. मगर हीनबुद्धिसें करकें नकरा कम दियाथा उससें हीनजातीकी देवांगना हुइ. अनुक्रमसें वहांसें देवायु पूर्ण कर धनवंत अपुत्रिये शेठके वहां पुत्रीप-णेसें उत्पन्न हुइ. जवसें वो माताके गर्भमें आइ तवसें यानी श्रीमंतोत्सवमें परचक्रका भय उत्पन्न हुवा उससें उत्सव बरावर न हो सका. फिर जन्मोत्सवादिकके अंदरभी राजाकें वहां शोक पडा उससें उसके पिताने भारी भारी आडंवर कियाथा सव नि-ष्फल हुवा. फिर मणि रत्न सुवर्णादिकके दागीने करवाये, मगर चोरोंका भय वढ जानेसें उनका वो उपभोग न कर सकी. पुनः भोजन वस्त्रादिकका उपयोग करनेकाभी वक्त न आ सका; क्यौं कि पूर्वकर्मके संयोगसें शोक आ पडा. इस तरह कोइभी का-र्यमें उत्सव पूरा न हो सका. तव उसके पिताने पुत्रीके विवाहके वक्त वडा भारी ठठारा किया; मगर जव लग्नका दिन नजदीक आ पहुंचा तव उसकी मा मर गइ, उसीसें लग्नभी उत्साह रहित हुवा. वाद सासरेमें गइ, वहांभी पूर्वकी माफिक नये नये भय शोक उत्पन्न हुवे, उससें सासरेमेंभी मनोवांछित भोगसुख प्राप्त न हुवा. तो वाइने वडी उदासी युक्त संवेग पाकर केवलज्ञानी महाराजसें पूँछा, तवज्ञानी फुरमाये कि-'तूंने पिछले जन्ममें उद्यापनके अंदर मंदिरके लिये हुवे उपगरणोंका नकरा कम दिया और बहुतसा आडंवर दिखलाया; उससें ये दुष्ट कर्म भोग अंतराय उपार्जन किया.' अैसा उपदेश सुनकर उन्हने दीक्षा ली और क्रमशः मुक्तिमहेलमे पहुंचकर शाश्वतसुख प्राप्त किये. इस मुजवकी कथा श्राद्ध विधिके पत्र ११० में है. वास्ते हरएक उपगरण अपने घरके रखने चाहियें, और कदाचित् मंदिरके लेने पडे तो उन्होंका पूरापूरा नकरा देकर उपयोगमें लेवे.

मंदिरमें दीपक कर वो दीपक घरपर लाकर घरके काममें उसका उपयोग न

करना. अगर मंदिरके दीपकसें कागजभी न पढना. रुपैभी न परख लैना. और मंदिरमें धूप कर उस किये हुवे अंगारेकोंभी घरपर लाकर उपयोगमें न लैना. उसपर श्राद्धविधिमें कथा नीचे मुजब हैः—

इंद्रपुर नगरमें देवसेन नामक व्यापारी था, उसके वहां धनसेन नामका ऊंटवाला चाकर था. उस चाकरके वहांसें हरहमेशां एक सांढनी देवसेनके मकानपर आया करती थी. धनसेन वहुतभी मारपीट कर घर पर छोड आता था तोंभी वो पीछी आये विगर नहीं रहती थी. सांढनी पर देवसेनकों, और देवसेनपर सांढनीका वहुत प्यार मालूम होताथा. दरम्यान कोइ ज्ञानी महाराज आकर समोसरे तो उन्सें देवसेनने सांढनी और आपके वीच प्यार था उसका खुलासा पूँछा. ज्ञानीने फुरमाया कि, वो सांढनी तेरी पूर्वभवकी माता है. उनने गतजन्ममें प्रभुके अगाडी दीपक कर पीछे वो दीपक घरकाममें लियाथा, और फिर प्रभुके आगे धूप किये हुवे धूपधानेमेंसें अंगारे लेकर घरपर ला चूल्हेमें आग सुलगाइथी. उस कर्मसें सांढनी हुइ है. और पूर्वके स्नेह संवंधसें तुम दोनूके वींच स्नेहभाव वना रहता है. इस मुजब कहकर फिर कहा कि–मंदिरके चंदनसें तिलकभी अपने भालमें न करना. और मंदिर तरफसें लाये गये जलसें हाथभी न धोना. देव संवंधी शेषभी (प्रसाद) न लैना. देवकी झालरभी गुरुके आगे न वजानी चाहियें.' इस तरह श्राद्धविधि पत्र १०८ में लेख है. और पत्र ८० में लेख है कि कच्ची पुष्पकली न छेदनी चाहियें. मालीभी कच्ची कली नहीं नौच लेता है, तो अपनकों कच्ची कली तोडकर चडानी वो कैसें योग्य होय? वास्ते कच्ची कलीयें चडानी उचित नहीं.

१०२ प्रश्नः—गृहमंदिरमें नैवेद्य–फल–अक्षत वगैरः रखते है उसका क्या करना?

उत्तरः—गृहमंदिरमें जो चीज भगवानके आगे रक्खी जावै वो वडे मंदिरमें भेजवा देनी चाहियें. फिर नैवेद्य माली वगैरःकों दिया जाता है उसके वदलेमें माली फूल देवै तो दूसरेकों कहकर वडे मंदिरमें चडावै और कह देवै कि ये मेरे पैसेके फूल नहीं है. नैवेद्यके वदलेमें आये हैं वही हैं. गृहमंदिरमें अपने पदरके पैसेसें भक्ति करनी, ये अधिकार श्राद्धविधिमें पत्र ११२ में है और वहां उसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या है.

१०३ प्रश्नः—सचित्त, अचित्त, मिश्र क्या क्या समझना?

उत्तरः—श्राद्धविधिके अंदर पत्र १२ के अंदर नीचे मुजब लेख हैः—

सचित्त वो सब जातीके धान्य, जीरा, अजवायन, सोंफ, सोये, राइ, खसखस (पोस्तके बीज), सब जातीके फल पत्र, लूण, खारी, राता खारा, सिंधानोंन, खानाके अंदरसें निकला हुवा कालानमक, (बनावटी कालानमक अचित्त है.) खारीमीट्टी, हिरमजी, हरे दतवन है. अब मिश्र कहे हैं वो इसमुजब है कि—पानीसें भीगोये हुवे चिने, या गेहुं वगैरः धान्य और चिने, अरहर वगैरःकी दाल पानीमें भीगोइ हुइ हो उससेंभी कुच्छ छोत—छिलका रहजाय उससें मिश्र कहते हैं. भुन डाला गया धान्य, और वोभी रेतीमें भुना हुवा हो तो अचित्त हो जाता है. या तो निमक वगेरे क्षार लगाकर भुनागया हो तो अचित्त हो जाता है; मगर रेती विगर भुनगये चिने वगैरः मिश्र कहा जाय. भुने हुवे तिल, पहोंक, चिनेके फल आगपर रख्ख शेके हुवे, शेकी हुइ फली, व्हालपापडी—बाफ दी हुइ, ये मिश्र, और ककडी वगैरः कचेकों हींग वगैरःसें वघारकें तैयार किया व्यंजन मिश्र, कच्चे आममें निमक दिया गया हो, मगर जहांतक नरमाश न हुइ हो वहांतक मिश्र हैं. बीज सहित पक गये हुवे फलभी मिश्रकी गिनतीमें हैं. और बीज गुटली अलग हुवे बाद दो घडी पीछे अचित्तमें गिनना होती है. तिलपापडी बनी उसी दिन मिश्रमें गिनी जाती है. मालवेमें और महाराष्ट्रमें ज्यादा गुड डालकर बनाइ जाती है तो उन देशोमें उसी दिन अचित्त हो जाती है. वृक्षसें तुरंत उखाडकर लिया गया गोंद या नारेलका पानी, आमका रस, शेलडीवगैरः वनस्पतिका रस, घानीमेंसें तुरंतका निकालागया तैल, ओर अलसी, अरंडीका तैल, या बीज निकाले हुवे नारेल, शिंगोडे, सुपारी, फल वगैरः और पक्का या बहुत मर्दन किया हुवा, कनी निकालके दुरुस्त किया हुवा जीरा अजवायन वगैरः एक मुहूर्त्त तक मिश्र समझ लैना, पीछे अचित होता है. पानी और कच्चे फल, कच्चे धान्य, कररा नोंन, वगैरः अग्नि पानीके कठीन शस्त्र लगे विगर अचित नहीं होते हैं; क्यों कि भगवतीजीमें कहा है कि—वज्रमय पाषाणके खरलमें वज्रके दस्तेसें निमक वगैरःकों इक्कीश दफे पीस डाले तोभी कितनेक जीवकों शस्त्रका स्पर्शभी नहीं हो सकता है! वास्ते अग्नि पानीके स्पर्श विदून अचित्त नहीं होता है. अब अचित्त क्या उसका खुलासा करते हैंः—

सो योजन पानीके मार्गद्वारा जहाज—बोटमें आइ हुइ चीज अचित्त हो जाती

है. किरायता, हर्रे, छांहारा, छोटी द्राक्ष, वडी द्राक्ष, खजूर, मिरी, पीपर, जायफल, वादाम, अखरोट, नीमजे, जरगो, पिस्ते, कवावचीनी ये अचित्त हैं. फिटकरी जैसा सुफेद सिंधानोंन, सज्जी, भट्ठीमें पकाया गया नोंन वगैरः वनावटी क्षार, शोधी हुइ मीट्टी, इलायची, लोंग, जायपत्री, सूकी मोथ, कोकन वगैरः पके हुवे केले, उवाले गये सिंघोडे, सोपारी वगैरः ये अचित्त होते हैं. और आदि शब्दसें हरताल, मन-शिल, पींपर, खजूर, द्राक्ष, हर्रे येभी सो सो योजन जलमार्ग वहन किये बाद अचित्त हो जाते हैं; लेकिन उपयोगमें लेने लायक नहीं होते हैं. इस मुजव श्राद्धविधिमें है. फिर दूसरे काल, पत्र ५५ में हैं वो निम्न लेख मुजव हैं:—

सॉवन और भादो मासमें चार दिन मिश्र.

काती, मिगशर और पोषमें तीन दिन मिश्र.

अघहन और फागुनमें चार पहेर मिश्र.

चेत, वैशाख, जेठ मासमें तीन पहेर मिश्र.

इतना काल व्यतीत हुवे वाद अचित्त होते हैं. छाना हुवा आटा दो घडी वाद अचित्त होता है. छाना हुवा आटाभी वर्ण, गंध, रस वदल देवै तो अभक्ष होता है. चातुर्मास [वर्षाकाल] में पंद्रह दिन, और शियालेमें एक महिना आटा रखनेकी मर्यादा है. वाद ग्रहण करने लायक नहीं रहता है. पकान्न वगैरःका काल वर्षाकालमें पंद-रह दिन, उन्हालेमें वीश दिन, और शियालेमें एक महिना काम लगें, पीछे ग्रहण करना वेमुनासिव है. तौभी ये कालके पेस्तर कभी वर्ण–गंध–रस–स्पर्श वदला हुवा मालूम पडे तो ग्रहण करना अयोग्य है. दहीं दो दिनके उपरांतका न खाना, कच्चा दूध या दहीं या छांसके साथ द्विदल खानेसें वेरेंद्रीय जीव पैदा होते हैं; वास्ते वो न खाना. गइ रातका वचा हुवा भोज्य पदार्थ, गीला हो गया हुवा पदार्थ वगैरः चीज दूसरे दिन खाने लायक नहीं रहै, अैसा प्रभुका फरमान है. ३ तीन दफै उ-छाला देने तकका उवाला गया पानी वर्षाकालमें तीन पहेर, और उन्हालेमें पांच पहेर तक अचित्त रहवें, पीछे सचित्त होता है. वास्ते पीछे पीने योग्य नहीं रहता है. अैसा श्राद्धविधिमे लेख है.

२०४ प्रश्नः—वकुश कुशील दो नियंठे–ये कालमें कहे हैं. उसमें कुशील तो भगवतीजीके पचीशवे शतकमें मूल गुनस्थानकके अंदर प्रतिसेवी कहे हैं. जव मूल गुनमें दूषण लगै तव संयम गुणठाणा कैसे रह सकै?

उत्तरः—हरीभद्रसूरी महाराजने आवश्यककी टीका की है उसमें कहा है कि-मूल गुण प्रतिसेवीकों संजलके कषायसें होवे और वो अतिक्रम व्यतीक्रम, अतिचार ये तीनों भांगे तक होवै. अनाचार नहीं होवै, उससें समझा जाता है कि ओलोयकर पडीकमीकें शुद्ध होवै. अनाचार सेवीकों संजलके कषाय शिवा दूसरे कषाय वर्त्तते हैं, तब गुणस्थान जावै.

१०५ प्रश्नः—अठारह भाव दिशा किस प्रकार हैं?

उत्तरः—आचारांगजीमें पत्र ९ के अंदर [छपी हुइ प्रतमें] है. १ समुर्छीम मनुष्य, २ कर्मभूमिके मनुष्य, ३ अकर्मभूमिके मनुष्य, ४ अंतरद्वीपके मनुष्य, ५ बेइंद्री, ६ तेरेंद्री, ७ चौरेंद्री, ८ पंचेंद्री, ९ पृथ्विकाय, १० अपकाय, ११ तेउकाय, १२ वायुकाय, १३ वनस्पतिकाय सो मूलवीज, १४ स्कंध बीज, १५ पर्ववीज, १६ अग्रवीज, १७ देवता और नारकी ये अठारह भावदिशा कही, उसका सबब कि जीव उतनी (१८) जगहमें संसारमें भ्रमण करता है; वास्ते आप शोचे कि-में कौनसी दिशासें आया? यानी कौनसी गतिमेंसें आया हुं? आदि शोचे और संसारसें विमुख होवै.

१०६ प्रश्नः—नौ प्रकारसे पुण्य बांधे वो किस ग्रंथमें लेख है.

उत्तरः—ठाणांगजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ५१४ में नौ प्रकारसें पुण्य बांधनेके कहे हैः—

१ अन्नपुण्य यानी अन्न देनेसें होता है.

२ पाणपुण्य यानी पानी देनेसें होता है.

३ वस्त्रपुण्य यानी वस्त्र देनेसें होता है.

४ शयनपुण्य यानी मुनिकों संथारा देनेसे होवै.

५ लेणपुण्य यानी मुनिकों उतरनेका स्थल देनेसें होवै.

६ मनपुण्य यानी मन शुभ प्रवर्त्तनेसें होवै.

७ वचनपुण्य यानी गुणी पुरुषके गुण गानेसे होवै.

८ कायपुण्य यानी कायासें देवगुरुकी भक्ति करनेसें पुण्य बांधा जाता है.

९ नमस्कारपुण्य यानी देवगुरु स्वामी भाइकों नमस्कार करनेसे होता है.

इस तरह नौ प्रकार हैं. यहांपर किसीकों शंका हो आयगी कि–'जिन-प्रतिमाकी पूजा कौनसे प्रकारमें आ समा गइ ?' उसका खुलासा यह है कि–मनवचन कयासे करके भक्ति करनी उसीमेंही जिनपूजाका समा-वेश हो गया है; क्यौं कि किसी जीवकों दुःख न देना और सर्व जी-वोंकों सुख करना या देवगुरु उपकारीकी भक्ति करनी इसमें त्रिकरणकी शुद्धतासें पुण्य बंधाता है. इसीसेही जिनपूजा वगैरःका समावेश होहि जाता है.

७७ प्रश्नः—व्याख्यान करनेके योग्य कौन है ?

उत्तरः—आचारांगजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र १९५ में सोलह वचन समझनेवाला हो वही उपदेश देनेके योग्य होता है. वै सोलह वचन नीचे मुजब हैः—

१ एक वचनः—वृक्ष, घट, पट, नर, सुर, ये संस्कृत है, रुक्खो, घडो, पडो, नरो, सुरो ये प्राकृत है. जो जो एक वचन हो सो उसकों ध्यानमें रक्खै.

२ द्वी वचनः—वृक्षौ, घटौ, पटौ, सुरौ ये संस्कृतमें है और रुक्खा, घडा, पडा, नरा, सुरा ये प्राकृतमें है–उसकों जाने.

३ बहु वचनः—वृक्षा घटा, पटा, नरा, सुरा ये संस्कृत भाषामें और रुक्खा, घडा, पडा, नरा, सुरा, ये प्राकृतभाषामें हैं वोभी समझै.

४ स्त्री लिंग शब्द.

५ पुरुष लिंग शब्द.

६ नपुंसक लिंग के शब्द.

७ अध्यात्म वचन सो अंतरंग वचन.

८ उपनीत वचन सो प्रशंसाकारी वचन.

९ अपनीत वचन सो परनिंदाके वचन.

१० उपनीत अपनीत वचन सो पहेली प्रशंसा और पीछे निंदा होवै.

११ अपनीत उपनीत वचन सो पहेली निंदा और पीछे प्रशंसा करनी.

१२ अतित वचन सो गुजरे हुवे समयका वचन जैसें गतकालमें अनंत तीर्थंकर हुवेथे.

१३ वर्त्तमान वचन सो चलते हुवे समयकी व्याख्या.

१४ अनागत वचन सो भविष्यकाल वचन, जैसे कल ऐसा करेंगे–आते कालमे तीर्थंकर होवेंगे.

१५ प्रत्यक्षवचन सो इसने मुझको कहा है.

१६ परोक्षवचन सो भगवंतजी कह गये हैं.

यहरुपके सोला वचन समझे वो शुद्ध उपदेश दे सके. ये ज्ञान विगर शुद्ध परुपणा नही बन सकती है.

१०८ प्रश्नः—सिद्ध भगवान् कौनसे अनंतमे हैं ?

उत्तरः—समकितविचार गर्भित महावीरस्वामीके स्तवन [छपे हुवे दूसरे भागमें पत्र ७४९] के अंदर दूसरे शास्त्रकी गाथा रख्खी है, उसमें अभवी चौथे अनंतमे, पडवाइ पांचवे अनंतमें और सिद्धादि आठवे अनंतमें कहे हैं. मतांतरमें सिद्ध पांचवे अनंतमें हैं ऐसा कहा है. मगर विज्यानंदसूरी महाराजके कहनेमें था कि आठवे अनंतमे समझना सुगम पडता है. दिगंवरके शास्त्रमेंभी आठवे अनंतमें सिद्ध हैं.

१०९ प्रश्नः—पौषध कब लैना ? और उसका काल किस तरह है ?

उत्तरः—श्राद्धविधिमें फकत दिनके चार पहेरका समय–काल कहा है. और अहोरात्रिके पौषधका आठ पहरका काल कहा है. पौषध लेनेका विधि पत्र २४९ में बतलाइ है, सो प्रथम पौषध लेकर पीछे राइप्रतिक्रमण पडिलेहन करनी इसतरह है. और इसीतरह करनेसेंही चार पहरका काल पूर्ण हो सकता है. और मौडा लेवे और मौडा पारे वो बात पाठमें नहीं हैं; वास्ते सूर्योदयके पेस्तर पौषध लैना वही योग्य है. और पंचाशकजीमें पौषध पारकर पूजा कर पीछे पौषध लेनेकी मर्यादा बतलाइ है. मगर वो प्रतिमाधर श्रावकके संबंधमें है. सबब कि पडिमाधरको पीछली पडिमा सहित है. वास्ते वो पडिमा समालनी उसे वो विधि बतलाइ है. पडिमाधर शिवाके श्रावकके वास्ते तो श्राद्धविधिमें कहा है उसी तरहसें है.

११० प्रश्नः—पौषधकी अंदर वर्षाकालमें श्रावक जमीनपर संथारा करै या पाटके उपर ?

उत्तरः—वर्षाकालमें तो पाट परही संथारा करना कहा है. विचार रत्नाकर ग्रंथ

जो कीर्तिविजयजी महाराजका बनाया हुवा है उसमें आवश्यककी चूर्णीका पाठ लिखा है. वहां काष्ट आसनके आदेश लेनेका कहा है. उसी तरह श्राद्धविधिमेंभी कहा है. फिर श्रावकके वास्ते पाट पटले कराकर उपाश्रयके अंदर श्रावकही कराकर तैयार रक्खे असाभी अधिकार श्राद्धविधिमें है. फिर हुंडीपत्र करकें प्रश्नरुप ग्रंथ है उसमें वर्षाकालमें पाट पटले न काममें लेवै उसें पासत्था कहा है.

१११ प्रश्नः—साधुजी पुस्तकें रक्खें या नहीं ?

उत्तरः—इस कालमें साधुजी पुस्तक रक्खें ये अधिकार तत्त्वार्थके पत्र २८९ में है, उसमें वतलाया है कि दुषमकालमें धारणाकी खामीके लिये आज्ञा की है. वास्ते पुस्तक रखनेमें कुछ हरकत नही है; लेकिन शिष्य अच्छे न हो तोभी [कु शिष्यकों] वो पुस्तकं देकर जाना और वो वेच देवै सो योग्य नहीं. ये पुस्तक संघकै रुपेसें लीया है, उससें पुस्तकपर मालिकी संघकी रखनी कि जिस्सें विगाडा न हो सकै. शिष्यकों पढनेके लिये जरुरत हो तो श्रावक उसें देवें; मगर वेच खावै वैसे शिष्य हो तो श्रावक उसे पुस्तक न देवै. इस तरह साधुजीकों पुस्तकके संबंध रखना चाहियें.

११२ प्रश्नः—देवता और देवीके संग काम भोग किस तरह होवै ?

उत्तरः—भुवनपति-व्यंतर-योतिषि और सुधर्म, इसान देवलोक तकके देवताकों तो मनुष्यकी तरहें योग है. और सन्तकुमार, माहेंद्र देवलोकवालोंकों मात्र स्पर्श करनेका है. ब्रह्म, लांतक देवलोकवालोंकों रुप देखे उतनाही काम है. शुक्र, सहस्रारके देवोंकों शब्द सुनेका विषय है. आनत, प्राणत, आरण, अच्युत इन चार देवलोकवालोंकों एक दूसरेके मन मिलापका विषय है. दूसरे देवलोकपर स्त्री नहीं है, उससें वहांसे दिलमें चाहत करै और स्त्रीभी वैसीही चाहत करै उससें संतोप होवै; सवव कि ज्यों ज्यों दूसरे देवलोकसें उपर चडते जाय त्यौं त्यौं विषयकामना कमी हो जाती है और वारहवे देवलोकके पीछे नव ग्रैवेयक या पांच अनुत्तर विमानके देवोंकों तो विलकुल कामकी इच्छाही नही है. यह अधिकार पन्नवणाजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ७७८ में है.

११३ प्रश्नः—देवता मनुष्यके साथ भोग करै और मूल स्वरूपमें आवें ?

उत्तरः—पन्नवणाजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ६२१ में तेजस शरीरकी अवगाहना अंगुलके असंख्यात भागकी कही है. उसका कारण यही है कि पूर्वभव संबंधी मनुष्यकी स्त्रीके उपर गाढ अनुराग हो तो देवता देवलोकसें आकर स्त्रीसंग करता है. और भोग करते मरजाय तो उसी स्त्रीके उदरमें तुरंत पैदा होवै. इसतरहका अधिकार है. इससे समझनेमें आता है कि मूल शरीरसें आ सकै तो तेजस शरीरकी अवगाहना अंगुलके असंख्यात भागकी हो और भोगकी वातभी उसीमेंही है.

११४ प्रश्नः—चंद्रमा पूर्णिमाके वाद थोडा थोडा ढकाया हुवा चला जाता है और शुकल पक्षकी प्रतिपदासें खुलता हुवा चला आता है उसका क्या सवव ?

उत्तरः—जीवाभिगमसूत्रमें (छपी हुइ प्रतके पत्र ७७९ में) यह अधिकार है और वहां कहाहै कि–नित्य राहु ओर पर्वराहु ऐसे दो प्रकारके राहुके विमान है. उसमें नित्यराहु है सो चंद्रके विमानसें नीचे है, और उसकी गति ऐसी है कि वदि १ सें चंद्रविमानके नीचे थोडा थोडा आयेजाता है और चंद्रमा उससें ढकाहुवा चलाजाता है. अमावशके रोज पूर्ण प्रकारसें नीचे आजानेसे चंद्रमा तमाम उसके नीचे ढंकजाता है तो चंद्र मालूमही न हो सकता है. और शुदि प्रतिपदासें हमेशां नित्य राहु दूर हठता चलाजाता है सो पूर्णिमाके दिन विलकुल हठजानेसें पूर्ण चंद्र प्रतीत होता है. पर्व राहु कोइ वक्त नीचे आता है तव ग्रहण हुवा कहाजाता है. ग्रहणके वक्त भोजन नही करना. ऐसा श्राद्धविधिमें कहा है. वो निमित्त अच्छा नहीं है वास्ते भोजनकी मना की है.

११५ प्रश्नः—आचार्य पंचमहाव्रत रहित होवै तो वो आचार्य कहे जावै या नहीं ?

उत्तरः—पंचमहाव्रत रहित आचार्य होवैही नहीं. पंचमहाव्रत रहितकों आचार्य पदवी देनेकी किसी जगह रजा नहीं. व्यवहारसूत्रमें मूल पत्र २७ के अंदर ऐसा कहाहै कि–जो वहु श्रुत होनेपरभी मृषा वोलै, उत्सूत्र वोले, पापकर्म करीकें आजीविका निभावै उसकों ,आचार्यकी, उपाध्यायकी और प्रवर्त्तक स्थिविर–गणि आदिकी पदवी न देनी. जावजीवतक

नहीं दैनी चाहिये-ऐसी मर्यादा है. फिर पंचमहाव्रत रहितकों साधुभी न कहाजावे तो आचार्य होनेकी वातही कैसी ?

११९ प्रश्नः—ऐसे गुनवंत आचार्य न हो तो क्या करना ?

उत्तरः—बहुतसें गुणि पुरूष क्रिया उद्धार कर शुद्ध रीतिसें आप प्रवर्त्तते है. जैसेंकि सर्वदेवसूरिमहाराज चैत्यमार्गी थे उन्होंने क्रिया उद्धार करकें शुद्ध मार्ग प्रवर्त्ताया फिर आनंदविमलसूरि महाराजके वक्तमेंभी मार्ग शिथिल पडाथा तो उन्होंने क्रिया उद्धार करके शुद्ध मार्ग चलाया फिर व्यवहारसूत्रमें ऐसाभी कहाहै कि जो आचार्य पदवीके योग्य पुरूष न हो तो गच्छके साधुमेंसें जहांतक योग्य आचार्य न प्राप्त हो वहांतक उसकोंही आचार्य स्थापन कर मार्ग चलाना. जब योग्य पुरूष हाथ लगै तब उसकों आचार्य पदवी देवै. उस वक्त जो वो पाटधारी साधु न उठे तो उसकों गच्छ वहार कर दैना. ऐसा अधिकार व्यवहारसूत्रके पत्र ३१ में है; वास्ते गुणवंतकों आचार्य पदवी दैनी. अवीभी संवत १९४२ के काती वदि पंचमीके रोज मुनिमहाराज श्री आत्मारामजी महाराजकों श्री सिद्धाचलजीके उपर वहुत देशके श्रावक साधुओंने मिल एकमता करकें गुणवंन जानकर उन्होंको सूरिपद दिया गयाथा. (मैंभी वहां हाजिर था.) पचीश हजार जैनी इकठे हुवेथे और मुख्य मुख्य शहेरोंके विद्वान् श्रावकवर्गभी हाजिर था. उस वक्त आत्मारामजीकों विज्यानंदसूरि महाराज अैसे नामसें आचार्य पदपर नियत किये गयेथे. इसतरह लायक पुरुष मिल जावै तो आचार्यपद देकर पीछे साधुमंडल विहार करै-अैसा; व्यवहारसूत्रका फरमान है. वास्ते समस्त साधुसमुदायमेंसें जो पुरुष उत्तम-त्यागी, विरागी, ज्ञानवान् हो उन्कों आचार्य वनाकर उन्हके हुकम मुवाफिक चलना चाहियें. इस पंचमकालमें शुद्ध परंपरा चल सके वो तो दुष्कर है. श्री महानिशीथसूत्रमें युगप्रधान स्वामी होनेका अधिकार चला हं वहांभी कहा है कि युगप्रधानस्वामी शुद्ध मार्ग चलावेंगे-और मेरी आज्ञाका हायमानपणा टाल दंगे. फिर युगप्रधान स्वामी निर्वाण पहुंचे वाद मेरी आज्ञाका हायमानपणा होयगा. इस मुजब

कहा है. वास्ते जिस वक्त जो उत्तम पुरुष विद्यमान हो उन्को आचार्य पदवी देकर मार्ग चलाया रक्खै. क्यौं कि इक्कीश हजार वर्ष तक शासन जयवंत रहेवेंगा अैसा मेरा समझना है.

११७ प्रश्नः—एक परमाणमें कितने वर्ण होवै ?

उत्तरः--एक परमाणुमें एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श होते हैं. अैसा कथन अनुयोगद्वारसूत्रकी छपी हुई प्रतके पत्र २७० में है. पर्यायके पलटनेसें पांच वर्णका होता है; क्यौं कि सत्ताके विषें पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, और आठ स्पर्श रहे हैं. ये द्वादशनायरनयचक्रमे कहा है. वास्ते सत्तामें होवैं उससें पुनरावृत्तिमें पांचों वर्णोंमेंसें एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श होवै सो पर्यायके पलटनेसें होते हैं.

११८ प्रश्नः—गौतमपडघा तप करते हैं और चंदनबालाका अठ्ठम करते हैं और जतीजीकों व्होंराते है सो क्या करना ?

उत्तरः—गच्छाचार पयन्नाके बालावबोधमें कुगच्छके लक्षनमें कहा है कि विप्र तारनेके लिये लोगोंके पाससें इसतरहके तप करवाकर पैसा लेते हैं वो कुगच्छ है.

११९ प्रश्नः—एक स्थितिस्थानकमें अध्यवसाय स्थानक कितने होवै ?

उत्तरः—कम्मपयडीमें ९२ गाथेकी टीकामें असंख्यात अध्यवसाय कहे हुवे हैं—तीव्र-तीव्रतर-मंद-मंदतर आदि होवे.

१२० प्रश्नः—जो गतिका आयुष बांधा हो वो कायम रहेवे कि फार फार हो सकै ?

उत्तरः—भगवतीजीकी टीकामें अपवर्त्तनका अधिकार चला है वहां कहा है कि सातवी नरकका आयु बांधा है; मगर अध्यवसायके फेरफारसें छठ्ठ नरक कमी जास्ती हो सकती है. जैसे कृष्णमहाराज-वासुदेवने सातवी नरकका आयु बांधाथा, वो अठारह हजार मुनिके पद वंदनसें तीसरी नरकका हो गया. इसी तरह चारों गतिमें फेरफार होवै; मगर इतना विशेष है कि देवलोकका बदलकर मनुष्यका न होसकै, और नरकका बदलकर दूसरी गतिकाभी न होसकै. जो गतिहो उसीमेंही फेरफार हो सकता है.

१२१ प्रश्नः—वर्त्तमानकालमें आयुष कितना होवै ?

उत्तरः—जंबुद्वीप पन्नतिमें तो मुख्य वृत्तिसें १२० वर्षका कहाहै. और वहुतसे जीवोंका उतनाही आयु होता है. और नजरभी आताहै. क्वचित इस मर्यादासें विशेष आयुभी सुननेमें आता है ते इश उदयके यंत्रमें पहेले उदयमें अंतिम-युगप्रधान स्वामीका १२८ वर्षका आयु कहा है. उस्से मालूम होताहै कि किसि किसि पुरुषका आयु १२० सेंभी विशेष वर्षका होता है. यह बात शतावधानी शा. रायचंद रवजीभाइए भद्रबाहु संहिता देखीथी उसमें उन्होंके कथनसें ऐसा था कि धन लग्नमें जिसका जन्म हो और उसमें चौथे मिनराशिका गुरू हो, ग्यारहवेमें तुलका शनि हो शुक्र हो और वो अपने योग्य अंशोंसे करके बलवान् हो, और आठवेमें कोइ ग्रह न हो, शनी और शुक्रकी दशामें जन्म हो तो २१० वर्षका उस जन्मकुंडलीवालेका आयु होवे. इस्से साबित होता है कि कोइ जीवका विशेष आयुभी होता है और शास्त्रभी साक्षी देते हैं. फिर आवश्यककी बाइस हजारी टीकामें आर्यरक्षितसूरि महाराजने इंद्रका हाथ देखा, उसमें दोसो तीनसो वर्षतकका हाल देखकर-कहकर कहा कि 'यह तो इंद्र है.' वास्ते विशेष आयु हो तो कुछ विरुद्ध नहीं है. परमात्माके वचन कितनेक वहुत जीव आश्रित हैं. कितनेक जीव अपेक्षित हैं वो गुरु परंपरासें परंपरागत ज्ञानवाले पुरुष जानते है. सो वर्त्तमानकालमें परंपराका यथार्थ ज्ञान नहीं रहा है. आत्मार्थी पुरुषको परंपरागत ज्ञान जाननेवाले गुरूका योग नहीं मिलता है. शास्त्रमें जो टीकाकारोंने ज्ञान दर्शायाहो वही जान सकते हैं. दूसरा क्या इलाज है ? ये पंचमकालका प्रभाव है. वास्ते दो शास्त्रमें भिन्न भिन्न अधिकार देखर श्रद्धाभ्रष्ट न होजाना. उन दोनुंके आशय खोजनेकी मिहनत करनी योग्य है. यों करनेसें किसी शास्त्रके अंदरसें या किसी पंडित द्वारा खुलासा मिल जायगा.

१२२ प्रश्नः—शुद्ध अशुद्ध क्षायक समकितके भेद किस ग्रंथमें किस जगह वतलाये है ?

उत्तरः—तत्वार्थकी टीकामें पत्र २० के अंदर या नवपद प्रकरणकी टीकामें केवलज्ञानी महाराजका शुद्ध क्षायक समकित कहा है, और छद्मस्थका-श्रेणिकादिकका अशुद्ध कहा है.

१२३ प्रश्नः—चार अनुयोग हैं उन्में निश्चय कौनसा और व्यवहार कौनसा ?

उत्तरः—आगमसार और नयचक्र तथा द्रव्यगुणपर्यायके रासमें चरणकरण अनुयोग, गणितानुयोग, धर्मकथा अनुयोग ये तीन व्यवहारमें कहे हैं. और फकत द्रव्यानुयोग सो निश्चयमें कहा है और आचारांगजीकी शिलांगाचार्यकृत टीकामें तो चरणकरण अनुयोगकों निश्चयमें कहा है. और दूसरे तीन योग व्यवहारमें गिने हैं. अब इन दोनुकी मतलब अपेक्षित समझी जा सकती है. आचारांगजीका कहना है कि द्रव्यानुयोगसें स्वपरका ज्ञान हुवा; मगर परका त्यागना वो चरणकरण अनुयोगसें है. वो परवृत्ति छांड देवै तभीही आत्म प्रवृत्ति होवै, और वही आत्मधर्म है वास्ते ये सिद्ध निश्चय है. फिर आगमसार वगैरःका कथन है कि द्रव्यानुयोगका जानपना नहीं किया है और द्रव्य चारित्र पालता है, तो वो स्वपरका ज्ञान नहीं उस्सें आत्मा निर्मल क्यौं कर होगा ? वास्ते द्रव्यानुयोगका ज्ञान होनेसें स्वपरका धर्म जान सकता है उसीसें वो निश्चय है, अैसा अपेक्षासें है. वाकी वस्तुपनेसें तो अंध पंगू अलग अलग काम करनेकी इच्छा करै वो सफल नहीं हो सकै. जैसें कि पंगू आंखसें देखता है कि आग लगती है; मगैर पॉव नहीं उससें वो चल सकता नहीं उसलिये वोभी आगमें जलवलके खाक हो जाता है. और अंधा आग लगी देख नहीं सकता है उससें उसके पाँव तो हैं मगर चलनेका उसके दिलमें नहीं आसकता उसीसें वोभी जलवलके भस्म हो जाता है, वैसे अकेला ज्ञानवाला पंगू जैसा है. जैसें पंगू, अंधकों कहेवै कि आग लगी है वास्ते तुं मुझे यहांसें उठा ले तो मै तुझे भागनेका रस्ता वताउं कि जिस्सें अपन दोनू वच जावै. अैसा करै तो दोनू वचै. इसतरह द्रव्यानुयोग और चरणकरण अनुयोग इन दोनुका योग मिल जानेसें शिघ्र मुक्ति फल मिल जाय.

१२४ प्रश्नः—नौकारशीका काल सूर्योदयसें दो घडी ? या हथेलीकी रेखा मालूम हुवे वाद दो घडी ?

उत्तरः—धर्मसंग्रहग्रंथ कि जो मानविजयजीका वनाया हुवा है, और यशविजयजी

उपाध्यायजीने उसका संशोधन किया है. उसमें कहाहै कि चौविहारवाला शामके वक्त जब पिछला दो घडी दिन होवै तब चौविहार कर लेवै और प्रातःकालमें नौकारसी सूर्योद्रयसें दो घडी बाद करे. कदाचित् ऐसा योग न बनसकै तो नौकारसी न करै; लेकिन सूर्यका धूप देखे बिगर दंतधावन करै तो रात्रिभोजनके नियम भंग होनेका दोष लगै. इसपरसें समझ लेनेका है कि सूर्यका धूप मालूम होवै वहांतक तो नौकारसीका काल होताही नहीं, तो फिर सूर्योदयसेंही दो घडी साबित होचुकी. फिर सेन प्रश्नमें पत्र ८६ के अंदर प्रश्न ९१ वेमें लेख है कि सूर्योदयसें दो घडी कही है. और उसपर योगशास्त्रकी गवाह दी है. फिर उसी मुजब प्रवचन सारोद्धारकी टीकामें और पंचाशकजीकी टीकामें तथा श्राद्धविधिमेंभी सूर्योदयसें दो घडी पूर्ण हुवे बाद नौकारसी व्रत पूर्ण होवै ऐसा अर्थ मालूम होता है; वास्ते नौकारसी करके जल्दी दतवन करना सो दुरस्त नहीं.

१२५ प्रश्नः—प्रभुजीकों वस्त्र पहनानेका अधिकार शास्त्रमें आता है ओर नहीं पहनाते हैं उसका क्या सबब है ?

उत्तरः—सेन प्रश्नमें इस विषयका प्रश्न २४ पत्र १७ में है कि जिनबिंबकों वस्त्र पहनाना; परंतु प्रधान वस्त्र—आंगी प्रमुख आभरणकी तरह उचित करना दुरस्त है; मगर मस्तकपर रखना योग्य नहीं—इस मुजबका खुलासा है. इससें समझाजाता है कि कितनेक वर्षोंसें प्रवृत्ति बंध होगइ है; लेकिन आंगी प्रमुखमें वपरास होती है. फिर शास्त्रमें किसी आचार्यने बंध किये एसा अधिकार मालूम नहीं होता है.

१२६ प्रश्नः—देवताकों अवधिज्ञान कहांतकका होवै ?

उत्तरः—सौधर्म और इशान देवलोकके देवताओंकों नीचा—पहेली रत्नप्रभा नरकतक होता है. सनत्कुमार और माहेद्रके देवताओंकों दूसरी शर्कप्रभा नरकतंक होता हैं. ब्रह्म और लांतकके देवोंकों (नीचा) तीसरी वालुप्रभा नरकतक होता है. शुक्र और सहस्रारके देवोंकों नीचा—चौथी पंकप्रभा नरकतक होता है. आणत और प्राणत देवलोकके देवोंकों पांचवी धूम-

प्रभातकका अवधिज्ञान होता है. आरण और अच्युत देवलोकके देवोंको ६ तमप्रभा नरकतक होता है. और पहेलेसें लेकर छट्ठे ग्रैवेयकके देवोंको-भी धूमप्रभातकका ज्ञान होता है; लेकिन वो बारहमे देवलोकके देवोंसें विशुद्ध विशुद्ध देखै. ७-८-९ ग्रैवेयकके देव सातवी तमतमा नरकतक देखें. अनुत्तर विमानके देव भिन्न चौद राजलोक देखें यानी चौद राज-लोकमें कुछ न्यून देखें. वै देव तीर्छो असंख्यात द्वीप समुद्रतक देखै; मगर उंचा अपने विमानकी ध्वजा तलक देखे. भुवनपति व्यंतरदेवोंमें अर्द्ध सागरोपममें कुछ कम आयुवालेकों तीर्छा संख्यात योजनका ज्ञान होवे. अर्द्ध सागरोपमसें उपरके आयुवालेकों तीर्छा असंख्यात योजनका ज्ञान होवे दस हजार वर्षका आयु होवै उसें पचीस योजनका ज्ञान होय. असंख्यात वर्षके आयुवालोंकों असंख्यात योजनका तीर्छा ज्ञान होता है. इस मुजब नंदीसूत्रजीकी टीकामें पत्र १७८ (छपी हुइ प्रतके अंदर) में और आवश्यकजी प्रतमें कहा है.

१२७ प्रश्नः—तीर्थंकरजी कौनसे आरेमें होवैं ? और कौनसे आरेमें सिद्धि वरें ?

उत्तरः—छपीहुइ नंदीसूत्रजीकी प्रतके पत्र २०८ में कहाहै कि ऋषभदेवजी अव-सर्प्पिणी कालके तीसरे आरेमें तीन वर्ष साढेआठ महीने बाकी थे उस वक्त मोक्ष पधारेथे. और दूसरे सभी तीर्थंकरजी चौथे आरेमें हुवे. अं-तिम प्रभु महावीरस्वामीजी चौथे आरेके तीन वर्ष साढेआठ महीने बाकी थे उस वक्त निर्वाणपद पा चुकेथे. त्योंही आती चौवीसीमें तीसरे आरेके तीन वर्ष साढेआठ महिने व्यतीत हुवे बाद तीर्थंकरजीका जन्म होगा और तीसरे आरेमें तेइस तीर्थंकरजी होवेंगे. चौथे आरेमें चौइसवे तीर्थं-करजीका जन्म होगा और निर्वाणभी होगा. और दूसरे सामान्य केवलीको दूसरे आरेके जन्मे हुवे तीसरे आरेमें केवलज्ञान पावें सो वर्त्तमानकालमें चौथे आरेके जन्मे हुवे पांचवे आरेमें केवलज्ञान पाये यह मर्यादा है.

१२८ प्रश्नः—मनुष्य गर्भजकी संख्या कितनी कही है ? और सामान्य मनुष्यकी कितनी ?

उत्तरः—अनुयोगद्वार सूत्रजीकी टीकाके पत्र ४८८ में मनुष्य गर्भजकी संख्या छः

वर्गसें जितनी रकम होवै उतनी कही हैं. उस वर्गकी समझ ऐसी है कि एकका वर्ग होता नहीं, उस्से दोका वर्ग चार होवै ये पहिला वर्ग. चारका वर्ग सोला होवै ये दूसरा वर्ग. सोलाका वर्ग २५६ होवै ये तीसरा वर्ग. २५६ का वर्ग ६५५३६ होवै ये चौथा वर्ग. इसका पांचवा वर्ग करनेसें ४२९४९६७२९६ होवै. ये पांचवा वैका वर्ग करनेसें १८४४६७४४०७३७० ९५५१६१६ होवै ये छठा वर्ग. इसके साथ पांचवे वर्गकी अंदरका वर्ग करनेसें ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ संख्या होवै. इतनी संख्यासें उत्कृष्टपदसें गर्भज मनुष्य कहे हैं. और उत्कृष्टपदसें समूर्छिम गर्भज एकत्र गिननेसें असंख्यात कहे हैं. ये मनुष्य अढाइ द्वीपमें मिलकर होवैं.

१२९ प्रश्नः— अढाइ द्वीप किसतरह कहे है ?

उत्तरः—अपने निवास करते है सो जंबूद्वीप है. उनकों बीचसें नापो तो लाख योजनका होवै. ये गोलाकार है. इसके चोगिर्द लवण समुद्र है वो दो लाख योजनका है. उसके पीछे धातकी खंड नामक द्वीप है वो चार लाख योजनके विस्तारका है. उस्में मनुष्य हैं. उसके चोगिर्द आठ लाख योजनका कालोदधि समुद्र है. उस पीछे सोला लाख योजनका पुष्करावर्त्त द्वीप है—उसमें अर्द्ध विभाग मनुष्यकी वस्तीवाला है. इस सबवसें अढाइ द्वीप है. अढाइ द्वीपके सिवा मानवकी वस्तीही नहीं, उस्सें दूसरेकी गिनती लक्षमें लेने योग्य नहीं—आगे असंख्यात द्वीप समुद्र मनुष्यकी वस्ती बिगरके है.

१३० प्रश्नः—जिन मंदिरमें दीपक खुल्ले रख्खेजाते हैं सो योग्य है या नहीं ?

उत्तरः—इक्कीस प्रकारकी पूजामें सकलचंदजी उपाध्यायजीने लालटेनमें दीपक रखनेका कहा है फिर भद्रबाहुकृत पूजाप्रकरणमेंभी कहा है कि दीपक इस तरकीबसें रखना कि प्रभुजीकों गरमी न लगे. जैसें अपनकों गरमी लगती है वैसाही समझकर प्रभुजीकों दीपककी गरमी न लगे उस तरह रखकर दीपक पूजा करनी. गृहस्थ अपने मकानमेंभी खुल्ले दीपक नहीं रखते है और जिनमंदिरमें खुल्ले रख्खै तो अन्यदर्शनीभी कहने लगे कि-

'श्रावकलोग देवके आगे तो दीपक खुल्ला रखते है और मकानमें ढके-हुवे रखते हैं ये क्या? यहभी लघुताका कारण है फिर पंचाशकजीमें कहाहै कि जिनपूजनमें जितनी यतना होवै उतनी करनी–उसमें प्रमाद नहीं करना. इसपरसें किसीके दिलमें आयगा कि क्या बिल्कुल दीपक करनाही नहीं? पानी पुष्प नहीं चडाना ये समझना भूलभरित है. सबब कि स्थावरकी हिंसाका कुछ श्रावकके त्याग नहीं–त्रसकी हिंसाका त्याग है. पुनः प्रमाद करै तो त्रसकी हिंसा होवै. और प्रमाद छोडदेवै तो प्रभु भक्तिमें त्रसजीवकी हिंसा नहीं होवै. स्थावर विगर तो भक्तिही नहीं बन सकती. फिर श्रावककों अष्टद्रव्यसें भक्ति करनी महा निशिथजीमें और आवश्यकसूत्रजी वगैरःमें योग्य कही है; वास्ते विस्तारयुक्त भक्ति करै तो बहुत लाभ उपार्जन करै–जिस्सें प्रमाद छोडकर भक्ति करनी.

१३१ प्रश्नः—मंदिरके खात मुहूर्त्त करनेकी जगह देखनेकी रीति जैनोंकी और अन्य दर्शनियोंकी समान है या अलग है?

उत्तरः—विक्रम राजाके वक्तमें कालीदास पंडित हुवाथा उसने ज्योतिर्विदाभरण नामके ज्योतिषशास्त्रका ग्रंथ बनाया है ओर उसकी टीका जैनाचार्यने कि है उसमें जैनकी रीति अलग बतलाइ है. उसी मुजब आरंभसिद्धिनामक जैन ग्रंथभी है. पुनः ज्योतिर्विदाभरणमें प्रतिष्ठाके नक्षत्रोंमें भी जैनोंके नक्षत्र अलग बतलाये है. (इसपरसें ढुंढीए लोगोंकोंभी खियाल करना चाहियें कि अन्यदर्शनीभी दो हजार वर्ष करीब पर जैन चैत्य सिद्ध करते है.)

१३२ प्रश्नः—सामायिकमें घडी रखते हैं वो आज्ञा है?

उत्तरः—वृंदारवृत्तिमें घडी रखनेकी कही है और उसमें नीशीथजीकी चूर्णीकी गवाह दी है.

१३३ प्रश्नः—श्रावककों चरवला और मुहपत्ती रखनेकी मर्यादा शास्त्रसंमत है?

उत्तरः—यशविजयजीकृत आवश्यकका बालाबबोध है उसमें, और अनुयोगद्वारजीकी छपी हुइ टीकाके पत्र ७८ में वो संमती है. फिर श्राद्धविधि निश्चय ग्रंथमें अचलगच्छकी चर्चामेंभी अच्छीतरहसें वो बात स्थापित की है.

२४ प्रश्नः—श्रावककों सूत्र पढनेकी आज्ञा है या नहीं ?

उत्तरः—श्रावक अथवा साधुकों हरएक चीज गुरुके पाससें पढनी चाहियें. अपने आपसेंही नहीं पढनी. उसके लिये विशेषावश्यजीमें कहा है कि–सामायिक अध्ययन पढना वोभी गुरुके पाससें पढना. नहींके पुस्तक चुरा लेकें पढना, तो आपही आपसें पढनेका–वांचनेका तो मंजूरही नहीं होता. गुरुके सिवा सूत्र बांचे तो उसका पूरापूरा आशयभी समझनेमें न आ सकै, तो उत्सूत्र दोष लगै. फिर श्रावककों आवश्यकसूत्रजीके और दश-वैकालीकके चारही अध्ययन तक, तथा आवश्यकसूत्र पढनेकी [प्रभुजीनें] आज्ञा दी है. पुनःश्रावककों अर्थ ग्रहण करनेहारे कहे है–यानी गुरु अर्थ सुनावें वो सुने इसपरसें श्रावककों सूत्र पढने–वांचनेकी आज्ञा संभवित नहीं है. प्रकरण ग्रंथ वहुतसे हैं. उसमें पूर्वाचार्योंने सब रचना लाकर रख दी हैं वो पढतेभी है. यहांपर किसीकों शंका हो आवेगी कि–, आ-नंदादिक श्रावक क्या पढते होंगे ? इस संबंधमें विशेषावश्यकजीमें श्रुत-ज्ञानके भेद चले हैं उसमें उपांगसूत्रका अधिकार पत्र १७१ में हैं. वहां प्रश्न हुवा है कि उपांगादिककी रचना किस लिये की ? उसके उत्तरमें कहा है कि साध्वीजीकों दृष्टिवाद नहीं पढाना–और उस दृष्टिवादके भाव समझे पढे सिवा क्योंकर वोध हो सकै ? उस वास्ते साध्वी श्रावकके लिये उपांगादिककी रचना की है. इस जगेपर श्रावक शब्द है; मगर उपांगछेद सूत्र वगैरः पढानेके वास्ते व्यवहार सूत्रमें मुनीकों कितने कितने वर्षकी दीक्षापर्याय होवै तव पढाने कहे हैं. उससें उपांगकीभी श्रावककों आज्ञा नहीं; लेकिन श्रावकपयन्ना पढते होंगे अैसा मालूम होता है. वर्त्तमान समयमेंभी चउसरणपयन्नादिक श्रावक पढते हैं, युंही तरह वे- लोगभी पढते हुंगे अैसा मालूम होता है. यहांपर कोइ सख्स मुझकों पूछेगा कि जब सूत्र पढे विगर तुमने सूत्रकी साक्षीयें दी वो किस तरहसें तुमकों समझनेमें आइ ? उसका खुलासा यही है कि बालकबुद्धिके वक्तमें मेरे मनमें अैसा आयाथा कि अर्थके ग्रहण करनेवाले श्रावक कहे हैं वास्ते अपनकों मूल सूत्र न पढना; लेकिन अर्थ पढनेमें क्या हरकत है ? अैसा

समझकर सूत्र पढेथे; मगर सूत्रके गहन अर्थ देखकर अब मेरे मनमें आया कि वीतरागजीके आगमकी गहन शैली मलीन आरंभी संसारमूर्छित श्रावक क्योंकर समझ सके ? कुछका कुछ धारणमें आ जाय तो श्रद्धा भ्रष्ट हो जावे; वास्ते भगवंतजीने निशेध किया है वही योग्य है. एक आवश्यक पढे तो उसमें बहुत प्रकारका ज्ञान हो जाय. वास्ते प्रभुजीकी आज्ञा बहारका काम कभी नहीं करना. और मैंने सभा समक्ष तो सूत्र पढकर नही सुनाया है. फक्त ग्रंथ हो वही पढाकर सुनाता हुं और उसके वास्ते शास्त्रमेंभी आज्ञा है. लेकिन विरुद्धता इतनी है कि वो ग्रंथ गुरुके पाससें पढकर सुनाने चाहियें; परंतु पंचमकालके प्रभावसें वैसे गुरुओंका योग न मिलते युंही वांचना पडता है वो प्रभुजी स्वीकारें तो सत्य है; सबब कि उद्यम छोडनेसें अज्ञानता दूर नहीं होती उससें न छूटकेसें करना पडता है. जो पुरुष गुरुमुखद्वारा पढकर उपदेश देते हैं उन्होंकों धन्य है ! मेराभी वैसा भाग्योदय होगा उस दिन धन्य मानुंगा. अबीभी कोइ कोइ उत्तम पुरुषका संयोग प्राप्त होता है तो उनकी समीपमें जो जो धारणा हो सकती है उन्हकों में कल्याणकारी मानता हुं और उस विगर अपने आपहीसें जो पढता हुं उसमें प्रभुजीकी आज्ञा विरुद्ध होता होवे तो त्रिविध त्रिविधसें मिथ्या दुष्कृत देता हुं. फिर योग शास्त्रकी टीकाके पत्र १०७ में सामायिकके अतिचारमें कहा है और शास्त्रकी गाथा रख्खी है उसमें कहा है कि—न करना उस करतें अविधिसें करना वो श्रेष्ठ है. इस आधारसें गुरुके पास पठन किये विगर चूपचाप बैठकर प्रमाद कीये करतें तो गुरुमहाराजके समीप पढनेकी इच्छा रखकरें योग न मिले वहांतक प्रमादमें काल न जाय उस वास्ते वांचता हुं और इसकों हितकारी मानता हुं.

११५ प्रश्नः—जैनमें लख्खों रुपै दूसरे शुभ मार्गमें व्यय करते हैं वैसे ज्ञानमें व्यय नहीं करते हैं उस्का सबब क्या ?

उत्तरः—जैनधर्मका मूल स्वरुप नहीजाना वही ऐसा समझताहै. जैनमार्ग जान लिया या जैनधर्मका जानपना होनेका समीप होय या थोडेही भवमें पार जानेका होय उसकों तो अवश्य ज्ञानपरही लक्ष होवे; सबब कि आत्माका केवलज्ञान ढकागया है सो प्रकट करना, उसका मुख्य साधन

ज्ञान–श्रुतज्ञान है. क्यौं कि केवलज्ञान पानेके पेस्तर क्षपकश्रेणी मांडते है उसमें प्रथम श्रुतज्ञानसें चिंतन करते हैं उससें अपूर्वभाव प्रकट होते हैं, और स्वाभाविक ज्ञान होता है; वास्ते ये सब होनेका कारण श्रुतज्ञान है. और वो श्रुतज्ञान ज्ञानावर्णी कर्मके क्षयोपशमसें होता है. ज्ञानावर्णी कर्मका क्षयोपशम ज्ञान पढनेसें–पढानेसें–पाठ करनेसें–ज्ञानवानका–पुस्तकका–ज्ञानके उपकरणोंका विनय करनेसें या पुस्तक लिखवानेसें या विद्याशालाऐं खोलनेसें और श्रावकोंको पढानेसें तन मन धनकी जैसी शक्ति हो उस मुजब खुदको और दूसरोंकों ज्ञानकी वृद्धि होसकै वैसी प्रवर्त्तना करनी, उस्सें ज्ञानावर्णी कर्मका क्षयोपशम होवै और ज्ञान प्रकटै. जिसकी धन संबंधी ताकत हो तो धन ज्ञानमें व्यय करै. जिसकी शरीर संबंधी ताकत हो तो शरीरसें ज्ञानकी संभाल रक्खे. जितनी जितनी बने उतनी शरीरसें सेवा भक्ति करै. जो जो ज्ञान संबंधीके कामकी मिहनत करनेकी हो सो करै. फिर मनकी शक्तिवाले यानी पढेले होवै सो दूसरोंकों पढावे. दृष्टांत युक्तिसें करकें ज्यौं समझसकै त्यौं समझानेका उद्यम करै; मगर स्वार्थही किया न करै. ये लक्षण ज्ञान निकट होनेके हैं; वास्ते नजदीकमें ज्ञान होनेवाले तो इस तरहसें वर्त्तन रक्खै यानी ज्ञानके काममें जरुर पैसा व्यय करै. लेकिन जिनकों ज्ञान प्रकट होना दूर है वे जीव तो विचित्र काम करते हैं. कितनोंकों तो मैंने समझाये हैं उन्होंने मुझकों जवाब दिया कि शास्त्र तो बहुत है, उन्हकों इस दुनियांमें पढने –वांचनेवालाभी कौन है ? बहुतभी पुस्तकें सड फट पसारीके दुकानकी पुडियां होनेका संस्कार पाते हैं. फिर कोइ कहते है कि हमकों कुछ पढते आता नहीं तो पुस्तकोंकों हम क्या करे ? ऐसे अज्ञानताके जोरसें अनेक तरहके जवाब देते हैं. फिर शासनमें कितनेक कारभारी होते हैं उनके तावेमें पैसे होते हैं, वो पैसे इकठे कर बढायेजाते हैं; मगर उन पैसेके अंदरसें ज्ञानके काममें खर्चते नहीं. व्याज उपार्जन कर रकम बढायेजाते हैं. कोइ ज्ञानमें खर्चनेकी प्रेरणा करै तौभी आपकों ज्ञानावर्णी कर्मका उदय है उसके प्रभावसें उत्साहयुक्त पिराये पैसेभी ज्ञानमें नहीं खरचते हैं और

कारण सिवा जीव ज्ञानावर्णी कर्म बांधता है. उस जीवपरभी ज्ञानवानकों तो करुणा ल्यांनी चाहिये; मगर द्वेष नही ल्याना; क्योंकि वो जीव क्या करै? कर्मराजा मार्ग देवै नहीं और इस भवमें तो समकित विगर बुद्धिवान गिनाये हैं; लेकिन उसकी भवितव्यता ऐसीही है कि आते भवमें ज्ञान विशेष आच्छादन होजानेका है उस्सें उन विचारेकी बुद्धि ऐसी होती है फिर ज्ञानवंतोने ऐसोंकों समझाने चाहिये. मगर प्रायः कितनेक कारभारी धनवान होवै उस्सें उनको कहनेकों जाय तो उलटा ज्यादे द्वेप प्राप्त होवै. इससें ज्ञानवानकोंभी मौन होकर बैठना पडता है. अब पैसेके देनेवाले मनुष्य तो ज्ञानमें खर्चनेकों देते हैं; तथापि वो पैसे न खर्चनेसें उन्हका विश्वास उठजाता है. फिर एसी खबर पढनेसें जो पसेके खर्चनेवाले होते हैं वैभी ज्ञानके काममें खर्चते नहीं–और कहते है कि ज्ञानके पैसे हम देते हैं सो गोलकमें गुम होजाते हैं. ऐसे अनेक कारण मिलजानेसें ज्ञानमें पैसे खर्चनेके बंध होगये हैं; मगर लाइलाज हैं. तथापि आत्मार्थीओंकों तो साते क्षेत्र हैं उनमें छउं क्षेत्रकों पहिचान करानेवाला ज्ञान है वास्ते ज्ञान जैसा कोइभी क्षेत्र नहीं है. मरणके समयभी जीव लख्खो रुपै मान प्रतिष्ठाके मारे शुभ काममें व्यय करते हैं; मगर ज्ञानमें व्यय नहीं करते है, युं आत्मार्थीकों न करना. आत्मार्थीयोंकों तो ज्यादे भाग ज्ञानमें व्यय करना, सववकि दूसरे क्षेत्रमें कितनेक आत्मार्थ और कितनेक मानके खातिरभी खर्चते हैं; उस्से वै काम तो चलतेही रहते हैं, उसमें हरकत नहीं और ये ज्ञानक्षेत्रमें तो बडी अडचण है कि ज्ञानके पुराने भंडार है, उसमेंसें कितनेक भंडार ऐसे शेठिये या साधुवोंके अख्त्यारमें हैं कि कोइ कुछ वाचनेकेलिये प्रत मंगै तो एक पत्रभी नहीं देते हैं. पुस्तक सडजाते हैं; मगर उस पुस्तकसें किसीका उपकार होनेवाला नहीं. फिर कितनेक भाग्यशालीओंके हाथोमें भंडार हैं तो वो पुस्तक आत्मार्थीओंके उपयोगमें आता है; लेकिन कुछ चीजकी कालस्थिति है वास्ते पुस्तकोंकोंभी विशेष वक्त होनेके सववसें उन्हका नाश होनेका संभव है. तव जो नये लिखाये जाते होवै तो अगाडी पिछाडी तैयार होतेही रहै. और ऐसा

न होवै तो अवी जो शास्त्रोंके नाम कायम हैं; लेकिन वो पुस्तक मिलतेही नहीं, या तो कितनेक अपूर्ण पुस्तक हैं, और कितनेक पुस्तकोंको दीमग लग जानेसें निकम्मे होपडे हैं अगर जीर्ण होगये हैं ऐसा हुवा है. फिर वैसा जास्ती जास्ती हुवा करै तो अखीरमें क्या हाल होय सो आपही शोच लीजीयें. फिर ऐसाभी कोइ स्थल नहीं है कि सबी पुस्तक एकही जगह मिलजावै. ऐसी पुस्तकोंकी दशा हुइ है; वास्ते आत्मार्थीओंको तो ज्यौं बनसके त्यौं ज्ञानमें खर्चकर सबी पुस्तक एकही जगहसें प्राप्त होय ऐसा करना चाहियें. ये काम बडे धचवाचोंका है, अगर तो विशेष मनुष्य मिलकर करै, या तो ज्ञानद्रव्य होय उनमेसें करै. लेकिन यह विचार जिनकों निकट झॉनि होगा उनकोंही मालुम होयगा, दूसरोंका तो उधर ध्यानही नहीं जायगा. मुझकों तो मेरे भाग्योदयसें मैं दस वर्षका हुवा जबहीसें ज्ञानमें पैसा व्यय करनेकी बुद्धि ऐसी हुइ कि जितने पैसे ज्ञानमें खर्चुं उतने दूसरे काममें खर्चनेका चितही न होवै; मगर ऐसी बुद्धि होनेसें मेरे गांवमें कोइ पढानेवालेका योगही नहीं. मुनिमहाराजका आगमनभी नहीं और पढेहुवे श्रावक प्रेरणा करनेवालेभी मिले नहीं; तोभी नाम मात्र कुछ जैनधर्मका ज्ञान प्राप्त हुवा, वो सबी फल ज्ञान पर प्रेम होनेकाही है.

फिर इंग्रेजलोग परदेशी हैं, धर्मभी भिन्न है तोभी इस देशके लोगोंके कला-हुनर शिखलानेके वास्ते हजारों रुपै खर्चते हैं तो उससें उन लोगोंको कितना क्षयोपशम हुवा है कि अनेक प्रकारकी बिगर देखी हुइ कलायें ढुंढ निकालकर नइ वस्तु अनेक हाथ हुइ है-होती जाती है और जिसका कृत्य समझमेंभी नही आ सकता है. इतनी बुद्धि मिलनेका कारण यही है कि ज्ञानका उत्तेजन करनेमें अत्युत्साह है. इसपरसें शोचनेका है कि संसारी ज्ञानके उत्साहसें इतना लाभ मिलता है तो वीतरागके ज्ञानकी वृद्धि करनेसें कितना लाभ होवै ? वास्ते आत्माका हित करनेके लिये, अपने लडकेकों और दूसरेकों हित होय उस वास्ते जैनशास्त्र पढाना. जैनशास्त्र पढनेसें सब काममें बुद्धि बढेगी और पढानेवालेकों लाभ

होगा. फिर पुस्तक बिगडते होवें तो उसकी संभाल रखनी. जैनके तमाम शास्त्र अमरपद पावै ऐसा करना चाहियें. पंजाबसें आत्मारामजी महाराज गुजरातमें आये और शास्त्र थे सो देखे और वो देखकरकें ज्ञान मिलाकर समस्त देशोंका उन्होंनें उपकार किया. यवनके मुल्कमेंभी उन साहबने जैनधर्म प्रसिद्ध किया और जैनका बहुत मान्य करवाया. उसमें निमित्त कारण शास्त्र थे तो ऐसा हुवा. न होते तो वैसा न हो सकता. अपनकों पढते-वांचते न आता होवै तो कुछ हर्ज नहीं. पुस्तक होगा तो वांचनेसें बहुतसे पुरुषोंकों लाभ होगा.

११९ प्रश्नः—नातरे-गांधर्वविवाह करनेका रीवाज हिंदुवोंमें न होनेसें स्त्रीए बालहत्या करती हैं तो वैधव्य हुवे पीछे दूसरा पती करनेका रीवाज हो तो अच्छा कि नहीं?

उत्तरः—दूसरा पती करना सो तदन शास्त्र विरुद्ध है. फिर तुम बालहत्या होती है उसलिये विधवाविवाह शुरु होनेसें वो हत्या रुकजाना मानतेहो; लेकिन मेरे एक सेसनजज्जके साथ गुफतगो हुइथी जब मेंनें पुंछाथा कि—'आपके हजूर खूनके मुकदमे आते हैं उसमें स्त्रीओंकी खटपटके खून बाबत जियादे मुकदमे आते है? या उस सिवाके जियादा आते है?" उन्होंने जवाब दियाथा कि—'स्त्रीओंकी खटपटके खून संबंधी जियादे मुकदमे आते हैं.' फिर मेंनें दूसरा सवाल किया कि—'जिसकी ज्ञातीमें नातरे होते है उसमें स्त्रीओंकेलिये विशेष खुन होते हैं या नातरे बिगरकी ज्ञातीमें विशेष खून होते हैं?' जवाब मिला कि—'नातरेवाली ज्ञातीमें स्त्रीके संबंधी विशेष खून होते हैं.' अब इसपरसें सोचनेका है कि—स्त्रीओं जैसी निर्दय जाति दूसरी नहीं है. शास्त्रमें एक कथा बांचीथी जिसमें—एक राजा दशहरेके दिन माताकों नमन करनेकेलिये गयाथा, वहां माताने आशिर्वाद दिया कि 'स्त्री जैसी छाती (कठोर) होना.' राजाकों वो वचन नापसंद होनेसें राजाने मातासें पूछा कि—'ऐसी आशीष क्यों दी?' माताने कहा—'स्त्री जैसी कठोर छाती पुरुषकी नहीं होती है उस्सें ऐसी कठोर छाती होनेका आशिर्वाद दिया—उसका मतलब यही है कि—तुं हुकम

कर कि जो अपनी औरतका शिर काटकर ल्यावे उसकों मैं आधा राज्य दुंगा. पीछे आशीषका मायना पूरा पूरा मिलजायगा.' राजानें वैसाही किया; मगर किसी पुरुषने अपनी स्त्रीका शिर काटकर हाजिर न किया. दूसरी दफै ढढेरा फिराया कि-' जो औरत अपने खाविंदका शिर काट लावै उस्कों आधा राज्य दियाजायगा.' वो सुनकर बहुतसी स्त्रीयें अपने खाविंदके शिर काटकाटकर लेआइ. राजाके दिलमें खियाल हुवा कि स्त्रीके समान कोइ क्रूर नहीं. इस कथापरसें समझनेका है कि स्त्रीकों नातरेकी छुट्टी दीजावै तो ऐसी क्रूरता अमलमें लेवै. पुरुषकों पाणीग्रहण करनेकी (दूसरी दफै) छुट्टी है, तोभी क्रूरता अमलमें नहीं लेवै और स्त्री निर्दयता तुरत अमलमें लेवै; वास्ते नातरेकी छुट्टी नहीं दी है. क्यों कि आपके खाविंदका खून करनेमें या करानेमें अपना लाभ तपासती है कि जन्मभर पहनने-ओढनेका और खानेपीनेका सुख चलाजायगा और वैधव्यपना भुक्तना पडेगा उस्से बने वहांतक खून न करै. और नातरेकी छुट्टी होवै तो खाविंद मरजायगा तो मैं नातरा करलुंगी-दूसरा खसम कर बैठुंगी-यानी आपके सौभाग्य सुखमें न्यूनता होनेकी नहीं उस्सें धणीकों मारडालनेमें नहीं डरै-और वडे लोगोंकाभी खून करै. फिर बालहत्या तो कमती होती नहीं; क्यों कि अभी नातरे नहीं करते हैं तोभी वर न मिलनेसें कितनीक ज्ञातीमें कन्यायें वडी उमरतक कुंवारीही रहती हैं. और नातरे होवे तो उसकी एवजीमें उतनी कन्याका विशेषपणा होवै, वै बडी होवै तब बदचलनवालीही होवैं उस्से गर्भपात करै. मेरे सुनेमें आयाहै कि अभी इंग्लॉंडमें कुंवारी कन्याये बहुत हैं और वै बालहत्यायें करती हैं. त्योंही यहांपरभी इज्जतदार उच्चकोमके अंदर नातरे न होनेसें अच्छा है, नहींतो बाल-हत्या और वडोंके खून ये दोनुं जारी रहैं; वास्ते पूर्व पुरुषोंने जो रीवाज रक्खा है वोही अच्छा-बहेतरीं है. कोइ ऐसा सवाल करेगा कि ब्राह्मणोमें पेस्तर नातरे होतेथे, तो उस विषयमें समझना कि जैसें अभी कितनेक मनुष्य नातरे-पुनर्लग्नमें फायदा मानते हैं वैसें उसी वक्तमेंभी माननेवाले होंगे उन्होंने वैसा किया होगा. और

बालहत्या, जुवानहत्या इन दोनुका शोच करनेवाले मुग्ध जनोने यह बात अंगीकार न की उससें वही रीवाज चालु रहा सो अद्यापि चलता है, वो फिरानेमें कुछ फायदा नहीं मगर नुकशान है. पुनः अपन जैनधर्मी-ओंकों तो ज्यों बनसके त्यों विषयवासना कमती हो कामसें मुक्त हुवा जाय वैसा करना योग्य है, और वो प्रत्यक्ष देखतेही हैं कि-जितनी वि-धवाऐं धर्मसाधन करती हैं और संसार छोडकर दीक्षा लेती हैं उतनी सौभाग्यवती स्त्रीए नहीं करसकती है. जबराइसें शील-कुलकी मर्यादासें पालन कियाजाय तोभी महा नीशीथजीमें धन्य कृतार्थ कहेगये हैं; वास्ते शील पालनेमें वडा फायदा है-वो नातरेकी छूट मिलनेसें बंध होजाता है. बहुतसी विधवाऐं तो चिंतन करती है कि मेरे जहांतक खाविंदका योग था वहांतक तो मेरा चित्त विषयसें विरक्त न हो सकताथा; मगर अब आपही आप स्वामी न होनेसें शील पालन किया जायगा ऐसी सुंदर भावनाका चिंतन करती हैं और आत्माकों निर्मल करती हैं वो नजरसें देखतेही हैं. फिर जिसकी न्यातमें नातरे होते हैं उनमें ऐसी उत्तम भावना आनेकीही नहीं. और उन्हमेंभी जो विशेष खानदान होती है, वो दूसरा घर नहीं करती है वोभी देखते हैं; वास्ते नातरेमें लाभ दर्शाते है सो बेमुनासीब है.

१३७ प्रश्नः—आत्मा निर्विकल्प है कि सविकल्प है?

उत्तरः—आत्मा निर्विकल्प है. विकल्प करना सो जडकी सोबतसें आत्माका उप-योग विगडनेसें होता है.

१३८ प्रश्न—बारह भावना और चार भावनाका चिंतन उपयोगमें लेना उसमेंभी वि-कल्प करनेमें आता है?

उत्तरः—वे विकल्प हैं सो निर्विकल्पदशाकों ल्यानेवाले हैं. वे प्रथम अवस्थामें आदरने योग्य हैं. जब शुक्लध्यानका दूसरा पद ध्यावे उस वक्त अ-भेदज्ञान होता है, तब विकल्प दूर हो जाते हैं. मगर शुक्लध्यानका प्रथम पद ध्यानेके अव्वल श्रुतज्ञानका चिंतन होता है उसमें अभंग अनुराग रूप यानी कुम्हार जैसें चक्र हिलावे और उस्से वो पीछे आपहीआप

फिरने लगता है, वैसें श्रुतज्ञानसें शोचे बाद सहज दशा प्रकट होती है तब स्वाभाविक ध्यान होनेसें अभेद ज्ञान प्रकट होवे. वहांसें निर्विकल्प दशाके अंश प्रकट होते जाते हैं; लेकिन जब दूसरा पद ध्यावे तब विशेष निर्विकल्पदशा प्रकटती है और जब केवल ज्ञान प्रकटता है तब पूर्ण निर्विकल्प दशा प्रकटती है.

१३९ प्रश्नः—केवलज्ञान तो निर्विकल्प दशासेंही प्रकटता है, तब विकल्परूप भावना और पूजा प्रतिक्रमण करना वो तो विशेष विकल्प सहित रहा वो करनेसें क्या लाभ?

उत्तरः—भावना वगैरः जो जो करणी हैं उसमेंभी अंश अंशसें निर्विकल्पदशा होती है. पूजनसामग्री लानेमें द्रव्य व्यय किया जाय वो द्रव्यपरसें मूर्छा उतरती है और निर्विकल्प दशाके अंश प्रकटते हैं. फिर संसारका राग छूट जावे तब प्रभुपर राग होता है. तब संसारके उपरसें जितना जितना राग कमती होवे वो निर्विकल्प अंश है. पुनः देह पूजनमें काम आती है वो वक्त विषयमें नहीं काम आती है तो विषयमें काम लगानेकी इच्छा दूर हुइ वो निर्विकल्प अंश है. वैसेंही पडिक्कमणेमेंभी संसारपरसें चित्त हठाकरकें पुद्गल दशासें भाव उतारकर व्रत अंगीकार किये हैं तथापि चित्तके पलटनेसें कुछ परभावकी प्रवृत्ति करनेके सबब दूषण लगता है वो चित्त स्वात्म दशाका होनेसें अरुचि मालूम होती है उससें परभाव प्रवृत्तिकी निंदा करता है. तब वो निंदा करनेमे पुद्गल दशाका अरुचकपना बनता है और निजस्वभाव सन्मुख होता है वोभी निर्विकल्पदशाके अंश हैं. तैसेंही पौषधमें और भावना भावे उन भावनाओंमें भावनेका संबंध इतनाही है कि पुद्गलदशा जो विभावदशा विकल्पमय है उसमें अनादिके अभ्याससें मेरापना मान लिया है वो हठ जाय, तब विभाव वस्तु आत्माकों अच्छी न लगे, और अनादिकी अच्छी लगतीथी वो कुछ मिथ्यात्व पुद्गल हठ जानेसें होता है. जितने मिथ्यात्वके पुद्गल हठ गये वो स्वात्मभावमें वर्त्तनेका भाव हैं उतने निर्विकल्प अंश प्राप्त होते हैं; वास्ते जो जो जीव धर्मसाधन आत्म सन्मुख होकर करते हैं

उनमें अंश अंशसें निर्विकल्पदशा प्राप्त होती है. वैसेंही ज्ञान जो शास्त्र वांचना येभी आत्माकी स्वदशाका शोच करै तो निश्चय नयसें आत्मा केवलज्ञानमय है उनकों पढनाही क्या? मगर आत्मा केवलज्ञानमय है वो शास्त्र सुनेसें-वांचनेसें जानता है याने ज्ञानद्वारा वो वात समझनेमें आती है. अव यहांभी अनादिकालका जीवका उपयोग शास्त्र सुने वांचनेका आत्माकी पहिचान होनेके लिये नहि था; मगर जव आत्माकी साथ आवरण करनेवारे मिथ्यात्वके पुद्गल थे वो हठ गये तव आत्मधर्म जाननेके लिये शास्त्र सुनने वांचनेकी रुचि हुइ. तव यहांभी आत्मा निर्विकल्पमय था उसके अंश खुल्ले हुवे वाद अनुक्रमसें ज्यौं ज्यौं शास्त्र सुने-वांचने-मनन करनेका विशेष दिल हुवा, त्यौं त्यौं आत्माके आवरण हठते चले और जीव निर्विकल्प हुवा. लेकिन जीवकों प्रथमसेंही निर्विकल्पदशा नहीं होती है; वास्ते निर्विकल्पी पुरुषोंनें ज्यौं अनुक्रमसें गुणस्थानक वतलाये है उस मुजव क्रमसें गुणस्थानक चढकर निर्विकल्पी पुरुष जो भगवन् उन्होंने व्यवहाररूप चडनेकी रीति दर्शाइ है. उसके अर्थी जीव वर्त्तते हैं उसकों उसीमें जितनी जितनी निर्विकल्प अंशकी दशा प्रकटती है उससें वो आनंदमान होते हैं. और देवपूजा श्रावकके व्रत-मुनिके व्रत-प्रतिक्रमण-भावना-ध्यानादिक तमाम करणी अपनी निर्विकल्पदशाके लियेही करते हैं. ऐसा करते करतेही अनुक्रमसें निर्विकल्पदशा पूर्ण होती है!

१४० प्रश्नः—आत्मा परभावका अकर्त्ता कहा है और ये प्रवृत्ति तो कर्त्ता पनेसें होती है वो कैसा?

उत्तरः—तुम्हारी वात सच्ची है. निश्चयनयसें आत्मा परभावका अकर्त्ता है. और व्यवहारनयसें कर्त्ताभी कहा है. व्यवहारनयसें कर्त्ता मान्य न करै तो आत्माकों आवरणभी न लगैं. और आवरण न लगैं तो उसकों मुक्त होनेकाभी नहीं. जव मुक्त होनेका वाकीमें रहा नहीं तव तो सव जीव सर्वज्ञ जैसे होने चाहियें, वो तो मालूम नहीं होते! तव प्रभुजीने व्यवहार नयसें कर्त्ता कहा है सो सिद्ध होता है. आत्मा व्यवहारनयसें कर्म

योगसें कर्ममय परिणत हो विभावमय पुद्गलकी करणी विषयकषायकी कररहा है. अब व्यवहारनयसें कर्मबंधके कारण सेवन करता है; मगर उसमेंसें भवितव्यताके योगसें कछुक स्वाभाविक कर्मसें हलका हुवा और जैसें कोठारमें अनाज कम भरै और ज्यादे निकाला करै तो सहजही कोठारमें अनाज कमती होजावै वैसेंही जीव विशेष कर्म भुक्ते और अकाम निर्जरा करै—उस्से नये कर्म थोडे बांधै उससें हलका होवै. वीतराग सर्वज्ञ पुरुषपर प्रीति जाग्रत होवै और सत्संग करै. सत्संगसें अपने आपका स्वरुप सुने कि निश्चयनयसें तो मेरा आत्मा सर्वज्ञतुल्य है. जो ऐसा आत्मा न रहा होवै तो आत्मा कोइ दिन शुद्ध न होवै. आत्मा आच्छादित होता है वो जैसें स्फटिकके नीचे जैसा डांख रक्खाजाय वैसे रंगका वो मालूम होता है; मगर वो डांख निकलजावै तो जैसा निर्मल है वैसाही मालूम होवै. लेकिन ऐसा डांख एक रुप न हुवा है कि पुनः स्फटिकका रुप प्रकटही न होसकै. उसी तरह आत्माकों ऐसे कर्म नहीं लगे है कि कभी विशुद्धि होवेही नहीं. कर्मके आवरण ज्यौं ज्यौं दूर हठते जाय त्यौं त्यौं विशुद्ध होवै और वो प्रत्यक्ष अनुमान होता है कि जैसें कोइ जीव ज्ञानका विशेष अभ्यास करता है तो विशेष विद्वान होता है तो यदि अभ्याससें आवरण दूर नहीं हठते होवै तो बुद्धिमान क्योंकर होय ? मगर ऐसे आवरण है कि आत्मतत्त्व प्रकट करनेका अभ्यास करै तो आवरण नाश होवै; वास्ते आत्माकी स्वाभाविक दशा कायम है, जाती नहीं रही वो प्रकट करनेकेलिये व्यवहारनयसें गुणस्थानका व्यवहार प्रभुजीने बतलाया है त्यौं करना, और वैसा अभ्यास करनेसें आत्मा शुद्ध होवैगा. और निश्चयनयसें अकर्त्ता कहा है वोभी है. यदि अकर्त्तापनेका निज स्वरुप न जाने तो शुद्ध करनेकी बुद्धि होवैही नहीं. और जो विभाविक करणी है वो तो मेरे कर्त्तापनेसें करने योग्य नहीं ऐसा समझै. वास्ते निश्चयनयकी तर्फदारी हृदयमें अच्छी तरहसें रक्खै; मगर निश्चयनयसें आत्माविभावका कर्त्ता है ऐसा जब तलक जीव जाने तब तलक आत्मा शुद्ध करनेकी बुद्धि होवैही नहीं. जहांतक आत्मा पुद्गल भावका समझै वहांतक शरीरकों दुःख होवै तो मुझकों दुःख

हुवा है, धन गया तो मेरा धन गया है, स्वजनका वियोग हुवा तो मेरे सगे मरगये हैं अब क्या करुंगा ? मेरा घर जातारहा, मेरा वस्त्र विगड-गया, मुझकों मारा, मुझै गालियां देता है, ऐसें परवस्तुमें मेरापना मनमें मानरहा है वो जड पदार्थमें मेरापना मानता है-उसका कर्त्तापना मानता है. मैने सुखी किया-करवाया, मैनें दुःखी किया, ऐसा मानता है उसका त्याग करके निज स्वभावमें रहना. निश्चयनयसें स्वभावका कर्त्ता जानकर विभावका कर्त्तापना छोड देना.

१४१ प्रश्नः—आत्मा निर्विकल्प और अकर्त्ता होनेपरभी कर्त्तापनेसें व्रत, पच्चख्खान, प्रतिक्रमण करें, शास्त्र वांचे और उससें अकर्त्ता निर्विकल्पता होवे सो क्यों घटना हो सके ?

उत्तरः—कर्म है सो परवस्तु है. जैसें कोइ मनुष्यकों कांटा लगा है, वो कांटा परवस्तु है, फिर नाखुन ऊतारनेके ऑजारसें कांटा निकालता है वो ओजारभी परवस्तु है, तो परवस्तुसें परवस्तु निकलती है, वैसें आत्माकों जो कर्म लगे ह वो परवस्तु परवस्तुके योगसें निकलजावै और हरएक वस्तु अनुक्रमसें शुद्ध होती है. वस्त्रकों मैल लगा है वो परवस्तु है उसकों क्षारादिक परवस्तुके योगसें शुद्ध-साफ करै तो शुद्ध होवै. हीरे वगैरः रत्न पदार्थ है वो खानमेंसें निकालेजाते है तब मैले होते हैं, उनकों घिस-कर साफ करनेके ओजार लगैं तब वो मैल दूर होजाता है और शुद्ध रत्न प्रकट होते हैं. उसमेंभी तमाम मैल पहेला नहीं चलाजाता है, पहेलें तो अल्प अंश जाता हैं, मगर घिसनेका अभ्यास करनेसें क्रमसें करके सब मैल चलाजाता है; लेकिन मैल दूर करनेमें परवस्तुका योग चाहियें, वैसें आत्माभी कर्मसें आच्छादित हुवा है उससें आत्माकी निर्विकल्प दशाभी मालूम नहीं होती, अकर्त्तापनाभी मालूम नहीं होता वो आच्छा-दित हुवेका प्रभाव है. वो ढकन दूर हटानेके वास्ते जिस तरह कपडा धोनेमें पहेले क्षार लगाते हैं, उससें ज्यादे मैला मालूम होता है; मगर व-स्तुपनेसें वो क्षार मैलकों निकालनेवाला है, उसतरह व्यवहारकरणी दे-खनेमै तो परभावकी मालूम होती है, किंतु वस्तुपनेसें अंश अंशसें आत्माकों

शुद्ध करती है. ज्यौं ज्यौं अंशसें शुद्धता होतीजाती है त्यौं त्यौं व्यवहारकी करणीओं छूटतीजाती हैं. जैसेंकि श्रावक पौषध करता है तब पौषधमें पूजा प्रमुख नहीं करता है, मुनीकों पूजा, श्रावककों स्वामीभक्ति ये सबी छूटजाती है. इसतरह क्रमसेंकरकें समस्त करणीयें छूटजावै और आत्माका अकर्त्ता गुन निर्विकल्प गुन प्रकट होता है, वास्ते कुल करणी निर्विकल्प दशा लानेके वास्ते करनी योग्य हैं. पेस्तर अशुभ क्रियाका त्याग कर शुभ क्रिया करती है. पीछे ज्यौं शुद्ध दशा प्रकट होती जाय त्यौं शुद्ध क्रियाका त्यागकर अक्रियपद प्रकट होता जाता है.

२४२ प्रश्नः—ज्ञानीनें तो पुण्य पाप दोनु त्याग करने योग्य बतलाये हैं और तुम तो एककों छोडकर एककों आदरनेका बतलाते हो वो किस तरह समझना ?

उत्तरः—ज्ञानी जीने कहा सो सत्य है. जैसें कोलीकी कोम चोरी करनेका धंदा करती है, उससें सामान्य वचनसें कोलीकी सोबत करनेका त्याग कहा जाता है; मगर चोरके डरसें रक्षण करनेके वास्ते यदि कोलीकों रक्षक करकें रखलेवै तो अपना रक्षण होता है. और रक्षकनें जब चोरकों मार हकाला तब निर्भय हुवे, पीछे चौकीदारकी जरुरत नहीं तब चोर और चौकीदार दोनुका त्याग होवे. उसतरह अशुभ प्रवृत्तिकों दूर करनेकेलिये शुभ करणीरुप चौकीदार है वो सब अशुभ प्रवृत्ति दूर हुवे बाद शुभ करणीकाभी त्याग होवै; वास्ते ज्ञानीने दोनुका त्याग कहा है सो सच है. सर्व कार्यमें आत्मा अज्ञानपनेसें अनादि कालका कर्त्तापना मानरहा है, और उसीसेंही आत्माके ज्ञानकों आवरण होते जाते हैं. जब जीव प्रभुके आगम सुनता है और स्पर्शज्ञानरुप ज्ञान जीवकों परिणमता है तब आत्माकों आत्माका स्वरुप अनुभवगम्य होता है तो जानताहै कि—अहा! मेरा आत्मा अरुपी, अनंतज्ञानमय, सर्व भावका जाननेहारा, निर्विकल्प ज्ञानी है. जड भावका जोजो कर्त्तव्य कियाहुवा है, वो मेरा स्वभाव नहीं. जब मेरा कर्त्तव्य नहीं तब उनका मैं कर्त्ता बनताहुं वोभी अज्ञानता है. ये वस्तु अनुकूल प्रतिकूल जिसकों मिलै उसमें मै सुख दुःख मानता हुं वोभी

अज्ञान है. मेरा स्वभाव तो समझने देखनेका है वो-स्वभावका मैं कर्त्ता हूं और वो करने योग्य है ऐसा ज्ञान होता है; वास्ते निश्चयनयसें आत्मा स्वभावका कर्त्ता है. व्यवहारसें विभावका कर्त्ता है. ज्यौं ज्यौं निश्चयगुण प्रकट होता है त्यौं त्यौं अशुद्ध व्यवहार त्याग हुवाजाता है और परभावका कर्त्तापना दूर हुवाजाता है, और जैसें आत्माका स्वरूप है वैसा प्रकट होता है.

१४३ प्रश्नः—तुम जो जो भावना करनेकी कहते हो वो आत्म घरकी है कि परघरकी?

उत्तरः—जितना व्यवहार वर्त्तता है उतना पुद्गलसें करके वर्त्तना करनेकी है और उसी वास्ते भावनां चितनेकी है, वो सब व्यवहार परघरका है यानी पुद्गल मिश्रित है; सबब कि आत्माके स्वाभाविक गुण तो समझने देखनेके हैं; मगर विचार करना सो आत्माका धर्म नहीं है. जहांतक संपूर्ण केवलज्ञान प्रकट नहीं हुवा वहांतक पुद्गल करकें सहित विचार है. क्योंकि मति श्रुतज्ञान हैं वो इंद्रियजनित ज्ञान हैं. इंद्रियोंका बल है. अवबोध होवै सो पांच इंद्रि और छट्ठा मन उन्होंके संयोगसें ज्ञान होता है. वो ज्ञान आत्मा और परके संयोगसें होता है, वोभी जीवका आत्मा आच्छादित होजानेसें मति श्रुतज्ञानका जितना बोध है उतना नहीं होता है. ज्ञानकी भक्ति—ज्ञानज्ञानकी भक्ति—ज्ञान प्रकट करनेकी अतिशय उत्कंठा और पढाने वंचानेके काममें अतिशय अभ्यास, जिस जगह ज्ञान मिलनेका हो, या दूर हो, या नजदीक हो और उसका वक्त समालना पडै वो सहन करना पडताहो, किंवा जो हुकम फरमावै वो अमलमें लैनापडताहो, वो कुल हुकम और दुःख सहन करकें—ज्ञान मिलानेमें आलस छोडकरकें रात दिन उद्यम करता है, तब ज्ञानावर्णी कर्म थोडे थोडे ज्यौं ज्यौं क्षय होते जॉय त्यौं त्यौं मति श्रुतज्ञानका बोध बढताजाता है, तब जीव मेरा स्वरूप और पराया यानी जडका स्वरूप पहिचानता है. शास्त्रमें जडकी संगति छोडनेके जो जो उपाय बतलाये हैं वो जानता है उस्से उसकी विचारणा करता है. वो विचारणा ऐसी है कि जिस्सें आत्मा अपने

स्वरूपकी सन्मुख होताजाता है, और परभावसें चित्त हठाता जाता है. जितना परभावसें चित्त हठगया उतना आत्मा शुद्ध होताजाता है. जैसें कि अपने कुटुंबके मनुष्य सिवाके मनुष्यकों घरमें मुनीम करकें रक्खै तो उसकों द्रव्य व्यवहारसें तो कमती हुवा लगता है; मगर दूसरी तर्फ शोच करै तो अपना जो धन है उसका रक्षण करता है और नया व्याज वगैरः पैदा करकें धन वढादेता है. उसी तरह ज्ञान और भावनाऐं जो पुद्गलमें मिलकर करनी सो आत्मरुपसें पररुप देखनेमें वहारसेंही है, मगर वस्तुतासें आत्माकों आत्मस्वरूपसें जानै, जडकों जड स्वरूपसें जानै, आत्माका निरावरण करनेका उद्यम कररहा है, विषयकषायके काम कमती होतेजाते है और पूर्वके कर्म क्षय होतेजाते हैं. ये सव काम परवस्तुसें होता है: वास्ते जहांतक केवलज्ञान प्रकट नहीं हुवा वहांतक भावनाऐं आदि वहुतही उपकार करती हैं. लेकिन जैसें लडके और मुनीमकों वस्तुपनेसें वाप अलग जानता है, वैसेंही वस्तु धर्म पहिचानसें जो ज्ञान आत्म उपयोगके हैं वो अवधि, मनपर्यव, केवलज्ञान या मति श्रुतज्ञान इंद्रियजनित है उसकों वो स्वरुपसें जानलेवै; मगर आत्मजनित ज्ञान प्रकट न हुवा वहांतक ये ज्ञानका अभ्यास छोडदेवै तो उसके आवरण किसतरह नाश होसकें ? ऐसें जिस जिस तरह सर्वज्ञ महाराजने वतलाया है उस तरह सेवन करकें आत्माका आत्मभाव प्रकट करना. ज्यौं ज्यौं आत्म विशुद्ध होवै त्यौं त्यौं नीचेकी प्रवृत्ति छोडते हुवे जाना है और समभाव वढातेजाना है. जो जो परभावके संयोगसें सुख दुःख अनुकूल प्रतिकूल शरीरमें होता है उस्में अपना समभाव नहीं छोडदेता है. कोइ मार मार जाता है, कोइ पूजन करजाता है, कोइ गालियें देजाता है और कोइ गुण ग्राम करता है वो सबमें समदृष्टि है. ऐसे गुण ज्यौं ज्यौं वढैं त्यौं त्यौं समझना कि मैं चडती पायरीपें हुं. उससें गुणस्थानपर चडाभी समझाजाय और ज्यौं ज्यौं गुणस्थानपर चडताजाय, त्यौं त्यौं ज्ञानीने नीचेकी प्रवृत्ति छोडदेनेकी वतलाइ है वैसेंही छोडदेवै. ऐसे पुरुष तो मर्यादा मुजबही चलेंगे और वीतरागजीके ज्ञानसें स्वचेतनकों चेतनरुपसें जानेंगे, परपुद्गल-

कों पुद्गलरूप जानेंगे, आत्मा अक्रियपनेसें जानेंगे, और क्रिया पुद्गलके संगसें होती है वोभी जानेंगे. जहांतक आत्माका अक्रिय गुण प्रकट नही हुवा, वहांतक नीचेसें ज्यों ज्यों उंचे चडता है और जितना जितना शुद्ध स्वरुप प्रकट होता है, उतनी उतनी क्रिया छोडता जाता है. दशा तो अक्रियपदकी भावता है, स्वधर्म तो जितना आत्मधर्म प्रकट होता है उसमें स्थापन किया है. साधनरूप धर्मकों साधनरूप मानता है. जैसें कोइ मनुष्यके घरमें लाख रुपैकी दोलत है; मगर वो जीव नही जानता है. उसकों किसी दूसरे पुरुषने उस दौलतके गुणोकी माहेती दी कि तेरे घरमें ये बडी दौलत है, उसकेपर सब फूस–धूल–मिट्टी–पत्थर वगैरःका थर चडगया है उससें वेमालूम है; वास्ते उद्यम कर, उद्यम करनेसें तेरी सब दौलत तेरे हाथ आवेगी. अब जिस पुरुषकों माहेतगारी देनेवाले पुरुषकी प्रतीति है उसने तो, वो दौलत तो जमीनमें रही है, उससें और द्रव्य विगर कुछ काम होसकता नहीं. और आपके पदरमें पैसा नहीं था, उसलिये कर्जा करकें खर्च किया–मजदूर बुलवाये–खोदनेकी मिहनतकी और अखिर द्रव्य हाथ किया. उसीतरह सर्वज्ञ महाराजने आत्मद्रव्यका स्वरूप दर्शाया है उस्सें आत्माका स्वरुप समझलिया; मगर अभी तो जडकी संगतिमें है वास्ते वो स्वरुप मालूम नहीं होता है. उसकों प्रकट करनेमें जिस तरह धन निकालने वालेने कर्जा किया और फतेह मिलाइ, उसी तरह आत्माकों अज्ञान संगतिमेंसें मुक्त करनेके उपाय जो जो ज्ञानीने वतलाये हैं वो अमलमें लेवैं तो बेशक आत्मधर्मरुप धन प्रकट होवै पुनः एक पुरुषकों एक दोंलतकी माहेती वालेने दौलत वतलाइ; मगर उस पुरुषके वचनकी प्रतीति न की उससें उसकों दौलत हाथ न लगी. एक पुरुषने कहा कि–' दौलत है तोभी में दूसरेकी–पराये मनुष्यकी मदद न लुंगा. दूसरेका कर्जा कौन करै ? आपही आपसें दौलत निकलेंगी तो लुंगा. ' उन दोनु पुरुषोंकों द्रव्यकी प्राप्ती नहीं हुइ. उसीतरह सर्वज्ञके वचनसें श्रद्धा नहीं करते हैं उनकों आत्मधर्मका ज्ञान नहीं होता है. आत्मधर्म है ऐसा नाम मात्र जानलिया; मगर उसके साधनकी श्रद्धा सर्वज्ञ-

के वचनसें विपरीत करकें निरुद्यमी हुवे. आत्माकी वातें करनी; लेकिन काम-क्रोध-विषय-कषाय नहीं छांडते है-किंतु विषय कषायकी वृद्धि करते हैं वैसे जीवकों धर्म कहांसें होगा ? कितनेक जीव अकेले व्यवहार मार्गकोंही सत्य मानते हैं. कितनेक जीव अकेले निश्चय मार्गकों सत्य जानते हैं; मगर प्रभुका मार्ग तो निश्चय और व्यवहार सहित है. उस्सें स्याद्वादमार्ग कहाजाता है. दूसरे धर्ममेंभी ऐसा स्याद्वाद धर्म नहीं है उसी-सेही मिथ्यात्व कहा है. उतनेपरभी जैनधर्ममें रहकर स्याद्वाद मार्गका ज्ञान न हुवा तो आत्माका कार्य कैसें होसकै ? वास्ते ज्यौं बनसकै त्यौं सर्वज्ञजीने दोनु (निश्चय व्यवहार) मार्ग कहे हैं उसी मुजव प्रवृत्ति कर-नेसें निकटमें आत्माकी शुद्ध प्रवृत्ति होवै. इसलिये अव्वलमें अशुभ प्र-वृत्ति छोडकर शुभ प्रवृत्ति करनी. पीछे ज्यौं ज्यौं आत्मा शुद्ध होवै त्यौं त्यौं शुभ क्रिया छूट जावे.

१४४ प्रश्नः—आत्माकी शुद्ध प्रवृत्ति किस तरह हो सकै ?

उत्तरः—सर्वज्ञजीने आत्माका स्वरूप वतलाया है वो जान सकै; मगर आत्माके अनंत गुण हैं वो सब छद्मस्थपनेसें नहीं जान सकता है. कितनेक स-र्वज्ञके मुख्य गुण सिद्धांतसें जान लेवै कि आत्मा अरुपी, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य, अव्यावाध, अगुरु लघु, अक्षय ये गुण आत्माके हैं. इन्सें विपरीत वो जडके गुण हैं. रूप, गंध, रस और स्पर्श ये चार मुख्य गुण जडके हैं. तीक्ष्ण बुद्धिवालेनें ये दोनु स्वरूप चेतन और जडके जान लिये, उससेंही विचार करता है कि-वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रहित सो चेतन है, ज्ञानशक्तिवान है उस्से समझे सो चेतन है, तब मै अभी मेरे गुणमें वर्त्तता हुं कि परगुणमें वर्त्तता हुं ? उ-सका शोच करै. प्रथम यह मेरा शरीर देखनेमें आता हैं उस्सें रूपी है. श्वासोश्वास लेता हुं उसका स्पर्श-उष्ण वा शीतल होता है तो वोभी रूपी है; शब्द बोलता हुं वोभी कानोंमें शब्दके पुद्गल स्पर्श करते हैं वोभी रूपी हैं. इस शरीरमें लोही मांस है वोभी रूपी है; वास्ते ये कुछ शरीर जड है इस लिये मेरा नहीं है. लडकेका स्वरूपभी दिखता है उस्सें

वोभी मेरा नहीं है. स्त्रीभी मेरी नहीं है, ये मकानभी मेरा नहीं है, वैठताहुं वोभी मै नहीं हुं, चलताहुं वोंभी मै नहीं हुं, आहारके पुद्गलभी रूपी हैं और मेरा गुण अरूपी है तो वोभी मेरे ग्रहण करने लायक क्यौं हो सकैं? भूख लगी कहताहुं वोभी मै नहीं, मुझकों खट्टा लगा, कषायला लगा, खारा–तीखा लगा, वोभी मेरे करने योग्य नहीं है. उसमे जो मोहवंत होताहुं–घमडाताहुं वो अज्ञानता है, मुझकों सुगंध, दुर्गंध आती है, मुझकों ये राग अच्छा मालूम होता है या वुरा मालूम होता है, ये स्पर्श सुकोमल या कठोर लगता है–ये सव पुद्गलकों होता है; तथापि मुझकों होता है अैसा मान लेता हुं वो मेरी अज्ञानता है. मेरा स्वरूप मैंने न जाना, उस्सें मै मानता हुं मुझकों मारता है वो मै नहीं हुं. मुझकों गालियें देता है अैसा मानता हुं सो मेरी अज्ञानता है, मेरा धन चला गया, मै धन पैदा करता हुं, मै कपडे पहनता हुं, मैने कपडे ओढे हैं, मैनें विछाये हैं, मै सोता हुं, मैं वैठा हुं, ये मै करता हुं, वो अज्ञान है. मै सुखी करता हुं, मै दुःखी करता हुं, मै धनवान हुं, मै ऋद्धिवंत हुं, मै परिवारवाला हुं, मेरा सब कहा मानते हैं, मै सवकों शिक्षा करता हुं, मै सवके ऊपर हुकम चलाता हुं, मै प्रधान हुं, मै राजा हुं. ऐसें जो जो गर्व करता हुं वो मेरी अज्ञानदशाके प्रभावसेंही करता हुं. मैने मकान चनवाये, मेरा मकान गिर गया, लेकिन वस्तुतामें वो वस्तुही मेरी नहीं है तोभी मेरी मानकर वैठा हुं, वो अज्ञानता है. मैंनें धन दिया, मैंनें धन लिया, मैनें शास्त्र वांचे, मैंनें पढाये, मैंनें चेले किये, मैंन व्रत दिये, मैंनें गृहस्थ किये, मैनें समझाये, ये सव विकल्प अज्ञानतासें करताहुं. अज्ञानताके योगसें अहंकारदशा प्रकट होनेसें होती है. परवस्तु मेरी नहीं. पर जो पुद्गल है उसकों मैं क्या करुं? और वो अहंकारके मदसें करकें जडकर्त्तव्यकों मेरा या मै शब्दसें वुलाता हुं; मगर वोलना वो मेरा धर्म नहीं है. रोग आनेसें मुझकों वीमारी आइ–दर्द हुआ कहता हुं; लेकिन अरूपी आत्माकों रोग होता है? नहीं नहीं कवी नहीं होता! जो रोग होता है वो तो इस उदारिक शरीरकों होता है. वो उदारिक शरीर मेरा

नहीं और मेरा माना लिया उस्सें मुझको रोग हुवा ऐसा मानता हुं सो अज्ञानता है. मुझकों जगतजन नमन करते हैं–सत्कार करते हैं. महत्त्वता करते हैं; मगर जो मेरा नाम है सो तो पुद्गलका है वो पुद्गल सो मै नहीं, तो नमन करते हैं, ऐसा मानना सो अज्ञानता है. अनेक प्रकारके आभूषण धारण कर मनमें मानता हुं कि मैंनें दागीने पहने हैं. वो पहनने-वाला तो शरीर है, मै तो अरुपी हुं वो ज्ञान नहीं हुवा उस्सें मै मान रहा हुं. स्त्रीओंके मुँह देखकर मानता हुं कि–अहा!. क्या सुंदर स्वरूप है? इसके संग कब सोबत करुं? कितनीक वक्त योग बनता है तो उस्में आनंदित होता हुं–ये मेरी कैसी मूढता है? जो शरीर जडपदार्थ है वो मै नहीं. फिर स्त्रीओंका शरीर वोभी जड है, इन दोनु जडपदार्थके संयो-गमें मेरे क्या आनंद करना? उसका कुछ शोच न करतें मेरी मूढता छा रही है वो कैसी धिःकारने लायक है? कोइभी परसुखमें लीन होना वो मेरा धर्म कैसें होवे? अहा! ऐसा स्वरूप जानता हुं तोभी अनादि-के अभ्याससें वो विषयादिकमेंसें मूर्छितपना नहीं जाता है. पूर्वसमयमें अनेक महापुरुष हो गये उन्होंनें अपने आत्माकों जडसें मुक्त करकें निज रूपमेंही आनंदितपना अंगीकार कियाथा. अहा! तेरेमें कर्मके आवरण कैसा जोर करते हैं कि वीतरागजीकी वानी स्वपर स्वरूपकी सुन ली तोभी उसकी असर होतीही नहीं? और अब तकभी आत्मा ढकाया जाय ऐसी प्रवृत्ति किये करता हुं; मगर अब तो मेरे अरूपी स्वरूपमें रहना वही उत्तम है. जैसें कोइ दीवाना मनुष्य चाहे वैसा बकवाद करै, चेष्टाऐं करै; मगर सब रीतिसें वो नहीं जानता है कि मुझकों क्या करना लाजिम है? उसी तरह मैभी कर्मके संयोगसें मूढ हो मेरे आत्मस्वरूपकों भूल कर जड पुद्गलकी प्रवृत्ति रात दिन दीवानेकी तरह कररहा हुं. संसारमें अनेक प्रकारके कर्त्तव्य होते हैं, वो सब मेरेही समझके किये करताहुं और जडके कर्त्तव्य करकें अहंकारमें मशगुल बन हिरताफिरताहुं–अहा! क्या अज्ञानता है? अनेक जीवोंकों अनेक प्रकारके दुःख देताहुं. धिःक्कार है अज्ञान दशाकों!! ये मै जड

संगतिसें क्या कृत्य करताहुं ? स्त्रीओंके महा दुर्गंधमय स्थानक जिसकी विभाविक जीवभी दुर्गंछा करते हैं ऐसे स्थानकोंको जीव चुंवनादि अनेक चेष्टा करता है ! ये सव कृत्य आत्माके स्वरूपसें भिन्न हैं. व्यापारादिकमें लुचाइ–ठगाइ–चोरी आदि अनेक प्रकारके कृत्य जडकी सोवतसें करताहुं ऐसी जड प्रवृत्ति अनादि कालकी पड रही है, वो मेरे स्वरूपसें भिन्नपना है. और ये नजरके आगे वडी वडी रौनकदार हवेलीऐं देखताहुं–नइ नइ रचनाकी उसमें कारीगिरी देखकर आनंदित होताहुं वो मेरे करने लायक है ? नहीं! नहीं ! ये सव जडसंगतका प्रभाव है. मेरे मकानमै क्या उमदा रंग कियागया है ? कैसी सुंदर विछायत या विछोंने विछाये हैं ? ऐसी वस्तु देखकर मुझकों जो आनंद होता है वो कैसा आश्चर्य है ! जो वस्तु जड सो मेरा धर्म नहीं; विनाशी है वोभी नहीं शोचताहुं, जडकी संगतमेंभी वो चीज स्थिर रहनेकी नहीं, तुं उसकों छोडकर जायगा या तो वो तुझकों छोडकर चली जायगी उसकाभी तुझे ज्ञान नहीं होता, और आसक्तता होता है–निज स्वरूपसें भूला पडता है. अव मैंनें मेरे आत्माका स्वरूप जानलिया; वास्ते अव तो उससें मै न्याराहुं. ऐसा चोकस होता है तोभी ज्ञानीके कथन मुजव अवतक स्पष्ट ज्ञान नहीं हुवा है–उसलिये अद्यापि पर्यंत उसपरसें विचार वंध नहीं पडता है; वास्ते अव मेरे क्या करना, सो चेतन ! तुं विचार कर. वीतरागदेवका उपदेश सुना, मेरे आत्माका स्वरूप जानालिया, जडका स्वरूपभी जाना; तोभी जडसें चित्त हठता नहीं; उसके वास्ते भगवंतजीने उपाय वताये हैं वो मेरे करना योग्य है. जैसें ये सव विचार होते हैं, वैसे वोभी विचार होने चाहियें यानी आत्माके स्वाभाविक धर्ममें निश्चयनयसें स्वरूप प्रकट हुवा नहीं वहांतक अनुभवसें विचार करना योग्य लगता है. और आत्माका हरहमेशां विचार करना–रोज शास्त्रकाभी अभ्यास करना. जैसें कूपके उपर पत्थर या लकडे गडे–जडे हुवे होते हैं उसके साथ रस्सीका निरंतर घसारा लगनेसें उसमें वडे वडे खड्डे पडजाते हैं, उसी मुवाफिक निरंतर अभ्याससें कर्मकोंभी घसारा लगेगा तो आत्मा निर्मल होवेगा. वास्ते

अहर्निश और तमाम उपाधियोंकों छोडकर शास्त्रका अभ्यास करुं. मगर जहांतक संसारकी उपाधि है वहांतक एक चित्तसें शास्त्रका अभ्यास ठीक ठीक नहीं होसकता. वास्ते संसारकों छोडकर संयम लेलुं तो संसारी कुटुंबकी उपाधि, व्यापारकी उपाधि छूटजाय तो पीछे निर्विघ्नपनेसें ज्ञानाभ्यास होसके लेकिन इत्ती सारी मेरी विभावदशा छूटगइ नहीं कि जिस्सें मै साधुपना पालन करसकुं. तब मेरा जो श्रावकधर्म जिस तरह बारह व्रतरूप कहा है उसतरह अंगीकार करुं; उससें जितनी श्रावककी मर्यादा करुंगा उतनी उतनी निरुपाधिकता होवेंगी. जैसें कि श्रावक सामायिक करुंगा उतनी देर शास्त्राध्ययन करनेमें मेरा संसारी काम हरकत न करेगा. सारे दिनका या अहे रात्रिका पौषध करूंगा तो सब वक्त ज्ञानाभ्यास बन सकेगा. फिर जितनी जितनी चीजें व्रत लेकर त्याग करुंगा उन संबंधीकी उपाधियें मेरी हठजावेंगी. और जितनी जितनी जड प्रवृत्ति कमती होवैगी उतनी उतनी निरुपाधिकताका सुख होवैगा. अनेक प्रकारकी विषयवांच्छना होती है वे सब-इच्छा तो रुकती नहीं; मगर जितनी जितनी रुकीजाय उतनी रोककर स्त्रीके विषय, खानपानके विषय, पहननेके विषय और सुगंधीके विषय रात दिन मुझकों हो रहे है वो सब छोडदुं ऐसी विशुद्धि नहीं मालूम होती है, तो जितने जितने छूटजावै उतने छोडकरकें व्रत धारण करुं. ऐसा शोच करकें श्रावकके व्रत लेवै, प्रभुभक्ति करे, प्रभुभक्ति करनेकों जाय उतने वक्ततक संसारके कार्य छूट जाय. प्रभुके स्हामने बैठकर भावना चिंतन करै. (भावनाका स्वरूप इस पुस्तकमें आगे आगया है उस मुजब करै.) उन भावनासें बहुत विशुद्धि होगी! ऐसा शोच करकें भाव. यहांपर कितनेक मनुष्योंके दिलमें आवे कि संसारपरसें राग कमती किया और प्रभुजीपर राग बढाया-विषयका राग छोड व्रतपर राग बढाया तो वो आत्माकों बंधन है-पीछा उपाधिमें पडता है. फिर व्रतका अहंकार होवै, दूसरे नही करते हैं उन्होंकी निंदा होवै-वगैरः बहुतसें कारणोंसें आत्माकी मलीनता होती है. उस विषयमें समझना कि-संसारपरसें राग उतारकर प्रभुजीपर राग कायम किया, वो राग प्रभुपर न कायम करै तो संसारका राग कायम रहजाय, तो बंधन

न छूटै-घरमें बैठाहुवा जितनी विभाविक वर्त्तणुक करेगा उतनी वर्त्तना कुछ जिनमंदिरमें जाकर करनेका नहीं-प्रभुजीके गुण वगैरः गायगा, तो उससें विभावमेंसें चित्त हठानेका साधन हाथ रहेगा. जहांतक पूर्ण विशुद्धि न हुइ है वहांतक जीवकों चडनेका मार्ग यही है. इसलिये वीतरागजीने बताया है, तोभी ऐसी अपनी विकल्पनासें कल्पे कि येभी रागबंधन हैं सो कहनेरूप है. वस्तुतासें तो विभावपरसें राग दूर हुवा नहीं, उससें ऐसा बतलाकर प्रभुगुण गाने नहीं. जिनकों आत्माका कार्य करना है उन्हकों तो जितनी विशुद्धि होवै उस मुजब करनेका प्रभुजीने बतलाया है वैसेंही करेगा.

पेस्तर बहुतसें दृष्टांत दियेगये हैं-जैसें कि कोइ मनुष्यने विष खाया है. अब उस मनुष्यकों खबर हुइ कि विष मेरे खानेमें आया है वो मिटनेके वास्ते कुछ औषध सेवन करुं. पीछे विष दूर होनेके औषध खानेसें निर्विष हुवा. एक मनुष्य कहता है कि औषध तो कटु है ये कुछ खानेका पदार्थ नहीं कि उसे मै खाउं. तो उस मनुष्यका विष न उतरेगा. वैसेंही प्रभुभक्ति वगैरः है सो विषहर औषधरुप हैं. विष उतारडाले बाद औषधका काम नहीं, रागद्वेष रहित होवै उसकों शुभ रागकी जरुरतभी नहीं; मगर संसारके राग नहि उतरे हैं और शुभ रागकों बंधनरूप माने यह तो जैसें विषवाले कटु औषध जानकर उसका उपयोग न करै जिस्सें निर्विष न होवै, वैसें अशुभ राग छोडकर शुभ राग नहीं आदरता है उसकों आत्माकी विशुद्धि होनेकी नहीं. फिर अहंकारादिक विषयमें कहना है सो अहंकार कुछ शुभ करणीसें नहीं आते हैं; मगर उसकी परिणती अवतक जड भावमेंसें हठगइ नहीं वो करवाते हैं. अभी ज्ञान नहीं हुवा उससें वो खुद अहंकार करता है कि हम प्रभुजीकी भक्ति करते हैं. व्रत करते हैं. हजारह रुपै खर्च करते हैं-बडे बडे शासनके काम करते है. हमारे जैसा कौन है ? ये दशाऐं होती है वो महा अज्ञान दशाका जोर है उससें उन विषयमें तो जिन्होंकी समझमें आया है कि-अहा! मेरे आत्माकी स्वभावदशा तो जानना देखना है. जड प्रवृत्ति कुछभी करनी वो मेरा

आत्मधर्म नहीं. फिर यह शुभ करणीभी मात्र अभी जड भावपरसें चित्त नहीं हठता है वो हठानेके वास्ते करनेकी है–वस्तुतासें मेरा धर्म नहीं है. जिनकों ऐसी बुद्धि प्राप्त हुइ है उनकों क्यौं अहंकार आयगा ? और युं करते थोडी विशुद्धि होगी उससें मनमां आयगा तो उसकोंभी परवृत्ति जानकर उस अहंकारकी निंदा करेगा. उससें पीछे हठनेकी भावना भावेगा. अहा ! यह मेरी दशा क्या जड संगतीसें होती है ? जगत्में यह जड शरीरकों मान मिलता है तो वो शरीर में नहीं. तो वो मानसें मेरे क्या ? ऐसी भावना आत्मार्थी भावता है. रात दिन कषायसें पीछे हठनेकीही दशा जिनकी बनी है और जितना जितना पीछा नहीं फिरा जाता वोभी आत्माकों प्रतिकूल है ऐसा भाव रहे हैं. पुनः जडकी दशा दूर करनेकेलिये व्रत नियम धारण करते हैं. वो वस्तुओंका जहांतक खाने पीनेका अभ्यास है वहांतक वो खानेकी वस्तुऐं न मीलेंगी, या प्रतिकूल मिलेंगी तो मुझकों विकल्प आयगा. वास्ते जो जो वस्तु त्याग करुंगा उसका अभ्यास छूटजानेसें वो वस्तुपर चित्त न जायगा, तो उसका विकल्पभी नहीं होवेंगा. ऐसा समझकर आहार–पानी–वस्त्र–आभूषण वगैरः का नियम करकें बाकीकों वापरनेकेलिये त्याग करता है. व्यापारभी बहुत पापके हैं वो पंदरह कर्मादान वगैरःका त्याग करता है. दूसरेभी व्यापार विकल्पके कारण हैं वास्ते अपना निर्वाह होवै उतना व्यापार रखकर दूसरे व्यापारका त्याग करता है. स्त्रीयादिकके विषयकीभी मर्यादा कर बाकीकी त्यागकें–यह प्रवृत्ति जड भावकी कमती होयगी तभीही मेरा आत्मा स्थिर होयेगा. जहांतक संसारके काम करनेके हैं, वहांतक वो वो काम धर्मध्यान करते वक्त याद आयगा और आत्माकी परिणती बिगाडेंगे; वास्ते जो जो कारण संसारके कमती होनेंगे उतने उतने विकल्प कमती होवेंगे. ध्यानमेंभी समाधी रहेगी. जैसें कि जो मनुष्य राजा नहीं है तो उसकों लश्कर वगैरःका विचार चित्तमें नहीं आयगा, क्यौंकि उस काममें उसकी प्रवृत्ति नहीं है; वास्ते जितनी जितनी प्रवृत्ति शुरु है उतनी उतनी विकल्पता आवेगी. ऐसा समझकर खाने–पीने–बैठने–सोने–फिरने

तमासे देखने व्यापार करने और स्त्रीयोंके विषय संबंधी जितने जितने कारण छुटजाय वो छोड दे कि जिस्सें तेरा आत्मा समाधीमें रहै. न छूटे उसमें अपने आपकी अज्ञानता विचारता है किं–अबतक मेरा मन जडसें दूर नहीं हठता है; वास्ते सत्पुरुषकी सेवा करुं, और संसारसें दिल हठजाय वैसे शास्त्रोंका अभ्यास (सुनने वांचनेका) करुं कि कोइ वक्त वो उपदेशरुप अमृतसें करकें मेरा चित्त सुंदर होजाय, और विभावसें चित्त हठजाय–स्वभाव सन्मुख होवै. ऐसा चिंतन कर तनमन धनसें ज्ञानादिकका अभ्यास करता है, वो ज्ञानसाधनमें कोइ विघ्न न आवै उस वास्ते सामायिक पौषध देशावगाशिक करै. फिर विशेष सामर्थ्य जाग्रत होवै तो ध्यान करुं. ऐसा शोच कर आर्त्त रौद्र ध्यानका त्याग करकें धर्मध्यान करै कि जिस्से आत्मा निर्मल होवै, और निजस्वरूप सन्मुख हो जाउं. ऐसा चिंतन कर ध्यानादिकका उद्यम परवस्तुसें हठनेके वास्ते करै. ऐसें अनेक प्रकारके उद्यम आत्मार्थी कर रहे हैं. हरएक प्रकारसें आत्माकी प्रवृत्ति विभावसें छूट जावै उस सन्मुख दृष्टि बन रही है. संसारका स्वरूप विचारनेसें, जैसें कोइ पुरुष घरमें होवै और चारों ओर आग लगे तो उस घरमेंसें निकलनेका जैसा उद्यमवंत होवै, वैसें आत्मार्थीकों संसारदावानल जैसा लगता है. जो जडप्रवृत्ति करता है उसमें आनंदता नहीं होती है. एक विटंबना समझकर करता हैं. वो दशाभी आत्मा निर्मल होनेकी है. यह संसारमें सब चीज हैं, उसमें स्त्रीयादिकके काम सबसें जियादे दुःखदायक हैं; सबब कि कामदेव जिसके वश्य हो गया उसकों पीछे दूसरी उपाधि छोड देनी कुछ मुश्कील नहीं पडती और जिसकों काम न छूटे उनकों कुछ उपाधि नहीं छूट सकती हैं. कामदेवके लिये स्त्री चाहियें, स्त्रीके लिये वस्त्राभूषण चाहियें, वस्त्राभूषणके लियै द्रव्य चाहियें, द्रव्यके लिये व्यापार करना चाहियें, व्यापारके लिये उलटासुलटा करना–ठगाइ–अन्याय–अनेक आरंभ करना चाहियें, स्त्री होवै तो लडका लडकी होवै और वै होवै तो उन्होंकी सादी करवानी चाहियें. उन्होंके लिये न्यात जातसें हिलमिलके चलना चाहियें, उन्होंकी दाक्षिण्यता रखनी

चाहियें, अैसा सब कामदेवके तावे होनेसें होता है. कामवश न होवै यहांतक अनेक प्रकारकी उपाधि रहती है, और आत्मा शुद्ध होनेमें विकल्प उस संबंधी आ पडते हैं. वास्ते अनेक प्रकारके पूर्व समयमें महापुरुषोंने शास्त्र रचे हैं उसका अभ्यास करकें काम कब्जे हो जाय वैसा करना. कामकों जीतनेसें बहुतही विकल्पके कारण छूट जावेंगे उसी वास्ते पूर्व पुरुषोनें अव्वलमें कामकों जीत लियाथा. अहा! स्त्रीका दुर्गंधमय शरीर, वो जगाभी महा दुर्गंधमय उस्में क्या मग्न होना? कितनेक जीव चौथा व्रत धारण करते हैं; मगर धनकी तृष्णासें दूर नहीं हो रहते हैं वो लोभका महात्म्य है. लेकिन जीव विचार करै कि अनेक प्रकारके पाप करकें द्रव्य मिलाया वो क्या तुं साथ ले जायगा? नहीं! नहीं! वो तो कुछ बननेकाही नहीं. फक्त जगतमें कहा जायगा कि, मैं करोडपति-लक्षपति हुं. इस सिवा बहुत धनसें और कुछ लाभ नहीं है, तो उस द्रव्य परवस्तुमें क्या मूर्छित बन जाता है? वो योगसें जो जो कर्म बांधेगा उनके दुःख तेरेही भुक्तने पडेंगे. धनका सुख लडकोंकों या दूसरोंकों दे जायगा, वे धनका उपयोग कर मौज लेवेंगे. फिर जो लडके वगैरः मिले है वो सब क्या संबधसें मिले हैं? सो तुं विचार कर. कितनीक वक्त स्नेहसें मिलते हैं, कितनीक वक्त वैरभावसें मिलते हैं, और कितनीक वक्त पिछले भवका लहेना वसूल करनेकों आ मिलते हैं-अैसें अनेक संबंधसें मिलते हैं वो तुं नहीं जानता है. फकत मेरे फरजंद जानकर मूर्छित हो कर्म बांधता है और आत्माकों मलीन करता है, वास्ते आत्मा शुद्ध करना हो तो पुत्र धन वगैरःकी ममता कमती कर. जो जो बनता है वो पूर्व कर्मबंधानुसारसें बनता है, उसमें राजी क्या होना? और दिलगीरभी क्या होना? फक्त जो जो बनै उसमें जान लेनेका आत्माका स्वभाव है वो समझ लैना. मगर उसमें खुशी दिलगीर होना वो आत्म-धर्मसें बहार है. वास्ते आत्माका धर्म समझ लिया, अब क्या जडके काममें राजी-दिलगीर होना? उस्के विकल्प करना? नहीं, कुछ नहीं करना! आपके सहजसुखमें मग्न होना. ऐसा चिंतन करनेसें विशेष

विशुद्धि होती है, नो संसारकों छांडकर संयम लेकें आत्माकों सुखप्राप्ति होवै वैसें विचरते हैं. शरीर है सो आहारके आधारसें रहता है, तौभी आहार न मिलै और क्षुधा लगी तो विचारै कि अहा! आत्मा! तेरा अणआहारी धर्म है, आहार करना वो जडका धर्म है; वास्ते उसमें तेरे विकल्प करना वो केवल कर्मबंधका कारण है. उससें आत्मा मलीन होता है ऐसा शोचकर आप समभावमें रहै. यों करते आहार मिल गया-वो स्वादिष्ट अगर बेस्वादवाला मिला तो विचार करै कि जो जो पुद्गल मिले हैं उसमें वैसा स्वाद है; मगर वो पुद्गल ग्रहण करना वो तेरा धर्मही नहीं, तो अच्छे हैं या बुरे हैं ऐसा विचार करना सोही बेमुनासिब है. शरीरमें रहा है और अभी इतनी विशुद्धि नहीं है कि आहार न करुं, शरीरमें पीडा होवै और मेरा आत्मा समभावमें रह सकै नहीं उस लिये आहारं ग्रहण करना है; लेकिन विकल्प करना वो मेरा धर्म नहीं. ऐसा शोचकर अपनी समभावदशामें रहेवै. तृषा लगै तोभी इसी मुजब तृषाका विकल्पभी न करै. शीतकालमें ठंडी बहुत ही होनेसें शरीरमें शीतकी वेदना होती है वो वेदनामें शोचै कि-ठंड-जाडा पुद्गलकों लगै है वो समझनेका मेरा धर्म है-स्वभाव है सो मैंने जान लिया, उसमें मेरेकों जाडा लगता है ऐसा शोचुं वो अज्ञानता है. गर्मीकी मोसममें धूपके पुद्-गल आनेका स्वभाव है उस मुजब पुद्गलकों स्पर्श करते हैं उसमें मेरे क्या! मै तो अरुपी हुं जिस्से कोइ पुद्गल स्पर्शते नहीं और धूप लग-ताही नहीं. घाम होनेसें हवा मिलनेकी इच्छा होती है वो मेरी अज्ञानता है. जडमेंसें मग्नता नही निकल गइ है उस्से हवा खानेका दिल होता है-उसमें नये नये कर्म बंधाकर मेरा आत्मा मलीन होवंगा ऐसा चिंतन कर हवा खानेकी इच्छा रोककर घामका विकल्प छोड अपने आत्माके आनंदमें आनंदित रहवै; लेकिन चित्तमें उपाधि नहीं चिंतते हैं. फिर डांस-मच्छर काटै उस वक्तभी आपका समभाव नहीं छोडते हैं, और उनकों उडानेके वास्ते शोचभी नहीं करते. वो काटते हैं सो मुजकों नहीं काटते हैं मगर पुद्गलकों काटते हैं उसमें मेरे क्या है? कोइभी मनुष्य

दूसरेका घर जलता होवे उसमें आप फिकर नहीं करता है, वीसी तरह यह जडशरीरकों काटते हैं उसमें तुमकों विकल्प करनेका कुछ मतलबही नहीं. तुं तेरे आनंदमें रहे–अेसा शोचते हैं. फिर कपडे फटे हुवे हैं या मैले हैं, जाडेकी जरुरत हो और महीन–पतले मिले हो, अगर पतलेकी जरुरतमें बोजदार मिले हो अैसा वस्त्र संबंधी कारण मिलनेसें अपने समभावसें दूर हठते नहीं और शोचें कि–वस्त्र पुद्गलकों पहननेके हैं. आत्माकों वस्त्र पहनने नहीं हैं, तो उसमें में किस बाबतका राग द्वेष करुं ? जैसा कर्म पूर्व समयमें बांधा है उसके उदय माफक मिलते हैं उसमें अच्छा क्या ? और बुरा क्या ? आत्माकों तो परिधान करनेही नहीं है तो आत्मा किसलिये विकल्प करै ? ऐसे भावसें समभावमें वर्त्तते हैं. फिर शरीरमें पीडा होनेसें किसी प्रकारकी अरति उत्पन्न होनेके कारण मिलजाय; मगर जिसने स्व परका स्वरूप जानलिया है वै पुरुष अरति चिंतवतेही नहीं; सबब कि स्वभाव बहारके काम बने उसमें आत्माकों अरति करनेकी मतलब नहीं उसलिये अरति नहीं करते हैं. फिर खुबसूरत अलंकारित औरत कभी इंद्रकी इंद्राणी आकर मुनीके आगे हावभाव करती है–विषयकी चेष्टा करती है–नेत्रकटाक्ष चलाती है–हास्यविनोदी शब्दप्रयोग करती है, वो सुनकर मुनि शोचते हैं कि अहा ! जीव पुद्गलके रंगमें क्या रंजित होगया है ! पुद्गलकों सुभिता करकें आनंदित होता है, पुद्गलकी चेष्टा करकें खुश होता है ! क्या जीवकों अज्ञान पीडता है ! मेरे तो इसके स्हामने देखनेकीभी दरकार नहीं है; क्यौं कि अनादि कालका मभी पुद्गलका रंगी था उससें औरतोंका रागी था. मैभी अज्ञानतासें इन स्त्रीकी तरह चेष्टा करताथा, वो चेष्टा शायद याद न आ जाय ! और पीछी इनके जैसी प्रवृत्ति होजाय ! वास्ते मेरे तो कामिनिके साथ बोलनाही नहीं–इसके अंगोपांग देखनेभी नहीं, मै इसकों देखुं तो मेरे आत्माका आत्मतत्त्व भूलजाउं वास्ते नहीं देखना है. इसलिये ज्ञानीनेभी जेसें सूर्य सन्मुख दृष्टि पडगइ हो तो फौरन पीछी हठालेते है, वीसी तरह दृष्टि हठालेनेका कहा है, वोभी सत्य है. इस स्त्रीकी संगतिसें मैनेभी

पूर्व समयमें वहुतसी अज्ञानता की है; वास्ते इसके कर्मकी विचित्रता मुजब करनी है उसमें मेरे क्या ? ऐसा शोचकर स्त्रीपरिसह जीतता है. ऐसें स्त्रीयादिकके रागबंधन होवें उसवास्तेही मुनीविहार करते हैं. एक जगहपर नहीं ठहरते. विहार करनेमें चलना पडे उसका थक मार्गमें लगे, पांव दूखने लगे, तो उसवक्तभी मुनी शोचे कि–अहा आत्मा ! थक तो पुद्गलकों लगता है. दूखता है वोभी पुद्गलकों दुःख होता है, तुं किस-लिये विकल्प करता है ? ऐसा शोच अपने आत्मस्वभावमेंही मग्न रहते हैं मगर अपने आत्मभावसें चित्त चलायमान नहीं करते हैं. और उस संबंधी कुछभी विकल्प नहीं करते हैं. वो प्रभुजीके वचनसें और आपके अनुभवसें अपने आत्मधर्मकी श्रद्धा की है उसके फल हैं. हरकोइ मकान निरवद्यतासें मिलता है उस मकानमें रहते हैं. वो मकान यदि प्रतिकूल हो या बहुत सुंदर होनेसें अनुकूल हो तोभी उन संबंधी राग द्वेष नहीं धरते है. प्रतिकूल करतें अनुकूल परिसह जीतना वडा कठीन है. लेकिन आत्मज्ञानी पुरुष तो चाहे वैसा हो; मगर निज स्वरुपसें दूर नही हठते हैं उससें विकल्प आताही नहीं. बिछानेका संथारा अनुकूल या प्रतिकूल मिलजाय, उसमेंभी कुछ चिंतन नहीं करते हैं, और आत्माका उदासी भाव होगया है सो अनुकूल प्रतिकूलमें चित्त जाताही नहीं, उस सबबसें कोइभी विचार करना पडताही नहीं. चाहे युं होवे मगर आप अपनेही स्वरूपमें रहते हैं, और जड प्रकृतिकी और लक्ष देतही नहीं. समझ लेने-का धर्म है सो उसका स्वरूप जानलिया जाता है. आक्रोप परिसह उपजे सो कोइ आकर कटु वचन–मर्मवचन–द्वेषमय वचन–यद्वातद्वा बोलै या मकार चकार बोलै; तोभी बिलकुल निजस्वरूपसें चलित नहीं होते हैं. आप जिस आनंदमें वर्त्तते हैं, उसी आनंदमें वर्त्तते कोइ आकर वध करै तोभी समभाव नहीं छोडते है, जैसें कि मेतार्य मुनिवरकों चमडेकी रस्सी लपेटकर सिर चीर दिया और प्राण गये. गजसुकुमालजीकों सोमिल सस-रेने अग्निके अंगारेकों सिरपर मिट्टीकी पाल बांधकर भरदिये बाद सिंचन किये तोभी बिलकुल अपने आत्मभावकों चलायमान न किया;

मगर ध्यानधारा वढाकरकें केवलज्ञान पाकर सिद्धिपद पाये. पांचसो मु-
नियोंकों पापी पालकने घाणीमें घालकर पीलवा दिये तोभी वै समभावमें
रहै उससें केवलज्ञान पाये. इसतरह जो कोइ मारकूट करै उसकी दया
शोचते हैं कि–यह विचारा अज्ञानतासें कर्मबंधन करता है; लेकिन आ-
पकों दुःख होता है उस तर्फ लक्ष नहीं देता है. इसतरह मुनीमहाराज
समभावमें रहवै. मारनेवालेपर किंचित्‌भी द्वेषभाव नहीं ल्याते है. भगवान्
श्री वीराधीवीर महावीरस्वामीजीकों संगमादेवने वहुतही कठीन और वहुत
उपसर्ग किये, तोभी भगवंतजी चलित न हुवे. उरीतरह आत्मज्ञानीकों
अध्यात्मज्ञान प्रकट हुवा है उसके प्रभावसें चाहेसो उपसर्ग आता है वो
समभावसें सहन करता है. लेकिन रहामनेवालेकों स्वप्नमेंभी दुःख देनेका
शोचते नहीं. आहार विगर रहा जाता नहीं उस्सें शरीरकों आधार देनेके-
लिये आहारपानी लेनेकों जाते हैं उसमें ऐसा चिंतन करते नहीं कि में
गृहस्थाश्रममें चक्रवर्ती–वासुदेव–मांडलिकराजा या शाहूकार था सो मै
याचना करनेकों क्यौं जाउं ? फक्त उतनाही शोचै कि यह शरीर आहा-
रके आधारसें चलता है, उससें इसकों आहार न दुंगा और शरीर वीमार
पडजायगा तो मेरा समभाव कायम नहीं रहेगा; वास्ते यह शरीरकों आ-
हार दैनाही है उसवास्ते तीर्थंकर महाराजजीने याचना करनेकी मर्यादा
वतलाइ है वो करनी उसमें मै वडा राजाहुं ये विचार कुछ करनेका नहीं
क्यौं कि राजा और रंकपना तो पुद्‌गलकों है. आत्माकों तो राजा और
रंकपना कुछभी हैही नहीं-- आपके आनंदमय है.. पुद्‌गलकों आहार पो-
षनेके लिये पुद्‌गल फिरते हैं याचना करते है उसमें मेरे कुछ विकल्प क-
रनेकी आवश्यकता नही है. पूर्वकर्मके योगसें जो जो क्रिया करनेकी है
वो होती है. याचना करनेसेंभी शायद आहार न मिला वो अलाभ प-
रिसह उत्पन्न हुवा तोभी अलाभसें राग द्वेष नहीं करते हैं और शोचते
हैं कि–आहार संबंधी पूर्वसमय अंतराय वांधा है वो उदय आया है
उस्सें आहार नहीं मिलता है; वास्ते उसमें कुछ विकल्प करनेका कारण
नहीं. ऐसा विचारकें अपने स्वभावमें रहते हैं. फिर पूर्वकर्मके प्रभावसें

शरीरमें रोग उत्पन्न होवै तो वोभी अपनी आत्मदशामें रहकर भुक्तता है; लेकिन रोग संबंधी कुछभी चिंतन नहीं करता. जानता है कि रोगकी पीडा पैदा हुइ है उसमें मैं विकल्प करुंगा तो पीछे ऐसे कर्म बंधेंगे, तो आत्माकों कर्मसे मुक्त करनेकों प्रवर्त्तताहुं उसके बदलेमें कर्मके बंधनमें पड जाउंगा ऐसा उपयोग बनगया है, उसीसेंही अपने समभावकी धारा-वर्त्तन कियेकरती है और जो होता है वो जानलेता है; मगर उसमें लीन नहीं होता. कदापि पाँवमें घांस वगैरःका तृण-कंकर चुभता है; क्यौं कि मुनीकों जूते पहननेकों नहीं उससें पॉवमें चुभें. फिर आप सुकोमल भाग्यशाली होवें, तोभी किंचित् उसमें खेद नहीं धारण करते हैं. मात्र कर्म स्वरूप जानलिया है, उससें उन संबंधीका विचारही चित्तमें नहीं आता. कदाचित् थोडी विशुद्धिवालेकों विचार आवे तो फिर विचार करता है कि पांवकों चुभता है. आत्मा अरुपीकों कुछ नहीं चुभता है; वास्ते किस लिये मैं विकल्प करुं? युं करकें समभावमें रहता है. शरीरमें मैल वगैरः होता है: तोभी शरीरकी विभूषा वा सुश्रुषा कुछभी न करनी, उस्सें शरीर पर मैल होवें तोभी शरीर सो मैं नहीं. ये भाव होनेसें विकल्प नहीं होता. सत्कारपरिसह सो बडे बडे राजालोग आकर बहुत मान करते हैं. अहा महात्मा! आपके जैसें सत्पुरुष इस दुनियांमें नहीं. पंचेंद्रिय वश करली है, बिलकुलभी शरीरकी ममता नहीं. केवल आत्मभाव आपने सच्चा जाना है, कोइभी वक्त आप आत्मभाव नहीं चूकतेहो. आपके जैसे ज्ञानी इस जगत्में नहीं, आपके समान उपकारीभी कोइ नहीं. आपने जो मुझकों धर्म बतलाया है, और जो उपकार हुवा है वोभी मेरे शिरोधार्य हैं. आप साहबजीकी जितनी भक्ति करुं उतनी कमती है. ऐसीं अनेक प्रकारकी स्तुति करै; मगर किंचित्भी अहंकार नहीं करते हैं. मनमें शोचते हैं कि-अभितकमें पुद्गल दशामेंसें तो दूर हुवा नहीं, ये लोग तो इतनी बडाइ बतलाते हैं तो मुझकोंभी जोजो पुद्गल दशामें उपयोग जाते हैं वो पीछे हठाने चाहियें. ये ज्ञानदशाके महान् मान्य करते हैं वैसी ज्ञानदशा अबतक हुइ नहीं; वास्ते जो जो ज्ञान संबंधी खामी है वो प्रकट

करनेका उद्यम करना चाहिये. अहा ! सर्वज्ञके ज्ञान मुजब अवतक तो मेरे में ज्ञानकी बहुत न्यूनता है. ऐसे विचारसें अहंकार नहीं आता है और आपके समभावमें कायम रहता है. ज्ञानपरिसह यानी दूसरोंसें आपमें बहुत बोध हुवा होवै उससें दिलमें आवै कि मै ज्ञानी हुं वैसा कोइ जगतमें ज्ञानवान नहीं है. ऐसे विचार करीकें कर्म बांधकर आत्माकों मलीन करता है; मगर ये कौन करता है ? जिसनें अपना आत्मधर्म जाना नहीं है और बहारसें ज्ञान मिलाया है वैसे जीवकों ज्ञानीपनेका अहंकार आता है और वै जीव आगामिक भवमें अज्ञानी होवेंगे. मगर ज्ञानीजीव तो ऐसा शोचते हैं कि-मेरे आत्माका स्वभाव तो केवलज्ञानमय है, उसमैसें तो अवतक कुछ ज्ञान प्रकट हुवाही नहीं है. फिर श्रुतज्ञानीभी पूर्वकालमें चौदह पूर्वधर हुवे हैं, उसकी अपेक्षासें मुझकों क्या ज्ञान हुवा है कि मै अहंकार करुं ? ऐसें आपकी अपूर्णता चिंतन कर ज्ञानका अहंकार नहीं करते हैं-आप आपकी दशामेंही निमग्न रहते हैं.

अब अज्ञानपरिसह सो आप अपने आत्मभावकों गुरु मुखसें जानलिया है. पुद्गुलभावकों जानता है उससें स्वपर भेदका ज्ञान हुवा है, और जैसें गुरुमहाराज करते हैं वैसें आत्मतत्वकी श्रद्धा करकें अपनी आत्मदशामें प्रवर्त्तता है; मगर तर्कवितर्कका बोध नहीं. षट्शास्त्रका ज्ञान नहीं उस्सें किसीके साथ वाद करनेकी शक्ति नहीं, दूसरेकों बोध करनेकी शक्ति नहीं, उसलिये दूसरे जीव निंदा करते हैं. अहा मूढ ! अज्ञानी ! शिर मुंडवाया मगर कुछ ज्ञान तो है नहीं. ऐसे कठोर वचन कहते हैं, तव समभावी मुनी थोडा पढे हैं; लेकिन आप अपना विचार कर ऐसा शोचते हैं कि-ये जो कहते हैं सो सत्य है, मेरेमें ज्ञान नहीं और पिछले भवके आवरण हैं उससें मुझे बोध नहीं होता है तब ये कहते हैं, ये तो मेरे सद्गुरु हैं तो मै इसमें खेद किसलिये करुं ? फिर दूसरीतरह शास्त्र पढता है; मगर आवरणके लियेसें मुखपाठ नहीं होता है तब उसकों आत्मार्थिपना प्रकट नहि होता है. वो क्या शोचता है कि मुझकों याद नहि होता तो फिर पढनेका वक्त निकालकें क्या करुं ? ऐसा शोच कर

ज्ञानाभ्यास बंध करता है उसकों ज्ञानावरणी कर्म बंधातेजाते है. मासतुस मुनि सरिखे आत्मार्थी है वे तो पढना याद नहीं होता तोभी उद्यम नहीं छोडते है और उद्यम नहीं छोडनेसें कदापि ज्ञान नहीं आता, तोभी समय समयसें ज्ञानावरणी कर्म क्षय होतेजाते है; वास्ते आत्मार्थी पुरुष तो ज्ञान नहीं आता तोभी ज्ञानका अभ्यास नहीं छोडते और हमेशां ज्ञानका उद्यम-मेंही प्रवर्त्तते हैं. ऐसे पुरुष अज्ञानका परिसह जीतते है.

सम्यक्त्वपरिसह सो यह चौदह राजलोकके अंदर छः द्रव्य रहे हैं उसमें पांच द्रव्य अरुपी और पुद्गल रुपी है; तोभी पुद्गल परमाणु बहुतही छोटा है. दृष्टिमें नहीं आता. अैसे बहुतसे परमाणु इकट्ठे हो बादरस्कंध होता है, वो देखनेमें आता है. मगर सूक्ष्मस्कंध देखनेमें नहीं आते. अरुपी पदार्थभी देखनेमें नहीं आते. वो पदार्थोंका वर्णन सर्वज्ञ कर गये हैं वै सर्वज्ञ तो रूपी अरुपी सर्व पदार्थ जानते हैं. उनकों जानना कुछ मुश्केल नहीं. सहजसें जानलेकरकें वो प्रकाशित किये हैं. अब ऐसे षट् द्रव्यके भावोंका वर्णन शास्त्रमें है, वो देखकर अज्ञानपनेसें अनेक प्रकारकी शंका होती हैं और सर्वज्ञके वचनोंपरसें आस्था उठ जाती है; लेकिन जिनकों सम्यक्त्वज्ञान हुवा है उन पुरुषनें अनुमानसें कितनीक वस्तुओंका निर्णय किया है उससें वो जानता है कि यह सर्वज्ञ निष्पाक्षपाती हैं जिनकी बहुतसी बाते सत्य मालूम होती हैं, और कोइ कोइ सूक्ष्म बातें नहीं समझी जाती तोभी प्रभुवचनोंके ऊपर श्रद्धा रखनी योग्य है. श्री महावीरस्वामीजीने आत्मधर्म प्रकट करनेका जो मार्ग बतलाया है उससें अधिक किसी धर्मवालेकों नहीं देखते हैं, तो मैं किसवास्ते अश्रद्धा करुं ? कितनीक बातें तो प्रत्यक्ष सिद्ध होती हैं. तो जैसे भरे हुवे वर्त्तनमेंसें चावल पकानेकों आगपर रक्खे होंवै उनमेंसें एक दाना पका हुवा देखकर सब चावल पक गये मानते हैं, वैसें ये पुरुषके बहुतसे वचन न्यायसें सिद्ध होते है और दूसरे कुछ नहींभी समझमें आते हैं, उसका सबब मेरा अज्ञान है. कारण कि अज्ञानके जोरसें यथार्थ न्याय

जोडा नहीं जावे उसमें कुछ सर्वज्ञकी भूल नहीं. ऐसा विचार करकें सूक्ष्म बातेकी श्रद्धा करै. वो पुरुष सम्यक्त्वपरिसह जीता युं कहा जाता है. और कितनेक अज्ञानी जीव दूसरे जीवोंकी बाह्यकी बावत संबंधी तकरारे सुनकर उसमें घभडा जाते है-मोहवंत होते हैं. जैसें कि अभी इंग्रेजलोग पृथिवी फिरती है और सूर्य स्थिर है ऐसा कहते हैं और उसपर अनेक दुर्बीनोंसें देखकर मनुष्यकों समझाते हैं, वो समझमें लेकर मनुष्य कहते है कि शास्त्रमें तो सूर्य फिरता कहा है, वो बात मिलती नहीं आती; वास्ते जैनशास्त्रपर क्या श्रद्धा करै? ऐसी दशा होती है. मगर उसके अंदर विचारनेका है कि, जैसें लख्खो रुपै इंग्रेजलोग ऐसे काममें खर्चते हैं और वैसी मिहनत करते हैं, मिहनत करनेवालोंकोंभी हजारों रुपैका पगार वा इनयाम मिलते हैं, वीसी तरह वर्त्तमान समयमें जैनमें कोइ राजा नहीं. और वैसे पैसे खर्च करना वो राजाओंका काम है. और पैसे खर्चे विगर पृथिवीपर फिर सकै नहीं और उसका निर्णय हो सकै नहीं. और जहांतक निर्णय हो सकै नहीं वहांतक प्रभुके वचन पर प्रतीत रखनी चाहियें. अपनी शक्तिकी कसूरके वदलेमें शास्त्रपरसें आस्ता उतारनी योग्य नहीं. पुनः इंग्रेजलोक कहते हैं वो बात न्यायसेंभी जुडती नहीं; तोभी उन्हके वचनोंकी मनुष्य श्रद्धा करते हैं उस करतें प्रभुजीके वचनोंकी श्रद्धा करै वो श्रेष्ठ है.

इंग्रेज कहते हैं कि यहांसें सूर्य तीन करोड माइल दूर है और इस पृथिवीका व्यास-घेरावा २४ हजार माइलका है. उसकरतें सूर्य चौदहलाख गुना वडा है-इसतरह मानते हैं. अब सोचो कि-पृथिवीसें सूर्य चौदह लाख गुना वडा है तो पृथिवीमें रात पडनीही न चाहियें; क्यौं कि बाजुपरसें सब जगेपर प्रकाश जाना-पडना चाहियें. जैसे एक इंचकी सुपारी एक बाजुपर होवै, और एक बाजुपर चौदह लाख इंचका उजाला होवै तो सुपारीकी किसी बाजुपर उजाला न होसके ऐसा होसकताही नहीं, तैसेही पृथिवीका गोला मानते हैं, वो गोलेपर सब जगे प्रकाश होना चाहियें-रात पडनीही न चाहियें. इस विषयमें कितनेक युंभी कहते हैं कि

तीन करोड माइल दूर है उससें गोलेकी एक बाजुपर उजाला न आसकै-हम कहे तहै कि वो कथन अकलसें विरुद्ध है. वो २४ हजार माइल तो गोलचक्र भरनेसें हैं; मगर एक जाडाइकी लंबाइ गिनलेवै तो आठ हजार माइल होवै. अब जो तीन करोड माइलतक प्रकाश आ सकता है उसकों आठ हजार माइल आनेमें कुछ हरकत होय ये वार्त्ता संभवित नही. कदाचित वो लोग कहै कि पृथिवी श्याम है जिस्सें उसका परछाया या परदा पडता है. ये वार्त्ताभी असंभवित है. गोल वस्तुकी चारों और प्रकाश व्याप्त होवै उसमें कुछ हरकत होसकै ये बातभी अकलसें दूर है. युं होनेपरभी कितनेक लोग इंग्रेजोंकी कलाकौशल्यता देखकर श्रद्धा करकें धर्मश्रद्धा उठा डालते हैं वो अज्ञानता है ऐसा समझना चाहियें. सांसारिक कलाओं करनेका जीवकों अनादि कालका अभ्यास है वो कलाऐं आवें उसमें कुछ नवाइ-ताजुवीकी बात नहीं, मगर धर्मकी कला आनी वो बहुत दुष्कर है. ह-जारों मनुष्यमेंसे धर्मप्रवर्त्तक बहुत कम होते हैं-धर्मज्ञपना बहुत मुश्कील है. इंग्रेज लोग दूर देश रहे और सर्वज्ञ इस देशमें हुवे, उस्से इस देशके लोगोंकों तो कुछ कुछ वासनाभी सर्वज्ञकी आइहुइथी; लेकिन दूर देश-वालोंकों कुछभी वासना आइ नहीं उस सबबसें धर्मकी बाबतमें वो लोग कुछभी नहीं समझते हैं. व्यवहारिक कलाऐं तो अपने हाथसेंभी शीख ले-नेसें आ सक्ती हैं; मगर अरुपी पदार्थका ज्ञान सर्वज्ञके वचनसेंही हो सकता है. वास्ते सर्वज्ञके वचनपर जिनकी श्रद्धा कायम रहती है उनने सम्यक्त्व परिसह जीतालिया है युं कहेना योग्य है. यहांपर कोइ शंका उठावेगा कि-भगवंतजीने फरमाया वही कबूल करना और कुछ विचारही नहीं करना. उसके वारेमें ऐसा समझना कि सर्वज्ञकी पहिचान अव्वलसेंही करनीं, उसमें सब प्रकारसें शुद्धता देखनीं, वो देखलिये बादभी किसी ठौर विरोधपना न मालूम होवै तब उन्होंके ऊपर आस्ता रखनी वही योग्य है.

मनुष्य सूर्य पृथिवीकी बात प्रत्यक्ष गिनते हैं; मगर वो प्रत्यक्ष नहीं है; क्यौं कि ये लोगने तीन करोड माइल सूर्य दूर है उसका मुकरर करना अनुमानसें किया है-सूर्यका और पृथिवीका मानभी अनुमानसें करते

हैं; वास्ते अनुमानमें वहुत फरक रह जाता है जैसें कि पहाड हैं सो उंचे हैं; मगर दूरसें देखें तो नीचे मालूम होते हैं. एक मनुष्य नीचे खडा है और उसकों सात मजलेकी हवेलीमेंसें देखेंगे तो वो मनुष्य छोटासा दिखाइ देगा. फिर कुछ चित्र चित्रे हैं वो दोनु आंखें खोलकर देखेंगे तो चित्रही मालूम देगा. सब अंग नहीं मालूम होगा. वही चित्र यदि एक आंख मुंदकरकें निगाहपूर्वक एक आंखसें देखेंगे तो चित्रमें चित्रा हुवा मनुष्य साक्षात जैसा मालूम होवैगा. सब रीतिसें देखे तो चित्र है वो कुछ वस्तुतामें मनुष्य नहीं तथापि मनुष्य मालूम होता है—ऐसेंही दुर्बीनसेंभी विचित्र प्रकार मालूम होवै उस्में भ्रम रह जाय, वास्ते जहां जहां जो वस्तु हैं वो वस्तु उस ठिकानेपर जाकर नहीं देखी वहां तक वो वात मान लैनी वो; वाजब नहीं. किसीके कथनसें सर्वज्ञके वचनकी आस्ता छोड देनी नहीं. सब जगह फिरकर निर्णय करना चाहियें, वो बन सकता नहीं तब इंग्रेजोंका कथन अनुमानवाला माननेसें तो सर्वज्ञकथित मानना वही अच्छा है. ऐसे विचार करकें आत्मार्थीकों तो कुछभी व्यामोह होता नहीं. दूसरी तरह तो आत्माकों तो संसारसें मुक्त होना है वो मुक्त होनेके उपाय जो सर्वज्ञने बतलाया है उसका अभ्यास करनेसें सर्वज्ञता प्रकट होवें, तब सब कुछ मालूम हो सकै. अभी उस तकरारमें में मेरी शक्ति विगर कहां पडुं? वो तकरारमें पडुं तो उसमें सब तपास करनेसें मेरी उम्मरभी खलास हो जाँय, तो फिर मेरे आत्मसाधन करना उसका वक्तभी हाथ न रहै. वास्ते अभी तो आत्मसाधन करकें जडभावमें जो मेरी प्रवृत्ति है उनसें मुक्त हो जाउं, और समभावमें रहनेका उद्यम करुं. ऐसा विचार करकें दस प्रकारका यतिधर्म है वो पालन करै—उसमें प्रथम क्षमा यानी क्रोधपर जीत मिलानी. कोइ जन अनेक प्रकारका तिरस्कार करै—कठोर—मर्मवचन कहदै—कोइ चीज ले जावै—नुकशान करै; मगर क्षमागुण आया है उस्सें उनकेपर द्वेष नहीं होता; क्यौं कि सब वस्तु बहार बनती हैं—तिरस्कार मेरे नामकों करता है या शरीरकों करता है, तो शरीर सो में नहीं. ऐसा जान लियी है. कुछ चीज ले जाता है वो

अैसा जानना और जो जो बनता है वो वो कर्मके योगसें बनता हैं वो देखना है. उसमें कुछ रागद्वेष करनेका कारण नहीं ! ये दशा हो जानेसें क्षमागुण आता है उस्सें गुस्सा होताही नहा. तैसेंही मानका जय करता हैं. मान कौनसी बाबतका करना ? यह शरीर, धन, स्त्री, पुत्रादि पदार्थ कुछ मेरे नहीं ऐसा निर्धार किया हैं उस्सें किस बातका मान होवै ? फिर आप ज्ञानवान है उस विषें आपके मनमें है कि मेरे आत्माकी शक्ति तो केवलज्ञानकी है वो अभीतक प्रकट न हुइ और आच्छादित हो गइ हैं वो मेरी वस्तु होनेपरभी प्रकट न हुइ तो मेरी लघुताका स्थान है, तो अब मैं किस बातका मान करुं ? ऐसी दशा बनी है उस्सें मार्दव गुण आया है उसीमें मानदशा सहज छूट जाती है. मान-छोडनेका विचारभी अपूर्णको करनेका है. पूर्ण पुरुषकों तो विचार करना पडताही नहीं; क्यौं कि मान आवे तो छोडनेका विचार करै; लेकिन ऐसी दशामें मान आताही नहीं. अब आर्जव सो मायाका त्याग वो कपट रचनापना सहजही छुटगया है. मुनीने आत्मपना जानलिया है. उसमें सब जड पदार्थ पर जानलिये हैं उसमें कितनीक प्रवृत्ति करते हैं, सो मात्र निज स्वरूप आच्छादित हुवा है उस्कों प्रकट करनेके लियेही करते हैं तो अब कपट किस वास्ते करना चाहियें ? चेलेकी इच्छा नहीं, श्रावककी इच्छा नहीं, धनकी इच्छा नहीं, ये मेरे और ये मेरे नहीं ऐसाभी करने का नहीं. फक्त पूर्ण ज्ञान उत्पन्न नाहि हुवा वहांतक पूर्ण ज्ञान उत्पन्न होनेका उद्यम करता है. उसमें निर्वाह करना चाहियें वो वस्तु मिलजाय तो ठीक और न मिलजाय तोभी ठीक. ये दशाके वर्त्तनेवालेकों कपट करनेकी क्या जरुरत पडे किं करै ? वास्ते निष्कपट आर्जवगुण प्रकट होनेसें सहजसें वर्त्तते हैं. निर्लोभता गुण सो अपने शरीरकों मेरा नहीं जाना है तो लोभ किस बातका रहै ? शरीर मेरा नहीं और शरीरसंरक्षणके पदार्थ मेरे नहीं, ये सब जड पदार्थोंके ऊपरसें राग उतरगया है इससें लोभ किस बाबतका करै ? वास्ते निर्लोभता उत्पन्न हुइ है. कोइ वस्तु शरीरके निर्वाह वास्ते चाहियें वो मिलगइ तो लेवै और न मिलगइ तो उस

बावतका विकल्प नहि करते, ऐसा विचारते हैं कि पुद्गलकों वस्तु चहीती है और पुद्गलकों मिलती नहीं—ऐसा विचारकें पुद्गलिक वस्तुका लोभ नहि करते हैं. यहांपर कोइ प्रश्न करेगा कि—ज्ञान पढनेका लोभ होवै कि नहीं ? उसके जवावमें ज्ञान पढने—वांचनेका लोभभी निश्चय दाशमें जाता है, और जब ध्यानी पुरुष होते है और आठवें गुणस्थानकमें क्षपकश्रेणी मांडते हैं तब ज्ञानका लोभभी नहीं रहता है. मेरे आत्मामें अनंत शक्ति है उसमें मेरे क्या प्राप्त करना है ? जिसके पास वस्तु न हो वो वस्तु प्राप्त करनेका लोभ करै; मगर मौजूद होवै वो किस वातका लोभ करै ? और इन पुरुषनें अपना सत्ता धर्म जानलिया है और उसमें सहज सुखका अनुभव हुआ है, अपूर्व ज्ञानभी प्रकट हुवा है इससें ज्ञान प्राप्त होनेकी इच्छाभी वहां रुकजाती है; मगर वो दशा केवलज्ञानप्राप्तिकी अंतर्मुहूर्त-काल बाकी रहता है तब प्राप्त होती है—उसके अव्वल नहीं वनसकती हैं, तोभी वो लोभ करते हैं वो निर्लोभता प्राप्त करनेके वास्तेही है. वास्ते नी-चेकी हदमें त्यागने योग्य नहीं; मगर ज्ञानके लोभसें नीति छोडकर न चलै. न्यायसें चलै. एक ज्ञान मिलानेकी इच्छा वर्त्तती है—उस रुप लोभ है; लेकिन वो इच्छाकेलिये संसारी जीव अन्यायकी प्रवर्त्ती करते हैं वैसे नहीं करते है; मात्र सब काम छोडकर मुख्यतासें ज्ञानका उद्यम कर रहे हैं. बाकी सब पुद्गलिक चीजोंपरसें लोभ हठगया है. फिर तप सो बारह प्रकारका करते है वो सहज भावहीसें होता है. आत्माका अणाहारी गुण समझलिया है. आहार करना सो मेरा धर्म नहीं. ऐसा समझनेसें आहार-परसें इच्छा हठगइ है, उस्सें तप करते हैं. संयम सो स्वगुणमें रहना और पुद्गल प्रवृत्ति रोक देनी. वो संयम गुण प्रकट हुवा है उसीसें इंद्रियोंके विषयकी इच्छा नहीं वर्त्तती है. अव्रतकी प्रवृत्ति नहीं करते हैं. कषाय रहित वर्त्तते है. मन—वचन—कायासें बुरी प्रवृत्ति रुकगइ है उसकोंभी आत्मा निर्मल होवै वेसी प्रवृत्तिमें वर्त्तते हैं—इसरुप सतरहा प्रकारसें संयम धारण करते हैं. बाह्य संयम सतरहा प्रकारसें पालनेके सबवसें अंतरंग निज स्वभावमें स्थिर होता है. ये रूप संयमगुण वर्त्तता है. सत्य सो

सच्चा बोलना. जिसकों आत्मज्ञान नहि है वो शरीरकों मेरा कहता है. आत्मज्ञानी मुनी वैसा नहीं कहते हैं व्यवहारसें तो जैसा बोलाजाय वैसा बोले; मगर वस्तुधर्मसें पिराया. जानलिया है, उस्सें बोलते हैं. लेकिन अंतरंग उपयोग मेरा नहीं ऐसा चलरहा है. जो पुरुष पुद्गलकोंही मेरा नही मानते हैं वो पुरुष दूसरी बावतमें असत्य बोलेही क्या? प्ररुपणाभी सहजसें यथार्थही होवै–ये सत्यगुण प्रकट हुवेका फल है. अब शौचगुण सो निरतिचार वर्त्तते हैं. अतिचारादिक दूषण लगै नहीं इस्सें पवित्रपना वर्त्तता है–यानी निज आत्मतत्त्वमें वृत्ति रही है.–ये रुप पवित्रता होरही है, उस्सें पुद्गल प्रवृत्तिके दूषण नहीं लगते हैं इससें सहजसें निरतिचार वर्त्तते हैं, कुछभी पुद्गलीक काममें राग द्वेष नहीं करते है. जो होवै उसमें कर्मोदय समझकर वर्त्तते हैं. आकिंचन गुण सो बाह्यपरिग्रह त्याग–धन धान्यादि नौ प्रकारसें और आभ्यंतर परिग्रह–शरीरादिकपर मेरे पनेका ममत्वभाव वो सब प्रकारसें त्याग किया है उससें बाह्यपरिग्रहपरसें सहजही मूर्छा उतरगइ है–वस्त्र वगैरः रखते हैं वो निर्मूर्छापनेसें जगतका व्यवहार समालनेके लिये रखते हैं, मगर वो अच्छे बुरे–जैसे मिले वैसें पहनते हैं–किंतु विकल्प नहीं करते हैं ये मूर्छा गइ उसके फल है. ये रुप मुनी अकिंचन गुण प्रकट करते हैं. ब्रह्मचर्य सो बाह्यसें सब तरहसें स्त्री का त्याग किया है. अंतरंगसें पंचेंद्रियके विषयकी तृष्णा नाश होगइ है. स्वात्मज्ञानमेंही आनंदपनेसें वर्त्तते हैं. ज्ञानाचारमेंही उपयोग लगरहा है. स्वप्नमेंभी कामकी वांछना नहीं, अंतरंगके सुख अगाडी तुच्छ स्त्रीओंके विषय सुख दुःखरुप जानलिये हैं उनकों कामकी इच्छा क्यौं होवै? उस सबबसें सहजसें ब्रह्मचर्य गुण प्रकट हुवा है. इसतरह दस प्रकारका यतिधर्म प्रकट हुवा है. और आत्मार्थी इसतरहके उद्यम करकें पुद्गलभावसें मुक्त होता है. प्रथम थोडीसी शुद्धता होती है तब मार्गानुसारी होता है, उससें विशेष विशुद्धियुक्त सम्यक्त्व दृष्टि होती है. और विशेष विशुद्धिसें श्रावकपना प्रकटता है, उससेंभी विशुद्धि होवै तब मुनिपना प्रकटता है. उनमेंभी ज्यौं ज्यौं विशुद्धि वढती जावै त्यौं त्यौं गुणस्थान चढ-

ते जावै, और केवलज्ञान प्रकट करता है. ऐसें अनुक्रमसें शुद्ध होता है.

१४५ प्रश्नः—निर्जरा तत्त्वके भेद अरुपी गिने हैं, और कर्म है वो तो रुपी हैं, उसकी निर्जरा होवै वो अरुपी क्यौं होवै ?

उत्तरः—कर्म हैं वो दो प्रकारके हैं. एक द्रव्य कर्म सो आठ कर्म रुपी हैं. और दूसरे भावकर्म सो अरुपी हैं. अब भावकर्म सो क्या पदार्थ है ? द्रव्यकर्मके योगसें आत्माकी अशुद्ध पहिणती रागद्वेषमय होती है, वही भाव कर्म कहेजाते हैं. उन भावकर्मोंकी निर्जरा होती है. उनकोंही निर्जरातत्त्वमें गिनी है. वो निर्जरा सम्यक्दृष्टि आदि पुरुष करते हैं. सम्यक् ज्ञान बिगर सकाम निर्जरा नही होती. चौथे गुणस्थानसें लगाकर चौदहवे गुणस्थानतक होती है वा निर्जरातत्त्वमें है. उस सिवाके जीव अज्ञानपनेसें द्रव्यकर्मकी निर्जरा करै; मगर भावकर्मकी निर्जरा नहीं करसकते हैं; वास्ते द्रव्यकर्मकी निर्जरारुपी और भावकर्मकी अरुपी कहते हैं.

१४६ प्रश्नः—जीव अरुपी है और नवतत्वमें जीवके भेदरुपीमें गिने है उसका हेतु क्या है ?

उत्तरः—जीव तो अरुपी है; मगर शरीर बहार मालूम होता है वो शरीर, इंद्रिये पुन्य योगसें मिली हैं. उन शरीर इंद्रियोंसें जीव पहिचाना जाता है कि यह एकेंद्रि, यह पेचेंद्रि है; वास्ते कर्मके संयोगसें जैसी जैसी कर्मकी मलीनता वैसे वैसे शरीरादिकके अलग अलग भेद पडे हैं, उससें शरीर, इंद्रि अपेक्षितरुपी भेद गिने हैं.

१४७ प्रश्नः—संवरके सत्तावन भेद अरुपी कहे है, और संवरकी प्रवृत्ति बहारसें मालूम होती है वो तो शरीरसें है तो अरुपी कैसे कहे ?

उत्तरः—बाहरसें पुद्गलपरसें मोह उतरजाय, तब बरोबर बाह्यवर्त्तना होवै और ज्यौं ज्यौं संवरकी बाह्यवर्त्तना होवै त्यौं त्यौं पुद्गल दशामेंसें प्रवृत्ति रुकतीजाती है और निज आत्मस्वरूपमें लीनता होती है. ज्यौं ज्यौं निज ज्ञानमें लीन होवै कि आते हुवे कर्म रुकजाते हैं. आत्मस्वरुपमें रहनेसें

द्रव्यकर्म, भावकर्म दोनु रुकजाते हैं, जो भावकर्म रुकगये वो अरूपी है वास्ते संवरभी अरुपी है उस्सें संवरके भेद अरुपीमें गिने हैं.

४८ प्रश्नः—संवर निर्जरा मिथ्यात्वी करै या नहीं ?

उत्तरः—मार्गानुसारी मिथ्यात्व गुणस्थानमें अंशसें संवर, अंशसें निर्जरा करै ऐसा हेमाचार्यजीने योगशास्त्रमें कहा है; वैसेंही विचारबिंदुमें यशविजयजी उपाध्यायजीनेभी कहा है.

१४९ प्रश्नः—जिनमंदिरमें प्रभुजीके अंगलूहने मैले वा फटेलेका उपयोग किया जाय तो उसका दोष कार्यभारीकों लगै या सब श्रावकोंकों लगै ?

उत्तरः—प्रभुजीकों तो सर्व उत्तमोत्तम चीज चडानी चाहियें. अपना शरीर पुंछनेकों किसीने फटेला मैला दुवाल दिया होवै तो वो अनुकूल नहीं आता है और देनेवालेपर द्वेष आता है. फिर अपने घरपर कोइ विदेशी महेमान आये होवै उनकों फटेला वा मैला दुवाल नहीं देते हैं, तो प्रभुजीके अंगलूहने फटेले या मैले वापरै तो अपनेकों अपने महेमान करते प्रभुजी अधिक हैं ऐसा दिलमें न आया, और जब प्रभुजीकी आधिक्यता मनमें न जमी तब आत्माकों लाभभी किसतरह होगा ? और मुँहसें प्रभुजी बडे हैं युं कहते हैं, पर चित्तमें मोटाइ न आइ, तब लाभ तो न होगा, मगर अवश्य मिथ्यात्व लगेगा. फिर दूसरी रीतिसें शोचैं तो–प्रभुजीका महत्त्वपना मनमें न आया तो मिथ्यात्व गयाही न समझना. जब मिथ्यात्व गया नहीं तब दूषणका तो कहेनाही क्या ? लेकिन ऐसा विचारकर थककर बैठ रहना नहीं, किंतु प्रभुमंदिरमें गये, और वैसे फटेले मैले अंगलूहने नजर आये तो तुरंत धोनेकी तजवीज करनी; अगर नये ला देनेकी योजना करनी. यदि साधारन पुन्यवाला हो तो उन अंगलूहनोंकों आप धो डालै और पुन्यवंत होवै तो अपने मनुष्योंके द्वारा धुलवावै. मंदिरके कार्यभारीकों मालूम पडै तो वो तुरंत धुलवाके साफ करावै या नये ला देवै. किसी औरकी नजर पडै तोभी उसका वैसाही बंदोवस्त करै. लेकिन ऐसा न करै कि–कार्यभारी समझे कि दूसरे भाइ उसकी तजवीज करेंगे. दूसरे भाइ समझै कि कार्यभारी तजवीज करेगा. ऐसा होनेसें काम

नहीं होता और आशातना जारी रहती है. वास्ते जीसकी वैसे अंगलूहने पर नजर पडै कि वो फौरन उनके लिये योग्य बंदोबस्त कर लेवै. कुछ बडे खर्चका काम नहीं. अब कोइ कहेगा कि-जिनके नजर आया नहीं, या जो नजर करकें किसी रोज देखताही नहीं उसकों दोष नहीं. जो ऐसा कहैं वो निध्वंस परिणामके लक्षण हैं जिसकों देखना नहीं उसकोंभी प्रभुजीपर प्रीति होती तो क्यौं न देखता? वा पूजाकी प्रवृत्ति क्यौं न करता? मगर प्रमादी है वास्ते उसकों देखनेमें न आया. उसकों कुछ कम दूषण है ऐसा न समझना. जितना प्रमाद ज्यादा है उतना दूषणभी ज्यादा है. वास्ते जो संसारसें तिरनेकी इच्छा करते हैं उन सबकों तो ये काम करना योग्यही है. अंगलूहने बराबर धुले हुवे नहीं होते है तो कडक हो जाते है, वो उन अंगुलहनोंसें प्रभुजीकों घसारा लगै उनका दूषण लगै, वास्ते मुलायमदार-सुकोमल-अच्छी तरहसें धुले हुवे अंगलूहनेका उपयोग करना, उससें सुंदर भक्ति होगी. पुन्यवंतोंकों ऐसा विवेक अवश्य रखना, और कभी पुन्यवंत बेदरकार रहेवें तो पंच मिलकर सामान्य पुन्यवाले करलेवैं. हरएक प्रकारसें अच्छे, उमदा द्रव्य चडाया जाय वैसाही करना. एसा न करै तो तमाम श्रावकोंकों अशुद्ध वापरनेकी आशातना लगै.

५० प्रश्नः—मंदिरमें बरतन साफ किये विगर उपयोगमें लेवै तो क्या होवै?

उत्तरः—मंदिरमें संसारी काममें वपरास किये विगरके बरतन साफ करकें उपयोगमें लेना. अच्छे द्रव्य होवै तो मन प्रसन्न रहेवै, और लाभभी होवै; और वैसा न होवै तो दूषण लगै ये अधिकार श्राद्धविधिमें है.

५१ प्रश्नः—मंदिरमें मकडी वगैरः के जाले होवैं उसकों न निकालडाले तो आशातना लगै? और उनकों रखकर पूजा करै तो क्या होवै?

उत्तरः—मंदिरमें जाकर प्रथम आशातना टालनी चाहियें. पहेली निसीही कहे बाद वोही काम करनेका है; वास्ते मकडीके जाले वगैरः जो जो आशातना हो सो पहेली दूर करकें और क्रिया करनी. मंदिरकी आशातना दूर करनेमें ऐसा शोचे कि 'ये काम तो नौकरका है' तो ये बुरे परिणा-

मका कारण है. आपके वहां नौकर होवै तो नौकरकी मारफत काम करा लेवें, और नौकर न होवे तो आप खुदही आशातना दूर करै. अपने घरमें कुछ अनिष्ट वस्तु पडीहो तो वो तुरंत निकालडालते हैं उसीतरह मंदिरमेंभी न करैं तो प्रभुजीपर प्रेम घर जैसा न रहा, वही बडा दूषण है; वास्ते पहेली आशातनाओं दूर करकें पीछे पूजा करनी. आशातना दूर किये विगर पूजन करनेका काम नहीं किये जैसा हो पडता है.

१५२ प्रश्नः—प्रभुजीकों जहांपर केसरके तिलक कियेजाते हैं वहांपर सुन्ने चांदीके पतरे लगायेजाते हैं वो वाजव है या नहीं ?

उत्तरः—प्रभुजीकों सुन्ना चांदीके पतरे लगायेजाते हैं वो रीत अच्छी है; क्यौं कि भाविक श्रावकवर्ग वहुतसा केसर चडाते हैं उस्सें जो जहां पतरे नहीं लगायेहुवे होते हैं वहांपर जिनबिंबमें खड्डे पडजाते हैं, और जो चकते-पतरे लगायेहुवे होते हैं तो केसर नहीं लागु होसकता है, उससें बिंब दुरस्त रहता है, वो बडा लाभ होता है, और पतरे न लगाये होवै तो बिंब बिगडजानेसें आशातना लगती है, वो बडा दूषण है. फिर थोडी समझवालोंकों पूजा किस किस अंगपर करनी वोभी खवर नहीं होती है उसकों वो पतरोंके निशानसें नव अंगकी पूजाभी सहजसें समझमें आती है ये फायदा है. मुख्यतासें तो अंगमें खड्डा पडे नही ये लाभ शोचकर पतरे लगानेका योग्य लक्ष रखना और तमाम जिनबिंबकों वैसे पतरे लगादेना. खड्डे पडे पीछे लगाये करते पेस्तरसेंही लगाना कि जिस्सें आशातना होवेही नहीं.

१५३ प्रश्नः—पुष्पकी जगे केसरवाले चावल चडावे तो कैसा ?

उत्तरः—स्नात्र भनाते वक्त दूसरे फूल यदि न मिलसकै तो वैसे चावल चडानेमें कुछ हरकत नहीं; क्यौं कि आपकी पुष्प चडानेकी भावना है; मगर पुष्प मिलते नहीं तो अपनी भावना पूर्ण करनेके वदलेमें केसरवाले चावल चडानेसें कोइ हर्ज नहीं.

१५४ प्रश्नः—जिस जीवने मरणके समय शरीर वोसिराया नहीं. वो शरीरसें शुभाशुभ जो क्रिया होवै उसका शुभाशुभ दोनु फल होवै या नहीं ?

उत्तरः—जो शरीर वोशिराये विगर मरता है और उनके शरीरसें जो जो दुष्ट क्रियाओं होती है उसके कर्म उन शरीरके मालिककों आते हैं. ऐसा भगवतीजीमें पांच क्रियाके अधिकारमें कहा है. वास्ते हरएक प्रकारसें आयुष्यका ज्ञान मिलाकरकें मरन समय संथारा कर सब वस्तु वोशिरानी और वोशिरा करकें मरजानेसें आराधक होवै उससें तीसरे भवमें मुनी और सप्त भवमें श्रावक मोक्षमें जाता है. फिर वो शरीरसें शुभ कर्म होवै उस संबंधीभी वासुपूज्य स्वामीजीके चरित्रमें जो जो एकेंद्रियपनेसें शरीर भगवंतजीकी भक्तिके काममें आये है, उसकी अनुमोदना की है वो देखनेसें अनुमोदना करनेसें शुभ कर्मकाभी लाभ होता है.

१५० प्रश्नः—जो जो वस्तु वोशिरावेमें आती है वो इस भवके अंत तक वोशिरानेमें आती है तो आते भवमें उसका पाप आवै या नहीं?

उत्तरः—इस भवमें जो जो वोशिराते हैं तो उनके ऊपरसें रागदशा छूट जाती है और रागदशा छूटनेसें उन वस्तुपर मेरेपनेकी संज्ञा नहीं रहती है, उससें उन वस्तुकी क्रिया उनकों नहीं जाती है. और जिसनें यु वोशिराया नहीं उसकों रागद्वेषकी संज्ञा कायम रहती है, और वो संज्ञा कायम रहनेसें रागद्वेषके कर्म बंधे जावै. और जिसने वोशिराया है उसकों दूसरे भवमें अव्रत प्राप्त होता है. अव्रतकी क्रिया अव्रत होवै वहांतक आवै; मगर संज्ञा संबंधी नहीं आवै. संज्ञा उदासीन भावसें वोशिरानेसें उठ जाती है; वास्ते वोशिरानेवालेकों पाप नहीं आता है.

१५१ प्रश्नः—विवेक सो क्या?

उत्तरः—देवकों, अदेवकों, मुक्तिकों, संसारकों, जडकों, और चेतनकों जानै. और आत्माका तथा जडका क्या स्वभाव है? आत्माकों ग्रहण करने और अग्रहण करने योग्य क्या है? इस तरह जो जो द्रव्य है, उसके धर्म जानकर आपके आत्मासें जो जो परवस्तु जानै उसकों ग्रहण न करै. उसमें मग्न न होवै, जडवस्तुका कर्त्तापना न करै, आत्माके धर्ममेंही आनंदित रहै. जडधर्ममें किंचित्भी राग करै सो जडकी संगती नहीं छूट गइ है, और किसी तरहसें परकों ग्रहण न करुं एसी विशुद्धि नहीं बनी उससें

-जो जो क्रिया करता है वो जडकी वृत्ति हठानेके लियेभी जडकी क्रियामें मग्न नहीं होता है. आहार विगर चित्त शांत नहीं होता उस लिये आहार करता है; मगर उसमें प्रसन्नता नही. और वने वहांतक तपस्या करता है. आत्माका अणइच्छा धर्म चिंतवता है. जो जो पुरुष आत्मधर्म वतला गये है, उसके आधारसें वर्त्तमानमें जो आत्मधर्म वताते हैं उसका उपगार चिंतन करता है. आपकी आत्मदशा प्रकट नहीं होती उससें लघुता चिंतवते हैं ऐसे तत्त्वज्ञानी पुरुषोंकी सदा संगति करता है. जो जो आत्मधर्म निर्मल होता जाता है, उसीमेंही मात्र खुशवक्ती है. उद्यम निमित्तभी जो जो सेवन करनेसें आत्मधर्म प्रकट होवें वैसाही सेवन कर रहे हैं. विषयादिकके निमित्त आत्माकों घातकर्त्ता जान लिया है. उससें उन निमित्तोंसें हमेश दूर रहता हैं, और जितना दूर नहीं रहा जाता वो दूर होनेकी मनोवृत्ति रहती है. जो जो काम करता है, उसमें जडकामकों जडपनेसें और आत्माके कामकों आत्मपनेसें जानता है.

५७ प्रश्नः—शांतपना सौ क्या ?

उत्तरः—कोइ शांत-पुरुषकों उपद्रव करै-मारै-कूटै-अयोग्य वचन वोलै, जो भूल होवै सो कहदेवै, कोइभी अयोग्य काम किया होवे तो कहकर निंदा करै या विगर कारणसें निंदै; तोभी उनके ऊपर द्वेषभाव न होवें. उसकों मारनेका या कटुवचन कहनेका भाव न उठै और उसका बुरा करनेका भावभी न होवे; क्यों कि शांतपुरुषने कर्मका स्वरूप जानलिया है कि इस शरीरने मार खानेका कर्म वांधाहोगा तो मारता है. गालियां खानेका कर्म वांधा है तो गालि देता है. निंदनीकपणेका कर्म वांधाहोगा तो निंदता है. ये जीव तो निमित्तमात्र है, इसमें इन जीवोंका क्या दोष हैं ? ऐसें आत्मामें चिंतन कररहा है, उससें कोइ वैसे जीवपर द्वेष-खेद नहीं आता है. और चिंतवता है कि खेद करुंगा तो पीछे नये कर्म वंधे जायेंगे तो फिर आगे उदय आनेसें ऐसेही भुक्तने पडेंगे, और समभावसें भुक्त लेउंगा तो ये कर्मकी निर्जरा होवेगी. फिर स्वाभाविक धूप लगता है, ठंडी लगती है, हवा चलती है, नही आवे तो वो सब ऋतुका स्वभाव जान-

लेवै; मगर उसमें विकल्प न करै. आहारपानी वस्त्र वगैरः जो कुछ जरूरतकी चीज हो, पर न मिले तो उसका बिलकुल विकल्पही नहीं. मात्र अंतराय कर्मका उदय विचार लेवै, और अपने आत्मस्वरूपमेंही आनंदित रहै. अनुकूलतामें प्रसन्नता नहीं और प्रतिकूलतामें अरति नहीं. जडभाव जानलेवै वो पुरुषकों शांतपना कहाजाता है. वास्ते उत्तम पुरुषकों ये दशा लानी योग्य है.

१५८ प्रश्नः—दांत सो क्या?

उत्तरः—पंचेंद्रिय वश की है. काइ भी इंद्रि छूटी नहीं. आहारपानी फक्त शरीरकों आधार देनेकेलिये देते है और वोभी चाहियें वितना हरकोइ पुद्गल मिले हैं वो देते हैं. उसमें अच्छा बुरा नहीं देखते. मात्र शरीरकों व्याधि उपद्रव न होवै वैसे पुद्गल ग्रहण करते हैं. इसीतरह फरसेंद्रियकों वस्त्र मिलते हैं वो मुलायमदार या करें मिलें उन दोनुमें समभाव है. जानता है कि यह शरीर मेरा नहीं, तो मुलायमदार और करें वस्त्रकाभी मेरे विकल्प क्यौं करना? ऐसें पंचेंद्रियके विषयमें चिंतन कररहा है. कोइभी इंद्रिकों पोषन करनेका भाव नहीं. कोइभी विषय जोर करता नहीं. विषयपर उदासीनभाव हुवा है, उससें दिलकों खींचकर नहीं रखना पडता है. आत्माकी दशा सहज प्रकट हुइ है उनके सबबसें इंद्रियोंके विषयका मन होताही नहीं–उन पुरुषकों दांत कहाजाता है.

१५९ प्रश्नः—कामका जय सो क्या?

उत्तरः—स्त्रीकों पुरुषका अभिलाष, पुरुषकों स्त्रीका अभिलाष और नपुसककों स्त्री पुरुष दोनुका अभिलाष–इसतरह कामकी इच्छा है. अपने आत्मस्वरूपका जानपना हुवा है उससें पर स्वरूपमें नहीं वर्त्तना है; वास्ते सहजसें अभिलाषा बंध पडगइ है–होतीही नहीं. स्वप्नमेंभी स्त्री याद नहीं आती. स्त्री सामने दृष्टि पडती है उसीवक्त अपनी दृष्टि खींचलेता है; मगर नजर लगाके देखता नहीं. जैसें सूर्यके स्हामने नजर पडती है तो ताप न सहन होनेसें फौरन पीछी हठालेते हैं वैसें निष्कामी पुरुषनें स्त्रीका स्वरूप देखना दुःखकारी मानाहुवा है, उससें सहजसेही नजर पीछी हठजाती

है. स्त्रीका संगभी नहीं करते. और कदाचित कोइ स्त्री चालत करनेकेलिये यत्न करै तोभी वो निष्फल होती है. कभी स्पर्श करलेवै तोभी पुरुषचिन्ह जाग्रत होताही नहीं;. और उसकी दशा बदलातीही नहीं. जिसतरह सुदर्शन शेठकों अभयाराणीने कितनेही उपसर्ग किये, पुरुषचिन्हकों बहुतसी विटंबना की तोभी नपुंसक जैसा कायम रहा. ऐसे पुरुषने काम जीतलिया है ऐसा कहाजावै; वास्ते काम जीतकर ऐसी दशा बनानी योग्य है.

१६० प्रश्नः—मुक्तिमें क्या सुख है कि मुक्तिका प्रयास करना ?

उत्तरः—मुक्ति जैसें सुख इस दुनियांमें नहीं, और वो विचार करोगे तो तुमकं संसारमें खात्री होगी. संसारमें रहाहुवा जीव अज्ञानतासें संसारमें सुर मानता है. जो सुख संसारमें होता है वो तपासकें देखो–सारादिन संसार मौज शोख व्यापार करता है, उन व्यापारमेंसें फरसुद मिलती है; औ जब कुछभी काम न हो तब सोनेका वक्त मिलता है. और जब सोता तब प्रसन्न होकर कहता है कि मुझकों निवृत्ति मिली. लेकिन लडवे वगैरः कुछ सोरगुल मचादेवै तो सोनेवाला कहेगा कि मै आनंदर सोताहुं वास्ते अभी मुझकों क्युं पीडा देतेहो ? वो लडके जावै उतने फिर कोइ नइ उपाधि आ खडी रहवै–कामकी चिंता याद आवै, तो निंद नाहि आती. कुछभी बात यादीमें न आवे तो निंद आती है.

अब वाचकवर्ग ! विचार करो कि जितनीवक्त कामकी निवृत्ति मिली, उतना वक्त सुखका मिला. कामके वक्त अज्ञानतासें सुख मानताथा वो सुख झूंठाही था. क्यौं कि उसवक्त सुख होता तो आनंदसें सोया उसवक्त सुख नहीं मानता ? और आनंदित नहीं होता ? लेकिन जीव काममेंसें फरसुद पाता है तबही आरामसूचक शब्द मुँहमेंसें निकलता है. वास्ते इस संसारमेंभी संसारके कामोंसें और विकल्पोंसें रहित होता है तबही सुख होता है. तो मुक्तिमें तो कुछ कामही नहीं है. काम करनेका नहीं तो विकल्प चिंतन करनेकाही नहीं, उससें सारा वक्त सुखमें ही जायगा. वास्ते मुक्तिके बरोबर इस फानि दुनियांमें सुख हैही

नहीं. फिर इस जहांमें अज्ञानतासें पदार्थ देखकर, जानकर सुख होता है अच्छे मकान, आभूषण और बागबगीचे देखकर खुशी होता है; लेकिन उसके साथ कोइ अंधा होवै तो वै पदार्थ उसके देखनेमें न आनेसें नाखुश होता है; मगर अंधेकों देखनेवाला वो हकीकत सुनावै-समझावै तब उसकी समझमें आता है तो उससें वो खुश होता है. सोनेकी बिछायत मुलायमदार होवै और अंधा हाथ फिरावै तब मुलायमदार मालूम होवै उससें वो अंधा खुश होता है. अब शो चलो कि-कितनेक पदार्थ देखनेमें समझनेमें आते हैं तब उसीका सुख होता है; मगर जो देखा-समझा नहीं उसका सुख होनेका नहीं; लेकिन सिद्ध महाराज तो जगत-भरमें जितने पदार्थ हैं वो सब रुपी अरुपी जानकरकें देख रहे हैं. अपन तो सिद्ध महाराजजीके अनंतमें भागकाभी नहीं जानते हैं. वें अपनसें अनंते पदार्थ जान देख रहे हैं, तो अनंत सुखभी सिद्ध महाराजजीकों है वो सिद्ध होता है.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि नजरसें लड्डु देखे; मगर खाये बिगर क्या सुख मिलै ? उसके जबाबमें यही खुलासा है कि-लड्डु खानेमेंभी रसेंद्रिकों विषय ग्रहण करनेकी शक्ति न हो तो स्वादका सुख नहीं मिलता है. जेसें कि कुछ रोग हुवाहोता है तब नमकीन चीजकों फीकी बतलाता है और फीकीकों नमकीन बतलाता है, ऐसी विषय लेनेकी शक्ति बिगडजाती है तब लड्डु कैसे हैं ? वो विषय लेनेकी शक्ति न हो उसकों लड्डु अच्छे बुरेका सुख नहीं होता है. जिनकों लड्डुके अच्छे बुरे विषय समझनेकी शक्ति हो वही लड्डुका सुख जानसकता है. वास्ते खानेसें सुख नहीं-लड्डुका स्वाद जाननेसें सुख है. निंदमें कोइ मनुष्यके मुंहमें मिसरी डालदेवै; लेकिन उसे कुछ मिसरीका सुख नहीं मिलता. दर्दी बेहोशमें हो उसके मुंहमें अमृत रक्खै तो कभी निकलजायगा; मगर समझमें आये बिगर अमृतका सुख नहीं मिलता; वास्ते जो जो वस्तु जाननेमें आती है उनकाही सुख जगतमें हैं. मुक्तिमें तमाम वस्तु जाननेमें आती है उससें तमाम सुख है. फिर क्षुधातुर जन खानेमें सुख

मानते हैं. भोजनसें तृप्त हुवे वाद जवराइसें कुछ खिलायाजाता है तो वो तृप्तिवंतजन नाखुश होता है; लेकिन सुख नही मानता है, वैसेंही मुक्त आत्माकों भूख लगतीही नहीं उससें भोजन करनेकी इच्छा होतीही नहीं. तृप्त हुवे जन खानेकी इच्छा नही करते हैं हरहमेशां तृप्तही हैं. कोइरोज भूख लगतीही नहीं और खानेकी इच्छा होती नहीं. इच्छा यें जडकी संगतिसें होती हैं, वो जडकी संगति छूटगइ हैं और स्वात्मदशा है वैसी प्रकट हुइ है. स्वदशामें जडकी किसी प्रकारकी इच्छा हैही नहीं. विकल्पभी जहांतक जडकी संगति होवै वहांतक होते है. सिद्धमहाराजजीकों वो जड संबंध नहीं, उससें किसी प्रकारका विकल्प नहीं. जगतमें संसारी जीवकों संसारमें है वहांतलक विकल्प है और सर्वथा संसार छूटजानेसें सिद्धमहाराजजी हुवे कि विकल्पका नामभी नही. वहां निर्विकल्पदशाका पूर्ण सुख है सो ऐसा है कि मुखसें कहाभी नहीं जाता. सारे जगतका सुख इकट्ठा करै उसकरतेंभी अनंतगुना सुख है वो सुखका वर्णन केवलज्ञानी मुखसें आयु पर्यंत न कहसकै उतना है; वास्ते सिद्धके सुखका पार नहीं. मगर जीव आत्मसुखका अंश सम्यग् पावैगा तब उसकों अनुभव मिलनेसें समझसकेगा कि सिद्धजीकों कितना सुख है वो प्रत्यक्ष मालूम होयैगा.

६१ प्रश्नः—मनुष्य मरणके समय संथारा करै सो किसतरह करै ? और उसमें क्या चिंतन करै ? और उससें क्या लाभ होवे ?

उत्तरः—वर्त्तमान समयमें आयुषकी चोक्कस खबर नहीं पडती है, उस्सें जावजीवका संथारा नही बनसकै; क्यौं कि भत्तपच्चख्खाण पयन्नेमें कहा है कि—केवलज्ञानी—मनपर्यव ज्ञानी—अवधिज्ञानी और पूर्वधर मुनीराजके कथनसें वा निमित्त शास्त्रसें, वा देववाक्यसें आयुषकी खबर पडै और प्रतीति होवै तो जावजीवका अनशन करै. और ऐसे महापुरुषोंका इस कालमें विरह होनेसें आयुषका निर्णय नहीं हो सकै तो सागारी अनशन करै. सागारी अनशन यानी एक दिन वा दो दिन, एक पहेर वा दो पहेर यावत् दो घडी—चार घडी वा अभिग्रह रख्खै कि मुठी वालकर नौकार

गिनों वहांतक सर्व आहारका त्याग और सब संसारी काम करनेका त्याग है, कुछभी पापारंभ काम नहीं करुं-इसतरह संथारा करनेका विधि सबने कहा है. वो औसर न मिलै तो द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव देखकर उच्चराना उसके आलेवेकी विधि नीचे मुजब है:—

अहन्नं भंते तुम्हाणं समीवे, भवं चरिमं सागारियं पच्चक्खामी, जइमे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीए. (किंवा) इमाइ वेलाए आहारमुवहिदेहं. सव्वंतिविहेण वोशिरियं. १ अरिहंत सक्खियं, सिद्ध सक्खियं, साहू सक्खियं, देव सक्खियं, अप्पसक्खियं, उवसंपज्जामि, अन्नथ्थणा भोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिया गारेणं वोसिरामि. २ नौकारपूर्वक ३„वार उच्चरावै. विशेष सागारिक-अहन्नं भंते तुम्हाणं समीवे, सागारियं अणसणं, उवसंपज्जामि, दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, दव्वओणं इमं सागारियं, अणसणं. खित्तओणं, इच्छंवा, अनिच्छंवा, कालओणं, अहोरत्तंवा, बीयादिन्नंवा, तइय दिन्नंवा, पासखमणंवा, मासखमणंवा, भावओणं, जावगहणं न गहिज्जामि, जावछलेणं, नछलिज्जामि, जावसन्निवाएणं, अन्नेणय केणइ रोगायं केणं एसपरिणामो नपरिवडइ तावमेयं इमं सागारियं अणसणं उवसंपज्जामि, तिविहंपि आहारं असणं खाइम साइमं अन्नत्थ० सहसा० महत्त० सव्व० वोसिरामि० पाणहारगंठ सहिय, पच्चक्खामी, अन्न० सहसा० महत्त० सव्व० अरिहंत सक्खियं, सिद्धस० साहूस० देवस० अप्पस० उवसंपज्जामि नित्थारपारगहोहं. जं जं मणेणबद्धं, जं जं वाएणभासियं पावं; जं जं काएणकयं, मिच्छामिदुक्कडं तस्स.१ अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुंसाहुणो गुरुणो; जिणपन्नतं तत्तं, इयसमत्त मए गहियं. २ ये सब आलावा नौकारपूर्वक तीन दफै उच्चराना.

इस आलावेमें प्रथम पाठ वो जावजीवका संथारा करनेका है. और थोडे कालके वास्ते करनेका पाठ विशेष सागारिक कहा है वहांसे है. वर्त्तमान समयके जीवोंको उच्चरना अनुकूल होवै वैसे उच्चरै. (मैंने अनशन विधिके पत्रमें जैसा था वैसा लिखा है.) महानिशीतथभी सूत्रमें कहा

है कि जो करना सो इरियावही पडिक्कमीके करना; वास्ते वक्त मिलै ता इरियावही पडिकमी जघन्य मध्यम उत्कृष्ट ये तीनमेंसें जो वन सकै सो करना. देववंदन करके गुरुवंदन कर ये पाठ उच्चारना तो विशेष श्रेष्ठ है; मगर जैसा औसरहो वैसा करना. औसर मिले तो सव जीवके साथ खमतखामणे कर लै. मुनि होवै तो मुनीके और श्रावक होवै तो श्रावकके व्रत उच्चरै, और चउसरणपयन्ना और आउरपच्चख्खाण, भत्तपच्चख्खाण, संथारापयन्ना, आराधनाप्रकीर्णक, आराधनापताकाका अध्ययन करै वा सुने उससें अध्यवसाय वहुतही सुंदर होवैगा. चउसरण आउर पच्चख्खाण पयन्नादिक सुननेसें समाधि मरण होता है उसका मुझकों अनुभव है. आयुष आ रहा होवै तो मरणसें तो नहीं वचता; मगर रोग शांत पडता है और धर्मश्रवण करनेसें चित्त पिरोया जाता है वो मेंनें देखा है. वास्ते वो पयन्नेका अभ्यास मरणके वक्त जरुर करना. वो पयन्नेमें ऐसा भावार्थ है कि धर्ममें जीव जरूर दृढ हो जाता है, और आत्मामें अच्छी भावना होती है. और वोभी इसतरहकी होती है कि- अहो! मैंने पैस्तर इस भवमें और पिछले भवमें पाप किये हैं वा जिससें पाप होवै वैसा मकान-दुकान-खेत्र वगैरः और कुदाले-पावडे-वरतन-शस्त्र-तलवार प्रमुख हरकोइ पापोपकरण [जिन वस्तुसें पाप होवै वैसे पदार्थ) वनाये है वो सव वोशिराता हुं. कोइभी पुद्गलीक वस्तुके साथ मेरेंपणेका संवंध मान लिया है वो सव वोशिराता हुं. कोइ वस्तुपर मेरा कुछभी राग रहे तो वो रागवाली वस्तुसें पाप होवै तो उस पापकी क्रिया मुझकों आवै; वास्ते कुछ जडपदार्थपरसें मेरे ममत्वभावकों त्याग करता हुं-कोइभी वस्तु मेरी है ही नही. मेरी वस्तु तो मेरा आत्मधर्म है. और जो जो पुद्गलीक पदार्थ है उनकों अज्ञानतासें मैंने मेरे मान लियेथे उससें अज्ञानपनेसें अनेक पाप उपार्जन किये. अव पुन्योदय जाग्रत हुवा उससें में कुछ वीतरागजीका मार्ग जाना कि वो सव चीजों-जडपदार्थके साथका मेरा संवंध तपासनेसें मालूम हुवा कि कोइभी तरहसें संवंध रखना लायक नहीं. वास्ते मेरे अज्ञानपनेसें जो जो भावने मेरापना मानाथा

वो त्याग करता हुं और उस पापकों निंदता हुं. मैंनें अज्ञानतासें अ-नादिकाल तक ये शरीर धनकों मेरा मान लियाथा, उस्सें मेंनें चारोंगतिमें भ्रमण किया और अनेक दुःख भुक्ते. वास्ते अब मेरे आत्मा सिवा स्त्री--पुत्र-पुत्री जो जो मेरे मान लिये हैं उन सबकों अज्ञानता और अज्ञान भावकों वोशिराता हुं. और एक आत्माका अवलंबन ग्रहण करकें मरणका डर छोडकर अदीनतासें मेरा आत्मा अविनाशी है उसकों आ-लंबन लेता हुं. उसके सिवा मेरा कुछ पदार्थ नहीं. आत्मा आपके आ-चारमें रहकरकेंभी मरता है और अज्ञानतासेंभी मरता है. मरण किसीकों छोड देता नहीं, तो अज्ञानपनेसें मरन करनेसें आत्मा कर्म करकें लिप्त हो जावै और भव भवके अंदर उसकों अनेक प्रकारके दुःख भुक्तने पडें; वास्ते मेरे आत्माका आचार जो जो शरीरकों होवे सो जानना; मगर वो दुःख सुख मुझकों होता है ऐसा मानलैना अयोग्य है. इसलिये मैं मेरे आत्म-स्वभावकों जाननेरूप रहकर मरन करुं कि जिस्सें मेरा आत्मा निर्मल रहवै और मलीन न होवै.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि प्रत्यक्ष दुःख होवै. और वो शरीरकों होता है ऐसा क्यौं मानाजाय ? उसके समाधानमें यही है कि जहांतक अपना आत्मस्वरूप नहीं जाना और उसका स्पर्शज्ञानभी न हुवा वहांतक तुमारे दिलमें मुझे दुःख होता है ऐसा लगैगा; मगर तुमकों तुमारे आत्म-स्वरूपका ज्ञान अनुभवगम्य होवैगा--जैसें प्रभुजीने फरमाया है वे-साही मेरा आत्मस्वरूप है, वो न्याययुक्तिसें करकें चित्तमें शुद्ध होगा कि तुमारे भाव ऐसे होवैगे कि--अब मेरे आत्मधर्मसें दूसरीतरह में नहीं चलुं-गा. ये शरीर प्रमुख सब जड पदार्थ हैं इसके साथ मेरा कुछभी संबंध नहीं ऐसा होवैगा. पीछे शरीरकों कोइ काट देवैगा या रोगकी वेदना होवैगी, उसमें तुमारा चित्त नहीं जायगा. तुमारे दिलमें मुझकों दुःख होता है ऐसा आयेगाभी नहीं. जैसें कि कोइ मनुष्य नाटक देखनेकों जावै और सारी रात जगैं; मगर निंद नहि लीगइ उसका खेद दिलमें नहीं आवेगा, खडे खडे पाँव दुखैं; मगर विवाहके हर्षसें वो दुःख ध्यानमें

नहीं आता. आभूषण पहने उसका भार पहननेके सुख अगाडी मनमें नहि आता, व्यापारमें पैदाश होवै उसकी पीछे मिहनत करनी पडै उसका दुःख निघाहमें नहीं आता. उसी वजहसें तुम तुमारे आत्मसुखके रागी वनोगे—आत्मसुखमें मग्न रहोगे तो शरीरकों वेदना होवेगी वोभी मुझकों होती है ऐसा खियाल नहि आने पावेगा. जहांतक शरीरके दुःखमें मग्न लग्न होता रहता है, वहांतक तुमारा भाव तुमारे आत्मभावपर तुमारी दशा नहीं हुइ उससें प्रश्न होता है कि—जब तुमारी दशाके सन्मुख होवोगे तब तो तुमारे मनमें आवेगा कि मैंनें अज्ञानपनेसें जो जो कर्म वांधे हैं वो कर्म शरीरमें रहकर बांधे हैं, सो शरीरकों भुक्ते विगर छूटकारा नहीं ओर आत्मा निर्मल होनेका नहीं. पुनः वो दुःखकों दुःख मानुंगा तो फिर नये कर्म बंधेजायेगें और आत्मा मलीन होवेगा. शरीरके सुख दुःखकों मुझकों सुख दुःख होता है ऐसा मानलैना वो मेरे आत्माका धर्म नहीं. मे सच्चिदानंदहुं, अनंत सुखका धणीहुं, अरागीहुं, अद्वेषीहुं, अछेदीहुं, अभेदीहुं, अगमहुं, अलखहुं, अगोचरहुं, पूर्णानंदहुं, सहजानंदीहुं, अचलहुं, अमरहुं, अमलहुं, अतिंद्रियहुं, अशरीरीहुं, अविनाशिहुं, ये मेरा स्वरूप है. तो मेरा आत्मा विनाशवंत नहीं. मरनसें शरीरका नाश होवेगा उससें मैं किसलिये डर रख्खुं ? शरीर तो सडने पडने विद्धंसनेके धर्मवाला है वो विनाश होवै उसमें मुझे क्यों चिंता करनी चाहियें ? मेरा आत्मा अमर है, उससें मरनेका नहीं; वास्ते मुजकों मरनका भय नहीं. जितना जितना भय आवै वो तो अज्ञानदशा है सो मेरे अब अज्ञानदशाके विचार किसलिये करना ? मुझे आत्मधर्ममें रहना वही उत्तम है. पूर्वभवोंमें अज्ञानतासें मरन किये और जीव भवचक्रमें भटका, अनेक प्रकारसें नरकादिककी वेदना भुक्ती, उंधे शिरसें गर्भावासकी वेदना भुक्ती, इस भवमें भाग्योदयसें वीतरागका धर्म मिला जिससें मैने मेरे आत्माका स्वरुप जाना. अब रोगादिककी वेदनासें मैं नहीं डरता हु. रोगके औषध अनेक प्रकारके करुंगा तोभी जो कर्मकी स्थिति पकी नहीं तो वहांतक रोग मिटनेका नहीं. रोगका सचा औषध तो समभाव है.

जो समभावमें रहुंगा तो जो जो वेदना होती है वो तो पूर्वके कर्म भुक्ते-जाते है उस्सें आत्मा निर्मल होता है, तो रोगकी वेदना मुझे होती हे एसा विकल्प किसलिये करुं? ऐसा शोच में रोगका विकल्प बिलकुल न करुं तो वेदनी कर्मकी स्थिति और रस कमती होवेगा. निकाचित मध्यम स्थानवृत्ति होगी वो शिथिल होजायगी. शिथिल कर्म होंगे वो नाश होजायेंगे; वास्ते मेरे आत्मस्वभावमें रहना वही औषध है. दूसरे औषधका अभिलाष किसलिये करुं? मेरे कुटुंबादिककी फिक्र करनी वोभी व्यर्थ है क्यौं किं सब जीव आप अपने पुन्यानुसारसें सुख भुक्ते हैं. किसीको कोइ सुख दुःख करनेकों समर्थ नहीं, तो मैं किस वास्ते शिरफोड करुं? अगर मैं क्या करसकताहुं? फिर अनादि काल गया वो भवोभवमें कुटुंब मिले तो मैं कितने कुटुबकी चिंता करुंगा? और पूर्वमें अज्ञानतासें, कर्मके स्वरुप नहीं जाननेसें चिंता करताथा; मगर इस भवमें कर्मक स्वरुप जानलिये उस्सें जानताहुं कि कुछ सुख दुःख कर्मानुसारसें होते हैं; वास्ते मेरी मुझें चिंता करनी या पिरायेकी फिक्र करनी फजूल है. मै मेरे आनंदमेंही वर्तुंगा. मेरी कुटुंब चाकरी करता है वोभी पूर्व समयमें पुन्य उपार्जन किया हें उसके फल हैं. मैने उन्होंकी चाकरी की है, और वै जीव मेरी चाकरी नहीं करते है सो मेरे पापोदयके फल हैं. उसमें उन्ह जीवोंपर द्वेष करना अयोग्य है. मरन समय कीसी जीवपरभी द्वेष करनेसें वो जीवके साथ वैरभाव होता है. वास्ते मेरे अब जो जो सुख दुःख उत्पन्न होवे सो समभावसें भुक्तना. पूर्वमें मुनीओंने, शिरपर खदिरांगार भरदियेथे तोभी वो वेदनाकी तर्फ नजर न कीथी, मेतार्य मुनीके शिरपर चमडेकी रस्सी लपेटकर बहुत दुःख देनमें आया तोभी समभावमें रहे; वास्ते इन मरणकी वेदनाभी उन्ह मुनिमहाराजोंकी तरह समभावसें भुक्तनी. किंचित्‌भी परभावमें मेरे प्रवेश न करना. और मेरा चित्त परभावमें जायगा तो आत्मा गिर्फतार हो जायगा. फिर मैंनें शरीर धन-कुटुंब सबकों वोसिराया है, उस्में मेरा चित्त किसींमें जायगा तो मेरी आराधना निष्फल हो जायगी. इसलिये ज्यौं राधावेध साधनेवाला

राधावेध साधनेमें तत्पर रहता है, त्यौं मेरेभी मेरे आत्मस्वभावमें रहना और उसका शोच करनाऔर उसीमेंही कायम रहना. इसतरह आराधनपनेसें मरन करनेसें अवश्य तीसरे भवमें या सातवे भवमें जीव सिद्धि वरता है ऐसें प्रभुजीने आगममें फुरमाया है. वास्ते प्रमाद छोडकर केवल मेरे आत्मामें वर्त्तनाही योग्य है. अहा ! प्रभुजीने यही मार्ग कहा है. यह मार्ग ग्रहण करनेसें आत्माकों आनंद होता है कि अब मेरा भवभ्रमण बंध पडेगा. थोडासाभी पुद्गलपर राग धरुंगा–धनकी ममता करुंगा वा कुटुंबपर राग रखुंगा तो मेरी आत्मदशा बिगड जायगी, और भवभ्रमणा चढजायगी. और मैं मेरी आत्मदशामें रहुंगा तो थोडे कालमें मेरी कार्यसिद्धि होजायगी. केसरी चोर जैसे बडे बुरे चोरी वगैरः अकार्य करनेवालेनेंभी समभाव अंगीकार किया तो फौरन केवलज्ञान प्राप्त हुवा. तो अब मैंभी मेरे आत्माके उपयोगमें रहुं. मेरे आत्मगुणपर्यायमें मैं विचार करुं. ज्यौं ज्यौं मैं स्वगुणमें लीन होउंगा त्यौं त्यौं कर्म नाश होवेंगे, और मेरा आत्मा निर्मल होवेंगा, फिर मेरे आत्माके अपूर्व भाव प्रकट होवेंगे. मेरे आत्माके सहज सुखका अनुभव होवेंगा. और वैसा होनेसें पुद्गल सुखकी वल्लभता नाश पावेंगी. परसुखकी इच्छा नाश होगा त्यौं त्यौं कर्म हठते जायेंगे, उस्सें विशेष विशुद्धि होगी. पीछे चाहेसो वेदना होवेंगी–कोइ काटडालेगा–कोइ मारेगा तोभी कुछ विकल्प नहीं आवेगा. जहांतक आत्माकी मलीनता है, वहांतक शरीरादिककी विकल्पना आवेगी; वास्ते अब तो मेरे अविनाशी सुखकों भावमें यह मरणावउं साधनेकों तत्पर होउं. परभावपर उदासीन दशा मेरी प्रकट होवेकि जिस्सें कुटुंबादिकपर चित्त नाहि जाने पावे. पूर्व समयमें मुनियोंने अपनी आत्मदशा चिंतन कर केवलज्ञान प्राप्त कियाथा, वैसी दशा अबतक मेरी नहीं हुइ है; तोभी श्रावकदशा मुजब विशुद्धि होवेंगी तथापि सातवे भवमें मुक्तिसुंदरी वरुंगा. वास्ते मेरे आत्मानंद सिवा दूसरा कोइभी आनंद जगतमें नहीं. जो जो बने सो जानना वही मेरा धर्म है. शरीरादिकमें जो जो उपाधि होती है उससें मेरे कर्म क्रमतमान होते हैं और मेरा आत्मा निर्मल

होता है; इससे वोभी आनंद होनेका कारण है; मै किसलिये दिलगीर होउं ? या विकल्प करुं ? भगवान् श्रीमत् महावीरस्वामीजीकों संगमे देवने अत्यंत उपसर्ग किया; तोभी समभाव नहीं छोडा वांसीतरह मेंभी समभावमें रहुं. कोइभी चीज मेरी नहीं है तो में किस बाबतका विकल्प करुं ? इसतरह निर्विकल्पतासें सर्वथा रहेगा तो केवलज्ञान पाकर सिद्धि वरेगा. और उस्सें उतरती विशुद्धिवालेभी गुणस्थानककी हदमें रहवेंगे तो सातवे भवमें सिद्धि वरेंगे. वास्ते संथारा करना और समभावसें रहनेका उद्यम करना. सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याणकारणं; प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयति शासनं. फिर भक्त पच्चख्खाणमें संथारा करनेवालेकेलिये गाथा ४१ वीमें शीतल समाधिके वास्ते नागकेसर, दालचीनी, तमालपत्र, इलायची और मीसरी ये दूधमें डालकर गर्म करकें ठंडा हुवे बाद अनशन करनेवालेकों वो दूध पीना, इस्सें उसकों शीतलता रहती है-इस मुजब कहा है. श्रावक धनवान होवै तो सप्त क्षेत्रमें धन व्यय करकें-देवगुरुकों वंदन करकें अनशन करै. अनशनका लाभ उस पयन्नेमें बहुतसा कहा है. इस मुजब सामान्य अनशन विधि है.

१६२ प्रश्नः—आत्मारामजीमहाराज-विजयानंदसूरीजीकों प्रश्न लिखेथे उन्होंका क्या जवाब है ?

उत्तरः—आत्मारामजीमहाराजका पत्र नीचेके लिखान मुजब आयाथाः—

शहर अंबाला. संवत् १९५१ के भादौ कृष्ण ११ रविवार-पूज्यपाद श्री श्री श्री १०८ श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वरजी-आत्मारामजी महाराजजी; आदि साधु १० के तर्फसें धर्मलाभ वंचना.

भरुच बंदरे श्रावक पुण्यप्रभावक देवगुरु भक्तिकारक शेठ अनूपचंद मलुकचंद वगैरः अत्र सुखशाता है. धर्मध्यान करनेमें उद्यम रखना. तुमारी चोपडी तपासकर पीछी भेजदी है वो पहुंचनेसें पहुंच लिखना. तुमारे लिखेहुवे प्रश्नोंका जवाब नीचे मुजब हैः—

१ केवलज्ञानीमें पांच इंद्रि प्राण वर्जकें बाकीके पांच प्राण जानना; क्यों कि केवलज्ञानी महाराज केवलज्ञानसें सब पदार्थ जानते हैं. जितनी इंद्रियोंका काम नहीं उससें वो प्राण प्रवर्त्तते नहीं.

२ केवलज्ञानीमें उदारिक, तेजस और कार्मण यह तीनुं शरीर और मन वचन काया यह तीनुं योग एक समयमें प्राप्त होवै; परंतु मनयोगमें द्रव्य मन समझना.

३ चय उपचयकों प्राप्त होवै और औदारिकादि वर्गणाका बनाहुवा होवै वो शरीर और शरीरका व्यापार वो काययोग समझना.

४ तीनु योगकी स्थिति अंतर्मुहूर्त्त और अवगाहना शरीर प्रमाण.

५ जहां शरीर होवै वहां काययोगकी भजना. शैलेशि अवस्थामें कायाका व्यापार न होवै उससें.

६ शरीर बंधकभी है और अबंधकभी है. वो अबंधक शैलेशि अवस्थामें.

७ तेरहवे गुणस्थानमें नोसन्नि नोअसन्नि.

८ केवलज्ञानी महाराजकों आहारादिक चार संज्ञामेंसें कोइभी संज्ञा न होवै.

९ कायबल नाम शरीरका सामर्थ्य है. और स्पर्शेंद्रि शीत उष्णादिककी परीक्षा करनेवाली है.

१० ज्ञानीकी अवगाहना आत्म प्रमाण.

११ तीर्थंकरजीके वचन, केवलज्ञानीकों कोइभी ज्ञानपनेसें न भणवें. क्षायकभावका ज्ञान है उस्सें भणमना ये क्षयोपशमका धर्म है.

१२ देवताकों आहार करनेके वक्त कोइ देखसकै और कोइ न भी देखसकै.

१३ जीव आहार लेवै सो शरीर लेवै और इंद्रियें तो फक्त रसादिकका ज्ञान करनेवाली हैं.

इसतरहका पत्र महाराजजी साहवका था. यह जवाब विजयानंदसूरीजीके सिवा दूसरेसें लिखने वडे कठिन थे. वांचकर हम वडे खुश हुवे. और इस कितावमें दाखिल करदिये गये.

प्रश्नः—मरणके वक्त समाधिमें चित्त रहेनै उस वास्ते कोइ जाप करनेका कहा है ?

उत्तरः—लोगस्सके कल्पमें ॐ ॐ अंबराय किंचिय वंदिय महीया जेए लोगस्स उत्तमा सिद्धाः आरुग्ग बोहिलाभं, समाहिवर मुत्तमं दिंतु. इस मंत्रके १५००० जप करना. धूप दीप करकें स्थिर आसन रखना. खुजाल आवे–मच्छर काटे तोभी उंचा हाथ न करना. (चलितासन न रखना.) मालापर नजर लगानी मगर फिरानी नहीं. जीभ होठ गिननेके वक्त न हिलाना. एक ध्यानसें गिनलेनेसें मरनके वक्त समाधि रहवैगी. ऐसा लोगस्स कल्पमें कहा है. बीमारीके वक्तमें इस गाथाका अवश्य ध्यान रखना. आउर पच्चख्खाण पयन्नेमें कहाहै कि–बारह अंगके जाननेवालेभी मरनेके वक्त विशेष ध्यान नहीं करसकते हैं. उससें एक गाथाका ध्यानभी भवसमुद्रकों तिरानेवाला है; वास्ते वीतरागके धर्मकी हरकोइ गाथाका ध्यान धरना. समाधीमें रहनेकी भावनाभी जीवकों तिरानेवाली है. वास्ते ये जाप करलैना बहुत फायदेमंद है.

१६४ प्रश्नः—साधारण द्रव्यसें धर्मशाला बनवाइ गइ हो उसकों श्रावक वापरै या उसमें संघ वगैरःको जीमावें तो श्रावककों मुनासिब है ?

उत्तरः—धर्मशाला बनवाइगइ है वो श्रावकके उतरने–विश्रामके लियेही बनी है. उसमें मुकाम करनेका कुछ बाध नहीं; लेकिन अपनी अपनी शक्ति मुजब कुछ साधारणमें रकम–पदार्थ दैना चाहियें. श्राद्धविधिके पत्र ११० में साफ साफ कहागया है कि–कमती किराया देवै तो प्रकट दोष है. क्योंकि धर्मशाला बनवानेवालेकी दीर्घ कालतक एक जैसी स्थिति–हालत नहीं रहती है, तो उस धर्मशालेकी मरामत वगैरःका खर्च कहांसें निकालना ? वास्ते श्रावक दें जावैं तो वो मकान अच्छी हालतमें रहने पावै. फिर स्वामी–भक्ति करनेका पैसा जमा करगये हैं उसका भोजन पदार्थ बनवाकर भोजन करना उसमें कुछ हरकत नहीं है; परंतु स्वामीका माल तृष्णापनेसें इंद्रियों के विषयके वास्ते अतिशय आकंठतक न खाना. फक्त स्वामीभाइका दिल रखनेकेलिये जीमनेकों जाना है उससें जीमानेवालेका बहुत मान करते हुवे जो वस्तु हाजिर हो वो निर्वाह रीतिसें जीमलेवै, तो हर्जा नहीं. मगर उसके कार्यभारी हो उसमेंसें कोइ चीज घरपर ले

जावे या अपने स्नेही संबंधी वसीलेदारोंकों देदेवे या हरकिसी प्रकारसें अपने संसारी काममें साधारणकी चीज वपरासमें लैनी या पैसा बिगाडना उससें तो श्राद्धविधिमें नुकशान कहा है. वास्ते साधारण द्रव्यभी बिगाडदेना महा पापका कारण है; साधारण द्रव्यके उपरकी कथा आगे आचुकी है वो यहांपर ध्यानमें लेनी.

यह कथाऐं सुनकर तुच्छ श्रद्धावालोंकों व्यामोह होवैगा कि इतना देवद्रव्य या साधारणद्रव्य, ज्ञानद्रव्य खाया उसके इतने सारे कर्म बांधे जावे? उसकों शोचना योग्य है कि—जैसें कोई लडकीके पैसे खाते हैं उन्होंकी कितनी निंदा होती है? उसका सबब यही है कि लडकीकों देना लायक है; मगर उसका लैना नालायक है. वैसें इस द्रव्यमें अपना द्रव्य दैना—व्यय करना योग्य है; लेकिन उसकी एवजीमें उनका द्रव्य खा जावे, तो पापही होवै; वास्ते ज्ञानीनें ज्ञानसें विशेष पाप देखा सो बतलाया है.

१६९ प्रश्नः—पुद्गल कितने प्रकारके कहे हैं?

उत्तरः—पुद्गल तीन प्रकारके कहे हैं. जीवने जो ग्रहण किये हुवे हैं उसमें जीव है वहांतक प्रयोगशा कहा जावे. जीव नीकल गये बाद जो पुद्गल रहे वो मिश्रशा कहा जावे, और स्वाभाविक पुद्गलके स्कंध होते हैं—जैसें कि आकाशमें हरे पीले रंग होते मालूम होते हैं वो अगर अंधेरेके पुद्गल या बदलके पुद्गल जीवके ग्रहण न कियेसें होते हैं वो विश्रशा कहा जाता है. इस तरह तीन जातीके पुद्गलका अधिकार भगवतीजीमें पत्र ५२१ में है.

१६६ प्रश्न—परिहार विशुद्धि चारित्र कितने पूर्व पढे हुवे अंगीकार करे?

उत्तरः—नौ पूर्वकी तीसरी वस्तु तक पढे हुवे होवैं वो परिहार विशुद्धि संयम आदर सकै. नौ जने गच्छमेंसें निकलें, उसमें चार जने छ महिने तक तपश्चर्या करैं और चार जने उनकी वैयावच्च करैं और एक गुरु स्थापन करें. तपश्चर्या करनेवाले छ मास तक कर रहैं तब वैयावच्च करनेवाले छ महिने तक तपश्चर्या करैं. पीछे छ महीने तक गुरुतपश्चर्या करैं. दूसरे आठ मेंसें एककों गुरुस्थापन करके सात जने वैयावच्च करैं. इस तरह अठारह

महीने तक तपश्चर्या करें उसका नाँव परिहारविशुद्धि चारित्र कहा है. ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ५७१ में है.

१६७ प्रश्नः—सिद्धमहाराजजीकों चारित्र कहा जाय या नहीं ?

उत्तरः—सिद्धमहाराजजीकों व्यवहाररूप चारित्र नहीं जिससें भगवतीजीके पत्र ५७६ मै नोचारित्र नोअचारित्र कहा है.

१६८ प्रश्नः—विभंग ज्ञानवालेकों दर्शन होवै या नहीं ?

उत्तरः—कर्मग्रंथमें तो ना कही है. मगर भगवतीजीके पत्र ५८८ में विभंगज्ञानवालेकों अवधिदर्शन कहा है. पन्नवणाजीमेंभी अवधिदर्शन कहा है. अब ये दो मतांतर हैं—तत्त्वकेवलीगम्य है.

१६९ प्रश्नः—मुनीकों अशुद्धमान आहार पानी देनेसें क्या फल होवै ?

उत्तरः—मुनीकों मुख्यतासें तो शुद्धमान आहारपानी देनेकाही भाव होवै; मगर कितनेक सबबोंकेलिये, अशुद्धमानभी देदेवै. फिर गुरुपर राग है. उससें कुछ कुछ चित्तमेंभी आजाय. परंतु मुनीकों प्रतिलाभनेका अतिशय भाव है उसलिये अल्प दोष और बहुत निर्जरा भगवतीजीके पत्र ६१० में कही है.

१७० प्रश्नः—प्रायश्चित लेनेका भाव है और उस अरसेमें काल करजाय तो आराधक होवै या नहीं ?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र ६१५ में मुनी गौचरी गये है और वहां कुछ दोष लगा है वो गुरुके पास जाकर आलोयणा लेनेका भाव है और अधबीच काल करै तो उसकों आराधक कहे हैं.

१७१ प्रश्नः—बडेमें बडा दिन कौनसा या कितना होवै ? और रात्री कितनी होवै ?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र ९३८ में कममें कम दिन बारह मुहूर्तका यानी चोवीस घडीका और कममें कम रात्रीभी उतनीही होवै. और ज्यादेमें ज्यादे दिन अठारह मुहूर्तका यानी छतीस घडीका और रात्रीभी ज्यादेमें ज्यादे उतनीही होवै.

१७२ प्रश्नः—श्रावक पौषध लेकरकें धर्मकथा करै सो अधिकार किसतरह है ?

उत्तरः—भगवतीजीमें पत्र ९७० के अंदर ऋषिभद्र पुत्रका अधिकार है. वहां श्रावक आसन लेकर बैठे हैं और ऋषिभद्र धर्म प्ररुपता है. उसमेंसें श्रावकको शंका हुइ है उससें भगवंतजीकों पूंछा कि ऋषिभद्र इसतरह प्ररुपता है. भगवंतजीने फरमाया कि ऋषिभद्र प्ररुपता है सो सत्य है इस मुजब अधिकार है. और उपदेशमालामें गाथा २३२ के अंदर श्रावक दूसरे श्रावकोंकों धर्मोपदेश करै ऐसा कहा है.

७३ प्रश्नः—भव्य जीव है सो सबी सिद्धि वरै तब सब अभविही बाकीमें रहे या नहीं ?

उत्तरः—जयंती श्राविकाने भगवतीजीमें प्रश्न पूछे हैं उसमें ये प्रश्न है, उसका जवाब पत्र ९९१ में हैं कि–गत काल अनंता गया उसका अंत नहीं तोभी एक निगोदके अनंतमें हिस्सेके सिद्धि वरे हैं. युंही आते कालकाभी अंत नहीं; वास्ते दोनु तुल्य हैं. उससें आते कालमेंभी दूसरे एक निगोदके अनंतमें हिस्सेके सिद्धिपद प्राप्त करेंगे. उसके सबबसें भवि खाली नहीं होनेके.

७४ प्रश्नः—समकित सहित कौनसी नरक तक जावै ?

उत्तरः—समकित सहित छट्ठी नरक तक जावै और सातवी नरकमें समकित वमन करकें जावै–ये अधिकार भगवतजीके पत्र १०८७ में है.

७५ प्रश्नः—पुस्तक और प्रतिमाजी होवै वहां हास्यविनोद करनेसें आशातना लगै या नहीं ?

उत्तरः—जहां ज्ञान और प्रतिमाजी होवै वहां आहार निहार स्त्रीसंयोग और हास्यादिक क्रीडा करनेसें आशातना होती है. ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ११७७ में है. सौधर्मसभामें स्तंभे है उसमें पुस्तक और प्रभुजीकी दाढायोंके डिब्बे हैं, उससें इंद्राणीके साथ हास्यविनोद सुधर्मेंद्र वहां नहीं करते हैं, उसीतरह मनुष्यकोंभी न करना.

७६ प्रश्नः—क्षयोपशमभावके समकित और उपशमभावके समकितमें क्या तफावत है ?

उत्तरः—क्षयोपशमभावका समकित है उसकों समकित मोहनीविपाकका उदय है, और मिथ्यात्व मोहनीप्रदेश उदय है. और उपशम समकितवालेकों मि-

क्षयात और समकित मोहनी विपाक उदय तथा प्रदेश उदयसें हटजाता है.
ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ११८३ में है.

१७७ प्रश्नः—श्रावक खुल्ले मुँहसें बोलै तो उचित है ?

उत्तरः—श्रावककों अवश्य मुखपर कपडा या हाथ या मुहपत्ति रखकर बोलना. खुल्ले मुंहसें न बोलनां चाहियें. इस संबंधी भगवतीजीमें गौतमस्वामीजीने प्रश्न पूँछा है कि—इंद्र सावद्यभाषा बोलता है या निरवद्यभाषा बोलता है ? उसका उत्तर भगवंतजीने दिया है कि इंद्र जिस वक्त मुँहपर कपडा या हाथ रखकर बोलता है उस वक्त निरवद्यभाषा बोलता है और खुल्ले मुँहसें बोलै उस वक्त सावद्यभाषा बोलता है. इस तरह पत्र १३०२ में अधिकार है.

१७८ प्रश्नः—पूर्वका ज्ञान कहां तक रहा ?

उत्तरः—पूर्वका ज्ञान भगवंतजीके निर्वाण वाद एक हजार वर्ष तक रहा. ये अधिकार भगवतीके पत्र १५०१ में हैं.

१७९ प्रश्नः—प्रभुजीका शासन कहां तक रहेगा ?

उत्तरः—इकीस हजार वर्ष तक रहेगा यह अधिकार भगवतीजीके पत्र १५०४ में है.

१८० प्रश्नः—विद्याचारण जंघाचरण मुंनी नंदिश्वरद्वीपमें जिनप्रतिमाजीका वंदन करनेकों जावै ये अधिकार किस ग्रंथमें है ?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र १५०६ में है.

१८१ प्रश्नः—श्रावक, श्रावककों और श्राविकाकों व्रत उच्चराय सकै या नहीं ?

उत्तरः—श्रावक, श्रावक-श्राविकाकों व्रत उचराते हैं. ज्ञाताजीमें पत्र १०१६ (छपी हुइ प्रत) में है. जितशत्रु राजाने सुबुद्धि मंत्रीके पास धर्म सुनकर प्रतिबोध पाकर श्रावकके बारह व्रत (सुबुद्धि प्रधानके पास) लिये हैं. फिर पच्चख्खाणके करानेवाले जाननेवाले और अनजान उसके चार भांगे कहे हैं—वो इसतरह हैं:—पच्चख्खाण कराने और करनेवाला दोनु जाननेवाले होवै वो शुद्ध पच्चख्खाण है. करानेवाला जाननेवाला हो और करनेवाला अनजान हो; मगर करानेवाला जाननेवाला होनेसें व्रतकी रीति बतलावे वास्ते यहभी शुद्ध है. करानेवाला अनजान और करनेवाले

जानकार होवे वोभी शुद्ध कहे हैं; मगर वहां दर्शाया है कि तथाविध गुरुके अभावसें पिता-दादा-मामु-भाइ-या कोइभी मवाहदार रखकर करना. क्यौं कि वै अनजान हैं. मगर आप जानता है उससें शुद्ध है. चौथा भांगा करानेवाला और करनेवाला-दोनु अनजान होवै-वो अशुद्ध पच्चख्खाण कहा है. इसतरह प्रवचनसारोद्धारजीकी टीकाके पत्र ३९ में कहा है. उसपरसें तीसरे भांगेसें सिद्ध होता है कि पिता वगैरः अनजान हैं, उनके समक्ष पच्चख्खाण लैना, तो जानकार श्रावकके पाससें लैना वो तो ज्यादे योग्य है. ऐसी चौभंगी योगशास्त्रमें और पंचाशकजीमें भी है; वास्ते मुनीमहाराजके अभावसें श्रावकके पास पच्चख्खाण लैना योग्य है.

२ प्रश्नः—श्रावककों फासुक पानी पीनेसें क्या फायदा है? क्यौं कि आरंभ तो करना करवाना रहा है, तो सचित्तका अचित्त करकें पीवै उससें क्या फल है?

उत्तरः—श्रावककों सचित्त वस्तुकी मूर्छा उतर गइ ये वडा लाभ है. कर्म बंधन है सो इच्छासें करकें है. वो सचित्त वस्तुकी इच्छा बंध हुइ वो वडा लाभ है. फिर सचित्त जल जगतभरमें है वो उन सब जलके ऊपर चित्त छुट्टा रहता है, वो फासुक जल पीनेवालेकों बंध होजाता है. फासुक पानी जहां जावे वहां नहीं मिलता है, तो वो परिसहभी शायद सहन करना पडता है. फिर सचित्त जलमें समय समय जीव पैदा होते हैं और नाश पाते हैं उनकाभी आरंभ दूर होजाता है, उससेंकरकें श्रावककों सचित्तका त्याग होता है. उसके अतिचारभी कहे हैं. फिर महंत श्रावक आनंदजी आदिने सचित्तका त्याग किया है और आरंभ छुट्टा है. यह सचित्त त्याग ७ वीं पडिमामें किया है और आरंभका त्याग ८ वी पडिमामें किया है. यह अधिकार उपासकदशांगजीकी छपीहुइ प्रतके पत्र ६६ में है. पुनः आठवी पडिमामें आपकों आरंभ करनेका त्याग है; मगर आरंभ करवानेका त्याग नहीं. आरंभ करवानेका नौवी पडिमामे त्याग है. वास्ते आरंभ छुट्टा है; तोभी आनंदिक श्रावकोंनें सचित्तका त्याग किया है. इसीतरह

वर्त्तमान समयके श्रावकोंकोंभी त्याग करना मुनासिब है.

१८३ प्रश्नः—श्रावक जिनमंदिरमें जावे वहां अच्छी आंगी रचीगइ हो तो, या प्रभु गुणगान होता होवै तो वहां उनकों क्या चिंतन करना ?

उत्तरः—जिन जिन पुरुषोंने आंगीमें पैसे खर्च किये हैं उन उन पुरुषोंकी अनुमोदना करनी; कि धन्य है ! संसारके कार्यमें पैसा खर्चना मोकूफ करकें प्रभुभक्तिमें पैसा व्यय किया है या करते हैं ! मेरा चित्त ऐसा कब होयगा कि मेंभी ऐसी प्रभुभक्ति करुंगा फिर आंगीके बनानेवाले पुरुषकी अनुमोदना करै कि अपना घर काम छोडकर आंगी रचनामें कालव्यतीत किया है-करते हैं ऐसा मेरा भाव कब होवैगा ? पुनः गायन होता हो तो जो जो प्रभुजीके गुण गाते हैं उसमें लीन होना-नहीं कि गायनके विषयमें लीन होना. फिर नजरभी प्रभुजीके सन्मुख स्थापनी; लेकिन गानेवालेके स्हामने न देखना; क्यों कि प्रभुके सिवाकी तीन दिशामें देखना दशत्रिकमें वर्जीत करनेका कहा है; वास्ते प्रभु सन्मुख दृष्टि रखनी. फिर राग-हलक अच्छाहो तो उसकेलिये ऐसा चिंतन करना चाहियें कि मुझकों ऐसा गाते आता होता तो मेंभी प्रभु गुणगान करता. ऐसा शोचना; नहि कि रागमें लीन होना. बालजीवोंकों तो प्रभुकी जो जो प्रशंसना है वो परंपरासें गुनदायक है; मगर विवेकीकों तो प्रभुजीके गुणगान करना वही गुनकारी है. यशविजयजी महाराजने सवासो गाथेके स्तवनमें कहा है कि "जिनपूजामां शुभ भावथी, विषय आरंभतणो भय नथी." वास्ते जिनमंदिरमें जाकर विषयकी दृष्टि न रखनी वही गुणकारी है. वहां परभावना छोडनेकों जाना है और विषयकी दृष्टि होवै तो फिर विषय कहांपर छूटा होजाने पावै ? वास्ते पुद्गलीक पदार्थमें दृष्टि न रखते प्रभुके गुण यादकर प्रभुकी आज्ञा समालकर शुभ भावकी वृद्धि करनी और पुद्गल राग घटाना वही धर्म है.

१८४ प्रश्नः—पिछले भवमें आयुष बांधाहोवे उसी मुजब पूरा होवै या किसीतरहसें टूटै ?

उत्तरः—शास्त्रमें आयुष दो प्रकारके कहे हैं-एक उपक्रमी और दूसरा निरुपक्रमी

उपक्रमी आयु है उसकों उपक्रम यानी विष शस्त्र प्रमुख लगजानेसें आयु कम होता है–उसें अकाल मृत्यु कहाजाता है. वो उपक्रमी आयुवालेने जो आयु बांधलिया है वो शिथिल है उससें उसकों उपक्रम लगता है. यह अधिकार तत्त्वार्थमें दूसरा अध्याय पूर्ण होनेके वक्त पत्र १०५ मेंसें शुरु होकर अध्याय दूसरा पूर्ण होने तक है. पुनः विशेषावश्यकमेंभी अधिकार है. और आचारांगजीकी शिलांगाचार्यकृत छपीहुइ टीकाके पत्र १११ में है. बाकीभी बहुतसी जगहपर है. वास्ते उपक्रमकी अच्छीतरह संभाल रखनी, सबब कि बहुतकरकें इस कालमें बहुतसें मनुष्यके उपक्रमी आयु होते हैं वास्ते उपक्रम लगा हो तो उसकों दूर करनेका उद्यम करना. उसलिये मुनीमहाराजभी औषधादिक करते हैं; लेकिन सारा जन्मभर व्रत पालन करकें छेल्ले वक्तमें दूषण लगै या व्रत भांगै ऐसी दवा वापरनी वो अच्छा नहीं. ज्यौं बनसकै त्यौं व्रत रखना और रोगका विकल्प न करना. रोगका विकल्प न करनेसें रोग जल्दी दूर होजाता है; वास्ते अपना आत्मधर्म न बिगडे ऐसा उद्यम करना.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि हरएक व्रतोंमें चार आगार हैं. उसमें सव्व समाहिवत्तियागारेणं यह आगार है वास्ते कदापि अयोग्य वस्तु त्यागकी हुइ उपयोगमें लेवै तो क्या उससें व्रत भंग होवै? उस विषयमें समझना कि आगार रक्खे हैं; मगर उसके बारेमें शास्त्रमें कहा है कि दृढ प्रतिज्ञवान आगार सेवन नहीं करते हैं. जिसका मन चलित या बेढंगा है उससें रागादि सहन हो सकते नहीं. परिणाम बिगड जाते हैं. ऐसा लगै तो व्रतपर परिणाम रखनेके लिये प्रायश्चित लेनेकी भावना सह उपयोगमें लैना. वो आगारवाली वस्तु सेवन कियेकाभी प्रायश्चित्त कहा है. तो वो अपवादमार्ग है; परंतु जो आगार नहीं सेवन करते हैं और शुद्ध स्वरूपपर नजर रखते हैं उसकी अपेक्षासें तो ये उतरते दर्जेका है. पुनः कितनेक जीव पैसेके लोभसें यानी निर्दोष दवाका खर्च ज्यादा लगता है उस कृपणतासें दूषित दवाइयें वापरते हैं वो तो बहुतही दोष है. ऐसे मनुष्य पैसेकी कसरसें अभक्ष दवायें वापरते हैं और पीछा शुभ

खाते द्रव्य वापरे, उस करतें शुभ खातेमें कमी खर्च करके भक्ष द्वामें वापरे तो विशेष उत्तम नीति है. वास्ते व्रत अखंडित रहे वैसें करना वही कल्याणकारी है. और जिसके परिणाम विगडते होवे उसकों आगार सेवन करनेकी मना करनी वोभी अयोग्य है.

१८५ प्रश्नः—साधुजी गाँवमें प्रवेश करे तो उन्होंकों वाद्य गीतके साथ स्हामैया करके ल्यानेका शास्त्रमें कहा है ?

उत्तरः—श्राद्धविधिमें पत्र २६८ में ऐसा अधिकार है कि श्री धर्मघोषसूरीके नगर प्रवेशके उत्सवमें वहोत्तर हजार टके श्रावकने खर्च कियेथे. पुनः व्यवहार सूत्रके भाष्यमें पत्र १८२ के अंदर प्रमाण दिया है कि प्रतिमाधर मुनी प्रतिमा पूर्ण होवे तव नगर वहार रहीकें गुरुकों खवर कि मैं आया हुं. वाद गुरु, राजा वगैरः जो श्रावक होवें उसकों जाहिर करें, और पीछे उसें श्रावक वडे आडंवरके साथ प्रवेश करावें उससें शासनकी प्रभावना होवे और वहुतसे जीव धर्मानुरागी होवें. इत्यादि बहुतसा दर्शाव श्राद्धविधिमें है; वास्ते वडे ठाठसें गुरुमहाराजजीकों नगरमें प्रवेश करवाना.

१८६ प्रश्नः—वर्षाकालमें चीनी वगैरःका त्याग करनेका कौनसे शास्त्रमें है ?

उत्तरः—श्राद्धविधिमें पत्र २५४ के अंदर वर्षाके चौमासेमें चीनी, खजूर, द्राक्ष, मेवे, सुकवनीके शाख-भाजी वगैरः अभक्ष्य कहे हैं. वहां देखोगे तो साफ मालूम हो जायगा; क्यौं कि चातुर्मासमें उन चीजोमें त्रस जीवकी उत्पत्ति होती है वास्ते त्याग करनीही चाहियें.

१८७ प्रश्नः—गुरुद्रव्य किसकों कहेना ?

उत्तरः—श्राद्धविधिके पत्र १०० में टव्वेवाली प्रतके अंदर वस्त्र पात्र प्रमुख उपगरणकों गुरुद्रव्य कहा है.

१८८ प्रश्नः—जिनविंवकी प्रतिष्ठामें और दीक्षामें मुहूर्त्त किस तरह देखना चाहियें ?

उत्तरः—मैंने लग्नशुद्धि वगैरः जैनके मुहूर्त्त संबंधी ग्रन्थ देखे हैं.. उनमेंसें सामान्य रीतिसें निम्न लिखित मुहूर्त्त देखना दुरस्त है. विशेष विचार और शास्त्रोंसें जान लैना.

पहेले महिने देखने-सो मिगशर, अघहन, फागुन, वैशाख, ज्येष्ट और अषाढ इन्ह महीनोमें प्रतिष्ठा करनी लग्नशुद्धिमें कही है. और ज्योतिर्विदाभरण ग्रंथमें जिनप्रतिष्ठाकी संक्रांतियें कही हैं यानी वृश्चिक, मकर, कुंभ, मेष, वृषभ, मिथुन यह छ. संक्रांति कही हैं. (वो कालीदासकृत ग्रंथकी टीका जैनाचार्यने की है.) पुनः प्रतिष्ठाविधिके पंचांगमें सावन महीनाभी लिखा है, और सावन महीनेमें प्रतिष्ठा भइहुइभी मंदिरोंमें देखनेसें मालूम होती है. तत्त्व केवलीगम्य अपने सिद्धांतोंमें पूर्णमासीके दिन पूरा महीना होनेकी मर्यादा है, उससें मुहूर्त्तभी उसी मुवाफिक लेना.

तिथियें सामान्य रीतिसें शुक्लपक्षकी १० मीसें लगाकर कृष्णपक्षकी पंचमी तक उत्तम कही हैं. और १-२-५-१०-१३-१५ ये शुक्लपक्षकी और १-२-५ यें कृष्णपक्षकी सुंदर कही हैं.

वार—सोम, बुध, गुरु और शुक्र ये सुंदर कहे हैं. तथापि दूसरी तीथि और वार सिद्धियोगसें युक्त होवे तो लग्नशुद्धिमें सुखदायक कहे हैं.

फिर आरंभसिद्धिकी वडी टीकामें एक मंगलवारको छोडकर सब वार प्रतिष्ठामें लिये हैं; वास्ते बलवान् योग होवे तो तिथि वारका नियम नहीं है.

प्रतिष्ठामें-मघा, मृगशिर्ष, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपद, अनुराधा, रेवती, श्रवण, मूल, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, स्वाती, और धनिष्ठा ये नक्षत्र लेना.

कुंभस्थापनमें रवि नक्षत्रसें प्रथमके पांच नक्षत्र छोडकर पीछेके आठ नक्षत्र और उस पीछेके आठ छोडकर उस पीछेके छ नक्षत्र यह चौदह नक्षत्र कुंभचक्रके हैं. उसमें कुंभस्थापनका मुहूर्त्त करना. पहेले पांच और आठ, पीछेके आठ वर्जित करने योग्य है.

ऊपर प्रतिष्ठा नक्षत्र कहे हैं, उस अंदरका प्रतिष्ठा करानेवालेके जन्मनक्षत्रसें १०-१६-१७-१८-२३-२५ होवै तो काममें न लैना.

आडल योग सो रवि नक्षत्रसें १-७-९-१६-२१-२३-२८ यह नक्षत्र होवै तो आडलयोग होता है. वो परदेश जानेके वक्त वर्जित है. और दूसरे कामोंमेंभी वर्जित किया जाय तो अच्छा है.

वार तिथि नक्षत्रोंके संयोगसें जो जो कुयोग होते हैं वोभी वर्जित है. वो योग नीचेके कोष्टकसें ध्यानमें लिजीयें:—

	रवि	सोम.	मंगल.	बुध.	गुरु.	शुक्र.	शनि.	कुयोगो.
तिथि.	७	६	५	४	३	२	१	कुलिकयोग
,,	५	४	३	२	१	७	६	उपकुलिकयोग.
,,	३	२	१	७	६	५	४	कंटकयोग.
,,	४	७	२	५	८	३	६	अर्धप्रहर.
,,	८	३	६	१	४	७	२	कालसमय.
,,	१२	११	१०	९	८	७	६	कर्कयोग.
नक्षत्र.	मघा.	विशा.	आर्द्रा.	मूल.	कृति.	रोहि.	हस्त.	यमघंट.
,,	विशा.	पू. षा.	धनि.	रेव.	रोहि.	पुष्य.	उ. फा.	उत्पातयोग.
,,	अनु.	उ. षा.	शत.	अश्वि.	मृग.	अश्ले.	हस्त.	मृत्युयोग.
,,	ज्येष्ठा.	अभि.	पू. भा.	भर.	आर्द्रा.	मघा.	चित्रा.	काणयोग.
तिथि.	७	७	०	१-३	६	३	७	संहृत योग.
नक्ष.	मघा.	चि.	उ. षा.	धनि.	उ. फा.	पुष्य.	रेव.	वार, नक्षत्र निषेध.
,,	ज्ये.मघा	पू. षा.	शत.	पू. भा.	रो. मृ.	रो. मृ	उ. षा.	
,,	चि. अ.	विशा. उ. षा.	आर्द्रा. धनि.	मू. आ. भरणी.	आर्द्रा. शत.	अश्ले. पू. षा.	ह. चि. पू षा.उ.	
तिथि.	५ ह.	६ मृ.	७ अश्वि.	८ अनु.	९ पुष्या.	१० रेव.	११ रो.	महा मृत्यु योग.

उपरके कोष्टकमें बुरे योगोंका संयोग बतलाया है. जिसमें कुलिकयोग होता है सो चार घडी होता है सो प्रतिपदाके रोज पहेले चोघडीयेमें, बीजके रोज दूसरे चोघडियेमें, ऐसे सातमके रोज सातवे चोघडियेमें होता है. और उपकुलिक, कंटक, अर्धप्रहर; कालसमय, ऐसे ऐसे कोष्टकमें तिथिके संयोगसें कुयोग होते है वो जिस तिथिके संयोगसें हो उस तिथिकी संख्यावाले चोघडियेमें वो योग रहता है. उस वक्तके सिवाका वक्त अच्छा गिना जाता है. दूसरेभी कुयोग निचे मुजब है:—

रवि.	सोम.	मंगळ.	बुध.	गुरु.	शुक्र.	शनि.	(कुयोग)
भर.	आर्द्रा	मघा.	चित्रा.	ज्येष्ठा.	अभि.	पू. भा.	कालदंडयोग.
आर्द्रा.	मघा.	चित्रा.	ज्येष्ठा.	अभि	पु भा.	भर.	ध्वांक्षयोग
अश्ले.	हस्त.	अनु.	उ. षा.	शत.	अश्वि	मृग.	वज्रयोग.
मघा.	चि.	ज्ये.	अभि.	पु. भा	भर	आर्द्रा.	मुद्गरयोग
चित्रा.	ज्ये.	अभि.	पु. भा.	भर.	आर्द्रा	मघा	कंपयोग
स्वा.	मूल.	श्रव.	उ. भा	कृति.	पुनर्व.	पु फा	लुंपकयोग.
वि.	पु. षा	धनि.	रेव.	रोहि.	पुष्य	उ फा	प्रवासयोग.
अनु.	उ. पा.	शत.	अश्वि.	मृग.	अश्ले.	हस्त.	मरणयोग.
ज्ये	अभि.	पु. भा.	भर.	आर्द्रा.	मघा	चि.	व्याधयोग.
पू षा.	धनि.	रेव.	रोहि.	पुष्य	उ. फा	विशा.	शूलयोग.
अभि.	पु भा	भर.	आर्द्रा.	मघा	चि.	ज्ये.	मूशलयोग.
शत.	अश्वि	मृग.	अश्ले.	हस्त	अनु.	उ. षा	क्षययोग.
पु. भा.	भर	आर्द्रा.	मघा.	चि	ज्ये	अभि	क्षिप्रयोग

यमलयोग वर्जित है, सो गुरु, मंगल और शनि इनमेंसें कोइ वार और तिथि २-७-१२ होय, और मृग, विशाखा, धनिष्ठा इनमेंसें कोइ नक्षत्र होवै जब होता है सो तीनूके योगसें वर्जित है.

त्रिपुष्कर योग-सो २-७-१२ तिथि, गुरु, मंगल, शनिवार, और कृतिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र होवे इन तीनू योगसें होता है सो त्यागने योग्य है.

गुरु शुक्रके अस्तमें प्रतिष्ठा, उद्यापन करनेका निषेध है. और दीक्षा शुक्रके अस्तमें दैनी संभवित है ; क्यौं कि लग्नशुद्धिमें शुक्र निर्बल लैना ऐसा कहा है. (तो अनिर्बल है.) और प्रतिष्ठादिमें गुरु, शुक्र बाल या वृद्ध हो वो दिनभी त्यागने योग्य हैं.

गुरु, शुक्रका पूर्वदिशामें उदय होवे तो तीन दिन तक बाल समझना और पश्चिम दिशामें उदय होवै तो दस दिनतक बाल समझना.

गुरु, शुक्रकों पूर्व दिशामें अस्त होवे तो उस पहेलेके पंद्रह दिन वृद्ध समझ लैना. और पश्चिम दिशामें अस्त होवै तो उस पहेलेके पांच दिनकों वृद्ध जान लैना. उन दिनोंमें मुहूर्त नहीं दैना.

आरंभसिद्धि ग्रंथमें गुरु आश्री बाल और वृद्ध दोनुके पंद्रह दिन त्याग करनेका कहा है. और अन्यदर्शनमें गुरु और शुक्रके दिन समान कहे हैं. १०-७-३ दिन. इस तरह मुहूर्तसिद्धिमेंभी कहा है.

गुरु मंदिरमें प्रवेश करतें जिन दिशामें उदय होवे सो सन्मुख भावसे और दक्षिण-दाहिना हो तो अवश्य त्याग दैना;मगर कभी अंध शुक्र होवै तो हरकत नहीं. ऐसा आरंभसिद्धिकी छोटी टीकामें कहा है. दूसरे दो प्रकारके शुक्र त्याग किये जांय तो त्याग देने चाहियें यानी संक्रांतिमें वर्त्तता हो-[जिस संक्रांतिमें हो सो देखो] और सन्मुख आवै तो त्यागने योग्य है. और नक्षत्रमें वर्त्तता हो सो कृतिका, रोहिणी, मृगशिर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा-इन नक्षत्रोंके दिन पूर्वदिशामें शुक्र होवै, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा-इन नक्षत्रोंमें दक्षिण दिशामें होवै, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्त-

राषाढा, अभिजित्, श्रवण-इन नक्षत्रोंमें पश्चिम दिशामें. और धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी-इन नक्षत्रोंमें याने इन नक्षत्रोंके दिनमें उत्तर दिशामें शुक्र होवे. मुहूर्त नक्षत्र जो होवें वो देखनेसें सन्मुख शुक्र आवै तो त्यागदेना.

रविनक्षत्र चलतां होवे उससें सातवा नक्षत्र होवें सो भस्मयोग कहा जाता है; वास्ते वो नक्षत्र नहीं लेना. धूलसें आकाश ढक गया हो याने सूर्य धूलसें आच्छादित हुवा हो वो दिनभी मुहूर्तमें निषेध है. संक्रांति लगै उसका पहेला और पीछेका एक दिन और संक्रांति लगै वो दिन छोड देना चाहियें.

बद्दल उमंड आकर गर्जारव होता हो, विजुली चमती हो या कडाके होते हो, या इंद्रधनुष मालूम होता हो, सूर्य चंद्रके पीछे [चोगिर्द] जलकुंडा-गोल चक्र मालूम देता हो और आकाश रक्तवर्णका बन रहा हो तो वो दिन या अकालवृष्टि हुइ हो वो दिन त्याग देनाही योग्य है.

ग्रहणके सात दिन याने ग्रहण हुवे पहेलेके तीन दिन, एक ग्रहण हुवा हो वो दिन और ग्रहण हुवे बादके तीन दिन यूं मिलकर सात दिन ग्रहण दग्ध तिथिके कहे जाते हैं उन दिनोंमेभी मुहूर्त नहीं देना. मगर खग्रास याने चंद्र सूर्य पूरा ढक गया हो तो या आधा ढक गया हो तो तीन दिन गोचरशुद्धि देखनी-उसकी हकीकत नीचे मुजब है:—

जिस राशिमें गुरु होवै सो राशि प्रतिष्ठा करानेवालेकी जन्मराशिसें २-५-७-९-११ वें ठौर हो तो श्रेष्ठ हैं.

जिस राशिका चंद्र हो सो जन्मराशिसें १-३-६-७-१०-११-२-५-९ वें ठौर हो तो वोभी अच्छा है. [प्रभुजीकी राशिसें प्रभुजीकाभी देखना.]

जिस राशिका रवि हो सो जन्मरासिसें ३-६-१०-११ वें ठौर हो तो अच्छा समझना.

इस तरह प्रतिष्ठा करानेवालेको गुरु, चंद्र और रवि ये तीनू देखने चाहियें. प्रतिमाजी महाराजको चंद्र बल देखना; मगर जो, कृष्णपक्ष हो

सो तारा बल देखना सो नीचे मुजब है:—

जन्म नक्षत्रसें गिनना—सो जन्म नक्षत्र अश्विनी है तो दसवा नक्षत्र मघा आया ऐसें गिनना.

तारा.	नक्षत्र.	नक्षत्र.	नक्षत्र.	अच्छी, निर्बल तारा.
१	१	१०	१९	शुभ तारा, नक्षत्रमें मुहूर्त्त देना.
२	२	११	२०	शुभ.
३	३	१२	२१	अशुभ.
४	४	१३	२२	शुभ.
५	५	१४	२३	अशुभ.
६	६	१५	२४	शुभ.
७	७	१६	२५	अशुभ.
८	८	१७	२६	शुभ.
९	९	१८	२७	शुभ तारा कही उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त करना.

समझ यह है कि जन्मनक्षत्रसें १–१०–१९ वा नक्षत्र हो तो १ तारा—इसी तरह दो तीनें वगैरः समझ लैना.

अब जिसका जन्म नक्षत्र हो तो उसका जो नाम हो उस परसें अक्षर—अवकहोडा चक्रसें देखकर नक्षत्र निकालना सो निचे मुजब:—

चू, चे, चै चो, ला, अश्विनी. ली, लु, ले, लो, लौ, लै, भरणी. अ, ई, ऊ, ए, ऐ, कृतिका. ओ, वा, वी, वु, रोहिणी. वे, वो, का, की मृगशिरा. कु, घ, ङ, छ, आर्द्रा. के, को, ह, ही, पुनर्वसु. हु, हे, हो, डा, पुष्य. डी, डु, डे, डो, अश्लेषा. म, मी, मु, मे, मघा. मा, टी, टु, टे,

पूर्वाफाल्गुनी. टे, टो, प, पी, उत्तराफाल्गुनी. पु, षृ, ण, ठ, हस्त. पे, पो, र, री, चित्रा. रु, रे, रो, ता, स्वाति. ती, तु, ते, तो, विशाखा. न, नी, नु, ने, अनुराधा. नो, य, यी, यु, ज्येष्ठा. ये, यो, भें, भी, मूल. भू, ध, फ, ढ, पूर्वाषाढा. भे, भो, ज, जी, उत्तराषाढा. जु, जे, जो, खा, अभिजित्. खी, खु, खे खो, श्रवण. ग, गी, गु, गे, धनीष्ठा. गो, स, सी, सु, शतभिषा. से, सो, द, दी, पूर्वाभाद्रपद. दु, श्र, झ, थ, उत्तराभाद्रपद. दे, दो, च, ची, रेवती. इस मुजब नामके अक्षर है याने एक नक्षत्रके चार पाये होते है और उन चारों पायेमेंसे जिस पायेमें जन्म हुवा हो उसी पायेके अक्षर मुजब नाम रख्खा जाता है जैसें अश्विनीके पहेले चरणमें जन्म है तो चूनीलाल नाम आयगा. सदूरेमें जन्म होगा तो चेतराम आयगा. तीसरेमें होगा तो चोथमल्ल आयगा और चौथे चरणमें जन्म होगा तो लाभचंद्र नाम आयगा. इस मुजब नक्षत्र पाद देखकर नामका नक्षत्र निकाल लैना.

मुहूर्तके दिन विष्टि होवें तो वो संक्रांतिमें देखना. उसमें स्वर्गमें भद्रा हो तो जो कार्य करै सो सिद्ध होवें. पातालमें भद्रा हो तो कार्यकी सिद्धि होवै; मगर मनुष्यलोकमें भद्रा हो तो कार्य न करना—करनेसें हानी होती है.

योगिनी देखनी सो सन्मुख हो तो अवश्य छोड देनी. दाहिने हो तोभी त्याग देनी और पृष्ट भाग वाम भागकी हो तो लैनी योग्य है.

काल और पास सन्मुख हो तो त्याग देना. (वो तिथियोंमें वतलाया है सो वहांसें देख लैना.) यह वास्तु शास्त्रमें देखनेका कहा है. विशेष जैनमें देखना नहीं कहा है—ऐसा प्रतिष्ठा टीपणीमें लेख है.

घातचंद्र, घातनक्षत्र, घाततिथि और घातमहीना त्यागदेनेका हुक्म है.

राहु सूर्योदयसें चार घडी पहेले पूर्वदिशामें रहै, वाद चार घडी वायुकोनेमें, वाद चार घडी दक्षिणमें, वाद चार घडी इशान कोनेमें, वाद चार घडी पश्चिममें, वाद चार घडी अग्नि कोनेमें, वाद चार घडी उत्तरमें, और पीछे चार घडी नैऋत कोनेमें—इस तरह दिन और रातमें अष्ट दिशामें फिरता हुवा रहता है.

संक्रांतिमें क्या देखना ? सो नीचे मुजब है:—

राहु सन्मुख वर्जित है. तथा वच्छ सन्मुख और मंदिरमें प्रवेश करते पीछे हो सो त्याग देना.

मेष संक्रांतिमें–राहु दक्षिनमें, वच्छ पश्चिममें, शुक्र पश्चिममें और विष्टि स्वर्गमें, तथा छट्ठ रविदग्ध.

वृष संक्रांतिमें–राहु दक्षिनमें, वच्छ पश्चिममें, शुक्र उत्तरमें, विष्टि स्वर्गमें और चौथ रविदग्ध.

मिथुन संक्रांतिमें–राहु पश्चिममें, वच्छ उत्तरमें, विष्टि पातालमें, शुक्र उत्तरमें और अष्टमी रविदग्ध.

कर्क संक्रांतिमें–राहु पश्चिममें, वच्छ उत्तरमें, शुक्र उत्तरमें, विष्टि पातालमें और छठ्ठी रविदग्ध.

सिंह संक्रांतिमें–राहु पश्चिममें, वच्छ उत्तरमें, शुक्र पूर्वमें, विष्टि मनुष्यलोकमें और दशमी रविदग्ध

कन्या संक्रांतिमें–राहु उत्तरमें, वच्छ पूर्वमें, शुक्र पूर्वमें, विष्टि पातालमें और अष्टमी रविदग्ध.

तुला संक्रांतिमें–राहु उत्तरमें, वच्छ पूर्वमें, शुक्र पूर्वमें, विष्टि पातालमें और द्वादशी रविदग्ध.

वृश्चिक संक्रांतिम–राहु उत्तरमें, वच्छ पूर्वमें, शुक्र दक्षिनमें विष्टि मनुष्यलोकमें और दशमी रविदग्ध.

धन संक्रांतिमें–राहु पूर्वमें, वच्छ दक्षिणमें, शुक्र दक्षिणमें विष्टि पातालमें और बीज रविदग्ध.

मकर संक्रांतिमें–राहु पूर्वमें, वच्छ दक्षिणमें, शुक्र दक्षिणमें, विष्टि स्वर्गमें और द्वादशी रविदग्ध.

कुंभ संक्रांतिमें–राहु पूर्वमें, वच्छ दक्षिणमें, शुक्र पश्चिममें, विष्टि मनुष्यलोकमें और चौथ रविदग्ध.

मीन संक्रांतिमें–राहु दक्षिणमें, वच्छ पश्चिममें, शुक्र पश्चिममें, विष्टि मृत्युलोकमें और बीज रविदग्ध.

तिथियोंके साथ कुयोग होवैं सो त्याग देनेका खुलासा नीचे मुजब है:—

प्रतिपदाके रोज मूल नक्षत्रके योगसें ज्वालामुखी योग होता है सो वर्जित है. योगिनी पूर्वमें, पाश शुदिमें पूर्वमें वदिमें वायुकोनेमें, काल शुदिमें पश्चिममें और वदिमें अग्निकोनेमें रहता है.

बीजके रोज अनुराधा नक्षत्रके संयोगसें वज्रपात योग होता है सो त्याग देना. धन और मीनके चंद्रसें चंद्रदग्ध बीज, योगिनी उत्तरमें, पाश शुदिमें अग्निकोनमें वदिमें उत्तरमें, काल शुदिमें उत्तर और वदिमें वायु कोनमें होता है.

त्रीजके रोज उत्तरा (उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराभाद्रपद ये तीनु) के योगसें वज्रपात योग होता है सो वर्जनीय है. योगिनी इशानमें, पाश वदिमें इशान और शुदिमें दक्षिणमें, काल शुदिमें उत्तर और वदिमें नैऋतमें होता है. तीज और अनुराधा नक्षत्रके योगसें कालमुखी योग होता है सोभी वर्जनीय है.

चतुर्थीके रोज तीनु उत्तराके संयोगसें कालमुखी योग होता है सो त्याग देना. वृषभ, कुंभके चंद्रसें चंद्रदग्ध तिथि, योगिनी नैऋतमें, पाश शुदिमें नैऋतमें, वदिमें अधोलोकमें, काल वदिमें उर्द्ध और शुदिमें इशानमें होता है.

पंचमीके रोज भरणी नक्षत्रके संयोगसें ज्वालामुखी और मघाके संयोगसें कालमुखी योग होता है सो त्याग देना. योगिनी दक्षिणमें, पाश शुदिमें पश्चिम और वदिमें अधोलोकमें, काल शुदिमें पूर्व और वदिमें उर्द्धलोकमें होता है.

छठके रोज रोहिणीके संयोगसें वज्रपात योग होता है सो वर्जनीय है. कर्क और मेषके चंद्र साथसें चंद्रदग्ध तिथि होती है. योगिनी पश्चिममें, पाश शुदिमें वायुकोन और वदिमें पूर्वमें, काल शुदिमें अग्निकोन और वदिमें होता है.

सप्तमीके रोज हस्त और मूल नक्षत्रके योगसें वज्रपात योग होता है सो त्याग देना. योगिनी वायव्य कोनेमें. पाश शुदिमें दक्षिण और वदिमें अग्नि कोनेमें, काल शुदिमें दक्षिण और वदिमें वायुकोनेमें होता है.

अष्ठमीके रोज कृत्तिका नक्षत्रसें ज्वालामुखी और रोहिणीके योगसें कालमुखी योग होता है सो त्याग देना. मिथुन कन्याके चंद्र संगसें चंद्रदग्ध तिथि हाती है, योगिनी इशानमें, पाश शूदिमें इशानमें और वदिमें दक्षिणमें, काल शूदिमें नैऋत और वदिमें उत्तरमें होता है.

नौमीके रोज रोहिणीके योगसें ज्वालामुखी और कृत्तिकाके योगसें कालमुखी योग होता सो वर्जनीय है. योगिनी पूर्वमें, पाश शूदिमें उर्द्धलोक और वादिमें नैऋतमें, काल शूदिमें अधोलोक और वदिमें इशानमें होता है.

दशमीके रोज अश्लेषाके योगसें ज्वालामुखी योग होता है सो त्याग देना. वृश्चिक, सिंहचंद्र संगसें चंद्रदग्ध तिथि होती है. योगिनी पूर्वमें, पाश शूदिमें अधोलोक वदिमें पश्चिममें, काल शूदिमें उर्द्धलोक और वदिमें इशानमें होता है.

एकादशीके रोज योगिनी अग्निकोनेमें, पाश शूदिमें पूर्व, वदिमें वायुकोनेमें होता है. काल शूदिमें पश्चिम और वदिमें अग्निकोनेमें होता है.

द्वादशीके रोज तुला, मकरके चंद्रसें चंद्रदग्ध तिथि होती है. योगिनी नैऋतमें, पाश शूदिमें अग्निकोन और वादमें उत्तरमें होता है. काल शूदिमें वायुकोन और वदिमें दक्षिण दिशामें होता है.

तृयोदशीके रोज चित्रा नक्षत्रके योगसें यमकृति योग होता है सो त्याग देना. योगिनी दक्षिणमें, पाश शूदिमें दक्षिणमें और वदिमें इशानमें होता है. काल शूदिमें उत्तरमें और वादिमें नैऋतमें होता है.

चतुर्दशीके रोज योगिनी पश्चिममें, पाश शुक्लपक्षमें नैऋतमें और कृष्णपक्षमें उर्द्धलोकमें होता है. काल शुक्लपक्षमें इशानमें और वदिमें उर्द्धलोकमें होता है.

पूर्णमासीके रोज योगिनी वायव्य कोनेमें, पाश शुक्लपक्षमें पश्चिममें वादिमें अधोलोकमें होता है, और काल शूदिमें पूर्वदिशामें और वादिमें उर्द्धलोकमें होता है.

चंद्रदग्ध तिथि लग्नशुद्धि प्रकरण मुजब लिखी गइ है. दूसरे ग्रंथोंमें दूसरी तरहसेंभी चंद्रदग्ध तिथिका लेख है.

चंद्रमा देखना सो मंदिरमें प्रवेश करनेके दक्ष दाहिनी बाजु या सन्मुख लैना. सो मेष, सिंह, धनका चंद्र पूर्वदिशामें, वृषभ, कन्या, मकरका दक्षिणमें. मिथुन, तुला, कुंभका पश्चिममें और कर्क, मीन, वृश्चिकका चंद्र उत्तर दिशामें रहता है.

सत्ताइस योगमेंसें अशुभ योगोंकी घडी त्यागनी सो विष्कुंभकी, शूलकी और गंड योगकी पहेली पांच घडी, अतिगंजकी छ घडी; व्याघात, वज्रयोगकी नौ घडी, परिघकी ३० घडी और वैधृत, व्यतिपातकी सवी घडी त्याग दैनी चाहियें.

आरंभसिद्धिके अनुसारसें सिद्धियोग और अमृतसिद्धियोग नीचे मुजब होता है:—

तिथि.	वार.	नक्षत्र.	नक्षत्र.
१–८–९	रवि.	हस्त.	पुन. रे. रो. मृ. ३ उत्तरा. पुष्य. मू. अश्वि.
२–९	सोम.	मृग.	रो. अनु. उफा. हस्त. श्र. त्रिशा. पुष्य. शत.
३–८–१३–६	मंग.	अश्वि.	रो. उभा. मू. उफा. कृ. मृ. पुष्य. अनु. अश्ले.
२–७–१२–६	बुध.	अनु.	श्र. ज्ये. पुष्य. ह. उफा. कृ. मृ. रो पुफा. उभा
५–१०–१५–११	गुरु.	पुष्य.	अश्वि. पुन. पूर्वा. ३ अश्ले. घ. रे. स्वा. वि. अनु.
१–६–११–९	शुक्र.	रेव.	अश्वि. पुषा. उषा. अनु. श्र. ध. पुफा. हस्त.
४–८–१४–९	शनि.	रोहि.	श्र. ध. अश्वि. स्वा. पुष्य. अनु. मघा. शत.
१	२	३	४
ये तिथि और वारके संयोगसें सिद्धियोग होता है.	ये वार और नक्षत्रोंके संयोगसें अमृतसिद्धि योग होता है.		ये वार और इन नक्षत्रोंके संयोगसें सिद्धियोग होता है. आरभी सिद्धियोग लग्नशुद्धिके मुजब आगे लिख दिया गया है आरंभसिद्धि और लग्नशुद्धिमें सिद्धियोगका मिलाप नहीं मिलता है-सो तत्त्व केवलीगम्य है.

लग्नशुद्धि ग्रंथ मुजब सिद्धियोग.

तिथि.	वार.	नक्षत्र.	तिथि.	वार.
८	रवि.	हस्त. ३ उत्तरा. मू.	१-६-११	शुक्र.
९	सोम.	रो. मृ. पुष्य. अनु. श्र.	२-७-१२	बुध.
१-६-८-१३	मंग.	उभा. अश्वि. रेव.	३-८-१३	मंगल.
७-१-१२	बुध.	कृत्ति. रोहि. मृ. पुष्य. अनु	४-९-१४	शनि.
३०-३-१५	गुरु.	अश्वि. पुष्य. पुन. अनु. रे	५-१०-१५	गुरु.
७-६-११-१३-१	शुक्र.	रेव. अनु. श्रवण.	नारचंद्रके मतसें इन " तिथि वारोंके संयोगसें " सिध्धियोग होता है.	
१-९-१४	शनि.	रो. श्रव. स्वाति.		

ये तिथि वारके संयोगसें और ये वार नक्षत्रके योगसें सिद्धियोग होता है.

आनंदादिं शुभ योगका कोष्टक.

रवि.	सोम.	मंग.	बुध.	गुरु.	शुक्र.	शनि	शुभ योगके नाम.
अश्वि.	मृग.	अश्ले.	हस्त.	अनु	उषा.	शत.	आनंदयोग.
कृत्ति.	पुन.	पुफा.	स्वा.	मूल.	श्रव.	उभा.	प्रजापतियोग.
रो.	पुष्य.	उफा	विशा.	पुष्य.	धनी	रेव.	शुभयोग.
मृग.	अश्ले	हस्त	अनु.	उषा.	शत.	अश्वि.	सौम्ययोग.
पुन.	पुफा.	स्वा.	मूल.	श्रव	उभा.	कृत्ति.	दृजयोग.
पुष्य.	उफा.	विशा.	पुषा.	धनी.	रेव.	रोहि.	श्रीवत्सयोग.
पुफा.	स्वा.	मूल.	श्रव.	उभा.	कृत्ति.	पुन.	छत्रयोग.
उफा.	विशा	पुषा.	धनी.	रेव	रो.	पुष्य	मित्रयोग.
हस्त.	अनु	उषा.	शत.	अश्वि.	मृग.	अश्ले.	मनोज्ञयोग.
मूल.	श्रव	उभा.	कृत्ति.	पुन.	पुफा.	स्वा.	सिद्धियोग.
उषा.	शत.	अश्वि.	मृग.	अश्ले	हस्त.	अनु.	अमृतसिद्धियोग.
श्रव.	उभा.	कृत्ति.	पुन.	पुफा.	स्वा.	मूल.	गजयोग.
उभा	कृत्ति.	पुन.	पुफा.	स्वा	मूल.	श्रव	स्थिरयोग.
रेव.	रो.	पुष्य.	उफा	विशा,	पुषा.	धनी	वर्द्धमानयोग.
धनी	रेव.	रो.	पुष्य.	उफा.	विशा	पुषा.	मातंगयोग.

रवियोगकी, कुमारयोगकी और राजयोगकी महत्त्वता अपने योतिषके ग्रन्थोंमें वहुतसी की है. ये योगोंमें काम करनेसें अतिशय उत्तम फल कहा है. ये योग होवैं और दूसरे कुयोग होवैं तो वो कुयोग हरकत नहीं कर सकता है.

रवियोग सो–चलते सूर्यनक्षत्रसें ४–६–९–१०–१३–२० इस अंदरका कोइ नक्षत्र हो तो रवियोग होता है.

कुमारयोग सो–मंगलवार, बुध, सोम, शुक्र, तिथि १–६–१०–११–५, नक्षत्र अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, हस्त, विशाखा, मूल, श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, इन वारमेंसें कोइ वार, इन तिथिमेंसें कोइभी तिथि और इन नक्षत्रमेंसें कोइभी नक्षत्र आवै तो कुमारयोग होता है.

राजयोग सो–रविवार, मंगल, बुध, शुक्र, २–७–१२–३–१५ ये तिथिके दिन भरणी, मृगशिर्ष, पुष्य, पुर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पुर्वाषाढा, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद–इन नक्षत्रोंमेंसें कोइ नक्षत्र और उपर वतायेगये वारका संयोग हो जानेसें राजयोग होता है, सो बहुतही उत्तम माना जाता है.

स्थिविरयोग सो–अनशन करनेमें, रोगनिवारण निमित्त औषध करनेमें उत्तम कहा है. वो गुरु, शनीवार तथा १३–८–४–९–१४ तिथि, और कृत्तिका, आर्द्रा, अश्लेषा, उत्तराफाल्गुनी, स्वाति, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, शतभिषा, रेवती ये नक्षत्रके याने उपर कहे हुवे वार–तिथि–नक्षत्रके संयोगसें स्थिविर योग होता है.

मुहूर्त्तके नक्षत्रोंमें दूषित नक्षत्र लग्नशुद्धि प्रकरणमें कहे हैं सो निचे मुजवः—

१ संजागत याने जो नक्षत्र सूर्यास्तके समय उदय होवै उसकों संजागत नक्षत्र कहा जाता है सो वर्जनीय है.

२ आदित्यगत याने जिस नक्षत्रका सूर्य हो उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त करै तो निष्पत्ति न पावे, वास्ते वर्जनीय है.

३ वडे वडे सो अभिजित् नक्षत्रसें सात नक्षत्र पूर्व दिशाके, उस पीछेके सात दक्षिण दिशाके, उस पीछेके सात पश्चिम दिशाके और उस बाद सात उत्तर दिशाके–इस तरह स्थापन करकें देखे और भभुजी

विराजें उन्होंके सन्मुख नक्षत्र आवै उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त करना सो सुंदर है. सन्मुख सिवाके वो वडे वडे नक्षत्रोंमें कार्य करै तो शत्रुका जय और आपकी हानी होवै.

४ संग्रह सों–क्रूर ग्रह सहित जो नक्षत्र हा सो वर्जनीय है. उस नक्षत्रमें कार्य करै तो विघ्न होवै.

५ विलंबीए–सो सूर्यनक्षत्रके पीछेके नक्षत्रमें कार्य करै तो विवाद होवे.

६ राहुहत–सो जिस नक्षत्रपर ग्रहन हो वो नक्षत्रमें कार्य करै तो मरण होवै.

७ ग्रहभिन्न सो–नक्षत्रके वीचमें होकें ग्रह जावै उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त करै तो लोही–रुधिर वमै.

रोहिणीवेध यंत्र.

कृ. रो. मृ. आ. पु. पू. अ.

उपरकी रेषामें नक्षत्र लिखे हैं उस नक्षत्रपर मुहूर्तके दिन जो जो नक्षत्रपर ग्रह हो वो ग्रह नक्षत्रपर लिख और पीछे तपासना कि जिस नक्षत्रपर चंद्रमा होवै उस लकीरकी सन्मुखके नक्षत्रपर कोइभी ग्रह होवै तो वो वेध समझना. और चंद्रवाले नक्षत्रमें मुहूर्त्त नहीं करना. वो नक्षत्र छोड दैना. अभिजित नक्षत्रपर कोइभी ग्रह न हो तोभी उत्तराषाढाके चतुर्थ पादमें जो ग्रह हो वो या श्रवण नक्षत्र वैठनेके वक्तसें लगा चार घडी तक जो ग्रह हो वो ग्रह अभिजितपर समझना; क्यौं कि उत्तराषाढाका चतुर्थपादकों श्रवण वैठतें चार घडी तककोंही अभिजित नक्षत्र कहा है. इस मुजब रोहिणीवेधका नक्षत्र त्याग दैना.

उपग्रह सो–सूर्यनक्षत्र जो वर्त्तमान हो उस नक्षत्रसें ५–१४–१८–१९–२२–२३–२४ इसके अंदरका कोइ नक्षत्र होवै तो वो उपग्रहवेध कहा जाय वास्ते वोभी वर्जनीय है.

लग सो लत्ता प्रतिष्ठा करानेवालेके या दीक्षा लेनेवालेके जन्मनक्षत्रसें वारहवे नक्षत्रपर रवि होवै और तीसरे नक्षत्रपर मंगल, छठे नक्षत्रपर गुरु और अष्टम नक्षत्रपर चंद्र होवै तो उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त नहीं करना. उसीतरह बुध जन्मनक्षत्रसें सप्तम नक्षत्रपर होवै, शुक्र पांचवे नक्षत्रपर, राहु नवम नक्षत्रपर, पूर्णिमाका चंद्र वाइसवे नक्षत्रपर हो सो नक्षत्रभी वर्जनीय है–और यह लत्ता दोष बंगालेमें अवश्य वर्जने योग्य है

पातदोष सो–सूर्यनक्षत्रसें अश्लेषा, मघा, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, रेवती, ये नक्षत्र जितनी संख्याका हो उतनी संख्यावाले नक्षत्रकों अश्विनीसें गिनना, वो जो नक्षत्र आवै सो पातदोष कहा जाता है जैसें कि अभी पुनर्वसुका सूर्य है तो उससें गिनती करतें अश्लेपा तीसरा आया तो अश्विनीसें तीसरा नक्षत्र कृत्तिकाकों पात कहा जाय; वास्ते वो वर्जनीय है और अवश्य करकें कौशल देशमें विशेप वर्जने योग्य है.

इकार्गल दोप सो–सत्ताइस योगमेंसें १–६–९–१०–१३–१५–१७–१९ और २७ इन योगके अंदरका जो योग हो वो योग जितनी संख्यावाला हो उतनी संख्यावाले नक्षत्रका अंक सम हो तो उसका अर्द्ध

करना. और विषम हो तो एक अंक वढाके अर्ध करना. युं करनेसें जो अंक आवै वो अंकवाला नक्षत्र यंत्रके मध्य रेखाके शिरपर स्थापना. और पीछे क्रमवार और नक्षत्रोंकों स्थापदे पीछे जिस नक्षत्रपर सूर्य होवे सो सो नक्षत्रपर लिखना और चंद्रमा जिस नक्षत्रपर हो वो वहां लिखना. ये दोनु सामसामने आ जावै तो इकार्गल दोष कहा जाता है, वास्ते वर्जनीय है. यंत्र शुक्लमें योगमे हो तो मृगशिर्ष मध्यरेषाके शिर आता है. ये गौडदेशमें वर्जित है.
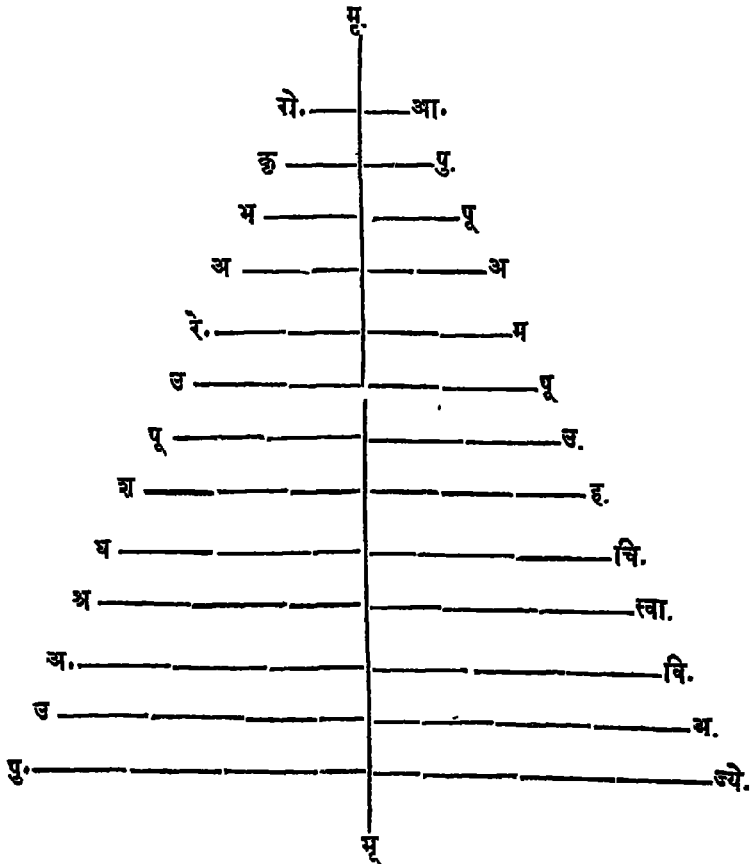
उपरके यंत्रमें जो शूलयोगपर मृगशिर्ष नक्षत्र रख्खा गया है, इसी तरह परिघयोगपर मघा, वैधृतपर चित्रा, व्याघातपर पुनर्वसु, वज्रपर पुष्य, विष्कुंभपर अश्विनी, अतिगंडपर अनुराधा, गंडपर मूल, और व्यतिपातपर अश्लेषा–इस मुजबसें जितनी संख्यावाला योग हो उतनी संख्यावाला नक्षत्र रखना.

उपर मुजबके दोष छोडकर प्रतिष्ठा, दीक्षाके मुहूर्तके नक्षत्र लेवै. दीक्षाके नक्षत्र लग्नशुद्धि मुजब लेना.

उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, हस्त, अनुराधा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, पुष्य, पुनर्वसु, रेवती, मूल, अश्विनी, श्रवण, स्वाति, इन नक्षत्रोंमें दीक्षा देनी. गुरुकों चंद्रबल देखना और शिष्यकों चंद्रबल, गुरुबल, रविबल जो प्रतिष्ठा करानेवालेके देखनेका जैसें बतलाया है वैसें देखना. दूसरा सब प्रतिष्ठा मुजबही करना.

यात्रा करने जानेके प्रयाणमें उत्तम और मध्यम नक्षत्र नारचंद्रके टीप्पणमें नीचे मुजब हैः—अश्विनी, पुष्य, रेवती, मृगशिर्ष, पुनर्वसु, हस्त, ज्येष्ठा, अनुराधा और मूल ये उत्तम कहे हैं, और चित्रा, रोहिणी, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, तीनु पूर्वा, ये मध्यम कहे हैं. दीक्षाके वार रवि, बुध, शनि ये उत्तम है. इन सिवाके वारके दिन यदि सिद्धियोग वगैरः शुभ योग होवै तो लग्नशुद्धिमें वो वारभी उत्तम कहे हैं.

इसतरहकी दिवसशुद्धि देख करकें लग्नशुद्धि देखनी. उसमें छः वर्ग तक देखनी. और ग्रहका उदय, अस्त, बलभी देखना चाहियें. छ वर्ग नीचे मुजब हैः—

ग्रह, होरा, देशकान, नवमांश, द्वादशांश, त्रीशांश इन छवं जगेपर सौम्य ग्रह आवें तो उत्तम है. कदाचित् पांच वर्ग शुभ होवै तोभी मुहूर्त लेना. अब लग्नका प्रमाण निम्न लेख मुजब हैः– –

मीन और मेष लग्नकाल २१९ पल,

कुंभ, वृषभका २५१ पल,

मकर मिथुनका ३०२ पल,

वृश्चिक, सिंह लग्नका ३४७ पल, कन्या, तोलाका ३२७ पल, और धन, कर्क लग्नका ३४३ पलका काल है. अब लग्न निकालना होवै तो छपे हुवे पंचांगमें रवि कितने अंशसें है? वो देखकर पीछे पंचांगमें लग्नपत्रके कोष्टकमें रवि कितने अंशसें है? वो देखना, और पीछे लग्नपत्रके कोष्टकमें जितने अंशसें रवि जिस संक्रांतिका हो, उसके कोठेमें जो अंक हो वो वो लग्न प्रातःकाल–सूर्योदय समय होनेका समझ लेना. पीछेका जो अच्छा लग्न होय वो कोठेमें जो अंक हो सो देखना, उसमें जितनी घडीकी विशेषता आवै उतनी घडी दिन चढनेसें वो अंक आवेगा ऐसा समझ लैना. पीछे कुंडली निकालकर जिस जिस राशिके ग्रह हो वो लिखना और वै ग्रह अच्छे या बुरे है कि कैसे? वो देखनेके लिये लग्नशुद्धि मुजब कुंडली की हैं उस मुजब देखना.

प्रतिष्ठा ग्रह नीचे मुजबः—

उत्तम— मध्यम.
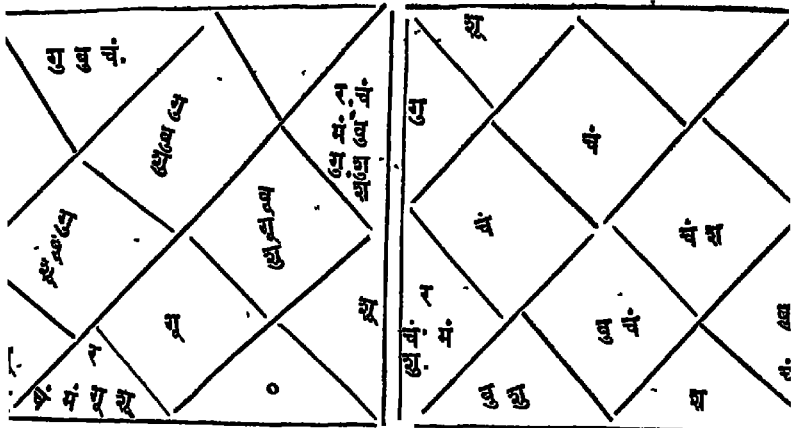
उपर मुजब ग्रह होवै तो प्रतिष्ठा करनेमें श्रेष्ठ हैं. इस शिवाके स्थान पर ग्रह होवै तो कार्यकी हानीकर्त्ता कहे हैं. यह कुंडली आचार्यस्थापना, राज्याभिषेक, विवाह और अन्यभी शुभ कार्योंमें सुख देनेवाली है.

दीक्षाकी उत्तम कुंडली.
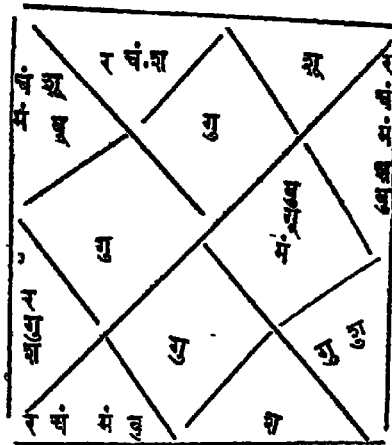
इस उत्तम कुंडलीमें ग्रह रख्खे हें उस मुजबके ग्रहोंमें दीक्षा दैनी सो बहुतही श्रेष्ठ है. मगर उस मुजबके ग्रह न हो तो दीक्षाकुंडलीमें शनी मध्यम बली हो गुरु बलवान हो और शुक्र निर्बल हो उसमें दीक्षा दैनी उसका स्वरुप नीचे मुजब है:—

शनि–२–५–६–८–११ इन स्थानोंपर मध्यम बली,

गुरु–१–४–७–१० इन स्थानोंपर बलवान,

शुक्र–६–१–२ इन स्थानोंपर निर्बल वो दीक्षामें अच्छा.

बुध–२–३–५–६–११ सुखदायक है.

मंगल–३–६–१०–११ इन स्थानोमें हो तो दीक्षा लेनेवाला बहुत अच्छे ज्ञान तपयुक्त हो सकेगा ऐसा समझना.

शुक्र, मंगल, शनि इन तीनमेंसें कोइसेंभी सप्तम भवनमें चंद्र हो तो अयोग्य हैं. दीक्षा लेनेवाला बेशक कुशीलीआ निकले और तप ज्ञानसें रहित होवै.

नारचंद्रमें दीक्षाकुंडलीअें कही हैं उस मुजब कहता हुं. एक उत्तम कुंडली तो जैसें लग्नशुद्धिमें कही है उसी मुजब है और दूसरी ग्रंथांतर मुजब की हैं:—

दीक्षाकी उत्तम कुंडली.
दीक्षाकी मध्यम कुंडली.
जघन्य.
मध्यम.
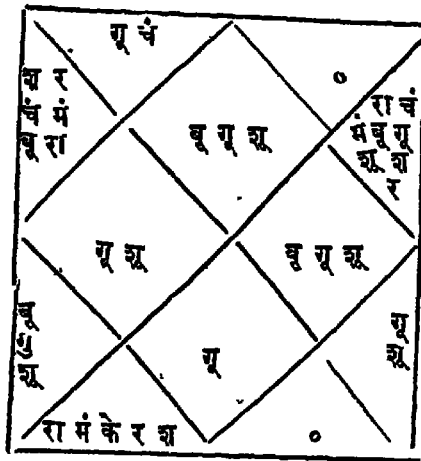
उत्तम.

इस लग्नकुंडलीमें उत्तम ग्रह आवै सो ग्रहशुद्धि.

होरा सो लग्न लिया गया हो उसके दो भाग करना. उसमे-१-३-५-७-९-११ इन संख्यावाला लग्न होवै तो पहेली होरा रविकी और दूसरी होरा चंद्रकी. और २-४-६-८-१०-१२ इन संख्यावाला लग्न हो तो पहेली होरा चंद्रकी और दूसरी होरा सूर्यकी. प्रतिष्ठा, दीक्षादिक चंद्रकी होरामें करना.

देशकाण सो-लग्नके तीन हिस्से करना, उसमें जो मेष लग्न लिया हो तो पहेला देशकाण मेषका, और इसीही तरह जो लग्न लिया हो उसीकाही पहेला देशकाण समझना. दूसरा देशकाण सिंहका, तीसरा धनका, वृष लग्नमें पहेला वृषका, दूसरा कन्याका, तीसरा मकरका, इस मुजब जो लग्न लिया हो उससें देख लेना. पीछे जो देशकाण आवै उसका स्वामी जन्मकुंडलीमें देखना और स्वामी अच्छे स्थानमें हो तो देशकाणमें मुहूर्त करना.

नवमांश देखना सो-जो लग्न होवै उनके पहेलेका जो होय उसके नौ भाग करना. उसमें पहेले हिंस्सेका नवमांश जो मेष लग्न हो तो प-

हेले मेषका. १–२–३–४–५–६–७–८–९. जो वृष लग्न हो तो पहेला १०–११–१२–१–२–३–४–५–६. जो मिथुनका हो तो पहेला ७–८–९–१०–११–१२–१–२–३. जो कर्क लग्न हो तो पहेला ४–५–६–७–८–९–१०–११–१२. जो सिंह लग्न हो तो पहेला–१–२–३–४–५–६–७–८–९. कन्या लग्न हों तो पहेला–१०–११–१२–१–२–३–४–५–६. जो तुला लग्न हो तो पहेला–७–८–९–१०–११–१२–१–२–३ जो वृश्चिक लग्न हो तो पहेला–४–५–६–७–८–९–१०–११–१२. जो धन लग्न हो तो पहेला–१–२–३–४–५–६–७–८–९. मकर लग्न हो पहेला १०–११–१२–१–२–३–४–५–६. जो कुंभ लग्न हो तो पहेला ७–८–९–१०–११–१२–१–२–३. जो मीन लग्नका हो तो पहेला ४–५–६–७–८–९–१०–११–१२. इस मुजब नौ नवमांश जो नवमांशका स्वामी वलवान हो सो लैना. और सौम्य ग्रहका लैना. सौम्य ग्रह सो–चंद्र–बुध–गुरु–शुक्र.

द्वादशांश सो–लग्नके वारह भाग करना. और जो लग्न हो उस पहेले भागका स्वामी, और उससें क्रमवार वारह भागके स्वामी देखना. उसमें जो भागमें मुहूर्त्त होवै उस भागका स्वामी लग्नमें वो शुभ ग्रह हो तो श्रेष्ठ समझना.

त्रीशांश सो लग्नके तीस हिस्से करना उसमें मेष लग्न हो तो पहेले पांच भागका स्वामी मंगल, उस पीछेके पांच भागका स्वामी शनि, उस पीछेके आठ भागका स्वामी गुरु, उस पीछेके सात भागका स्वामी बुध, उस पीछेके पांच भागका स्वामी शुक्र–इस तरह मिथुन, सिंह, तुला, धन, कुंभके भागोंके स्वामी येही समझ लिजीयें. और समराशि जो वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन ये छउं सम लग्नमें पहेले पांच भागका स्वामी शुक्र, उस पीछेके पांच भागका स्वामी बुध, उस पीछेके आठ भागका स्वामी गुरु, उस पीछेके सात भागका स्वामी शनि और उस पीछेके पांच भागका स्वामी मंगल. इस मुजवसें अंशकें स्वामी देख लैने चाहियें. उसमें सौम्य ग्रहके अंशमें मुहूर्त्त करना श्रेष्ठ है. फिर दूसरी तरहसें त्रीश अंशमेंसें अंश कहे हैं वो नीचे मुजब त्रीश अंश अंदरके अंश हैं:—

वृष और मकर लग्नका वीसमा अंश.

मीन, कर्क, कन्याका	१४ तथा	८ अंश.
वृश्चिकका	....	१२ अंश.
कुंभका	....	२१ अंश.
तोलाका ...	....	२४ अंश.
मेषका	....	२७ अंश.
सिंहका	....	१८ अंश.
धन और मिथुनका	....	१७ अंश

इस तरह जो लग्न हो उसके ऊपर कहे हुवे अंशोंमें मुहूर्त्त करना वोभी उत्तम कहा है. बारह लग्नके स्वामी देखना सो मेषका स्वामी मंगल, वृषका शुक्र, मिथुनका बुध, कर्कका चंद्रमा, सिंहका रवि, कन्याका बुध, तुलाका शुक्र, वृश्चिकका मंगल, धनका गुरु, मकर कुंभका शनि और मीनका गुरु है. इस मुजब लग्नके स्वामी हैं. वो स्वामी बलवान् होवै सो देखना, या उच्च स्वगृही होवै तो बहुत अच्छा; मगर नीचका या शत्रुके गृहमें बैठा हुवा वा हस्तका वक्रीका हो सो वर्जनीय है. इस तरह छः वर्गशुद्धि देखनी चाहियें.

एक आचार्य महाराजने और लग्नशुद्धिमें कहा है कि नवमांश शुद्ध देखकर प्रतिष्ठा करनी. चंद्रमा क्रूर ग्रहसें युक्त हो तो वो क्षीणचंद्र कहा है, सो निर्बल है.

उदय शुद्धि सो—नवमांशका स्वामी लग्नकुंडलीमें लग्नके स्वामीको देखता होवै तो उसको उदयशुद्धि कहा जाता है. वो प्रतिष्ठा दीक्षामें देखनी चाहियें.

अस्तशुद्धि सो—नवमांशका स्वामी लग्नके सातवे स्थानकको देखता हो तो उसें अस्तशुद्धि कहते हैं.

लग्नशुद्धिमें ऐसाभी कहा है कि अस्तशुद्धि और उदयशुद्धि देखनेकी दीक्षा, प्रतिष्ठामें जरूरत नहीं है. यु कितनेक आचार्यभी कह गये हैं. बारह राशियोंमे चर, स्थिर और द्विस्वभावकी पहेचान नीचे मुजब है:—

मेष, कर्क, तुला और मकर चर राशी हैं.

वृष, सिंह, वृश्चिक ओर कुंभ स्थिर राशी हैं.

मिथुन, कन्या, धन और मीन द्विस्वभाव हैं.

इनमेंसें प्रतिष्ठाके काममें स्थिर लग्न लैना. वो नही तो द्विस्वभाव लैना. आरंभसिद्धिमें बने वहां तक द्विस्वभाव लैना और वो न आवै तो स्थिर लैना. अगर ग्रह बहुतही उत्तम आते होवै तो क्वचित् चरभी लेनेका कहा है.

नारचंद्रमें लग्नकुंडलीके भीतर ग्रह पडे हो उसके योगायोग और फल कहे है सो नीचे मुजब हैः—

चंद्रके साथ रवि मंगल होवै तो अग्नि भय होवै.

चंद्रके साथ शनि हो तो मरण भय करै.

चंद्रके साथ बुध हो तो समृद्धि करै.

चंद्रके साथ गुरु हो तो महीमा प्रभाव वढावै.

चंद्रके साथ शुक्र हो तो समस्त सौख्यं देवै.

प्रतिष्ठा-कुंडलीमें रवि अवल [निर्वल] हो तो गृहके मालिककी हानी होवै. चंद्र निर्वल हो तो स्त्रीका मरण होवै, शुक्र निर्वल-विवल हो तो धननाश, गुरु विवल हो तो सुखनाश होता है. प्रतिष्ठा कुंडलीमें नीचग्रह क्रूरग्रहसें युक्त हो, या अस्तका, या शत्रुक्षेत्रका ग्रह, या वक्री हो तो विवल समझना. शनि रवि वक्री होवै तो प्राशादका नाश करै.

मंगल, शनि, राहु, रवि, केतु, शुक्रभी इस ग्रहसें सहित इन ग्रहमेंसें सातवा हो तो सूत्रधार, आचार्य, श्रावक इन सबका मृत्यु करै. मंगल, शनि, सूर्य १-१०-४-७-८-९ इतने स्थानपर होवै तो प्रासादका भंग करै. मंगल बारहवे स्थान हो तो सुखभंजकरै.

शुक्रवार शुक्रका नवमांश, शुक्रलग्नाधिपति, शुक्रके उदयमें शुक्र सातवेंसे लग्नको देखता होवै तो उसमें दीक्षा न देनी.

सोमवारके रोज लग्नका स्वामी चंद्र, नवमांशका स्वामी चंद्र, चंद्रके उदयमें वो शुक्लपक्षमें ये एकत्र योगमें दीक्षा न देनी.

कुंडलीमें शूभयोग कुयोग होते है वो आरंभसिद्धिके अनुसार.

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	अच्छे योग.
					श.			शुभ ग्रह.		र. मं.		श्री वत्सयोग श्रेष्ठ.
		श.			मं.					र.		अर्धयोग श्रेष्ठ.
शुभ.			शुभ.					शुभ	शुभ			शंखयोग श्रेष्ठ.
							पाप ग्रह	गु				द्रूजयोग श्रेष्ठ.
बु.												गजयोग श्रेष्ठ.
		चं.		शुभ	अ	ने	क	न्या	लग्न	होवै	तो	हर्षयोग अच्छा.
बु.												आनंदयोग श्रेष्ठ.
गु.												जीवयोग श्रेष्ठ.
शुक्र.												नंदनयोग श्रेष्ठ.
गु. शुक्र.												स्थिरयोग श्रेष्ठ.
बु. गु.												जीमीतयोग श्रेष्ठ.
बु. गु.												जावयोग श्रेष्ठ.
गु. शुक्र.												अमृतयोग श्रेष्ठ.
					शुभ.		शुभ	र			पाप	धनुर्योग नेष्ठ.
											श.	कुठारयोग नेष्ठ.

कुंडलीके ग्रह.

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	
			मं				चं.				श.	मूशलयोग नेष्ठ.
	श			मं.			चं.				र.	कूर्मयोग नेष्ठ.
पाप			पाप			पाप			पाप			वापीयोग नेष्ठ.
पाप			पाप						पाप			शल्ययोग नेष्ठ.
पाप												पाणीयोग नेष्ठ.
पाप												मर्मयोग नेष्ठ.
				श.								वक्रयोग नेष्ठ.
				पाप					पाप			संकटयोग नेष्ठ.

उपरके यंत्रोमें जहां पाप और क्रूर शब्द लिखा है सो रवि, मंगल, शनि. राहु–इस अंदरका ग्रह समझना और जहां शुभ ग्रह लिखा है वहां चंद्र, गुरु, शुक्र, बुध समझ लेना. और नेष्ठ योग छोडकर श्रेष्ठ योगमें मुहूर्त्त देना.

मुहूर्त्त करनेकी ताकीदी हो अगर शुभ मुहूर्त्त या लग्नशुद्धि अच्छी हाथ न लगती हो तो लग्नशुद्धि प्रकरणमें और नारचंद्र टीप्पणमें छाया लग्नका विधि कहा है उससें मुहूर्त्त करनेमें श्लोक कहा है सो नीचे मुजबः—

न तिथि र्न च नक्षत्रं, न वारो न च चंद्रमाः
न ग्रहोपग्रहाश्चैव, छाया लग्नं प्रशस्यते.

इस तरह कहा है; वास्ते छायालग्नसें कार्य करना–याने सूर्यको पीठ देकर पुरुष खडा रहै और पीछे अपनी छाया जहां तक लंबी मालूम होती हो वहां तकका निशान कायम कर पीछे आपहीके कदमसें पगले भरें, वो पगले वार अनुसार लेना. अगर सात अंगुलका शंकु रखकर उसकी छाया आंगुलसें नाप लेवै.

रविवारके दिन ११, सोमवारके रोज ८॥, मंगळवारके रोज ९, बुधवारके रोज ८. गुरुके रोज ७, शुक्रके रोज ८॥ और शनीवारके रोज ८ अंगुल नापना. इस मुजब आंगुल नापें सो शंकु बारह अंगुलका पा-

टिपेपर समान जगहपर रखना. पीछे जिस वारके रोज मुहूर्त करना हो उस रोजके अंगुल कहे मुजब छांउ आ जाय कि मुहूर्त कर ले, वो कल्याणकारक है. यह छाया लग्नसें यात्रा करनेकों प्रयाण करना हो या हरकोइ कार्यका आरंभ करना हो वो कल्याणकारक है.

यात्रा वा परदेशकों प्रयाण करना हो तो चंद्र सन्मुख या दाहिना लैना. योगिनी पृष्ठभागमें रखनी. सन्मुख काल न लैना. नक्षत्र प्रयाणके पुत्र १२६ में कहाँ है वहां देख लैना. शुभ लग्न या छाया लग्नमें प्रयाण करना. नारचंद्रमें चंद्रवासा देखनेकी रीति कही है याने मेष, सिंह, धनका चंद्र पूर्वदिशामें, वृष, कन्या, मकरका चंद्र दक्षिणमें, मिथुन, तुल, कुंभका पश्चिममें और कर्क, मीन, वृश्चिकका चंद्र उत्तरमें रहता है.

१-३-५ इन संख्यावाले चंद्रका निवास मस्तकपर होता है उन चंद्रमें विदेश-परगाम जाय तो धनकी प्राप्ति करै. ६-९ इन चंद्रोंका वासा पीठमें होता है वो अच्छा नहीं. ८-१२ इन चंद्रोंका वासा पाँवपर होता है वो निराशादायी है. १०-११-७ इन चंद्रोंका निवास छातिमें होता है उसमें प्रयाण करै तो धनादिका बहुत सुख मिलै, और २-४ इन चंद्रोंका निवास हाथमें होता है उसमें प्रयाण करनेसें सब आशा पूर्ण होती है.

सातों वारके फल नारचंद्रके मुजबः-गुरु पाणीग्रहणमें, शुक्र परदेश जानेमें, बुध पढनेमें, शनि दानदक्षिणा देनेमें, मंगल लडाइमें, और राज मिलापमें, और सोमवार सब कार्यमें अच्छा कहा है बहुत करके मंगल रवि इनकों बने वहां तक काममें न लैना. शुभ योग लेकर काम करै तो जय होवै. कुयोग या तिथिके कोष्टक-यंत्रमें देखकर जो वर्जनीय हो उसकों छोड देना. हर किसी काममें कुयोग विगरकी शुभ योगवाली तिथि लेकर कार्य फतेह करना.

जो वार होवै उसी रोज ग्रह बलवान हो याने कृष्ण पक्षमें रवि, राहु, शनि, मंगल बलवान होते हैं, और शुक्लपक्षमें सोम, बुध, गुरु, शुक्र बलवान होते हैं.

नौ ग्रहोंकी दृष्टि और शत्रु–मित्रता–उच्च–नीच–स्वगृही बलवान देखनेका यंत्र.

रवि.	सोम.	मंगल.	बुध.	गुरु.	शुक्र.	शनि.	राहु.	केतु.	ग्रहोके नाम.
७	७	४-८-७	७	५-९-७	७	३-१० ७	७	७	संपूर्ण दृष्टि.
४–८	४–८	५–९	४–८	३–१०	४–८	७	०	०	त्रिपाद दृष्टि.
५–९	५–९	५–९	५–९	०	५–९	५–९	५–९	५–९	द्विपाद दृष्टि.
३–१०	३–१०	३७१०	३–१०	४–१०	३–१०	५–९	३–१०	३-१०	एकपाद दृष्टि
चं. मं. गु.	र. बु.	र गु चं.	र. रा. शु.	र. चं. मं.	बु रा. श	बु. रा. शु.	बु शु. गु.	बुध.	मित्र ग्रह.
बु.	मं. शु. गु. श.	शु. श. गु.	मं. श. गु.	श. रा.	मं. गु.	गुरु.	गुरु.	०	सम ग्रह.
श. रा. शु.	बु.	बु. रा.	चं.	बु. शु.	र. चं.	र. चं. मं	र. चं. मं.	०	शत्रु ग्रह.
मेष. १०	वृष. ३	मकर. २८	कन्या. १५	कर्क. ५	मीन. २७	तुला. २०	मिथुन.	० ०	उच्च ग्रह–परमोच्च अंश
तोला. १०	वृश्चि. ३	कर्क. २८	मीन. १५	मकर. ५	कन्या. २७	मेष. २०	धन. ०	०	नीच ग्रह–नीचांश
सिंह.	कर्क.	मे. वृ.	क. मि.	ध मी.	वृ. तु.	म. कुं.	कन्या.	०	स्वगृही.
दिन.	रात्रि.	रात्रि.	दि.-रात	दिन.	दिन.	रात्रि	०	०	बलवान्.

कुंडलीमें ग्रह जिस स्थानपर बैठा हो उससें २–३–४–१०–१२ इन संख्यावाले स्थानपर दूसरा ग्रह होवै तो उसके साथ तात्कालिक मित्रता कहैनी. और ५–६–७–८–९ इन स्थानपर बैठा हुवा ग्रह तात्कालिक शत्रुता कहैनी. कुंडलीमें मित्र हो और अहर्निश मित्रता हो तो अधिमित्रता, और शत्रुभी सब जगह हो तो अधिशत्रुतावंत समझना.

प्रतिष्ठा, दीक्षा कुंडलीमें तीन शुभ ग्रह बलवान् होवै और दूसरे हीन बली हो तोभी मुहूर्त करना ऐसा आरंभसिद्धिमें कहा है.

लग्नकुंडलीमें बुध रविसे रहित १-४-७-१० यह चार स्थानपर हो तो लग्नके १०० दोषोंका नाश करै. शुक्रकेंद्रे स्थान-१-४-७-१० में होवै और क्रुर ग्रहोंसें रहित हो तो १००० दोषका नाश करै. और गुरुभी उसी केंद्रस्थानमें बलवान् हो तो लग्नके लक्ष दोषका निवारण करै-इस तरह आरंभसिद्धिकी छोटी टीकामें कहा है. और बडे प्रतिष्ठा कल्पमें ५-९ गुरु, शुक्रका वैसाही फल कहा है. पुनः प्रतिष्ठाकल्पमें मेष, वृषका चंद्र, सूर्य हो और शनि बलवान् हो, मंगल, बुध हीनबली हो तोभी प्रतिष्ठा करनेका कहा है-वार, तिथि, नक्षत्र, चंद्रबल देखना न-हीं-लग्न बलवान् देखना.-३-११ शूर्य हो, १-४-९-१०-५ गुरु या शुक्र हो तो दूसरे सब दोषोंको दूर करै, और शुभ फल देवै. उन ग्रंथमें लग्नकुंडलीमें राहु या केतु १-४ हो तो उत्तम कहा है; मगर दूसरे किसी ग्रंथमें उत्तम नहीं कहा मालूम होता है.

तमाम ग्रह शत्रुके घरमें होवै तो प्रतिष्ठा नेष्ट समझनी. लग्न या सा-तवे स्थान चंद्र, राहु या केतु युक्त हो तो वो अधम फल देवै. लग्नमें या चंद्रयुक्त गुरू हो तो निर्विघ्नतासें प्रतिष्ठा होवै. चंद्र शुक्र युक्त या शु-क्रको चंद्रपर दृष्टि हो तो अच्छा फल देवै.

चोवीस तीर्थंकरजीकी राशि, नक्षत्र लांछन नीचे मुजबः-

ऋषभदेवजीकी धनराशि, उत्तराषाढा नक्षत्र, और वृषभ लांछन है. इसीतरह तमामके लिये समझनाः—

अजीतनाथजी-	वृषभ,	रोहणी,	हाथीका.
संभलनाथजी-	मिथुन,	मृगाशिर्ष,	घोडेका.
अभिनंदनजी-	मिथुन,	पुनर्वसु,	बंदरका.
सुमतिनाथजी-	सिंह,	मघा,	क्रौंचपक्षिका.
पद्मप्रभुजी-	कन्या,	चित्रा,	कमलका.

सुपार्श्वनाथजी-	तुला,	विशाखा,	स्वस्तिकका.
चंद्रप्रभुजी-	वृश्चिक,	अनुराधा,	चंद्रका.
सुविधिनाथजी-	धन,	मूल,	मघरका लांछन.
शीतलनाथजी-	धन,	पुर्वाषाढा,	श्रीवत्सका.
श्रेयांशनाथजी-	मकर,	श्रवण,	गेंडेका.
वासुपूज्यजी-	कुंभ,	शतभिषा,	पाडेका-भैंसेका.
विमलनाथजी-	मीन,	उत्तराभाद्रपद,	सूअरका.
अनंतनाथजी-	मीन,	रेवती,	बाजपक्षीका.
धर्मनाथजी-	कर्क,	पुष्य,	वज्रका.
शांतिनाथजी-	मेष,	अश्विनी,	हरिणका.
कुंथुनाथजी-	वृप,	कृत्तिका,	बकरेका
अरनाथजी-	मीन,	रेवती,	नंदावर्त्तका.
मल्लिनाथजी-	मेप,	अश्विनी,	कलशका..
मुनिसुव्रतस्वामीजी-	मकर,	श्रवण,	कछुवेका.
नामिनाथजी-	मेष,	अश्विनी,	कमलका.
नेमिनाथजी-	मेष,	विशाखा,	शंखका.
पार्श्वनाथजी-	तुला,	विशाखा,	सर्पका.
महावीर स्वामीजी-	कन्या,	उत्तराफाल्गुनी,	सिंहका.

चोवीसों भगवंतजीकी राशी मिलतीका पत्र १ विज्यानंद सूरिजीके पास देखाथा उसमें नीचे लिखी हुइ राशिवालोंकों फलाने फलाने भगवंतजीके शासनदेव अनुकूलता देवें ऐसा कहाथाः-

मेषराशिकों १-३-४-५-७-९-१०-११-१२-१६-१९-२०-२१-२३.

वृषराशिवालेकों २-५-६-७-८-११-१२-१३-१४-१७-१८-२०-२२-२४.

मिथुनराशिवालेकों १-३-४-५-६-७-९-१०-१२-१३-१४-१६-१८-१९-२०-२१-२२-२३-२४.

कर्कराशिवालेकों १-२-६-७-८-९-१०-११-१२-१३-१४-१५ १६-१७-१८-१९-२०-२१-२२-२३-२४.

सिंहराशिवालेकों १-२-३-४-५-७-८-९-१०-११-१२-१३-१४-१६-१७-१८-१९-२१-२३

कन्याराशिवालेकों १-२-३-४-६-८-९-१०-११-१२-१३-१४ १५-१७-१८-२०-२२-२४.

तोलाराशिवालेकों १-२-३-४-५-७-९-१०-११-१२-१५-१६-१७-१९ २०-२१-२३.

वृश्चिकराशिवालेकों २-५-६-८-११-१२-१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९-२०-२१-२२-२४.

धनराशिवालेकों-१-३-४-५-६-७-८-९-१०-१२-१३-१४-१५-१६ १८-१९-२१-२२-२३-२४.

मकरराशिवालेकों-२-३-४-५-६-८-११-१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९ २०-२१-२२-२३-२४.

कुंभराशिवालेकों-१-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-१२-१५-१६-१७-१९ -२३-२४.

मीनराशिवालेकों-१-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-११-१३-१४-१७-१८ २०-२१-२२-२३-२४.

इस मुजब उन पत्रमें था सो लिख दाखिल किया है. दूसरी तरह-संभी है मगर वो अवर शास्त्रोंसें निर्णय करना.

इस मुजब प्रतिष्ठा दीक्षामें मुहूर्त देखकर काम करनेसें कल्याण होता है. मेरे देखनेमें आया वैसा लिखा है. विशेष देखना हो तो जैनके योतिष ग्रंथ वहुतसे हैं उसमें देख लेना.

१८८ प्रश्नः—श्रावक रात्रिमें सोनेके वक्त क्या करणी करै?

उत्तरः—श्रावक रात्रिमें सोनेके वक्त धर्मसंग्रहके लेख मुताबिक विधिसें करणी करै याने-प्रथम देवस्मरण करना सो इस तरहः—

—णो वीयराणं, सव्वन्नुणं

तिलुक्कपूइयाणं, जहाट्ठिय वत्थुवाइणं.

अर्थः—सब वस्तुके ज्ञाता, तीनु लोककों पूजनीक, और यथास्थित वस्तुके प्ररूपक ऐसे वीतराग प्रभुजीकों में नमस्कार करता हुं.

गुरुका स्मरण इस मुजब हैः—

धन्यास्ते ग्राम नगर जनपदादयो येषु मदीय धर्माचार्यविहरंतीत्यादि चैत्यवंदनादिना वा नमस्करणं स्मृतिः

अर्थः—इन ग्राम-नगर-देश वगैरःकों धन्य है कि जहां मेरे धर्माचार्य विचरेते हैं. इत्यादि कहकर चैत्यवंदन करै या नमस्कारसें [नौकारसें] स्मरण करै.

चार शरण करना सो इस मुजब हैः—

क्षीणरागादिदोषौघाः सर्वज्ञा विश्वपूजिता
यथार्थवादिनोर्हतः शरण्या शरणं मम. १

अर्थः—रागादि दोष समूहकों जिन्होंने क्षीण किये हैं, समस्त वस्तुके ज्ञाता, विश्वसें पूजित, यथार्थवादी और शरण करनेके योग्य ऐसे अरिहंत भगवानजीका मुझे शरण हो.

ध्यानाग्निदग्धकर्माणि सर्वज्ञा सर्वदर्शिनः
अनंत सुख वीर्येधाः सिद्धाश्च शरणं मम. २

अर्थः—ध्यानरूपी अग्निसें करकें कर्मोंको जिन्होंने जला दिये हैं, जो सब वस्तुके ज्ञाता हैं, सब वस्तुकों देखनेवाले हैं, और अनंत सुख, अनंत वीर्य-पराक्रम युक्त ऐसे सिद्ध भगवानजीका मुझकों शरण हो.

ज्ञानदर्शन चारित्र-युता स्वपर तारकाः
जगत्पूज्याः साधवश्च, भवंतु शरणं ममः ३

अर्थः—ज्ञान, दर्शन, चारित्रसें युक्त आपकों और दूसरोंकों तिरानेवाले, और तीनु जगत्कों पूजनीय ऐसे साधुमहाराजका मुझे शरण हो.

संसार-दुखसंहर्त्ता, कर्त्ता मोक्षसुखस्य चः
जिनप्रणीतधर्मश्च, सदैव शरणं मम. ४

अर्थः—संसाररूप दुःखका नाश करनेहारा, और मोक्ष सुखको देने-हारा-करनेहारा ऐसा जिनेश्वरजी प्रणीत धर्मका मुझकों सदा शरण हो.

इस तरह अरिहंतजी, सिद्धजी, साधुजी और धर्मका शरण करके पीछे नीचे मुजब चिंतन करेः—

चउरंगो जिणधम्मो, न कओ चउरंग सरणमवि न कयं;
चउरंग भवच्छेओ, न कओ हा हारिओ धम्मोत्ति. ५

अर्थः—दान-शील-तप-भाव एरू चार अंगवाला धर्म मैंने न किया! चार शरणभी न किये! और चार गतिरूप भवकाभी छेदन न किया!! हा! अति खेदका मुकाम है कि मै धर्म हार गया!!!

अब दुष्कृतकी गर्हा सो नीचे मुजबः—

जं मण वय काएहिं, कयकारी अणुमईहिं आयरियं;
धम्मविरुद्धमसुद्धं, सव्वं गरिहामि तं पावं. ६

अर्थः—मन वचन कायाके योगसें जो कोइ धर्मविरुद्ध याने प्रभुजीकी आज्ञा वहारका कृत्य किया हो, करवाया हो या अनुमोदन दिया हो वो सब पापकीमें गर्हा करताहुं.

सुकृत्यका अनुमोदन इस तरह करनाः—

अहवा सव्वंचिय वीयराय वयणाणुसारि जं सुकयं;
कालत्तएवि तिविहं, अणुमोए सो तयं सव्वं. ७

अर्थः—अथवा वीतराग वचनानुसारसें तीनु कालमें जो जो सब सु-कृत्य किया सो मन वचन कायासें करके अनुमोदता हुं.

अब सब जीवोंको क्षमापन करना सो इस मुजबः—

खामेमि सव्व जीवा, सव्वे जीवा खामंतु मे;
मित्तिमे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणइ. ८

अर्थः—मैं सब जीवोंको क्षमापन करता हुं. याने कुल जीवोंके पाससें में माफी मंगता हुं-सब जीव मेरेपर क्षमा किजीयो. मेरे सब जीवोंके साथ मैत्रिभाव है, नहीं के किसीके साथ वैरभाव है?

इस तरह कर लिये बाद चार आहारका त्याग न हो तो गंठसी सहित

पच्चख्खाण कर, सर्व व्रत संक्षेपरूप वारह व्रत अंगीकार करकें देशावगाशिकका पच्चख्खाण करे–वोभी गंठसी तककी मर्यादा रख्खें.

और शेष पापस्थान वर्जनेकें लिये इस मुजब कहे:—

तहा कोहंच माणच, माया लोहं तहेवय;
पिज्जं दोषं च वज्जेमि, अब्भख्खाणं तहेवय. ९
अरईरइ पेसून्नं, परपरिवायं तहेवय;
मायामोसं च मिच्छत्तं, पावठाणाणि वज्जिमोति. १०

अर्थः—वैसेंही क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पशून्य, रतिअरति, परपरिवाद, मायामृषावाद और मिथ्यात्वशल्य इन पापस्थानोंकों मै दूर करता हुं.

पापस्थानोंकों इस तरह दूर कर पीछे वोशिरानेके लिये इस मुजब गाथा कहेवे:—

जइमेहुज्जपमाओ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीऐ;
आहार मुवहिदेहं, सव्वं तिविहेण वोसरियं. ११

अर्थः—जो इस रात्रिके अंदर मेरा मरण हो जाय तो चार प्रकारके आहार, धन, धान्य, घर, राच रचीला और कुटुंब तथा शरीर इन सवकों मन वचन कायासें करकें वोशिराता हुं.

इस मुजब कहकर नमस्कारपूर्वक तीन गाथा कहनेका कहा है; मगर कौनसी गाथा? उसका नाम नहीं; तोभी अनुमानसें नीचेकी गाथायें होगी ऐसा संभव है:—

एगोहं नत्थि मे कोइ, नाहमन्नस्स कस्सइ;
एवं अदीण मणसो, अप्पाण मणुसासइ. १२
एगोमे सासओ अप्पा, नाणदंसण संजुओ;
सेसा मे वाहिरा भावा, सव्वे संयोग लख्खणा. १३
संजोग मूला जीवेण, पत्ता दुख्खपरंपरा;
तम्हा संजोग संवंधं, सव्वे तिविहेण वोसरियं १४

अर्थः—मै अकेलाही हुं, मेरा कोइ नहीं. और मेंभी किसीका नहीं.

इस मुजब अदीन मनसें आत्माकों शिखावन देवै. ज्ञान दर्शनसें युक्त मेरा आत्मा शाश्वत है, बाकीके तन धन कुटुंबादि सब बाह्यभाव संयोग-रूप लक्षणवाले हैं. संयोगरूप मूलसें जीव दुःखकी परंपराकों पाया है; इसी कारणके लिये सर्व संयोग संबंधकों मन वचन कायाके योगसें वोशिराता हुं.

इस मुजब चिंतन करकें स्त्री किंवा पुरुषने जो शीलपालन किये हैं उन्होंके चरित्र चिंतन कर कामकों शांत कर, पीछे नौकार मंत्र स्मरण करता हुवा सो जावै, वोभी स्त्रीके पास नहीं—अलग सो जावै.

यह नियम गंठसी किंवा मुठ्ठसी करते हैं विसी तरह एक नौकार गिनकर पारना वहांतक अभिग्रह है. यह विधि बहुत अच्छी लगती है. मरण होवै तो आराधक हो जाय; वास्ते हरहम्मेशाः करने योग्य है. और मंदगीके वक्त तो अवश्य करकें करने योग्य है.

(दोहा.)

परमदेव परमातमा, बुद्धि आत्मगुरुराय;
एह परमपद सेवतां, अनुपानंद थवाय.

अस्तु !

महीमावंत श्री मुनिसुव्रतस्वामिने नमः

अढारदूषणनिवारक.

१ प्रश्नः—अपना यह शरीर मालूम होता है उसमें जीव है ऐसा कितनेक सज्जन कहते हैं और कितनेक कहते हैं कि जीव नहीं है, तो उसमें सत्य क्या है?

उत्तरः—जितने धर्म आस्तिकमति हैं वे चेतन शरीरमें जीव और जड जो शरीररूप अजीव ऐसें दो मानते हैं. जो नास्तिक मति हैं वे अकेला शरीरही मानते हैं, शरीर विनाश हो गया कि पीछे कुछ नहीं और पाप पुन्यका फलभी भुक्तनेका नहीं ऐसा मानते हैं.

२ प्रश्नः—इन दोनु पक्षमेंसें तुम कौनसा पक्ष स्वीकार करते हो?

उत्तरः—हम पूर्ण प्रतीतिसें जीव और अजीव इन दोनुकों मानते हैं. दोनु वस्तुएं हैं उसका अच्छी तरह अनुभव हो सकता है.

३ प्रश्नः—जीव है ऐसी किस प्रकारसें प्रतीति होती है?

उत्तरः—इस शरीरमें जीव हो वहां तक हिलना, चलना, बोलना, सोचना, हिताहित समझना, और सुख दुःख जानना इत्यादि बनता है. और जब जीवरहित शरीर होता है, तब यह समस्त क्रिया बंध हो जाती है, उससें पूर्ण प्रतीत होती है कि जानने-समझनेकी शक्तिवाला सो जीवही है, और शरीर अजीव है. उसांसें जीव विगर अकेले शरीरसें कुछ नहीं बन सकता है; वास्ते जीव पदार्थ है इसमें कुछ संदेह नहीं है.

४ प्रश्नः—नास्तिकमति यों कहते हैं कि पंचभूतके संयोगसें समझने आदिका शक्ति उत्पन्न होती है, तो उसका क्या समझना?

उत्तरः—पंचभूतोंमें पृथक् पृथक् ऐसी शक्ति है ही नहीं, तो पीछे इकट्ठे होनेसें

१ तरह वैसी शक्ति होवै? कदाचित् उत्पन्न होनेका स्वभाव मान लेवै तो सब वोंकी समान शक्ति होनी चाहियें, वो मालूम होती नहीं. ज्ञानशक्ति तमाम जीवोंमें भिन्न भिन्न मालूम होती है वो न होनी चाहियें. सुख दुःखभी भिन्न भिन्न देखनेमें आते हैं वोभी न होने चाहियें और जब अलग अलग मालूम होता है तब उसका कुछभी कारण होनाही चाहियें।

५ प्रश्नः—जो ज्ञानशक्ति कम जियादा देखनेमें आती है वो तो उद्यमकी न्यूनतासें मालूम होती है. जो ज्ञानका उद्यम करता हैं उसकों ज्ञान होवै और न करें उसकों न होवै वो क्या?

उत्तरः—दो मनुष्य साथ साथ बैठकर समान वक्त तक उद्यम करते हैं; परंतु समान नहीं पढ सकते हैं. कितनेक पढते हैं तो अर्थ नहीं समझ सकते हैं और कितनेक समझकर उसी मुजब चलते हैं उसी मुजब दूसरा मनुष्य नही चल सकता है; वास्ते अकेले उद्यमसें ज्ञान नहीं आता है.

६ प्रश्नः—उद्यम बिगर ज्ञान दूसरे किस उपायसें आ सकता है?

उत्तरः—ज्ञानशक्ति जीवकी है वो आच्छादित हो गइ है, उसमें जिनके जिनके जितने जितने आवरण खुल जाते हैं उस मुजब उन मनुष्यकों ज्ञान होता है.

७ प्रश्नः—तब क्या उद्यमकी जरूरत नहीं है? अकेली आत्मशक्तिसेंही ज्ञान होता है और हिताहित जान सकता है?

उत्तरः—जहांतक आत्माकी जितनी शक्ति है उतनी प्रकट नहीं हुइ वहांतक आत्मा और शरीर इन दोनुके मिलापसें ज्ञान होता हैं. आत्माका ज्ञान और आत्माकी शक्ति कर्मके योगसें आच्छादित गइ है और वो ढकी हुइ है वहां तक इंद्रियोंके संयोगसें ज्ञान होता हैं; जैसे कि अपन आंखोंसें देखते हैं वही आंख खुली हो और जीव चला गया तो वो आंखोंसें कुछभी मालूम नहीं हो सकता है. जीव शरीरमें है; मगर आंखें मुंद देवें तो कोइ पदार्थ नहीं देख सकते हैं. आंखें खुली हैं तोभी आप खुद दूसरे उपयोगमें लुब्ध हुवा है तो और पदार्थ नहीं देख सकतां हैं उससें खुल्ला-साफ मालूम हो सकता है कि उपयोग करनेवाला कोइ अंदर है सही! वो कौन होगा? वो जीव हैं! इसी तरह कानसें सुनेके बारेमेंभी यदि उन वातमें होवैं तो वो सुनकर समझ सकते हैं; लेकिन जो दूसरें काममें ध्यान लग रहा हो तो कोइ दिल चाहै सो बोले तो वो सुननेमें नहीं आता हैं. इसी तरह कानोंमें कोइ रुइका ढकना दे देवै या रोग

हुवा हो तो अंदर जीव है तथापि नहीं सुन सकते हैं देखियें नांकके विषयभी कोइ कहेगा कि यह गंध काहेकी आती है? तव वहां बैठा हुवा मनुष्य उपयोग देकर गंधका तपास करेगा तो कह सकैगा कि घींकी गंध आती है. अव शोचो कि नासिका तो खुल्ली है; परंतु उपयोग न था इससें गंधकी खवर न पडी. तो सवूत होता है कि इस शरीरके अंदर गंध लेनेवाला कौइ अलग है. रसेन्द्री जो जीभ है सो मनुष्यका ध्यान भोजन करनेकों वैठा है तोभी अन्य जगे लगा हुवा है तो उसकों स्वादका ज्ञान नहीं होता है. स्वादका जाननेवाला कोइ अन्य नहीं किंतु शरीरके अंदर रहा सो जीवही है. स्पर्शेंद्रि जो शरीर उसकों स्पर्शज्ञान स्पर्श होनेसें होता है; परंतु शरीरकों वस्तुका स्पर्श होवै उस वक्त वो कोइ दूसरे ध्यानमें होवै तो उसकी खवर नहीं पडती. फिर शर्दिके वक्तमें शरीरमें वधीरता हो गइ होवै तो अंदर जीव है तोभी स्पर्शज्ञान नहीं होता है. इन सवका तपास करनेसें शरीर और जीव ये दोनु मिलकर सव काम करते हैं. उसमेंभी एक दूसरेमें विषय ग्रहण करनेका तफावत है. सव समान विषय ग्रहण नहीं कर सकते हैं. उसका कारण–किसीकों कर्मावरण विशेष है तो हरएक विषय थोडासा कर सकता है. जिनकों ये पांचों इंद्रियोंके आवरण खुल गये हैं वे विशेष इंद्रियोंसें जान सकते हैं. वास्ते जो जो ज्ञान होता है वो कर्मके क्षयोपशमसें होता है, अकेले उद्यमसें नहीं होता है. थोडा उद्यमकरै और ज्ञान ज्यादे होवै और विशेष उद्यम करै और ज्ञान कमती होवै; वास्ते जीव और अजीव इन दोनुकों कवूल रखनेसें सव वात समझ लेनेमें सुगमता पडैगी.

८ प्रश्नः—हम जीव मान लेवैं; मगर फिर तुम जीवकों कर्मसंयोग कहते हो वो क्या है? कौनसी वस्तु है?

उत्तरः—कर्म है वो जडरूप पदार्थ है उसका इन जीवके साथ अनादिका संवंध है, यह अतिशय ज्ञानी पुरुषके वचनसें सावित होता है. अनुभवसें शोचनेसेंभी यदि प्रहिले निरावरण हो तो कर्म क्यो लगै? कदाचित् लगे हुवे मान लेवै तो वो दिवसकी आदि हुइ तव उसकी पेस्तरकी स्थितिमें निर्मल था तो वो कवसें? या वोभी अनादि करना पडैगा. कितनेक आदि कहते हैं तो उसके पूर्वकालमें संसार–जगत् थाही नहीं यह कैसें संभवित हो सकै. इस जगत्की स्थिति फेरफार होवै किंतु कुछ चीज नहीं हो सकै वो कहांसें आ सकै; वास्ते जैनदर्शनवाले अनादिका जीव कर्म-

संयुक्त है ऐसा मानते हैं वो वात निर्विवादसें सिद्ध होती है. वै कर्म न होवैं तो जीव सुखदुःख काहेसें पावे? सुखदुःख कितना भुक्तना? कितने कालतक जीना? और कितना कुटुंब मिलना? ये सब कर्मप्रयोगसेंही वनता है.

९ प्रश्नः—ये तमाम उद्यमसें वनता है उसमें कर्म क्या करता है?

उत्तरः—अरे इच्छाकारी! सुखदुःख यदि उद्यमसेंही होता होवै तो मजदूर सारा दिनभर मजदूरी करता है तब विचारेकों चार आने मिलते हैं, और एक मनुष्यका पाँव जमीनमें घुस जाय और वहांसें निधान प्राप्त होकर धनवान वन जाता है, जैसें कि सयाजीराव गायकवाड सरकार कैसी स्थितिमें थे और एकदम राज्यगादी पर बिराजित हुवे ये क्या उद्यम करनेकों पधारे थे? पूर्वजन्ममें पुन्य उपार्जन किया था तो राज्य मिला. एकही दवा दो मनुष्य खाते-पीते हैं, एककों तन्दुरस्ती मिले और एककों नादुरस्तीही रहवै और दवा देनेवारा डॉकटर-वैद्यभी एकही होवै; तथापि न मिट सकै वो कर्मका तफावत है उसीसें वैसा बनता है. एक बुद्धिमान् अच्छा विद्वान् अनआलसु उद्यम करनेमें तत्पर रहता है; परंतु व्यौपारमें बापदादेके कमाये हुवे पैसे गुमा बैठता है, तो यदि उद्यमहीसें वनता होता तो गुमाताही क्यौं! पूर्वभवोंमें किये हुवे पाप उदय आये उससें उसकों दुःख भुक्तनाही चाहियें-उसी सबवसें उसके पैसे चले जाते है ये कर्मकाही फल है. कोइ पुरुष एक दो औरतोंसें सादी कर लेवें और उसकों एकभी संतान नहीं होता है. भोगादिकका उद्यम करता है; मगर संतान नहीं प्राप्त होता. यौं करनेसें कभी संतान होभी जाय तो वो जीता नहीं तो ये क्या है? पूर्वकर्मके संयोग हैं! एक मनुष्य वडा बलवान् है और अच्छा खानपान करता है-शरीरकी संभालभी अच्छी तरहसें रखता है, ऐसा मनुष्य महामारी आदिके उपद्रव विगर फक्त ख्वासी आनेसेंही मर जाता है, फिर महामारीकी बिमारीवाली हवा सारे शहरमें चल रही है; तौभी वो हवा सबके बदनमें दाखिल नहीं हो सकती. दो मनुष्य एकही घरमें साथ साथ रहनेवाले, फिरनेवाले, खानेवाले और अच्छी हिफाजत रखनेवाले हैं; तथापि एकके शरीरमें महामारी घुस जाती है और उससें मर जाता है, और दूसरा जीता रहता है तो ये पूर्वके कर्मका प्रभाव है. यदि केवल उद्यमसेंही वन सके ऐसा होता तो वे दो मनुष्य समान उद्यमी वो मरने न चाहियें; वास्ते पूर्वमें पाप कर्म बांधे हुवे ये उसका फल हैं. इस परसें समझ

लिजीयें कि–केवल उद्यम व्यर्थ है, तब कुछ हेतु होना चाहियें–वो हेतु पूर्वके कियें हुवे कर्म. जब पूर्वमें कर्म रह गये तब पूर्वजन्मभी रह गया. पिछला भव रह गया तो जीवभी रहा. जीव शब्द अजीव शब्दका प्रतिपक्षी है, तो दुनियांके भीतर अजीव शब्द जीव होनेसेंही पडा है; वास्ते अच्छी तरहसें सिद्ध होता है कि जीव हैं. इस जगत्‌में नास्तिक, जीव नहीं माननेवाले थोडी संख्यावाले हैं, बहुतसे और धर्मवाले ऐसा कथन करते हैं कि–'जैसा करेंगे वैसा पावेंगे." तब करनेवाला जीवही होना चाहियें, इस्सेंभी सिद्ध होता है कि जीव है. जीव शब्दका अर्थभी एही है वो जीव प्राणधारणे धातुसें सिद्ध होता है; वास्ते जीवै सो जीव. शरीर फेरफार हुवे करते हैं; मगर जीव तो वोका वोही है. जेसे कर्मबंधन किये हो वैसें पुनः शरीर धारण करता है वही जीव है. और जो जो सुखदुःख उत्पन्न होते है वो जैसे जैसे पूर्वभवमें पाप पुन्य किये हैं वैसे जीव भुक्तता है. और तुमारे मत मुजब जीव न हो और शरीरही अकेला हो, तब ये ऊपर तफावत बतलाया गया है वो होनाही न चाहियें, और वैसा होवै तो तुमारा नास्तिकका समझना भूलसेंभरा हुवाही है. ये नास्तिक मतका निकालनेवाला पापी होना चाहियें; क्यौं कि इस समय इंग्लॅडमें कितनेक इंग्रेज ऐसा माननेवाले मैदानमें आये है कि पाप पुन्य हैही नहीं. शरीरकी मावजत रखनेसें दुरुस्त रहता है और हिफाजतके सिवा बिगडता है. ऐसा शोच करकें गुन्हा कियेकी शि-क्षाकोंही नही मानते हैं, और नहीं माननेसें एसेही मनुष्य खून बहुत करते हैं. तो जैसें अभी नास्तिक पाप नहीं मानेंगे तो बुरे काम करनेकी धास्तीभी न रहेंगी और बुरे काम किये करेंगे. उसपरसें मालूम हो सकता है कि नास्तिकमत स्थापक पापीही होना चाहियें. वैसेकी संगतिमें रहे वोभी किसी जातिके पापकर्मसें न डरेगा. इस समय जितने राज्य चल रहे हैं उतने कुल राज्योंमें गुन्हाकी शिक्षा है, तो जैसी शिक्षा सब आलम कबूल करती है, उसी तरहसें हरएक पाप करै उनकी शिक्षा होनीही चाहियें. इस दुनियांमें तमाम लोग मानते है कि किसी जीवकों दुःख न हो वो काम करना. और जब नास्तिक होवै तब तो किसीकों दुःख देनेकी फिकभी नहीं रहती. उससें दुनियांके विचारसें और न्यायसें करकेंभी ये अयोग्य होता है. ये तमाम हरकतें तपासनेसें जीव मान लैना. सुखदुःख कर्मके संयोगसें बनते है ऐसा माननेसें सब दूषण दूर हो जाते हैं. ये कर्मका स्वरूप मेरी की हुइ साथ सामिल है उसी प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें बहुत विस्तारसें है सो वहां देख लैना.

१० प्रश्नः—तुमारे कथन मुजब कर्मके संयोगसें सब बनता है, तब जीव अकेला कुछ न कर सकता है ?

उत्तरः—जीवकी शक्ति तो अनंत है; मगर पापकर्मके वशिभूत है. वहांतक अकेली आत्माकी शक्ति नहीं चला सकता है-जैसें कोइ वडा राजा हो और कैदमें गिर्फतार हो जाता है तब उसका कुछ जोर नहीं चलसकता, वैसें कर्मके वशमें जीव पडा है वहांतक आत्माकी प्रवृत्ति आत्मा जडसंगति विगर नहीं कर सकता है.

११ प्रश्नः—कर्मके संबंधसें प्रवृत्ति करता है तब जीवकी शक्ति तो न रही, तब जीव पदार्थ किसलिये मानना चाहियें ?

उत्तरः—जीव विगर जड तो कुछभी नहीं कर सकता; क्यों कि जिसमें जड स्वभाव है-चेतन स्वभाव नहीं उनसें वो क्या कर सके ? जितनी जितनी विचारशक्ति है वो चेतनकी है, जडमें वो स्वभावही नहीं. पंचभूत जो तुम मानते हो वैभी जड हैं, उन्होंमेंभी विचारशक्ति नहीं. पंचभूत खानेकी रसवतिमेंभी सामिल हैं, मगर उन्हमें कुछ जीवनशक्ति उत्पन्न नहीं होती; वास्ते पाँचोंकी वातोंमेंभी वहुतसे प्रश्न हैं वो प्रकरण रत्नाकर भाग दूसरेके पत्र १७७ में नास्तिकका संवाद है वहांसें देख लेना.

१२ प्रश्नः—तुम कहते हो कि जडमें चेतनशक्ति नहीं, तब तुमभी बुद्धि वढानेके लिये सरस्वती चूर्न खिलाते हो. फिर शास्त्रमेंभी वज्रऋषभनाराचसंघयण होवै तो क्षपकश्रेणी मांड सके-फिर "प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणि" मेंभी यात्राके फलमें सार पुद्गल स्पर्शनेसें अच्छी बुद्धि होवै ऐसा वतलाया है वो जडकी शक्तिसें क्यौं वन सकता है ?

उत्तरः—जड है उसकी शक्ति जहांतक कर्म सहित जीव है और कर्मसें करकें आत्माका स्वभाव ढका गया है, वो आवरण करनेवाले पुद्गल है, वो पुद्गल ऐसे मिले है कि आत्माकी ज्ञानशक्ति चलनेही नहीं देते. तो सरस्वतीचूर्ण प्रमुखके सार पुद्गल हैं, वो जैसें औषध खाते हैं तो शरीर अंदरके रोगके पुद्गलकों निकाल देते हैं, वैसें शरीरमें वायु प्रमुखसें इंद्रियोंकी शक्तिकों हरकत हो वो दूर होती है; उससें चेतनशक्ति चलनेमें जो अडचण थी वो दूर हुइ कि जो बुद्धिथी वो चल सकती है. जैसें आंखपर पाटा वांध दिया गया हो और पीछा हठा देवें तो आंखोंसें देख सकते हैं. पाटा दूर हठनेसें कुछ आंखोंमें ताकत नहीं आती है; मगर हरकत डालनेवाली चीज

दूर हो गइ-विसी तरह सरस्वती चूर्ण करता है. संघयणका वलभी जैसें कानमें रोग हुवा हो तो आत्मा है तथापि सुना नहीं जाता; क्यौं कि कानका भाग विगडा हुवा है वो सुधर जाय तो सुना जावै, वैसें संघयण वलवान हो तो आत्माकों अपना काम करनमें हरकत करनेवालेकी हरकत नहीं रतीहै, उससें अपनी ज्ञानशक्ति चल सकती है जैसें निर्वल मनुष्यकों लकडीका आधार हो तो चलनेमें हरकत नही होती, विसी तरह आत्मा कर्मके आवरण सहित है वहांतक निर्वल है, उससें आधाररूप संघयणका वल चाहियें. सर्वथा कर्मसें रहित होवे तव देहरहित होता है और तभी अपनी शक्ति जितनी है उतनी चल सकती है, उसमें कुछ पुद्‌गलके आधारकी जरूरत नहीं. जैसें निरोगी आंखवालेकों चस्मेकी जरूरत नहीं; मगर आंखका तेज घट गया हो उसकों वेशक चस्मे चाहियें, तैसें कर्म आवरणरूप रोग है वहां तक जो जो ज्ञान होता है वो इद्रियोंके वलसें होता है और वहां तक अच्छे पुद्‌गलकी जरूरत पडती है. जैसें कि केवलज्ञान प्रकट होता है तव कोइभी इंद्रिकी जरूरत नहीं पडती है, अपनी आत्मशक्तिसेंही ज्ञान होता है; वास्ते आत्मशक्तिमें कुछभी जडकी जरूरत नहीं पडती. ज्यौं ज्यौं जडसंगति दूर होती जाय त्यौं त्यौं आत्मज्ञान प्रकट होता है, और संसारमें भटकनेका मिट जाताहै. आत्माके उलटे विचार होते हैं वो जडकी संगतिके फल हैं, वो जडकी संगति छूट जायगी और आत्माकी सन्मुख होगा तवही जो जो सत्य विचार हैं वो मालूम होवेंगे. वहांतक मालूम न होवेंगे; वास्ते जडकी संगति कमती करो कि सवकुछ अच्छा होवै.

१३ प्रश्नः—जडकी संगति कमती करनेमें क्या करना ?

उत्तरः—सद्‌गुरुका समागम, और निष्प्रही, निर्विषयी स्वात्माभावी पुरुषोंकी सोवत करनेसें मार्ग हाथ लगैगा.

१४ प्रश्नः—तुमारे कहने मुजव सव कर्मसें वनता है तो ज्यौं वननेका होगा त्यौं वनेगाही सही, तो फिर उद्यम करनेकी क्या आवश्यक्ता है ? उद्यमकों तो तुमने पेस्तर निकमा गिन लिया है.

उत्तरः—हमारे जैनशासनमें तो हरकोइ कार्य होता है वो पांच कारण मिलनेसें होता है, और पांचों कारणोंमें उद्यमभी सामिल रख्खा गया है. तुमने तो अकेले उद्यमसेंही कार्य प्रार होना मान लिया है सो हम नहीं मानते है; क्यौं कि प्रत्यक्ष देखने

हैं कि उद्यम बहुतही करते हैं; मगर पुन्यकी न्यूनता हो तो कुछ फल मिलता नहीं. पुनः अकेले उद्यमसें होवै तब उसकों अच्छी करणी करनेकी बुद्धि नाश होती है; क्यौं कि उसके दिलमें पूर्वपुन्यकी श्रद्धा नहीं कि पुन्य होवैगा, उससें पुन्य करनेका उद्यम नष्ट हो जाता है. और कितनेक भावीपर रहते हैं कि ज्यौं बननेका होगा त्यौं बनेगा, वोभी निरुद्यमी होते हैं, सोभी कामका नहीं. पांचों कारणोंके योग मिलनेसें ही कार्यकी सिद्धि होती है.

२१ प्रश्नः—(अ) पांच कारण किस तरह मानते हो?

उत्तरः—पांच कारण सो-काल, स्वभाव, नियत, उद्यम और पूर्वकृत यह पांच कारण इकठे होते हैं तब हरएक कार्य होता है. काल सो इस वक्त पंचमकाल है तो पँचमकालमें कोइ जीव मुक्तिमें नहीं जा सकते. तीसरे चौथे आरेमें जीव मोक्ष पाते हैं. जैसें उष्ण ऋतुमेंही आमके पेडपें फल लगै, स्त्रीकी उम्मर चाहियें उतनी न होवै-तवतक गर्भ धारण न करै, वैसें हरएक कार्यमें कालकी सामग्री मिलनी चाहियें. कालकी सामग्री चौथे आरेके जीवोंकों मिलै; मगर उन जीवोंमें भव्य स्वभाव नहीं वहांतक वैभी मुक्ति नहीं पा सकते; क्यौं कि भव्य स्वभाव चाहियें. और तीसरे चौथे आरेमें बहुतसें भव्य जीव थे उससें स्वभाव कारण मिला; मगर उस जीवने समकित प्राप्त नहि किया जिससें नियत कारण नहि मिला. तब कोइ कहेगा कि-'श्रेणिक महाराज और कृष्ण महाराज क्षायक समकित पाये थे उन्होंकों नियत कारण मिला था तोभी मोक्षमें क्यौं नहीं गये?' उसका जवाब यही है कि ये तीन कारण मिले; परंतु मोक्षसाधनका उद्यम किया नहीं. जैसें आमके पेडपर आम लगनेकी मोसम है [आमकों वंध्यत्वपना नहीं] वो स्वभाव और मंजरी वगैरः आइ है ये तीन कारण मिले; तथापि उस आमका रक्षण न करै याने पानी वगैरः जो कुछ आमकों चाहियें वो सींचन न करै तो आम हाथ न आवेंगे, वैसें, समकित पाया; मगर ज्ञान दर्शन चारित्र प्रकट करनेका उद्यम न करै तो मुक्ति न मिले. इसी तरहसें श्रेणिकमहाराजाने संयमाराधन किया नहीं उससें तद्भव केवलज्ञानकी प्राप्ति न हुइ. अब जो उद्यमसेंही केवलज्ञान होवै तो स्थूलीभद्रजी प्रमुख मुनिमहाराजने तप संयमका बहुतसा उद्यम किया था; तदपि केवलज्ञान न पाये उसका कारण क्या? पांचवा भवितव्यताका योग मिलना चाहियें. स्थूलीभद्रजीकों अभी कर्म भुक्तने बाकीमें थे उससें

मोक्षमें न जा सके. कर्मकी स्थितियें जिन जिन मुनिकी परिपक्व होती है उन उन मुनिकों उद्यम करनेसें केवलज्ञान हो सिद्धिसुख प्राप्त होता है. और फिरभी होवेगा. वास्ते पांचों कारण मिलनेसें मोक्षरूप कार्य होवेगा. यह अधिकार प्रकरण रत्नाकर भाग पहिलेके पत्र १७६ में है वहांसें देख लेना पुनः विनयविजयजीने स्याद्वादका स्तवन बनाया है उसमेंभी विस्तारसें कथन किया है, वोभी वहांसें देख लेना. इन पांचों कारणोंमेंसें एक एक कारणकी मुख्यता लेकर भिन्न भिन्न मत प्रकट हुवे हैं, उसमेंसें आत्मार्थियोंकों देख लेना कि इन पांचोंके मिलापसें जैसा कार्य होता है वैसा एक एक कारणसें नहीं हो सकता है कितनेक उद्यमकी महत्ता गिनकर उद्यम कियाः करते हैं; परंतु इच्छित कार्य जब नहीं होता है तब चित्तमें विषाद होता है; मगर कर्मकी जो प्रतीति होवे तो उससें कर्ताका विचार करै कि–' उपायपार तो किया; किंतु पूर्वकृत पुण्यकी न्यूनता है उसीसें लाभ नहीं पाया. अब विकल्प करकें क्या करेगा ? " ऐसा शोच करकें समताभाव ल्यावे. फिर कितनेक युं कहते है कि भाविमें बननेवाला होगा वैसा बन रहेगा. ' ऐसा विचार करकें उद्यम नहीं करते हैं, तो वैसे जीवभी प्रभुमार्ग-का लाभ न ले सकते हैं. कारण कि प्रभुजीने कर्म दो प्रकारके कहे हैं याने उपक्रमी और निरुपक्रमी. उनमेंसें जो निरुपक्रमी कर्म है उनमें तो उपक्रम लगनेकाही नहीं; परंतु उपक्रमी कर्ममें उद्यमसें उपक्रम लगता है और उससें कर्म नाश होतें हैं; कारण कि क्षायकसमकित जिस वक्त पाते है उस वक्त एक कोडाकोडी सागरोपममें पल्योपमका असंख्यातवा भाग कमी इतनी स्थिति सातों कर्मकी रहती है. अब जो दूसरे भवका आयुष न बांधा होगा तो उसी भवमें मोक्ष पावेगा, तब आयुष्तो कोडपूर्वसें विशेष कोइभी मोक्षगामीका नहीं, तो ये कर्म कहां भुक्तेंगे अर्थात् न भुक्तेंगे ? ज्ञान दर्शन चारित्रके आराधनरूप उद्यमने ये कर्मकी स्थिति कमती कर थोडे वक्तमें भुक्त लेवेंगे; वास्ते वो सब उद्यमसें बनता है–इस लिये भाविक ऊपर भरोसा रख बैठ रहना सो अयोग्य है. जो जो कार्य करना हो उसमें उद्यम तो करना, उसमें उद्यम करनेपरभी कार्य सिद्ध न हुआ तब शोचना कि–' इस कार्यमें अंतराय कर्म जोर करता है, वो कारणकी न्यूनता हुइ उससें मेरा कार्यसिद्धिकों न भेट सका. ' ऐसा शोच करकें समभावमें रहना, उससें चित्त प्रसन्न रहवेगा. नये कर्म न बंधे जाय वास्ते जो जो कार्य करना हो उसमें पांचो कारणमेंसें जिस जिसकी [कारणकी]

न्यूनता-कसर होवे वहांतक कार्य न हो सकैगा. ऐसा विचारकें न हुवा उस संबंधी संताप न करना. कोइ वक्त उद्यम किया; मगर खामीसें भराहुवा किया तो उस-संबंधी कार्य न होवैगा तो पुनः उद्यम करना. इस संबंधमें ऐसा समझना कि जिस जिस वक्त जो जो करने-योग्य हो उस उस वक्त वो कार्य करना. इस मुजबके पांच कारणके योगसें कार्य होवे ऐसा जैनागमका फरमान है और वही हमारा मनोरथ पूर्ण करनेहारा है।

१५ प्रश्नः—(ब) जैनागमकी मर्यादा मुझकोंभी अच्छी लगती है. इन पांच कारणोंके संयोगसें कार्य हो सकै उसमें कुछ संदेह न रहेता है; मगर तुमने जीवका स्वरूप तलाया वो देखनेसें अनंत ज्ञानादि शक्ति कायम है तो वो किसतरह प्रकट करनी?

उत्तरः—अठारह दूषण जबतक जीवमें मौजूद है वहांतक जीवकी जो जो आत्मशक्ति है वो प्रकट नहीं हो सकती. वै अठारह दूषण ये है. दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुगंछा काम, अज्ञान, मिथ्यात्व, निद्रा, अव्रत, राग और द्वेष—ये १८ औगुन दूर कर देवै तब आत्माकों गुन प्रकट हो सकै और जन्ममरनका परिभ्रमणभी मिट जाय.

१६ प्रश्नः—दानांतराय सो क्या?

उत्तरः—दान याने देना सो—संसारमें पांच प्रकारका है याने अभयदान, सुपात्र-, अनुकंपादान, कीर्तिदान और उचितदान—ये पांच दानके भेद हैं. उसका अंतराय होवे वहांतक जीव दान न दे सकता है.

सुपात्रदान सो—तीर्थंकरमहाराजजी, सामान्य केवलज्ञानीजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, साधुजी, उत्तम श्रावक, सम्यग्दृष्टि और मार्गानुसारी—ये तमाम सुपात्र हैं. ऐसे पुरुषोंका योग मिले, आपके पास योगवाइ होवै, और ऐसे पुरुषोंकों देनेमें लाभभी जानता होवै; तोभी दानके अंतरायसें करकें न दे सकै. और दानांतराय कर्मका क्षयोपशम हुवा होवे तो दे सकै. अभयदान सो—कोइ किसी जीवकों मार डालता होवै तो उस जीवकों म्होतसें बचाना, और उस जीवकों बचानेमें कुछ कष्टभी पड़े तो उठा लेकरभी उसकों बचा लेवै. फिर जिन पुरुषोंकों विशेष दानांतरायका क्षयोपशम हुवा होवे तो वै आपके खाने पीनेके वास्तेभी किसी जीवकी हिंसा न होने देवे हैं—आप खुद कष्ट सहन करै. अचित्त-जीवरहित वस्तु मिले वही लेवै; न मिले तो

जीवकी हिंसा होवें वैसी वस्तु न लेवै. आपका मरन होवै वो कबूल कर ले; मगर किसी जीवकों दुःख होवे वैसा न करै. वैसे पुरुष तो कोइभी कारणसें कोइभी जीवकों दुःख होवे वैसा करैहि नहीं; सबब कि जिस तरह मुझकों पीडा होनेमें है दुःख होता है, उसी तरह दूसरे जीवकोंभी दुःख होवे; वास्ते किसीकोंभी दुःख होवे वो काम मेरे न करना. इस तरहसें चले वो अभयदान कहा जाय.

अनुकंपा दान सो–कोइ जीव दुःखी हो और आपके पास वस्तु हो तो वो दे करकें उसकों सुखी करना. पीछे थोडी योगवाइ हो तो थोडा देवें, और विशेष योगवाइ हो तो विशेष देवै. शरीरकी महेनतसें दुःख दूर हो जाता हो तो महेनत करकें उसका दुःख निवर्त्तन करै. इसमें पात्रापात्रका विचार नहीं करना. फकत दुःखी जीवका दुःख दूर करनेकी बुद्धि है. पुनः जिनमें ज्ञानशक्ति है उनकों मुनासिब है कि अधर्मि जीवोंकों ज्ञानका बोध करना–वोभी अनुकंपादान है. औषधादिक दे करकेंभी दूसरेकों सुखी करना–जिस प्रकारसें अन्यजीव सुख पावै वैसी बुद्धिसें करना वो अनुकंपादान कहा जावै. इसका अंतराय होवै तो ये दान सच्ची योगवाइके वक्त न कर सकै, और इस अंतरायका क्षयोपशम हुवा होवै तो ये दान दे सकै. ये तीन दान आत्माकों हितकर्त्ता हैं.

चौथा कीर्तिदान सो–आपकी कीर्ति-शोभा होवै उस वास्ते देना, दूसरा शासनकी कीर्तिके वास्ते देना, याने जैनीलोग क्या दानेश्वरी हैं! क्या उदारशील है! धन्य है जैनधर्मकों! ऐसें धर्मकी प्रशंसाके वास्ते देना सो एक सम्यक्त्वका प्रभाविक गुन है–वोभी अंतराय कर्मके आवरण दूर हट गये होवें तो बनता है.

पांचवा उचितदान सो–संसारी कुटुंबादिककों व्याजबी हो विसी तरहसें देना. वोभी अंतराय होवै तो उचितता न समाल सकै. इस प्रकार पांच दान हैं, उनमेंसें पिछले दो दानसें इन लोकमें यश कीर्ति होती है, नीति समाली जाती है, माता-पितादि उपकारियोंके उपकारका बदला दिया जाता है और लक्ष्मीकाभी उपयोग होता है. जो जन उचितमें नहीं समझता है वो पापका भागी होता है. पहिले तीन दान हैं सो आत्माके हितकारी हैं, वो जब दानांतराय हट गया होवै तबही गुणवंत जानकर देनेका विचार होवै, तब जितना जितना दानांतराय टूट गया हो उतना आत्मा विशुद्ध होवै.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि-' मुनिमहाराज आदि क्या दान देते हैं ? ' उसका उत्तर यही है कि-ज्ञानदान समान दूसरा कोइ सर्वोपरी दान हैंही नहीं. वास्ते मुनिमहाराज भव्यजीवोंकों ज्ञान पढाते हैं, ज्ञानोपदेश देते हैं उससें वै जीव न करने योग्य कार्य-अकार्यसें मुक्त हो जाते हैं और पापके काम नहीं करते हैं. इससें दुर्गतिके दुःख भुक्तने पडते नहीं और सद्गति-देवलोक वगेरःके सुखकी प्राप्ति होती है, तो वो सुखके देनेहारे वो गुरुमहाराज हैं तो किसीसें न दिया जाय वैसा ज्ञानदान दिया. कितनेक तीर्थंकरजीका उपदेश सुनकर संपूर्ण तीर्थंकरजीकी आज्ञा शिरपर चडाकर सर्वथा रागद्वेषसें मुक्त होते हैं. केवल अपने आत्मधर्ममेंही प्रवर्त्तते हैं उससें केवलज्ञान पाकर मुक्तिमें जा वहां सदैव स्थिरतासें रहवे हैं. पुनः संसारमें आनेका नहीं, जन्म मरनका दुःख मिट जाता है, सब प्रकारके विकल्प दूर हो जाते हैं, पूर्ण आत्माके गुण प्रकट होते हैं और किसी प्रकारकी हरकत नहीं ऐसा-अव्याबाध सुख प्राप्त होता है. तो वो देनेवाले तीर्थंकरजीमहाराज हैं. यहाँ दानांतराय क्षय होनेसें आत्मामें अनंत दानशक्ति प्रकट हुइ है उससें ज्ञानदान देकर जगतकों भव दुःखसें छुडाते हैं. जो और कोइ न कर शकै वैसा अद्भुत ज्ञानदान है. पुनः गृहस्थावासमें थे तब हमेशां एक वर्षभर तक एक क्रोड आठ लाख सुवर्ण म्होरोंका दान दिया वैसे दानेश्वरी जगतमें कोइ नहीं. वो दानांतरायके क्षयोपशमका फल है. फिर जब केवलज्ञान होता हैं तब सर्वथा दानांतराय क्षय होता है उसके प्रभावसें ज्ञानदान है वो व्यवहार, निश्चयमें अपने आत्माके गुण ढका गयेथे और बहिरात्मदशा हुइ थी उतने अपने गुण अपने आत्मामें आये वो रूप दानगुण प्रकट हुवा है और सदा काल अवस्थित हैं और वै गुण सिद्ध भगवान होवै तब कायम रहते हैं. वै जीव अपनी आत्मसत्ताकों शोचनेपर वो वर्त्तना करनसें दानांतराय क्षय होवै.

१७ प्रश्नः—दानांतराय, क्या करनेसें बंधा जाता है ?

उत्तरः—पांच प्रकारमेंसें हरकोइ दान कोइभी करता होवे उसकों, कहवै कि ये दान देना उस करतें पेटमें खाना वो अच्छा है वो छोडकर लोगोंकों देनेमें क्या फायदा है. या गुणवंत होवें उनकों निर्गुणी ठहराकर न देवै. फिर देता हो उसकों मना करै-निंदा करै-उसकों कहवै कि यह तो उडाउ है-कुछ पैसा खर्चनेका विचार नहीं करता है, या आप शक्तिवान होवै और दान देनेवालेका महीमा होवै वो देखकर

उसकेपर गुस्सा ल्यावे, आपसें कुछ बन सके तो उसका नुकसान करै-हीलना करै अगर दान देवे तो अहंकार ल्यावै कि मेरे समान जगत्‌भरमें कोइ दान देनेवाला हैही नहीं. मैंनें धर्मके कार्य कोइ न करै वैसे किये हैं. इत्यादि अनेक प्रकारके कारणोंसें जीव दानांतराय कर्म बांधता है. जो आत्मार्थी है वो तो शोचते हैं कि भगवान्‌जीने संवत्सरी दान दिया था और मैंनें क्या दिया? मेरे आत्माका तो दानगुण ढका गया है वो प्रकट करना चाहियें. फकत पुन्योदयसें धन मिला है, वोभी जितना मेरे भोग्यके लिये व्यय करता हुं उतना दानमें व्यय नहीं करता हुं तो में क्या अहंकार ल्याउं? पेस्तरके महान् पुरुष मूलदेव जैसे कि जिन्हने तीन दिनसें अन्न नहीं पायाथा और चौथे रोज जव उरद खानेकों मिले तोभी दिलमें आया कि कोइ सुपात्र मुनि मिल जावे तो में उन्होंकों देकर पीछे खाउं. ऐसा शोचता है दरम्यान भाग्यशालीकों मासखमणके पारणेवाले मुनि मिल गये कि तुरत वे उरद दे दिये. वो दानगुणके महिमासें आकाशमें देववाणी हुइ कि–' सातवे रोज तुझकों राज्य मिलेगा.' ऐसा कहे वाद दानकी प्रशंसा की. देववाणी मुजब उनकों राज्यभी मिला. तो हे चेतन! तूंन तो वस्तु मौजूद होनेपरभी वैसा दान न दिया तो क्या गर्व करता है. पेस्तरके वैसे गुणवंत पुरुष अपना तन धन दोनु गुरुजीकों अर्पन करतेथें, वोभी तूने नहीं किया तो तुं क्या अहंकार करता है. देवभक्तिमें न्यूनता न आवै उस वास्ते रावणने अपने हाथकी नस निकालकर वीनकों दुरुस्त करके गानतान जारीही रख्खा था, तो वैसी तूने भगवंतजीकी भक्ति की नहीं और न धनभी व्यय किया है या शरीरभी काममें न लिया है तो तुं किस प्रकारका अहंकार ल्याता है? पूर्वकालमें केइ पुरुषोंने अभयदानके लिये कोइ जीव मरता होवे तो बचानेके वास्ते अपनी दौलत लूंटादि है सो तो तूने लूंटादी नहीं तो काहेका अहंकार करता है? शांतिनाथजीनें तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया उस जीव–मेघरथराजानें एक कबूतरकों बचानेके लिये अपने शरीरका मांस काट काट कर देना शुरु किया, देखिये दानेश्वरीपना! तूने वैसा तो अभयदान दिया नहीं कि अहंकार करता है? सब जीवोंकों अभयदान होवै उस वास्ते चक्रवर्तीकी रुद्धि छोडकरकें संयम ग्रहण किया, तो चेतन! तूने क्या किया है कि अहंकारसें घमंडी बन जाता है? सगराम सोनीने सुवर्णके अक्षरोंसें ज्ञान लिखवाया उस अंदरका मैंनें क्या किया कि अहंकार करुं. पुनः कुमारपालराजानें

ज्ञान लिखवानेके वास्ते ताडपत्र न थे उससें कागजपर पुस्तक लिखते हुवे देखकर हेमचंद्राचार्यजीकों कहा कि-' कागजपर किस सबबसें लिखवाना शुरु रख्खा है ? ' आचार्यजीने फरमाया कि-' अभी ताडपत्रकी न्यूनता है उस सबबसें. '. कुमारपालने उसी दम अभिग्रह लिया कि-' जबतक ताडपत्र चाहियें उतने ल्याकर हाजिर न करुं वहांतक अन्नजल न ग्रहण करुंगा. ' उस वख्त प्रधानने अर्ज की कि-' ताडपत्र दूर देशसें आते हैं और आपश्रीने कठिन अभिग्रह लिया तो वो क्योंकर पूर्ण होवैगा ? ' तोभी राजाने कहा कि-' जो नियम लिया गया सो अब न फिर सकैगा. चाहे वैसे हो; परंतु ताडपत्र पूरे कीये विगर तो अन्नजल न ल्युंगा ! ' बाद इस उग्र अभिग्रहके प्रभावसें आपके बगीचेमें खडताड थे वो असली ताड बन गये और उससें अभिग्रह पूरा हुवा. तो चेतन ! तूने कितने ज्ञान लिखवाये ? कितने अभिग्रह लिये हैं कि ज्ञानमें अल्प खर्च करकें अहंकार करता है ? तूने साधर्मियोंकी क्या वात्सल्यता की ? कुमारपालराजाने स्वधर्मीयोंकों राज्यके अंदर रोजगारमें लगा दिये, वैसे तूने कोनसें उपकार किये हैं कि गर्व करता है. संप्रतिराजाने सवाक्रोड जिनबिंब भरवाये उनमेंसें तूने क्या किया ? कि अहंकार करता है. धनाजीने जगह जगह धन उपार्जन किया और वो अपने भाइकों देकर विदेशगमन किया तूने वैसा क्या कुटुंबका रक्षण किया है कि अहंकार करता है. भोजराजाने एक एक श्लोकके लख्खों रुपै दानमें दिये हैं उन्मेंसें तूने क्या दिया ? सिद्धसेनदिवाकरजीने चार श्लोक कहे उसमें विक्रमराजाने चारों दिशाओंका राज्य उन्होंको सुपरद कर दियाथा. अब शोच कर कि तूने क्या दान दिया ? कि अहंकार करता है. ऐसी सुंदर भावना ल्याकर दान देकर अहंकार न ल्यातें दूसरोंकों दान देने, दिलवानेकी प्रेरणा करता है, कोइ दान करै उसकी प्रशंसा करै, दानके अतिशय व्यसनी होते हैं वै तो अपने पहननेका वस्त्र तकभी देकर आप दुःख उठा लेते हैं. एसे दानके उत्कृष्टभाव ज्यों ज्यों होते जाय त्यों त्यों दानांतराय तूटता जाय. दातारकी सोबत करनी, दानके फल श्रवण करना, विषयकी लालसा छोड देनी. विषयवाला तो शोचता है कि में दान दउंगा तो में पीछे क्या खाउंगा ? ऐसे पुद्गल सुखमें मग्न होनेसें दान न दे सकता है. और दानांतराय बांधता है. और जिसकों दानांतर तूटनेका है वो तो चिंतवन करता है कि-हे आत्मा ! तेरास्वभाव ज्ञान दर्शन चारित्र गुणमें रहनेका है यह शरीर सो तूं नहीं. शरीर कर्म-

संयोगसें मिला है, तो इनकों पुष्ट करनेसें नये कर्म बंधेंगे. जो जो विषय भुगतेंगे उससें कर्म बंधे जावेंगे. और यह धनादिक पुन्योदयसें प्राप्त हुवा है तोभी इस द्रव्यकी ममता करुंगा तो कर्म बंधे जावेंगे. और मेरा आत्मा कर्मसें आच्छादित हो जायगा; वास्ते इस द्रव्यका, दान करुंगा तो जिन द्रव्यसें जो कर्मविषय भुक्तकर कर्म बंधे वो न बंधे जायेंगे. इस लिये यह द्रव्य ज्यौं बन सकै त्यौं सुपात्रमें देना, ऐसी भावना भावता है. पुनः चिंतन करता है कि-तेरे आत्माके गुण प्रकट करकें आत्माकों देना सो दानगुण है, और ये धनादिककी ममता है उसका त्याग होवै तो जितनी जितनी ममता तेरी त्याग हुइ उतना आत्मा निर्मल हुवा और तूंने तेरे आत्माके गुण आत्माकों प्रकट कर दिये वही स्वाभाविक दानगुण प्रकट हुवा. ऐसे विशुद्धभावसें दानांतराय अनुक्रमसें सर्वथा तूट जायगा.

१८ प्रश्नः—लाभांतराय वो क्या ? उसका बयान किजीयें

उत्तरः—जो जो लाभ होनेके हो वो लाभांतराय तूटनेसेंही होनेके हैं. और वो लाभ दो प्रकारके हैं-याने एक संसारी लाभ और दूसरा आत्मिक लाभ. ये दोनूंमें अंतरायकर्म पीडता है. प्रथम संसारी लाभ है सो शरीर निरोगी मिलना, स्त्री-पुत्र-परिवार-धन-अनुकूल मनुष्य-नोकर चाकर और जिस वक्त जो इच्छा हो वो वस्तुका मिलना अगर विद्यां कला शीख लैनी यह सर्व लाभांतराय कर्मका क्षयोपशम हुवा होवै तो मिलै. उसमें फिर थोडा क्षयोपशम हुवा हो तो थोडा लाभ और विशेष हुवा हो तो विशेष लाभ मिले. और जो जो वस्तुका अंतराय हो वो लाभ न मिल सकै. उत्तम पुरुषोंनें इस कर्मका स्वरूप जान लिया है, उससें ये वस्तु न मिलै तो उसका शोचसंताप नहीं करते. जिनके मनमें क्लेश आता है वोभी शोचते हैं कि पूर्वजन्ममें लाभांतराय कर्म बांधा है उसीके लिये नहीं मिलता है. गतजन्ममें कर्म बांधनेके समय शोच नहीं किया और अब संताप करता है वो क्या काम आवै ? ऐसे विचारसें संतोष भजते हैं. और उसीसें लाभांतराय कर्मकी निर्जरा करते हैं. विशेष उत्तम पुरुषकों तो शोचनाही नहीं पडता-सहजही समभावमें रहते हैं. जो होवै सो जाननेका आत्माका धर्म है उसमें रह करकें जान लेते हैं; मगर विकल्प नहीं करते हैं. अज्ञानी जीव है सो जब लाभ मिलता नहीं तब दूसरेका दोष निकालते हैं. कितनेक दैवकों दोष देते हैं-'अहा ! दैव ! तूनें ये क्या किया ? मेंनें तेरा या बिगाडा था ?' फिर

स्हामनेवाले मनुष्यके साथ लडै-भीडै-गुस्सा बतलावै. वैद्यकी साथ काम पडै और अच्छा होनेका लाभ न मिले तो उसकेपर द्वेष करै, और लाभ मिलनेसें बडाइकी बातें करता फिरै-अहंकार करै कि मै कैसा धनपात्र हुं. मै कैसा हुशियार-काबेल हुं के जो व्यापार करता हुं उसीमें पैदाही करता हुं, खोट जावैही नहीं-नफाही मिलै. राजा होवै तो राज्यका लाभ मिलनेका या राज्यमें न्याजबी आमदनी होवै या गैरन्याजवी रीतिसें जुल्म गुजारकर रैयतके पाससें पैसा लेकर लाभ मिलाके अहंकार करै. फिर कार्यभारी होवै तो लोगोंके पाससें रीस्वत लेकर लाभ मिलाके अहंकार करै या लोगोंके ऊपर जुल्म गुजारै, राजा खुशी हो मान्य देवै-इनाम देवै-रावबहादुर-दिवानबहादुर वगैरःका इलकाब देवै वो लाभ मिलाकरकें अहंकार करै. जो अनीति चलाइ हो उसकी प्रशंसा करै या उसके साथ आपकीभी तारीफ जाहिर करै, लुचाइ करकें दिलमें शोचै कि-क्यों कैसी तदवीर की! किसीके जाननेमेंभी न आइ और मेंनें मेरा लाभ मिला लिया. ऐसें अनेक प्रकारका गर्व करै. फिर किसीका सचा ल्हेना हो तो खोटी रसीदें बनवा करकें कचरीहमें पेशकर पसार करवा कर उसका ल्हेना खोटा करकें मनमें फायदा हुवेकी खुशहाली बतलावै. ऐसी खोटी वर्त्तना करनेसें जीव लाभांतराय कर्म बांधता है, उससें दूसरी दफै लाभ मिलना मुश्किल हो पडता है.

आत्मिक लाभ तो संपूर्णतासें तब प्राप्त हो सकै कि जब सब कर्म क्षय करकें आत्माका अनंत ज्ञान-अनंत दर्शन-अनंत चारित्र-अनंत वीर्य-अव्याबाध सुख-अक्षयपद-अजरामर-अज-अगम-अगोचर-अगुरुलघु आदि अनंत गुण प्रकट करै, तब आत्माकों लाभ प्राप्त हुवा. वो सर्वथा प्रकारसें बारहवे गुणस्थानकपर सत्ता बंध उदयसें यह कर्म क्षय हो जाय तब होता है. तब अंश अंशसें तो चौथे सम्यक्त्व गुणस्थानकसें प्रकट होता है. जितना आत्माका गुण प्राप्त हुवा उतना लाभ हुवा, ऐसे गुणस्थानकमें गुण प्राप्त करनेके कारणरूप प्रवृत्ति होनेसेंभी लाभ होता हैं. वो लाभभी लाभांतराय टूटनेसें होता है-याने दान-शील-तप और भाव इन चारों वस्तुओंकी प्राप्तिरूप लाभ लाभांतरायके टूटनेसें होता है.

१९ प्रश्नः—दान क्या चीज है?

उत्तरः—दानांतरायके स्वरूपमें कहा है उस मुजब दान कर सकै तो दानगुण

प्रकट हुवा वहीं आत्माकों लाभ हुवा, उसमें जो जो अंशसें गुण कर शकै उतना लाभ प्राप्त हुवा समझना.

२० प्रश्नः—शील वो क्या है ?

उत्तरः—शील याने आचार. वो आचार पांच प्रकारका है उसमें प्रथम ज्ञानाचार, वो ज्ञानाचार संपूर्ण तो अनंतज्ञान प्रकटै तब वो रूप लाभ मिलेगा. और उसके कारणरूप मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान-ये चार ज्ञान प्रकट होवै तब चारका लाभ हुवा. उतना लाभांतराय न तूट गया हो तो मति-श्रुत-अवधि प्राप्त होता है किंवा मति-श्रुत मनःपर्यवज्ञान होता है. उतनाभी लाभांतराय कर्म क्षय न हुवा हो तो याने थोडा क्षयोपशम हुवा हो तो मति-श्रुत ये दोनुही प्रकट होते हैं उतना लाभ हुवा, और उसके साथ समकितकाभी लाभ होवै; कारण कि समकित बिगर मति, श्रुत अज्ञान कहे हैं. उससेंभी कर्म क्षयोपशम हुवा हो तो समकित-रहित ज्ञानरूप लाभ होवै. उससें बुद्धिकौशल्यता प्राप्त हो सकै. सांसारिक कार्यमें हुंशियार होवै मगर आत्मिकज्ञान न होवै. आत्माके कल्याणरूप ज्ञान तो सम्यक्त्वज्ञान है वो काम लगै. सम्यक्त्वज्ञानरूप लाभ होवै, वो ज्ञान किसीकों द्वादशांगरूप ज्ञान होता है. उतना लाभांतराय तूट जावै तो मुक्तिके बहुतही समीप होवै. किसीकों चौदह पूर्वका ज्ञान होवै उन चौदह पूर्वके नामः—उत्पादपूर्व-जिसमें द्रव्यके पर्यायके उत्पादका स्वरूप है. दूसरा अग्रायणी पूर्व-जिसमें सर्व द्रव्य सर्व पर्यायका परिमाण दर्शाया है. तीसरा वीर्यप्रवादपूर्व-जिसमें कर्मसहित जीवके और अजीवकी शक्तिका विस्तारपूर्वक स्वरूप है. चौथा अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व-जिसमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल ये छः द्रव्य स्वस्वरूपसें अस्ति, पर स्वरूपसें नास्ति आदि वर्णन है पांचवा, ज्ञानप्रवादपूर्व-जिसमें पांचों ज्ञानका विस्तारपूर्वक वर्णन है. छट्ठा सत्यप्रवादपूर्व-जिसमें सत्य, संयम, वचन, इन तीनोंका विशेष स्वरूप दर्शाया है. सातवा आत्मप्रवादपूर्व-जिसमें आत्म-जीवके अनेक नयमतभेदसें करकें वर्णन किया है. आठवा कर्मप्रवादपूर्व-जिसमें आठ कर्म याने ज्ञानावरणी १, दर्शनावरणी २, वेदनी ३, मोहनी ४, आयु ५, नाम ६, गोत्र ७, ओर अंतराय ८ इन आठो कर्मोंकी प्रकृतिबंध-स्थितिबंध-रसबंध-प्रदेशबंध इन चारोंके बंधका स्वरूप अतिशयतों पूर्वक दर्शाया है. नवम प्रत्याख्यान प्रवादपूर्व-

जिसमें त्याग योग्य वस्तुका और त्यागका स्वरूप कथन किया है. दशवा विद्याप्रवादपूर्व–जिसमें अनेक आश्चर्यकारी विद्याका स्वरूप है. ग्यारहवा पूर्वनुनाकल्पापूर्व अगर अवंध्यपूर्व है–जिसमें फल वंध्य नहीं, ज्ञान–तप–संयमादिकका शुभ फल, प्रमादादिकका अशुभ फल ऐसे शुभाशुभफल बतलाये हैं. बारहवा प्राणायुपूर्व जिसमें दश प्राण याने पांच इंद्रि, तीन बल, श्वासोश्वास और आयु इन्होंका वर्णन है. तेरहवा क्रियाविशालपूर्व–जिसमें कायकि आदि क्रियाओंका स्वरूप संयमक्रिया, छंदक्रिया वगेरःका वर्णन है. चौदहवा लोकबिंदुसारपूर्व–जिसमें लोगमें अक्षरोंपर बिंदु सारभूत है, तथा सर्वोत्तम सब अक्षरोंका मिलाप और लब्धिका हेतु इन्होंका वर्णन है. इन एक एक पूर्वके पदकी संख्याका मान और एक एक पूर्वका ज्ञान लिखनेके लिये शाहीमें कज्जल कितनी चाहियें ये कुछ हकीकत नंदीसूत्रजीकी छपी हुइ टीकावाली प्रतके पत्र ४८२ में है वहांसें देख समझ लैना. तथापि पहेला पूर्व लिखवानेमें एक हस्तीके समान काजलका ढेर चाहियें. पीछीके पूर्वमें दूना–दुगुणा लैना. ऐसें चौदह पूर्वमें ८१९२ हस्तिके समान काजलका ढेर चाहियें. उसमें पानी डालकर शाही बनाकर लिखै तो वे पूर्व लिखे जावै–इतना चौदह पूर्वका ज्ञान है. फिर उसके अर्थका तो क्या पार? एक दूसरे चौदह पूर्वधर ज्ञानीके बीचमें अनंतगुणी हानि वृद्धि होती है. जिस पुरुषकों जितने लाभांतरायका क्षयोपशम हुवा हो उतने अर्थ ज्ञानका लाभ होवै. कोइ मुनिओं इतना लाभांतराय न टूटा होवै तो कमती पूर्वका ज्ञान होवै. किसीकों एक पूर्वका, किसीकों दो पूर्वका, किसीकों तीन पूर्वका–इस तरह यावत् चौदह पूर्वका ज्ञान होवै. वर्त्तमान समयमें पूर्वका ज्ञान किसीकों नहीं होता है बहुत–अतिशय ज्ञानी होवै तो सूत्र याने पिस्तालिस आगमका ज्ञान हो सकै. उसमेंसें अभी ग्यारह अंग हैं, बारहवा विच्छेद हो गया है.

आचारांगजी १, सूयगडांगजी २, ठाणांगजी ३, समवायांगजी ४, भगवतीजी ५, ज्ञाताजी ६, उपाशकदशांगजी ७, अंतगडदशांगजी ८, अनुत्तरोववाइजी ९, प्रश्नव्याकरणजी १०-विपाकसूत्रजी ११ यह ग्यारह अंग गणधरमहाराजजीकें रचे हुवे हैं-याने जिस तरह श्रीमत् महावीरस्वामीजीने प्ररूपे उसी तरह गणधरमहाराजजीने सुनकर गाथारूप गुंथन कर लिये; मगर उस बाद बारह दुकाली बहुत वक्त पडी उसमें हरएक ग्रंथमें अंगमेंसें बहुतसा भाग विच्छेद हो गया. और जो थोडा भाग रहा

वो देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने लिखवाया. उससें नंदीजी, समवायांगजीमें जितनी पद संख्या बतलाइ है उतनी नहीं पाइ जाती है. एक पदमें ५१०८८६६४० श्लोक होवे-ये एक श्लोकके अठ्ठाइस अक्षर कहे हैं. यह अधिकार सेनप्रश्नमें पत्र ३२ के अंदर है, वहां अनुयोगद्वारजीकी टीकाकी साख-गवाह दी है वहांसे देख लैना.

उपांग वारह हैं:-उवाइजी १, रायपसेणीजी २, जीवाभिगमजी ३, पन्नवणाजी ४, सूरपन्नत्तिजी ५, जंबुद्विपपन्नत्तिजी ६, चंदपन्नत्तिजी ७, निरीयावलीजी ८, कप्पियाजी ९ कप्पवडंसीयाजी १० पुप्फियाजी ११ और वन्हीदशांगजी १२ यह १२ उपांग है.

दश पयन्नाजीके नाम:-चउसरणपयन्नाजी १, आउरपच्चक्खाणपयन्नाजी २, महापच्चक्खाणपयन्नाजी ३, भत्तपच्चक्खाणपयन्नाजी ४, तंदुलवीयालीपयन्नाजी ५, गणीवीज्जपयन्नाजी ६, चंदाविजयपयन्नाजी ७, देविंद्स्तवपयन्नाजी ८, मरणसमाधिपयन्नाजी ९, संस्थारकपयन्नाजी १०.

छः छेद और चार मूलसूत्र वगैरः याने दशाश्रुतस्कंधजी १, बृहत्कल्पजी २, व्यवहारसूत्रजी ३, जीतकल्पजी ४, निशीथजी ५ और महानिशीथजी यह छः छेद ग्रंथ हैं. तथा आवश्यकजी १, दशवैकालिकजी २, उत्तराध्ययनजी ३, और पिंडनिर्युक्तिजी ४ ये चार मूलसूत्रजी हैं. और नंदीसूत्रजी, अनुयोगद्वारजी ये दो-ये सब मिलकर पिस्तालीस आगमजी कहे जाते हैं.

उक्त आगमजी सिवाभी दूसरे पयन्नाजी वगैरः है. और इन्हके नामभी नंदीजीमे तथा समवायांगजीमें हैं पख्खीसूत्रमेंभी है; परंतु पिस्तालीसकी मुख्यता होनेका कारण यही हुवा कि वल्लभीपुरमें पुस्तक ४५ ही लिखे गये उसी लिये उतनीही संख्या कही गइ. परंतु दूसरे मुल्कोंमें दूसरे लिखे गये है वैभी वर्त्तमान समयमें मौजूद हैं ऐसा दीपकवीने एक चोपडीमें लिखा ह. (उनमेंसें मैनेभी कितनेक देखे हैं.) उसके नाम नीचे मुजब हैं:—

ऋषिभाषितसूत्र, पारसीमंडळ, वीतरागस्तव, संलेखनासूत्र, अंगविद्या, ज्योतिषकरंडक, गच्छाचार, तीर्थोदगारड, उपदेशमाला, सिद्धपाहुड, श्रावककावंदितु, शत्रुंजयलघुकल्प, शत्रुंजयबृहत्कल्प, शत्रुंजयकल्प, भद्रबाहुस्वामीकृत गाथा २५, शत्रुंजयकल्प वयरस्वामीकृत, सारावलीपयन्ना, वसुदेवहींड, श्रावकपन्नत्ति, अंगचूलिया, वंगचूलिया और

आराधनापताका इतने सूत्र वर्त्तमान समयमें मालूम होते हैं. तोभी बहुतसे देशोंमें प्रसिद्ध नहीं हैं. परंतु दूसरे देश बहुत हैं वहां कुछ सबने निगाह नहीं की है तो इनसें कदापि विशेषभी सूत्र होंगे; क्यों कि नंदीसूत्रजीमें देवर्द्धिगणीक्षमाश्रमण महाराजने जो नाम दर्शाये हैं वो नामवाले सूत्र उस वक्त हाजिर होनेही चाहियें. ये आगमोंमेंसे दश सूत्रजीकी निर्युक्ति भद्रबाहुस्वामी महाराजने की हैं, जो चोंदह पूर्वधर थे, इससें निर्युक्तिंभी पूर्वधरजीकी बनाइ हुइ हैं वास्ते सूत्रजीकी तरह मानी जाय, जिसमें सूत्रजीका अर्थ युक्तिसें करकें सिद्ध किया है और भाष्यपूर्वधर जैसे जिनभद्रगणीक्षमाश्रमण महाराजजीने रची हैं, उसमें निर्युक्तिसेंभी विशेष विस्तारपूर्वक अर्थ किया है. इस सिवा बहुतसे ग्रंथ और टीकाएं पूर्वधरजी वगैरः बहुश्रुत पुरुषोंके रचे हुवे हैं, वेभी आगमजी जैसे हैं. ऐसे जैनके कुल शास्त्रके और जो जो शास्त्र दूसरे दर्शनोंमें रचे हुवे हैं वो, और व्याकरण, न्यायशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, नीतिशास्त्र, अष्टांगनिमित्तशास्त्र अष्टांगयोगशास्त्र—ये सब शास्त्रोंका बोध मिलाकर सत्य असत्यकी परीक्षा करै के-सत्यकों अंगीकार करै तो उतना ज्ञानका लाभ हुवा कहा जाता है. ऐसे लाभवाले पुरुषकों ज्ञानके आचारका आठ प्रकारसें लाभ मिलता है. जो जो सूत्र जिस जिस समय पढने बांचनेका कहा है उसी काल पढै. चार संध्याकाल वर्जित करैं—याने प्रातःकालमें सूर्योदयके पेस्तरकी और पीछेकी एक एक घडी और मध्यान्ह तथा संध्या, मध्यरात्री इन चारों वक्तकी दो दो घडी छोड देनी. उस वक्त कोइभी सूत्र न पढै. उस वक्त दुष्टदेव फिरनेकों निकलते हैं वै जैनमार्गके द्वेषी होवै तो पढनेवालेको छल करै उससें वो वक्तका निषेध किया है. विनय सो ज्ञानवंत पुरुषका मुँह देखै कि नमस्कार करै, बैठा हो तो खडा हो जाय, ज्ञानवंतको सन्मान सह आसन देवै, जब तक ज्ञानवंत खडा हो वहांतक आपभी खडा रहै. ज्ञानवंतकों योग्यासन दियेबाद उचित रीतिसें वंदना वगैरः करकें आप उचितासनपर बैठे याने गुरुसें उंचे आसनपर न बैठे और आगेभी न बैठे. जब फिर वै खडे होवै तब खडा हो विनयपूर्वक स्थित रहै और जब वै चलने लगै तो आगे आगे न चलै—इस तरह जो नीतिका फरमान हो उसकों अमलमें लेवै. और ज्ञानवानकी महत्ता ज्यौं बढै त्यौं करै. उन्होंका वचन न उल्लंघन करै. ज्ञानवंतकी जिस जिस तरह आपसें बन सकै उस तरह तन मन धनसें करकें भक्ति करै, दूसरेके पाससें भक्ति करावै. ज्ञानवंतकी तरह ज्ञानके पुस्त-

कोंकाभी विनय करै, पुस्तकें पास हो तो पेशाब दस्त न करै अगर जहांपर पुस्तक होवे वहांभी वैसे काम न करै. और स्त्री आदिकके भोगादिभी न करै. या पुस्तकके पास बैठकर भोजन करना, पानी पीना येभी न करै. अंतमें करनेकी जरुरतही हो तो वस्त्रका-पटांतर रखकर करै. पुस्तकका शिरानाभी न करै. फिर पुस्तक लिखवाकर ज्ञानकी वृद्धि करै, पुस्तक हो तो उन्होंकी संभाल रक्खे, ज्ञान पढनेका उद्यम करै, आप पढेला हो तो दूसरोंकों पढावे-इस तरह विनय करै. ज्ञानवंतका बहुत मान करै. वोभी सिर्फ ऊपरसें नहीं, मगर अंतरंगके प्रेमसें करै और शोचै कि-अहा! इस पुरुषके ज्ञानके आवरण बहुतसें खप गये है उसमें इन्होंका आत्मा निर्मल हुवा है. ये पुरुष मुझेभी ज्ञान वक्षते हैं ये ज्ञानके प्रभावसें मेरा आत्माभी निर्मल होगा-मुझको चारों गतिमें भटकनेका बंध हो जायगा. जन्ममरणके दुःखभी इन्होंके प्रभावसें मिटेंगे; वास्ते ऐसे ज्ञानवंत पुरुषके जितने बहुतमान न करुं उतने कमती है. जगत्के जीव जो उपकार करै वो पेसे देवै तो अल्पकाल सुख होता है और ज्ञानी पुरुष तो ज्ञान देते हैं उसका सुख तो अनंतकाल तक पहुंचेगा-तो ऐसे पुरुषके कितने बहुमान करुं. ऐसे भावसें बहुमान करै उपधान सो ज्ञान पढनेके लिये नवकारादिकके उपधान जो तप करनेका महा निशीथजीमें कहा है, और सूत्र पढनेके लिये-योग वहनेका कहा है उसी मुजब तपस्या करनी. योगकी जो जो क्रियाएं हैं वो करनी. अब यहांपर कोइ शंका करेगा कि ज्ञान पढनेमें तपस्या और क्रिया किस लिये करनी चाहियें? तो उसका समाधान यही है कि पुद्गलमात्रपरसें मोह उतर जाय तब तपस्या हो सकै. फिर मोह उतर जाय तब आत्माकी विशुद्धि होवै और आत्माकी विशुद्धि होवै तब ज्ञानावरणी कर्म नाश हो जावें उससें सुखपूर्वक ज्ञान आ सकै. फिर क्रिया है सो तंत्रके समान है उससें सूत्रजीके अधिष्ठाता सहाय्य करै-जैसें कि मल्लवादी महाराजजीकों देवीने एक ऐसी गाथा दी कि उस गाथासें द्वादशसारनयचक्रकी रचना की और बौधलोगोंके साथ जय मिलाया, और सोरठ वगैरःमें जहां जहां शिलादित्यका राज्य था वहांसें बौधलोगोंको हदपार करवाये. फिर मुनीराजजी साहेब श्री आत्मारामजीकों विशेषावश्यकजी न बैठता था उससें पिस्ताने लगे, तो उसी रात्रिमें स्वप्नके भीतर हेमचंद्राचार्यजी उन्होंके मिले और जो जो न मालुम होताथा वो सबका खुलासा बतलानेसें समझमें आ गया. इसी तरहसें कमलगच्छके आचार्यमहाराज

वद्धमार्न विद्या पढा गये. इस मुजब शासनदेवकी सहायतासें ज्ञानका लाभ होता है, इसी वास्ते योगवहनकी क्रिया वतला गये हैं सो वहुतही हितकारी है. विशेष हेतु और शास्त्रमें जेसें कहा हो वेसें समझ लैना. यहां तो मात्र संक्षेपरूप है. अनीन्हवर्ण से। गुरुकों न छुपा रखना याने किस गुरुजीद्वारा शास्त्राभ्यास किया हो उन्ह गुरुजीका नाम छुपाकर किसी दूसरेका नाम न देना सो पांचवा आचार. व्यंजन याने अक्षर जैसा शास्त्रमें लिखा हो वैसाही शुद्धोच्चार करना—अशुद्ध न बोलना. अर्थ याने जैसा गुरुमहाराजने दिया—वतलाया हो वैसाही रखना—फेरफार नहीं करना. व्यंजन और अर्थ दोनु जिस तरह शास्त्रमें कहा हो विसी तरह बोलना. इस तरह ज्ञानका आचार व्यवहारसें तन मन वचनसें पालन करै. इस्सें विपरीत वर्त्ते तो ज्ञानाचारमें दूषण लगै, और ज्ञानावरणी कर्म बंधा जावै, उसके भयसें सावध रहना. फिर वहुत पढे हुवे संवंधका अहंकार आ जाय तो मनमें भावै कि—हे चेतन! तूं अनंतज्ञानका मालिक है, जगत्में छ द्रव्य हैं-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, और काल ये पांच द्रव्य अरूपी याने वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रहित हैं. और छठ्ठा पुद्गलास्तिकाय वो रूपी, वर्ण-गंध-रस-स्पर्श सहित हैं. यह छउं द्रव्यमें एक एक द्रव्यके अनंत गुणपर्याय हैं, सो समय समय एक एक द्रव्यमें षट्गुण हानि वृद्धि हो रही है याने अनंत भाग हानि, असंख्यात भाग हानि, संख्यात भाग हानि, संख्यात गुण हानि, असंख्यात गुण हानि अनंत गुण हानि—ऐसे छ प्रकारसें हानि वृद्धि हो रही है. विसी तरह छउं द्रव्यकी वार्त्ता गतागत और वर्त्तमान समयकी वो सभी केवलज्ञानीमहाराज एक समयमें जान रहे हैं, विसीही तरह आत्मा! तेरीभी शक्ति है; मगर वो ज्ञानशक्ति ज्ञानावरणी कर्मसें आच्छादित हो गइ है और उससें तुझकों ज्ञान नहीं होता है. तो तेरा ज्ञान जाता रहा सो लघुताका स्थान है, तोभी महत्वता करता है ये तेरी हे चेतन! कितनी और कैसी मूर्खता है? पुनः पूर्वकालमें चार ज्ञानवाले थे और तीन ज्ञानवालेभी थे वैसे ज्ञान तो तुझको प्रकटभी नहीं हुवे हैं तो येभी तेरी लघुताका स्थान और लज्जाका कारण है तथापि तूं क्या अहंकार करता है? फिर दो ज्ञानवालेभी चौदह पूर्वधर वारह अंगके ज्ञाता थे वैसा ज्ञानभी तेरेमें नहीं तदपि किस वावतका तूं उत्कर्ष करता है? पुनः कमती ज्ञानवाले एक पूर्वधर थे उसकाभी तुझकों ज्ञान नहीं है तो तूं किस लिये और कौनसी वावतमें

फूलकर मगरुर होता है ? वर्त्तमान समयमेंभी आगम–निर्युक्ति–भाष्य–चूर्णी-टीका–ग्रंथ वगैरः मौजूद हैं, और अन्यदर्शनियोंके शास्त्रभी हैं, उन्हकाभी तुझकों ज्ञान नहीं है. तो हे चेतन ! किस बातका तूं गर्व करता है ? उन्हमेंसें तूं कुछ शास्त्र पढा है, वोभी कुछ याद नहीं, फिर गुरुमुखद्वारा सुनेहुवे शास्त्रवचनभी तुझकों याद नहीं, तो किस प्रकार बडाइ करता है ? पुनः देशदेशकी भाषा, भिन्न भिन्न लिपि उनकाभी ज्ञान नहीं, तथा सम्मतितत्त्वार्थ आदि न्यायके शास्त्र हैं वो कोइ ज्ञानी समझावें तोभी समझनेकी तेरेमें शक्ति नहीं और मगरुर बनता है वो कैसी अज्ञानता ? फिर जो जो तूं धर्मक्रिया करता है उन सबके हेतुकाभी यथार्थ ज्ञान नहीं; तदपि तूं फोकट मद क्या करता है ? अनेक प्रकारके नीतिके ग्रंथ हैं, अनेक प्रकारके गणित–हिसाबी कामकी रीति हैं उसकाभी तुझकों ज्ञान नहीं तोभी जीव ! तूं अहंकार करता है वो अहंकार करना लायक है कि कर्मकी निंदा करनी लायक है उसका तूं आत्मासें शोच कर. पूर्व समयमें मुनिसुंदरसूरिजी जैसे स्मरणशक्तिवाले पुरुष एक हजार और आठ अवधान करते थे वो शक्तिभी तेरेमें नहीं. इस समयमेंभी १०८ अवधानके करनेहारे हैं वोभी शक्ति तुझमें नहीं तो किस प्रकारका मिजाज करता है ? स्वर्गस्थ आत्माराम जी महाराजभी ३०० श्लोक रोजके रोज नये कंठाग्र कर सकते थे, और तुझकों तो पांच गाथाएभी मुखपाठ करनेकी ताकत नहीं. तो चेतन ! तूं बहुत विचार कर ओर झूठा गर्व न कर. पूर्वपुरुष शास्त्रमेंसें उद्धार करकें अनेक नये ग्रंथ तैयार कर गये हैं और इस वक्तभी विद्वान् पुरुष नये बनातेही जाते है, तो क्या तरेमें ऐसी शक्ति है ? तूंने नये ग्रंथ कितने तैयार किये या मुफ्तही भूलसें आनंद मानता है ! फिर पूर्वपुरुषोंनें सुवर्णाक्षरोंसें ज्ञान लिखवाये है तो तूंने शाहीके अक्षरोंसेंभी सब शास्त्र लिखवाये है कि अहंकार करता है ? तूंने पढकर क्या आत्मविचारणा की ? और दूसरे जीवोंकों पूर्वके शास्त्र कितने पढाये कि मदोन्मत्त हो फिरता है? तेरेसें अभी बहुत पुरुष आत्मसाधन करते हुवे बने हैं कि खाली मिजाजही बतलाते है ? तेरी लघुता होवे वैसी तूं करणी करता है वास्ते नाहक ज्ञानावरणी कर्म बांधता है इस लिये शोच कर कि एक अंशमात्र ज्ञानका क्षयोपशम हुवा उससें मनमें ज्ञानी बन बैठता है ? ऐसी भावना भाव कर आत्मज्ञानमें मग्न होते हैं. अपने आत्माका ज्ञानगुण है सो प्रकट करनेका उद्यममें तत्पर रहवे वो ज्ञानाचार जानना. ऐसा ज्ञानाचार पालन करनेसें परंपरासें तमाम ज्ञान प्रकट करते हैं.

दर्शनाचार-दर्शनशब्दसें देखना सो-याने जो जो पदार्थ जिस तरहका हो विसी तरहसें देख लैना-मान लैना. शुद्ध देवकोंही शुद्धदेव मान लैना, शुद्ध गुरुजीकोंही शुद्धगुरुजी और शुद्ध धर्मकोंही शुद्धधर्म मान लैना. शुद्ध धर्म सो आत्माका स्वभाव वही धर्म. भगवतीजीमें फुरमाया है कि-' वत्थु सहावो धम्मो ' याने वस्तुका स्वभाव सोही धर्म कहा जावे. तब आत्मस्वभावमें रहना वही धर्म और उसकी श्रद्धा करनी. आत्मा शरीरमें रहा है वहांतक जडप्रवृत्ति करता है वो आपका धर्म न समझे-आत्माका स्वभाव ढका गया हैं उसकों प्रकट करनेके कारणोंकों कारण धर्म मान लेवै. धर्मके निमित्त कारणरूप देवगुरुकों निमित्त कारण मान लै. व्यवहारनयसें धर्मके कारणकों धर्म कहा है उस अपेक्षासें धर्म मानै. जो जो देवगुरु उपकारी पुरुष हैं उन पुरुषोंकी सेवा भक्ति शास्त्रमें कथन की है उसी मुजब अमलमें लेवै. उसका विस्तार प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें कहा है उस मुजब करै सो दर्शनाचार कहा जाता है और वो आठ प्रकारका है-याने निसंकीय अर्थात् अव्वलमें जो अठारह दूषण बतलाये गये हैं उन दूषणोंसें रहित देवके वचनोंमें शंका न करै; क्यौं कि जिन देवकों राजा और रंक दोनु समान हैं, किसीका पक्षपात नहीं, जिनकों धनकी, स्त्रीकी ममताही नहीं, मान अपमान दोनु जिनकों समान हैं वैसे पुरुषकों असत्य बोलनेकी जरूरत नहीं रहती है. और वैसे लक्षण है या नहीं उसकी प्रतीति चरित्र देखनेसें हो जाती है. वो खात्री-प्रतीति करकेंही देवकों देव मानने चाहियें पीछे उन्होंके कथनमें शंका न करनी; कारणके अरूपी पदार्थ है सो चक्षुसें निर्णय नहीं हो सकता है. कोइ कहेगा कि बुद्धिसें निर्णय कर लेवें; मगर संपूर्ण प्रकारसें बुद्धि प्रकट हुइ हो तो शास्त्र देखनेकी जरूरतभी नहीं पडती. बुद्धिकी कसूर है उस्सें शास्त्र देखकर गुरुका समागम कर बुद्धि प्राप्त करनेका उद्यम करते हैं; वास्ते बुद्धिकी न्यूनता सिद्ध होती है. कितनीक बातें नहीं समझी जाती हैं वोभी बुद्धिकी तंगास है. वो तंगास निकल जायगी तब यथार्थ समझा जायगा. संसारी काममें बुद्धि प्रकट होनी सहल है; परंतु आत्मतत्त्व पहिचाननेकी बुद्धि पैदा होनी वहुत कठीन है; वास्ते वीतरागजीके वचनोंमें शंका न करनी.

निकंखा सो कुमतिकी वांछना-याने कुमति-कुबुद्धि कि जो आत्मामें अनादिकी है उसके प्रभावसें विषयादिकके अभिलाप हुवा करते हैं. जो जो दुःखके का-

रण हैं वो सुखके कारण भासते हैं. आत्माकी स्वऋद्धि सन्मुख दृष्टिही नहीं. पुनः कुबुद्धिवाले देवगुरुकी वांछना होती है वो कंखा दूषण कहा जाता है. वो दूषण जिससें हट गया होवे उसकों किंचित्‌भी कुमतिकी वांछना नहीं होती है.

निर्व्वितिगिच्छा अर्थात् धर्मके फलका संशय करै उससें जो दूर रहना सो याने संशय रहित होना सो निर्व्वितिगिच्छा आचार समझना. ये आचार लाभांतराय टूटनेसें होता है. सत्य प्रकारसें आत्मिकवस्तुकी और आत्मिकवस्तु प्रकट होनेके कारणोंकी चोकस प्रतीति होती है, उससें फलका संदेह नहीं रहता है.

अमूढदृष्टि सो मूढपना दूर हुवा है याने मूढतासें वस्तुको अवस्तु मान लेवै– जैसें कि दुनियांम वेदिये पशु कहे जाते हैं वे आत्माकी वाते करै; मगर विषय कषायमें मग्न रहते हैं. कोइभी प्रकारसें संसारसें उदासीन न होवे. देवगुरुकी भक्ति और व्रत नियमके अंदर न प्रवर्त्ते–ऐसी दशा उसको मूढदृष्टिपना कहा जाता है–वो न होवै. जिस जिस तरहसें प्रभुजीने जिस जिस अपेक्षासे धर्म बतलाया है उस मुजब श्रद्धा करै. विषयकषाय अव्रत जितने जितने कमती होवै उतने कमती करै. जो दूर न हो सके उसकों दूर करनेकी हरदम वांछना बन रही है–ऐसा जो आचार वो अमूढदृष्टि कहीजाती है.

उववूह गुण सो साधु–साध्वी–श्रावक–श्राविका प्रमुख उत्तम पुरुषके गुणोंकी प्रशंसा करनी.

थिरिकरण सो जै साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघ उत्तम पुरुष धर्मसें चलायमान होते होवें उन्हकों धर्म समझा करकें स्थिर करै. तन मन धनसें जिस जिस प्रकारकी वैसे पुरुषोंकों तकलीफ होवै उस उस तकलीफकों दूर करके स्थिर करै उसें स्थिरीकरण कहाजावै.

वत्सलता याने समानधर्मी–आपसें अधिक या कम गुणवाले हों उनकी शक्त्यानुसार आहार–पानी–वस्त्राभूषणादिकसे करकें सेवा बजावे ज्ञान–दर्शन–चारित्रकी जिस प्रकार वृद्धि होवै उसी प्रकारसें भक्ति करनी वही वत्सलतागुण कहाजाय.

प्रभावना गुण सो जिनशासनकी बहुमानता दूसरे धर्मवाले लोग करैं और वो कृत्य देखकर दूसरे जीव धर्म पावें–जैसें कि प्रभुजीके मंदिरमें उत्सवादिक करनेसें

या धनवान पुरुष संघ निकालकर तीर्थयात्राकों जावै और मार्गमें संघका संरक्षण करै कि जिस्सें संघके लोग निर्विघ्नतासें अपना आत्मिकधर्म साध सकें ऐसी धर्मकी सहाय करैं, जैनधर्म ज्यौं जाहोजलाली पावै त्यौं कार्य किये करै. फिर महंत पुरुष अष्ट प्रकारसें प्रभुजीके शासनकों शोभावंत करैं याने पहिला प्रवचनी सो–प्रवचन–आगम–प्रभुप्ररूपित अंग–उपांग–छेद–निर्युक्ति–भाष्य–चूर्णि–टीका इत्यादि तमाम शास्त्र वर्त्तमान कालमें प्रवर्त्तमान होवै वो सभी स्वसमय कहाजावै और परसमय सो षट्दर्शनके शास्त्रोंके पारगामी होवै उनके प्रभावसें जो शास्त्रका रहस्य जिनकों समझना हो वो तमाम समझा सकै. जिन जिन शास्त्रोंके अर्थ पूंछे जाय उन उनके अर्थ बतला सकै उससें जैनशासनकी बहुत प्रशंसा होवै. दूसरा प्रभावक धर्म कथन करनेहारा सो धर्मोपदेश देनेमें अतिशय कुशल होय–जिसके मुखमेंसें ऐसे वचन निकलें कि सुननेवालोंकों उन्हके वचनमें शंका पडै नहीं. सुननेवालेका मन संसारसें उदास होवै जाय और अपना आत्मतत्त्व प्रकट करनेकों तत्पर रहै. मोहनीकी आधीनता अनादिकालकी छूट जाय, मिथ्या हठवाद न रहै, सांसारिक सुख तो दुःख जैसे लगें, आत्मिकसुख वोही सुख मानें, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, गुण आत्माका है वो प्रकट करनेके कार्य होवैं, विषयादिकके अभिलाष शांत हो जाय. कामभोगकी वांछनाओंका नाश होवै, कुबुद्धि कुशास्त्रकी बुद्धि दूर हो जाय. ऐसे उपदेशक पुरुष उपदेश करकें शासनकों शोभावंत करै. तीसरा वादी, प्रभाविक सो– जो जो खोटे मतवादी वाद करनेकों आवै, अनेक कुतर्क करैं, उसके जवाव ऐसे देवै कि कुतर्कोंका नाश हो जाय–जैसेंके मल्लवादीजी महाराजने बौद्धके साथ वाद किया उसमें बौद्धवालोंसें जवाव न दिया गया उसकी फिक्रमें वो विचारा मर गया–ऐसे वाद करनेकी कुशलतासें जिनशासन शोभा पावै. चौथा नैमित्तिकी सो–निमित्तशास्त्र–ज्योतिषशास्त्रका पारगामी होय उससें जो जो निमित्त कहवै सो सत्य होवै–जैसें भद्रबाहुस्वामीने राजासें कहा कि–सातवे रोज तुमारा पुत्र मरण पावैगा–उसी मुजब हुवा. और वराहमीरने सो वर्षका आयु कहाथा सो झूंठा हुवा. ऐसे भद्रबाहुस्वामी जेसे निमित्तशास्त्रके ज्ञाता वो ऐसी शासनकी प्रभावनाके वास्ते निमित्त प्ररूपकर शासनकी प्रभावना करैं. पांचवा तपस्वी सो अहंकार प्रकार रहित शांत स्वभावी कठीन तपस्या करै. अपने आत्माका अणहारी गुण प्रकट करनेकों बडी बडी तपस्याएं करैं उसकों देख-

कर दूसरे पुरुषकों तपस्या करनेकी बुद्धि जाग्रत होवे, तपस्याका अजीर्ण क्रोध जगतमें कहाजाता है वो जिसमें नहीं है. शांतरसका समुद्रही हैं, उसकों देखकर बहुतसें लोग प्रशंसा करै, वो तपस्वी नामक प्रभाविक कहाजाय. छठा विद्या प्रभाविक सो जैसें वज्रस्वामीमहाराज विद्याके प्रभावसे श्रीदेवीके भुवन वगैरःसें पुष्प लाये जिस्सें बौद्धधर्मका राजा चमत्कार पाया और जैनधर्म अंगीकार किया. इस तरहसें शासनकी शोभा बढावे सो विद्याप्रभाविक कहाजाता है. सातवा अंजनसिद्धिप्रभाविक-जैसें कालिकाचार्यमहाराजने अंजन योगसें सारा इंटोंका गंज चूर्ण डालकर सुवर्णका बना दियाथा, और गर्धभील राजाकों जीतकर अपनी व्हेन सरस्वतीकों छुडा दी. ऐसे शासनके काम करकें शासनकों शोभावंत करै. आठवा नये काव्य वगेरः रचनेमें कुशल सो कवि नामक प्रभाविक-जैसें सिद्धसेनदिवाकर महाराजने विक्रमराजाके अगाडी नये काव्य रची कें चार दिशामें चार काव्य कहे वो एक एक काव्य कहनेसें एक एक दिशाका राज्य दिया; मगर वो तो निष्प्रही थे जिस्से राज्य न लिया. ऐसी कुशलतासें शासनकी प्रभावना होवै, बहुतसे जीव धर्म पावै और अपना आत्मतत्त्व साध लेवै उससें उपकार होवै. इस प्रकार आठ तरहसें शासनकी प्रभावना निष्प्रहतासें करै, किसी प्रकारसें कुछभी वांछना रखकर न करै वो प्रभाविकगुण कहाजावै. यह आठ प्रकारसें दर्शनका आचार पावै, सो लाभांतराय तूटनेसें होता है. और जिसकों दर्शनका लाभांतराय हो उसकी ये आचारसें विपरीत वर्त्तना होवै. देवगुरु धर्मकी निंदा करै, धर्ममें कुतर्क करकें शंका करै, खोटे मत अच्छे लगै, लोगोंकी खोटे धर्ममयी बुद्धि करै, और जिनराजजीकी भक्ति करके अहंकार करै कि मै विधियुक्त भक्ति करता हुं. मैं जिनभक्तिमै धन व्यय करता हुं वैसा जगतमें कोइ नहीं व्यय करता है. मे उत्साह सहित करता हुं वेसा कोइ नहीं करता है. ऐसें अनेक प्रकारका अहंकार करै सो अनाचार जानना. वैसे अनाचार सेवनसें दर्शनका लाभांतराय कर्म उपार्जन करै.

चारित्राचार आठ प्रकारसें है-याने इर्यासमिति सो चलना, बैठना, उठना, सोना, करवट फिराना ये तमाम काम यतना पूर्वक करने चाहियें. पहिली रजोहरण या मुंहपत्तीसें करकें प्रमार्जनकर-दृष्टिसें देखना, और पीछे चलने वगैरःकी वर्त्तना करनी. ऐसें करनेसें कोइभी जीवकों दुःख न होवे; क्यौं कि परजीवकों दुःख न दे-

नेसें स्वदया याने अपने आत्माकी दया होवै; मतलब कि–दूसरे जीवकों दुःख देनेसें
कर्मबंध होवै उससें आपका आत्मा मलीन होवै. ऐसी भावना हरदम बन रही है
उससें किसी जीवकों दुःख होवै वैसी वर्त्तना नहीं करते हैं, उसीसें सहजही परजी-
वकी दया होती है. भाषा समिति याने अव्वलमें मुँहपर हाथ, वस्त्र या मुँहपत्ति रख-
कर बोलते हैं जिससें मुखके श्वाससें जीव मरै नहीं; सबब–खुल्ले मुँहसें बोलनेसें कि-
तनीक वक्त मछर मख्खी वगैरः जीव मुँहमें आ जाते हैं और गलेमें उतर जानेसें
वमन होता है और कष्ट भुक्तना पडता है और वो जीवका विनाश हो जाता है,
उस वास्ते भगवतीजीमें गौतमस्वामी महाराजके प्रश्नका उत्तर भगवानजीने फरमाया
है कि हाथ रखकर बोलता है तो वो निरवद्य भाषा है, और खुल्ले मुँहसें बोलता है
वो सावद्य भाषा है. ऐसा भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र १३०२ में है; वास्ते
खुल्ले मुंहसें बोलना न चाहियें. उसमें मुनीकों तो खुल्ले मुँहसें बोलनाही मुनासिब
नहीं, और गृहस्थकोंभी मुनासिब नहीं. मुँह ढककर बोलना वोभी सत्य बोलना.
किसीका छिद्र न खोलना. किसीकी निंदा होवै वैसा वचनभी न बोलना. जो वचन
बोलनेसें स्हामनेवाला जीव पापवृत्ति करै, जो वचनमें मकार चकारकी भाषा बो-
लनेसें किसी जीवकों दुःख होवै–उसका मन दुःख पावै वैसाभी न बोलना याने साधु
नीके या श्रावकके धर्ममें बोलनेकी भगवंतजीने मना की हो वैसा वचन नहीं बोलना,
जो वचन बोलनेसें स्हामने जीवकों वा कोइभी जीवकों और आत्माकों लाभ
न होवै वो वचनभी न बोलना सो भाषासमिति कहीजाय. पुनः पुद्गलीक जो
जो पदार्थ हैं उस वास्ते आत्मामें उपयोग करै कि यह देह प्रमुख जो जो पुद्गलीक
पदार्थ हैं वो मेरे नहीं; परंतु मात्र व्यवहारसें कथन मात्र कहता हुं ऐसे उपयोग स-
हित बोलना सो भाषासमिति सदाकाल स्वदशामेंही उपयोग है. जो बोलनेसें आत्मा
मलीन होवै वो वचन न बोलै. एषणासमिति सो निर्दोष याने बैतालीस दोष रहित
आहार-पानी–वस्त्र–पात्र वगैरः जो कुछ चाहियें वो ऐसे लेवै कि जो लेनेसें कोइभी
देनेवालेकों या उसके कुटुंबादिककों–किसीकों दुःख न होवै. पुनः किसीकों दुःख
होवै, हिंसा होवै ऐसा आहार न लेवै. कोइभी जीवकी हिंसा नहीं करनी उससें आ
करके लावै नहीं, किसीके पास करवावै नहीं, किसीने मुनीके लियेही आहार बनाया-
बनवाया हो ऐसा जाननेमें आवे तो वोभी न लेवै. उसके बैतालीस दोष दशवैका-

क सिद्धांतमें बहुतसी जगह कहे हैं. उन दोषोंकी मतलब ऐसी है कि आहार दे-
वालेकों और आहारके जीवकों उन्होंके निमित्त कुछभी दुःख होवे ऐसे आहारकों
षित आहार कहा है. और स्वाद करकें न खाना. और पकाइ हुइ वस्तु अच्छी
तो राजी न होना, अगर अच्छी न हो तोभी दिलगीरभी न होना. रसोइ बना-
वालेने अच्छी रसोइ बनाइ हो तो उसकी प्रशंसा न करनी और अच्छी न बना
का हो तो उसकी तर्फ तिरस्कारकी नजरसेंभी न देखना. दान देनेवाले और
देनेवालेपर राग द्वेष न करना. सबरर समवृत्ति रखनी-इस तरह दोषों-
विस्तार बतलाया है-उन्होंकों दूर करकें आहार-पानी-वस्त्र-पात्र लेने चा-
हियें-सो एसणासमिति कहीजावे. आदानभंडनिक्षेपना समिति सो-पात्र, पाट, प-
ले, चोकी वगैरः जो कुछ चीज लेवै सो पहिली नजरसें देख पीछे प्रमार्जना करकें
वै. फिर जमीनपर रख्खे तोभी निर्जीव जगह देखकर पूजी-प्रमार्जकर वहां रख्खे.
ारिठावणिया समिति सो-मल, ठल्ला, मात्रा, नाकका मल, थुंक, शरीरका मैल जिस
गहपर डाले उस जगह कोइभी जीव न हो, और पीछेभी उसमें जीव उत्पन्न हो
ोभी किसीसे विनाश न होवै वैसी जगहपर परठवे. गंदी जगहपर या गंदकी हो
आवै वैसी जगहपर न परठवे, और किसीभी मनुष्यकों दुःख होवै, दुगंच्छा हो आवै
वैसी जगहपर न परठवे. फिर जहां मनुष्य देखते हो वैसी जगहपर वडीनीति करनेकों
न वैठ जाय. इसतरह पारिठावणिया समिति पालन करै. ये पांच समिति कहीजाती
हैं. अब तीन गुप्ति याने मनगुप्ति वचनगुप्ति, और कायगुप्ति ये तीन है. उसमें मनो-
गुप्तिमें अपना मन कोइभी पापके कार्यमें न प्रवर्त्तावै. विशेष शुद्ध पुरुष तो अपने
आत्मतत्त्वमें मन प्रवर्त्तावै. वैसी शक्ति न जान ली हो तो जिस्सें करकें अपना आ-
त्मतत्त्व प्रकट होवै और उसीमेंही रमणता होवै वैसे पुस्तक वांचता रहेवै, दूसरोंके
पास वंचावै, सुने, सुनावै और उसीमें मन पिरो रख्खै; मगर संसारी बाबतोंमें मन
न लगावै. ध्यानशक्तिवाले ध्यान करै वो ध्यानका स्वरूप प्रश्नोत्तररत्नचिंतामनि-
मेंसें देख लैना और ध्यानका लक्ष बढाना उसीसें मनोगुप्ति होती है. आर्त्त रौद्र
ध्यानमें मन न प्रवर्त्तना चाहियें. मनगुप्तिवाले मुनीमहाराजकों कुछभी शरीर धन
वगैरःकी इच्छा नहीं, कुटुंबकीभी इच्छा नहीं, और कोइ वस्तु मिली या न मिली तोभी
उस संबंधी रागद्वेष न करै उससें मनमें सहजहीसें आर्त्त रौद्र ध्यान होताही नहीं.

अपने आत्माके सहज स्वरूपमेंही सदा मग्न रहते हैं. कोइभी तरहकी परपरिणतीमें मनकों नहीं जाने देते हैं, सद् चिदानंद स्वरूपमें मनकों प्रवृत्ति करने देते है. आत्माका स्वरूप अरूपी, अक्रोधी, अमानी, अमायी, अलोभी, अशरीरी, अखंड, अगोचर, अलख, अविनाशी, अकल, अगम, अतिंद्रिय, अजर, अरागी, अद्वेषी, अपर, अमदी, अणाहारी, और अनूपम-ऐसें स्वरूपमें मग्न हो रहा है. उसमें शरीरके अंदर रोग हो आवे, कोइ उपद्रव करै, कोइ कटुवचन कह दै, कोइ मारै, कूटै; तोभी उसमें मनकों नहीं प्रवर्त्तोते हैं-वो मनोगुप्ति कहीजावे. वचनगुप्ति सो-विशेष विशुद्धि करनेको ध्यानादिक करते हैं इससें कुछभी नहीं बोलना पडता है. श्रीमत् वीरस्वामींजीने अभिग्रह धारण कियाथा कि '' केवलज्ञान प्राप्त हो जाने तक किसीके साथ वचन बोलनाही नहीं.' किसी तरहसें न बोलै. वैसी शक्ति न हो तो कोइभी जीवकों दुःख लगै या दुःख होवै वैसे वचन बोलनेकी गुप्ति करै-याने वैसे वचन न बोलै. और बोलै सोभी ऐसा बोलै कि सुनेवालेकों वचनगुप्ति होवै, आपकों वचनगुप्ति होवै वैसें वचन शास्त्रके आधारसें बोलै; क्यौं कि मौनपना धारण करै वो मुनी कहा जाय; वास्ते परभावमें मौनपना होवै वैसा उद्यम करै. लाभ सिवा नाहक बकवाद, वादविवादमें वचन न प्रवर्त्तावै. केवल वचन रहितपना अयोगी गुणस्थानकमें और सिद्धपनेमें हैं. संसारमें रहे हुवे जीवकों ऐसे औसरमें प्रभुजीका मार्ग मिला, उससें ज्यौं बन सकै त्यौं वचनयोगगुप्ति होवै वैसा करे सो वचनगुप्ति कही जावे. कायगुप्ति सो कायाकी प्रवृत्तिकों रोक लैनी. बिलकुल कायगुप्ति तो चोदहवें गुणस्थानकमें हो सकती है. वो गुणस्थान न पाया हो वहांतक पापके काममें कायाकों न प्रवर्त्तावै, कायगुप्ति हो सकै वैसे काममें-कारणोंमें कायाकों प्रवर्त्तावैं. जितनी जितनी कायाकी प्रवृत्ति काबूमें रक्खी जाय उतनी रोक लेवै वो कायगुप्ति कही जाती है. ज्यौं बन सकै त्यौं आत्मभावमें वर्त्तै और कायाकी चपलता छोड देवै. स्वस्वभाव सन्मुख होवै उसमें जितना चेतनस्वभाव प्रकट होवै उतनी गुप्ति होवै. इस तरह पांच समिति और तीन गुप्ति मिलकर आठ चारित्रके आचार व्यवहारसें मन-वचन-कायाकी प्रवृत्ति प्रभुजीकी आज्ञासें करनी, जिससें आत्माके स्वभावका आचार शुद्ध होवै. निश्चय चारित्राचार क्या है? आत्मा आत्मस्वभावमें स्थिर होवै-देहके स्वभावमें न वर्त्तै, कर्मका नाश होवै, आत्मा जितना जितना शुद्ध होवै उतना उतना चारित्राचार प्रकट

होवै. यह चारित्राचार सब प्रकारसें प्रकट होवै तब सब कषाय–क्रोध, मान, माया, लोभ-ये नाश होते हैं. और यथाख्यात चारित्र प्रकट होवे . ये लाभ चारित्राचारका अंतराय तूटे तब प्राप्त होता है. जो पुरुष–जीव चारित्रवंतकी निंदा करता है और बोलताहैकि–'खाने पीनेकों न मिला, व्यापार करना न आ सका तब साधु हो बैठे.' ऐसा बोलनेसें, किंवा कोइ दीक्षा लेनेवाला अपना सगा है उसके मोहसें साधु (दीक्षा देनेवाले)की निंदा करै, और दीक्षा न लेने देवै, और कहवै कि–'साधुपनेमें क्या फायदा है?' ऐसा बोलकर दुष्ट चिंतवन करै. कितनेक नाम हीके–ज्ञानी बनकर बोलते हैं कि–'ये करनेसें कुछभी लाभ नहीं, ज्ञानसें लाभ है.' युं कहते हुवेभी आप विषय-कषायकी प्रवृत्ति छोडते नहीं. छोडनेवालेकी लघुता करते हैं. ऐसा करनेसें जीव चारित्रके लाभका अंतराय कर्म बांधता है; वास्ते चारित्राचार जिनसें प्रकट हो सके वैसें कारण सेवन करै. या कोइ दीक्षा लेता हो तो उसमें बन सके उतनी मदद करै. उसके कुटुंबके मनुष्यकों आजीविकाका दुःख होवे तो अपनी शक्ति मुजब दुःख उठा लेवै कि जिस्सें दीक्षा लेनेवालेकों दीक्षा अंगीकार करनेमें हरकत न होवै, कोइभी तरहसें संयमकी मदद होवै वैसा करै–करवावै. संयम लेनेकी भावना भावै. कोइ संयमवंतकी निंदा करता हो तो वो निंदा बंध पडै वैसा उद्यम करै–जैसें कि राजगृही नगरीमें भिखारीने दीक्षा ली उसके वास्ते लोग निंदा करने लगे. पीछे अभयकुमार सवा क्रोड सुवर्ण म्होरोंका ढेर किया और सारे शहर भरमें ढूंढी पिटवाइ कि–'जो मनुष्य पृथिवीकाय सो मिट्टी वगेरः, अपकाय सो जल, तेउकाय सो अग्नि, वायुकाय सो पवन, वनस्पतिकाय सो कुछ वनस्पति, और त्रसकाय सो हिरते-फिरते प्राणी–इन छवं कायकी हिंसाका त्याग करै उसकों ये सवाक्रोड म्होरें दे दुं.' पीछे किसीने म्होरें न ली. सब जन विचार करने लगे कि 'संसारी सुख हिंसा किये बिगर नहीं बनता है, तो पैसेकों क्या करना?' ऐसा शोचकर कोइभी सुवर्ण म्होरे लेनेकों न आया. पीछे अभयकुमार मंत्रीश्वरनें बाजारमें आकर लोगोंकों इकट्ठे कर पूछा कि–'यह म्होरें क्यौं कोइ नहीं लेते हो?' सब लोगोंने कहा–'सोनैये लेकैं क्या करैं? संसारमें खाना–पीना–पहनना–ओढना–गाडी घोडे दोडाना वै सब काम हिंसाके बिगर नहीं हो सकते हैं. और हमारी संसारसुखके तर्फसे इच्छा हट गइ नहीं इससें सोनैयेकों क्यों करैं?' पीछे अभयकुमारने कहा कि–तुम लोग सवा

क्रोड सोनैये लेकरभी हिंसाका त्याग नहीं करते हो, तो उन भिक्षुकने तो बिगर दा-मसेंही हिंसाका त्याग किया है उसकी क्यों निंदा कर रहे हो?' ऐसा सुनकर वे सब लोग संयम लेनेवाले भिखारीका बहुत बहुत सन्मान करने लगे. इसी तरह जो संयम लेवै उसके बहुतमान होवै वैसा करना. पुनः जिस वक्त थावच्चाकुमारने दीक्षा ली, उस वक्त कृष्ण वासुदेवजीने सारी द्वारिकामें उद्घोषणा करवाइ (ढुंडी पीटवाइ) कि जो कोइ थावच्चाकुमारके साथ दीक्षा लैगा उसके मावापं लडके वगैरः जो कोइ होगा उनकी मैं प्रतिमा पालन करुंगा.' और पीछेसें वैसाही किया. ऐसा करनेसें सहज संयम लेनेवालेके संयम लेनेमें विघ्न होते है वो दूर होते हैं; वास्ते इस तरह संयमके बहुतमान करनेसें संयमका लाभांतराय टूट जावे वैसा उद्यम करना. यह सब अधिकार सर्व संयमका कहा. वैसेंही देशचारित्र श्रावकके बारह व्रतरूपका-भी किसी तरहसें देशसें आचार समझ लैना; क्यों कि व्रत देशसें है तो आचारभी देशसें समझना. वोभी अंतराय कर्म होवै वहांतक देशविरती न ले सकता है. सामायिक पौषधमें तो मुनि जैसेही आठ आचार पालते हैं. वो न पालन कर सकै और जब अंतराय टूटे तब पालन कर सकै-जैसें कि सुव्रत शेठने पौषध लिया था और मका-नके चोगिर्द आग लग गइ तोभी वो पौषधसें चलायमान न हुवै-और मकानमें रात्रिभर रहे तो धर्मदृढता देखकर देवने सहायता की, और आप जिस मकानमें थे उसकी आस पासके मकान भस्मीभूत हो गये (और जिस मकानमें थे) उसकों कुछ इजा न हुइ. वास्ते पौषध सामायिकमें मुख्यतासें चारित्राचार पालन करना. और पालन करनेकी भावना रखनी. ज्यौं ज्यौं चारित्राचार पालन करनेकी उत्कंठा होती है त्यौं त्यौं चारित्राचारके लाभका अंतराय टूटता है. हरहमेशां यही चिंतन करना कि कब यह संसाररूप कैदखानेमेंसें छूट जाउं. इस संसारमें अज्ञानतासें सुख मान लिया है; परंतु विचार करनेसें कुछभी सुख नहीं. अग्निमें लोहका गोला जैसें तप्त हो रहा है वैसा यह संसारमें विकल्परूप ताप रात और दिनभर लग रहा है. धनके, व्यापारके, कुटुंबके, खाने पीनेके, पहनने ओढनेके, और सोनेके-ऐसें अनेक विकल्प-रूप तापसें तप्त हो रहा हुं सो उस विकल्पोंसें कब अलग हो जाउंगा?' ऐसा चिं-तवन करकें बने वहांतक तो संसारको छोड देते हैं. और न बन सकै तो संसार छोड देनेकी हरदम भावना कायम रक्खै. ऐसी भावना भावनेसें जीव हलका होता

है. फिर कदापि चारित्र अंगीकार कर मनमें अहंकार धारण करें कि–' मेरे जैसा चारित्रका पालनेहारा कौन है ? ' तब चिंतन करना कि–' अय जीव ! श्रीमन्त् महावीरस्वामीजीनें कैसे उपसर्ग सहन किये हैं ? दो पाँवके बीच अग्नि सुलगाकर खीर पकाइ, संगमें देवने हजारों मनका चक्र शिरपर रख्खा, जिससें गोठन तक जमीनमें घुस गये; तोभी समभाव न छोडाथा. तूंने ऐसे कौनसे उपसर्ग सहन किये ? कि तूं अहंकार करता है. रे चेतन ! तूंने सूर्यकी आतापना ली ? या चार महीनें तक कूपके अग्रभागपर पूर्वके मुनी काउस्सग्ग ध्यानमें रहते थे उस तरह तूंने किया ? ढंढणमुनीकों छः महीने तक आहार न मिला तोभी अपना अभिग्रह न छोडा, वैसा क्या तूंने वडा संयम पाला है ? कि अहंकार करता है. ' ऐसें मुनियोंके उत्कृष्ट कृत्य शोचकर आपके अहंकारका नाश करता है, और आत्माकों आत्मस्वभावमें स्थिर करता है. परभावमें अनादिकी स्थिरता हो रही है उसकों हठा करकें स्वपरणतिमें स्थिर होते हैं वो लाभ लाभांतरायके क्षय होनेसें होता है.

तपाचार सो–आत्माका अणहारी गुण है. आहार करना सो आत्माका धर्म नहीं; तथापि आहारमें अनादिकालका पुद्गलके संगसें आहारकी आकांक्षा हुवा करती है, वो दशा छोडनेके लिये तप करता है. आत्माके षट् लक्षण कहे हैं, उसमें आत्माका तपभी लक्षण है, वो तपका अंतराय कर्म बांधा है वहांतक तपगुण प्रकट नही होता. तपका अंतराय जीव हमेशां बांध रहा है. तपस्वी पुरुषोंकी निंदा करना है–तपमें कुछ गुण नहीं है, खानेपीनेकों न मिले कि तप करें. ' इसतरह बकवाद करै. कुटुंबके मनुष्य तपस्या करते होवै और उन्हके शरीरमें कुछ तफावत हो जाय तो तपकों दूषण देवै; परंतु ऐसा न शोचै कि–' पूर्वकालमें अशातावेदनीय कर्म बांधा है उससें रोग हुवा. कोइभी रोग पूर्वके कर्मोदय विगर नहीं हो सकता है, तो पूर्वजन्ममें अज्ञानतासें तपस्या करनेके भाव न हुवे और तपस्या की नहीं, विषयकषायमें मग्न रहा उसीसें यह अशातावेदनी कर्म बांधा सो उदय आया है. तपकाभी अंतराय किया उससें अंतरायकर्मका उदय हुवा कि तपस्या नहीं हो सकती–' ऐसी विचारणा करें. फिर तप करकें अहंकार करै कि–' मेरे समान तपस्वी कौन है ? ' दूसरेसें तपस्या न होती होवै तो उसकी निंदा करै, आपने तपस्या की है उसकी वडाइ करनेकों लोगोंके आगे आपप्रशंसा करानेके लिये तप किया जाहिर करै; मगर ऐसा न शोचै

कि-'मेंने क्या तप किया है? पूर्व समयमें मुनिवर्ग तप करताथा सो इंद्रियोंके विषय मंद पाड़नेके वास्ते करताथा शरीरके अस्थि-हड्डीयें आवाज देतीथी. उसका दृष्टांत भगवतीजीमें दिया है कि-पातरोंसें भरी हुइ गाडी चलती हो उस वक्त उन पातरोंका जैसा अवाज होता है वैसा अवाज मुनीमहाराज तपस्या करकें शरीर शुष्क किया हो तो होता है. वैसी तपस्या करकें शरीरशोषनकी मरजी नहीं; सबब कि शरीर नरम पडता है तो उसको पुष्ट करनेके लिये सदा उद्यम कर रहा है. पूर्वके पुरुष देहको विदेह मानतेथे याने देहको अपना नहीं मानतेथे, तो वैसा भाव नहीं हुवा है वहांतक तेरा तप कथन मात्र है. फिर तपस्या करकें खानेकी इच्छा किसी प्रकारकी नहीं करतेथे, और तूं तो इच्छा करता है. तेरी इच्छाएं रुकी नहीं तो तूं तपका किस बाबतसें अहंकार करता है?' ऐसी भावना न करतें अहंकारमें मस्त रहै उससें जीव तपका अंतरायकर्म बांधता है. और उसी सबबसें तप करनेका भाव नहीं होता है. अब जिनकों तपके लाभका अंतराय टूट गया है उन पुरुषकों तपस्या करनेका भाव होता है और वो अच्छी रीतिसें तपका आचार पालन करता है. बारह प्रकारसें तप करनेमें अग्लानभाव करें. ग्लानभाव उसें कहा जाता है कि यह तप कैसें हो सकै-मेरेसें न हो सकेगा-शक्ति होनेपरभी उत्साह न करै. फिर तप करै तो बीमारके जैसा भाव धारण करै. ऐसी ग्लानता धारण न करै. जो जो तपस्याएं करै सो उत्साहसें करै. मनमें प्रसन्न रहवै कि-'आज मेरा धन्य दिन है कि आत्माका तप लक्षण प्रकट करनेका मेरा भाव हुवा. फिर यह उद्यममें प्रवर्त्तनेका वक्त मिला. अब जिसतरह मेरे आत्माका तपगुण प्रकट होवे वैसा मैं चलुं' इसतरह करै. पुनः अणाजीवी सो तपस्यासें करकें आजीविकाकी इच्छा नहीं याने-'मैं तपस्या करुंगा तो मुझको तमाम लोग मान देवेंगे, या धन देवेंगे, या पुद्गलीक सुख इस लोक और परलोकमें मिलेंगे' ऐसी आजीविकाकी इच्छा नहीं है. केवल आत्माको कर्मसें मुक्त करनेके लियेही उद्यम करै. पुनः कुशल दीठी याने-'श्री तीर्थंकरमहाराजजीने तप करनेका कहा है और आप खुदने कर बतलाया है. और कर्म क्षय करकें मोक्षमें पधारे हैं, विसी प्रकार मैंभी तप करकें कर्म क्षय करुं' ऐसी भावनासें वो तप करै सो तपका आचार है. इस मुजब तपाचार कहा. 'जो शरीरको दुःख सुख होवे उसको ध्यानमें न लेवे उससें शरीरकी संभाळ न रहवे तब शरीर पड जाय तो धर्म-

साधन किस प्रकारसे कर सकै ? ' ऐसी शंका होवै तो इसका समाधान यही है कि- पूर्व समयमें जिन्होंने तपका अंतरायकर्म बांधा है उन्होंका शरीर नरम पडै, और धर्मसाधन न हो सकै, तो वे शक्ति मुजब तपका उद्यम करैगा. फिर शरीर नरम होगा तो सर्वथा आहार छोड देवेगा नहीं, कुछ विषय छोड देनेमे शरीरके वलकी जरूरत नहीं है, उससें शरीरको जितना आधार रह सकै उतना आहार लेवेगा; परंतु बत्तीसें रसोइके स्वाद लेनेका भाव न रक्खै फकत जो वस्तु निरवद्य-पापरहित मिलगइ वोही चीजसें निर्वाह कर लेवे. एक चीजसें शरीर निभ सकता है तो विशेष चीज किस लिये लेवै? ऐसे विचारसें आहार करता है. तोभी उसको आहारकी इच्छा नहीं. तपस्वी है और तप करै और तपक रोज या दूसरे रोज खानेकी भावनाएं करै तो उसको ज्ञानीजीने तप नही गिना है; कारण कि इच्छाके रोधको ज्ञानीमहाराज तप कहेते है; वास्ते हरएक प्रकारसें इच्छा रुक जाय वैसा करना. या रोज तप करुं, तपका अभ्यास करुं तो वो अभ्याससें मेरी इच्छा रुक जायगी; ऐसे विचारसें तप करे तो उस अभ्याससें किसी रोज इच्छा रुक जावेगी. इस लिये इच्छा रुक जानेका उद्यम करना सो अच्छा है जिस जिस प्रकारसें आत्माका गुण प्रकट होवै वैसा उद्यम करना. ज्यौं वन सकै त्यौं इद्रियोंके विषयकी वांछा कम करनी चाहियें, तभी सच्चा ज्ञान कहा जाय; क्यौं कि जो आत्माका स्वरूप जानता है कि जानना, देखना ये आत्माका धर्म है. तो जो जो खानेको मिला वो फक्त जान लेना है, उसमें विषयबुद्धि नहीं करनी ये आत्माका काम है. वैसे विचारसें वो आहार करता है, तोभी तपस्वीही है; क्यौं कि आत्मस्वभाव कायम रहा. तप कुछ आहारके त्यागमें नही; लेकिन इच्छारोधमें है. इच्छारोधके साधनोंकोभी तप कहा है, उससें वारह भेद कहे हैं; वास्ते जिस प्रकारका तप करनेसें अपनी स्वदशा प्रकट होवै वो तप करना. वारह प्रकारका तप उपयोग सहित करे तो ज्ञानीमहाराजने निर्जराका कारण कहा है-यानें कर्म क्षय करनेका कारण कहा है सबब कि जीवको गाढ कर्मके दलिये बंधाये है वास्ते सबसें वेदनीकर्मको पुद्गल विशेष भाग देता है; क्यौं कि वेदनीयका प्रकटपना है. अब जो जो तप करै उसमें अशातावेदनी हुवे विगर नहीं रहती. वो अशाता तपगुणका अंतराय टूट गया होवै उतनी समभावसें भुक्तता है. समभाव रहनेका बीज कोन है ? वीर्य है ! वीर्यअंतराय टूटनेसें स्फुरायमान होना है, वो वीर्य जिस

जिस आचारमें जीव प्रवर्तै उस उस आचारमें स्फुरायमान होता है. और जो जो वीर्यके स्फुरायमानसें तप होता है, वो प्रसन्नतासें होता है. अहर्निश उसीमें हर्ष होता है. और जब किसीके आग्रहसें या शरमसें होता है, तब प्रसन्नता न होवै—वहां वीर्य स्फुरायमान नहीं हो-ता. तब अशाताके वक्तमें समभावभी जीवकों न रह सकता है. जिनपुरुषोंको स्वरूपका ज्ञान हुवा है उन्होंका भाव तो अपनी आत्मदशामें रहनेका बन गया है; परंतु आत्म-भावमें प्रवृत्ति नहीं कर सकता, क्योंकि तप गुणके लाभका अंतराय नहीं टूट गया है. वो जितना जितना टूटता जावै उतना उतना कमती होता जावै और उतनी वर्त्तना करता है. वर्त्तना करनेमें अशाता होती है तब बालजीव शोचता है कि: मैंने तप किया उससें मुझकों वेदना—आशातावेदनी हुइ, मगर ज्ञानीजन तो शोचते है कि–'कर्म नाश करनेके लिये तप किया है और वेदनीकर्मके उदयसें वेदनी हुइ है, वेदनी कुछ तप करनेसें नहीं होती. तप करनेसें श्री वीरप्रभुजी प्रमुखने वेदनीकर्म वगैरः क्षय किये हैं त्यौं क्षय होते हैं. ओर निकाचितकर्म तपस्याके समय उदय आये हैं तो वो तपस्या समभावसें शुरु की है; वास्ते समभावसें वो कर्म भुक्तैगा, उससें कर्मनिजरा विशेष होवैगी.' ऐसा शोचकर अशाता वेदनीसें नहीं डरते हैं. अशातावेदनीकी उदीरणाही की है तो उदय आवै उसमें न डरे. ऐसे भाव ज्यौं ज्यौं भाववृद्धि पाता है त्यौं त्यौं वीर्यांतराय टूटता जाता है, और वीर्य स्फुरायमान हुवे जाता है. फिर विशेष विशुद्धि वंतकों तो ऐसें विचार करनेही नहीं पडते. वै तो अपनी आत्मदशा जानने देखनेकी है उस रूप वेदनीकों जान लिया करते हैं उसमें राग द्वेष नहीं करते हैं. ऐसी सम-भाव दशा अप्रमादी मुनिकों बनती होती है. वै तो अप्रमाद दशामें रहकर आनंदमें वर्त्तते हैं. अब प्रमाद गुणस्थानकवंत वगैरः तो आपकों स्वभाव दशा कितनी हुइ हैं और कितनी न हुइ है उसकों बढानेके लिये बारह प्रकारसें तप करते हैं. वो अनशन याने अन् अर्थात् रहित और अशन अर्थात् अनाज प्रमुख खाना—वो अनशन तप कहा जाता है. आहार करना सो आत्माका धर्म नहीं है; परंतु पुद्गलके साथ संबंध होनेसें आहार जाने आत्माही करता है, ऐसी दशा अनादिसें बन रही है; मगर ज्ञान होनेसें जाना गया कि आहारके पुद्गल शरीरमें विस्तरते हैं. आत्मा अरूपी है उसमें कुछ परिणमते नहीं तोभी मेरे आहार करना मानता हुं वो अज्ञानदशा है; परंतु मेरी और प्रकारसें चाहियें उतनी विशुद्धि नहीं होती उससें आहारकी इच्छा होती है;

तथापि जितनी जितनी रुकी जाय उतनी उतनी रोक लुं कि अभ्याससें सर्वथा रुक जावै. अैसा शोच कर नवकारसी याने दो घडी दिन चडने तक, पोरसी याने पहर दिन चडने तक, साढ पोरशीयाने देढ पहर दिन चडने तक, पुरिमड्ढ याने दो पहर दिन चडने तक, अवड्ढ याने तीन पहर दिन चडने तक, या दो बेर खाना, या एक बेर खाना [बेयासना, एकासना] या आयंबिल याने छउं विगयके त्याग सहित एक वक्त खाना और उपवास सो सर्वथा–बिलकुल न खाना. वो जितने उपवास बनें-उतने दिन आहारका त्याग करना. उसमें कोइ चारों आहारका और कोइ तीन आहारका त्याग करै याने पानी–फासुक जल पीनेकी छूटी रखै. इस तरह तप करना. या मरण के समय बिलकुल अहारका त्याग करकें समस्त वस्तुका और शरीरका त्याग करना वो अनशन तप जानना.

अव उणोदरी तप याने कम खाना-मतलव कि बिलकुल नहीं खाना अैसा आत्माका धर्म है; परंतु अनादी जडकी संगतिसें करकें जीव जडक्रियाकों अपनी मान रहा है उसी तरह देहकोंभी अपना मानता है वो जोर अज्ञानताका है, उस अज्ञानताके जोरसें मुझकों भूख लगी है, मेरे खाना मेरे पीना है अैसा कहता है. फिर शरीरमें रहा है वो जड देह जड पदार्थ है सो जड पदार्थका धर्म सडना पडना विध्वंसना याने विनाश होना वोही है. आहारके पुद्गल मिलै तभी कायम रहै. अव आहारके पुद्गल दो प्रकारके हैं याने रोम आहार याने रोमरोमसें आहारके पुद्गलका शरीरमें समय समय आहार कर रहा है सो, और एक कवलआहार सो कवलकरकें मुंहसें रक्खै सो. अव रोम आहार सो तो अपने उपयोग सहित और उपयोग रहितभी लिया जाता है, वो तो जीवकों जव तक शरीर है वहांतक लेनेका बंध नहीं हो सकता है; तदपि वो आहार किस किस प्रकारसें लिया जाता है? जो पवन आता है वो ठंडा आता है तो ठंडक लगती है और गरम आता हो तो गर्मी लगती है. बारिसकी मोसम होवै तो शर्दी लगती है–ये सव गर्मी वगैरः काहेसें मालूम होता है? शरीरमें प्रणमते हैं–स्पर्शकर फैलते हैं उससें! तो वही आहार है. परंतु वो कुछ स्ववशपना नहीं, उसी लिये उसका ग्रहण त्यागमें उपयोग रहता है और नहीं भी रहता. उससें विरती नहीं होती तोभी ज्ञानीजन है सो उसमें राग द्वेष नहीं करते है. फकत आत्माका जाननेका धर्म है उससें जानलेता है कि यह गर्मीके पुद्गल, यह शीतके पुद्

गल लेनेका कर्मोद्य है वैसे लिये जाते हैं. ऐसा सदाकाल उपयोग रहता है. उन पुरुषकों इच्छाका रोध हुवा सोही तप है; परंतु उतना गुण प्राप्त नहीं होता उससें ठंडी गर्मीमें जाननेरूप रह सकता नहीं; तथापि कुछ ज्ञान हुवा है, और कुछ स्पर्शज्ञान हुवा है उसके प्रभावसें कुछ समभाव रखता है. तो जितना रागद्वेष कमती हुवा वो भी उणोदरी तपका लक्षण है. वास्ते जिस प्रकार रागद्वेषकी परिणती कम होवै उस मुजब उत्तम पुरुषकों करना. अब दूसरा कवल आहार है सो-सर्वथा जिसकी इच्छा उठती है-उसका त्याग करता है वो अनशन तप गिनाजाता है. अब बिलकुल आहारके त्यागसें तो शरीर कायम नहीं रह सकता, तब आहार देना चाहिये; परंतु आहार लेनेका धर्म नहीं उससें इच्छा नहीं होती; मगर शरीरका आधार रहनेके वास्ते आहार देना. वो कुछ कम खावे तो भी शरीर कायम रहवै, रागादिककी उत्पत्ति न होवै उससें आहार कम लेवै और इच्छा नहीं या इच्छा है तो वो कमती हुइ उतना निर्मल हुवा और इच्छाके रोधरूप सहजसें उणोदरी तप हुवा फिर जिसकी इतनी विशुद्धि न हूइ वो भी हमेशांके खुराक करत पांच कवल था उससें विशेष कम खानेका अभ्यास करै उसके लिये पीछे सहजसें इच्छारोध हो जाय. फिर दूसरी तरहसें खानेकी चीजें हैं उनमेंसें जितनी चीजें कम लेवै उतना उणोदरी तप होवै. फिर ओछी वस्तु कब ग्रहण हो सके कि कुछ खानेके विषय कम हुवे होवै तो या विषय घटनेका अभ्यास होवै तो; क्यौं कि आहार लेनेका आत्माका धर्म नहीं, तो ज्यौं बन सकै त्यौं आपका आत्मधर्म प्रकट करनेका जीवकों अभ्यास करना चाहियें. जैसें जो जो हुनर शिखना हो वो वो हुनर अभ्यास करनेसें शीखा जाता है, वैसें अभ्याससें सब हो सकै. आत्मधर्मकी वर्त्तना अनादीकालसें नहीं जानता है और न वर्त्तना करता है वो अभ्यास करनेसें वर्त्तना होवै तो वो अभ्यासमें ज्यों बनै त्यौं अयोगका त्याग करना. आहार बहुत प्रकारके हैं-उनमेंसें जो आहार लेनेसें बहुतसे जीवोंकी हिंसा होवै वो आहार शाकादिक और अभक्षादिकका न करै. [वो बाइस अभक्षके नाम प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणीमें मौजूद हैं. और योगशास्त्रादि ग्रंथोंमेंभी है उनमेंसें देख करकें त्याग करना.] वोभी उणोदरी तप है. और जो आहार-रसवती भक्ष्य है.उस रसवतीके अंदरसें थोडी चीजोसें निर्वाह होता है. तोभी जीव-निर्वाहमें ज्यादे चीजो विषयके वास्ते उपयोगमें लेता है उससें आत्मा

विशेष लिप्त होता है. ऐसा जिसने जान लिया है तो खानेके वक्त निर्वाह जितनी वस्तु ग्रहण कर दूसरी वस्तुपरसें इच्छा उतार डाले वोभी ऊणोदरी तप है; वास्ते ज्यौं बने त्यौं निर्वाहके उपर लक्ष देना. कितनेक विषय कम नहीं हुवे हैं उसमें विशेष वपराशमें आवै, तो उसके अंदरभी जीव निंदा गर्हा सहित जो उपयोग करै तो विषयके कर्म कठिन न बंधे जांय. तो वै कर्मके रस जितने कमती पडे वोभी ऊणोदरी. ्पका ही फल पावै. वृत्ति संक्षेप तप सो-जो वृत्तियें वर्त्तन कर रही हैं उसका संक्षेप करना-याने मर्यादामें आना. जैसे कि श्रावककों चौदह नियम धारण करना मुनीकों द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चारों प्रकारमेंसे हरकोइ प्रकारकी आहारादिक वस्तु संबंधी धारणा करनी, रोटी कींवा हरकोइ पदार्थ धार लेवै कि वो चीज मिले तों लैनी, या फलाना मनुष्य देवै तो लेना या इतने घंटेमें मिले तो लेना या हावभावसें देवै तो लैना, इस तरहके अभिग्रह धारण करै ऐसी धारणा करनेकी मतलब क्या है कि इसतरहका योग न बनशके ओर तप बनसकै तो अच्छा. पूर्ण चित्त तप करनका नहीं होता. तब ऐसे अभिग्रह धारण करके आहारादिककी इच्छाकों शांत करै. पुद्गल भावमें वृत्ति कम हो रही है वो ऐसें अभ्यास करके वृत्तियोंको रोक लेवै सो वृत्तिसंक्षेप तप कहा जावै.

रसत्याग तप याने चार महा विगय सो सरस, मक्खा, मांस, मदिरा इन चारोंका श्रावक और मुनिमहाराजकों सदा त्याग होवै; क्योंकि ये वस्तुऐं खानेमें असकाय जीवका विनाश होता है. उस बातका योगशास्त्रमें हेमचंद्राचार्यजीने विस्तारपूर्वक निषध (मना) किया है, उतनाही नहीं मगर हरिभद्रसूरिजीने पंचाशक वगैरः ग्रंथोंमें मांसादिकका निषेध किया है. मांसाहारी जीवकों निर्दयपना तो अवश्य होवै. यदि दयाके परिणाम होवै तो जिसमें वहुतसे जीवोंकी हिंसा होवै ऐसी वस्तु उपयोगमें लेनेका भाव होवैही नहीं. पन्नवणाजीमें जघन्य श्रावक कहे है वो इन चार महा विगयके त्यागीही कहे हैं. पुनः उपाशकदशांगमें आणंदजीनें मांसादिकका त्याग किया है. फिर मांसाहारसें स्वभाव मिजाजी और गुस्सेदार होवै, ऐसा अभीके डॉक्टरभी कहते हैं. मदिरासें करके आत्माकी ज्ञानशक्ति आच्छादित हो जाती है. अकलमंद हो वो दीवाना हो जावै, दीवाना होकर धन धान्यादिकके व्यापारमेंभी नुकशान उठावै, जगतमेंभी निंदाका पात्र होवै, और परलोकमेंभी नरकादि गति पाता है. उ-

ससें उत्तम पुरुष, साधु और सद्‌गृहस्थ उनका त्याग करता है पुनः अभीके वक्तमें इंग्रेज और पारसीयेंभी कितनेक मांसका त्याग करते हैं और कितनेक वो टेव-आदत कमती हो जाय वैसा करते हैं ऐसें अनार्य लोगभी जब मांसाहारका त्याग करते हैं, तो आर्यलोगोंकों त्याग होवै उसमें क्या नवाइकी बात है ? ! वास्ते महा विगयका त्याग कहा है. दूसरी छः विगय सो-दूध, दहीं, तेल, गुड, पकवान्न और घी इन छउंमेंसें जितनी विगय त्याग होवै उतनी करै; कारण कि विगय खानेसें विकारकी वृद्धि होती है-उससें कामदेव दीप्त होता है; वास्ते मुनीमहाराज विगयका त्याग करते हैं. परंतु इस समयमें विगयका उपयोग किये बिगर शरीर नहीं टिक सकै उससें शरीरके निभाव जितनी विगयका उपयोग कर बाकीकी विगयका त्याग करैं. श्रावक है वोभी हरहमेशां एक एक विगयका त्याग करै; कारण कि मुनीमहाराज तो सब कामके त्यागी हैं उससे बन सकै तो सर्वथा त्याग कर डालै; मगर गृहस्थसें वैसा बनना मुश्किल है. गृहस्थकों तो जितनी मूर्छा कामके ऊपरसें उतरती जावै उस मुजब विगयका त्याग करना योग्य है. भावसें जितने पुद्‌गल कमती ग्रहण करनेमें आवेंगे उतना कर्मबंध नहीं होगा. ऐसा चिंतवन कर मुनि ओर गृहस्थ विगयका त्याग करै. आपका अणहारी गुण प्रकट करनेरूप वीर्य स्फुरायमान होवै वही आत्माका तप गुण प्रकट होवै सो रसत्याग तप कहा जाय.

कायक्लेश तप याने जितना जितना समभावसें कायाका कष्ट भुक्तनेमें आता है सो कायक्लेश तप है. मुनिमहाराज लोचादिक कष्ट सहन करते हैं, विहारमें चलनेका कष्ट सहन करते हैं, सूर्यकी आतापना लेते हैं. वो मुनीमहाराज क्या चिंतवन करकें कष्ट सहन करते है कि अपनी आत्माका स्वरूप जान लिया है, जडका स्वरूप जान लिया है उससें जड जो शरीर उसकों अपना नहीं जानते हैं. आपके वैसे भाव रहते है कि नहीं-ऐसा शोचना. जिस वक्त लोच करै उस वक्त कष्ट पडता है वो कष्ट पडनेसें जिनका मन नहीं बिगडता है और समभावमें रहते हैं, तो ऐसे कष्ट स्वाभाविक रोगादिकके आवै उस वक्तभी समभावमें वैसे पुरुष रह सकते हैं. और समभावमें रहनेसें वो कर्म भुक्ता जाता है, उसी वक्तपर आत्माकी अशुद्ध परिणती हठ जाती है, वो निर्जरामें गिनि जाती है, और आत्मा शुद्ध होता है. अब जो मनुष्य जानबुझकर ऐसे कष्ट सहन नहीं करते हैं उसकों रोग भुक्तकें या दूसरे कुटुंबके

व्यापारके काम करकें कष्ट भुक्तने पडेंगे. अनादिकालका जीव संसारमें रुलता है उसमें मोहके वश अशातावेदनीकर्म, अंतरायकर्म बंधे हुवे है वो भुक्ते विगर छूटका नहीं होता; वास्ते उत्तम पुरुष जिस मुजब समभावमें रह सकते हैं उस मुजब कष्ट भुक्तकर आपके कर्म क्षय करते हैं वो कायक्लेश तप कहा जाता है. समभाव सिवाके कष्ट भुक्तते हैं वो निर्जरामें ज्ञानीमहाराज नहीं गिनते हैं; कारण कि एक कर्म भुक्त-कर पीछे हजारां नये कर्म उपार्जन करता है, उस लिये वो दुःख भुक्ते हुवे काममें नहीं आते हैं, उनसें उसकों सकाम निर्जरा नहीं गिनते हैं. हरएक धर्ममें समझकर काम करनेसें लाभ वतलाया है, और जो जो कष्ट भुक्तना वो समझकर भुक्तना उससें आत्माकों लाभही होवेगा. कष्ट भुक्तनेसें आत्माका वीर्य जाग्रत होता है और तभी समभाव रह सकता है–नहीं तो समभाव न रह सकता है. वो आत्मवीर्यके अं-तराय टूटे विगर वीर्य स्फुरायमान नहीं हो सकता है; वास्ते समभावमें रहकर जो जो वन सके उस प्रकारसें कायाकों कष्ट भुक्ताकर कर्म क्षय करना सो कायक्लेश तप समझना.

संलीनता सो–मुनि महाराज कर सकते हैं–जैसें मुर्घी शरीर संकोचकें सोती है वैसें मुनि महाराज सोते हैं. इस तरह सोनेसें अंगोपांग सबकों जाग्रति होती है, निंद्रामें लीन नहीं हुवा जाता है, और आत्मज्ञान आच्छादित नहीं हो जाता है. जैसें सक्त निंद्रा आवे वैसें उपयोग लुप्त हो जाता है, उससें ज्यौं कठीन निंद्रा न आवे त्यौं मुनि-महाराज सोवें. फिर योग संलीनताभी तपमें कहा है; परंतु वो अभ्यंतर तपगिना जावे, उसी तरह वचन काया के योग ज्यौं वन सके त्यौं आत्मस्वभावसें वहार प्रवर्त्तते रोक करकें निजस्वभावमें स्थिर करना, वो योगसंलीनता तप है वो वहुतही श्रेष्ठ तप है. इस तरहसें संलीनता तप कहा है.

यह छः प्रकारसें वाह्य तप कहा; उसका कारण कि ये तप करनेवालेकों देख करकें यह तपस्वी है युं पहिचान शके. वाकी वस्तुपनेसें तो कर्मक्षय करनेके भावसें यह वाह्य तप करै, वो भी आत्मा निर्मल करै. और अभ्यंतर तपसेंभी आत्मा निर्मल होवै. अब अभ्यंतर तप काहसे कहा जाता है ? वो कहते हैं,–वहारसें देखकर तपस्वी कोइ न कह सकें; परंतु आत्मा निर्मल करै उससें अभ्यंतर तप कहा–वो भी छ प्रकारका है.

१ पहिला विनयतप सो–देव–गुरु–धर्मका विनय करना. देव सो अरिहंत कि जिन्होंने ज्ञानावर्णी कर्म क्षय करकें केवलज्ञान उपार्जन किया है. जिस ज्ञानसें करकें लोकालोकके भाव याने स्वर्ग, मृत्यु, पाताल ये तीनुके अंदर जीव अजीव पदार्थ रहे हैं उन्ह पदार्थकी वर्णना हो रही है. समय समय अनंते परजायका उत्पात, व्यय और ध्रुव हो रहा हैं, और गतकालमें वर्तना हुइ, आते कालमें होवेगी और वर्त्तमानमें होती है, वो तमाम भाव एक समयमें जान रहे हैं उसका नाम केवलज्ञान–ऐसा ज्ञान जिनकों प्रकट हो रहा है. दर्शनावरणी कर्म क्षय करकें अनंत दर्शन गुण प्रकट हुवा है, उससें (सामान्य बोधरूप) केवलदर्शन प्रकट हुवा हैं. मोहनीय कर्म क्षय करकें चारित्रगुण प्रकट हुवा है, वो आत्मस्वभावमें स्थिर होवे सो चारित्रगुण समझना. अंतरायकर्म क्षय होनेसें अनंतवीर्यादिगुण प्रकट हुवा है. ऐसे अरिहंत भगवानजीका विनय करना; क्यों कि आत्माका स्वरूप अरूपी है वो केवलज्ञान प्रकट हुवे विगर प्रकट नहीं हो सकता. वो केवलज्ञानसें तमाम जीवके आत्माका स्वरूप प्रत्यक्ष मालूम होता है उससें प्रभुजीने वो स्वरूप वर्णन किया. फिर आत्मा मलीन काहेसें होता है वो स्वरूप बतलाया. पुनः आत्मा निर्मल काहेसें होता है वोभी बतलाया. पुन्यपाप बांधनेके कारण बतलाये. तो उस द्वारा अपन अपने आत्माका स्वरूप जान सकते हैं, वास्ते प्रभुजी बडे उपकारी है; इस लिये उन्होंका विनय ज्यों बन सकै त्यों करना. नहीं कि शक्ति छुपाकर मिजाजमें रहना ?

सिद्धमहाराजजीकों आठों कर्म क्षय हो जानेसें आत्माके संपूर्ण गुण निष्पन्न हुवे हैं. शरीर रहित हैं, मोक्षस्थानमें हैं; पुनः संसारमें आनेका हैही नहीं, केवल आत्माके गुणमेंही लीन हैं, न राग, न द्वेष, न क्रोध, न मान, न माया, न लोभ, न विषय, अक्षय, अमर, अजर, अकल, अगोचर, अरूपी आदिक अनंत गुणवंत हैं, वै सिद्धमहाराजजीका रूप देख अपनी सिद्ध दशा प्रकट करनेकी बुद्धि जाग्रत होनेका हेतु है. पुनः गुणवंतके गुण गानेसें अपना आत्माभी गुणी होता है और अनादिकी भूलसें परवस्तु अपनी मानकर प्रवर्त्तता है वो भाव पलटानेका साधन है. वास्ते सिद्धमहाराजजीका विनयभी जितना बन सके उतना करना. अरिहंतजी और सिद्धजी इन दोनुका विनय करना सो देवका विनय समझना. अब इस क्षेत्रमें अरिहंतजी और सिद्धजी कहींभी नहीं विचरते हैं, तो उन्होंकी मूर्तिओंकाभी विनय करना; स-

यत्र कि गुणवंत पुरुषोंकी मूर्तिमेंभी जिन जिन भगवानकी मूर्ति है उन उन भगवान-जीके गुणोंका आरोप करना है और वे गुणोंका विनय करनेका है, इससें भगवान-काही विनय किये समान है अब उसमें पहिला कौनसा विनय है कि उन्ह पुरुषोंनें जो जो हुकम फरमाये ह वे कुल हुकम अंगीकार करकें अपना आत्मा शुद्ध करनेके उद्यमी होना, और अैसा उद्यम करनेमें आत्मा शुद्ध होवैगा. जिस जिस अंशमें प्रभु-जीके हुकम मुजब समभावमें रहेंगे-रहवेंगे यह मुख्य विनय है. पीछे उसकें कारण रुप पांच प्रकारका विनय है "भक्ति बाहाज प्रणीपतीर्थी" याने पंचांग प्रणाम करना अर्थात् खमासणा दे कर पांचो अंग इकट्ठे (दो गोठन, दो हाथ, और शिर-ये पांच अंग एकत्र मिला) करकें भगवंतजीकों या भगवंतजीकी मूर्त्तिकों नमस्कार करना. पुनः अष्ट द्रव्यसें-सत्तरह द्रव्यसें-इकीस द्रव्यसे या १०८ द्रव्यसें भगवानजीकी पूजा करनी, वो भी प्रभूजीका विनय है. " हृदय प्रेम बहुमान. " याने हृदयके अंदर भ-गवंतजीके गुण और भगवंतके उपकार अत्यंत विचार करकें हर्षके मारे रोंगटे विकश्वर हो जावें-आनंदका पार न रहवै अैसा अंतरंग हर्ष हो आवै और प्रभु पर अत्यंत प्रीति जाग्रत होवै, तथा प्रभु प्ररुपित धर्म जो आगमोमे कहा है वे आगम सुनकर-'अहा ! प्रभुजीने क्या सर्वोत्तम मार्ग दर्शाया है!' वो शोच कि हर्ष होवै. फिर प्रभु जीके चरित्र सुनकर प्रभुजीका वर्त्तन देखकर-'अहा ! अत्यंताश्चर्यकारी भगवंतजीका वर्त्तन है, वो देखकर हर्षित होवै और प्रभुजीके उपकार याद ला करकें अंतरंगमें प्यार उत्पन्न होवै वोभी प्रभुजीका विनय है.

" गुणकी स्तुति " याने प्रभुजीके गुणोकी स्तुति करनी सो स्तोत्र श्लोक-दोहरे-छंद इत्यादि प्रभुजीके आगे खडे रहकरके उच्चारन करना, या चैत्यवंदन, नमु-थ्थुणं, स्तवन, स्तुति वगैरः कहना, या प्रभुजीके चरित्र सुने हुवे हैं वो चरित्रोंमें जो गुण वर्णन किये हैं वो याद करकें आप स्तवन कर या दूसरेके आगे कहकर उन लोगोंकों प्रभुजीके रागी बनाना वोभी भगवंतजीकी स्तुति है. औगुणकों ढक देना याने प्रभुजीमें तो किसी प्रकारका औगुण हैही नहीं; परंतु कोइ कल्पित औगुण कहेता होवै तो उनकों समझाकर औगुण बोलना बंध करवा देवै. प्रभुजीकी प्रतिमाजी है उन्हों-की पूजा न करते होवें तो उन्होंकों समझा करकें प्रभुजीकी पूजा करते बनाने चाहियें. प्रतिमाजीके अवर्णवाद बोलता हो उसकों समझाकर वो अवर्णवाद न बोलै वैसा करना.

चाहियें; क्यौं कि प्रभुजी और प्रभुजी स्थापना दोनु समान हैं युं भगवंतजीनें फुरमाया है. श्री अनुयोगद्वार सूत्रजीमें ओर आवश्यक सूत्रजीमेंभी स्थापना निक्षेपा कहा है. इस समयमेंभी सामान्य गृहस्थकीभी यादी कायम रखनेके लिये फोटोग्राफ (छवी-तसवीर) बहुतसें लोग करवा ते हैं. फिर बडे होदेदारोंकी या राजाओंकी या शाहुकारोंकी मूर्ते (पुतले-बावले) भी मरनेवालेके मान्यकी खातिर बैठानेमें आती हैं. तो जब असे मनुष्योंका बहुमान करते हैं और देवकी मूर्तिके बहुमान करने करवानेका खियाल न रख्खे तब आपहीके देवपर आपका राग नहीं है अैसा साफ मालूम हो जाता है. न्यायकी बुद्धि सहजहीसें जिसकों हुइ होगी तो उसका सहजहीसें समझनेमें आयगा कि भगवंतजीकी मूर्ति देखकर भगवंतजी याद आते हैं और भगवंतजी याद आये कि उन्होके चरित्र याद आवै, और उन्होंके अद्भुत चरित्र याद आवे तो प्रभुजी कैसें गुणवंत है वो गुण याद आवे, गुण याद करनेसें प्रभुजीने मोक्षमार्ग बतलाया है उस मार्गपर जीवकों किस तदवीरसें चलना वो याद आवै, वो याद आनेसें अपन भगवंतजीके हुकमसें विरुद्ध चलते हैं वो याद आवे, और वो याद आतेही अपनी भूल सुधारनेकी बुद्धि हो आवे, भगवंतजीके उपकार याद आवैं तो भक्ति करनेके भाव होवै-सबब कि उपकारीकी जितनी भक्ति न करैं उतनी कम है; वास्ते भगवानजीकी यथाशक्ति भक्ति करनेके भाव जाग्रत होवै वो प्रभुजीका विनय है. जो जो अवर्णवाद बोलते होवैं वो बंध होवै वो लाभ समझानेवालेकों होता है, और वोही प्रभुजीका सच्चा विनय है.

" आशातननी हाणी " याने भगवंतजी विचरते होवैं उस वक्त छद्मस्थ अवस्थासें याने जब तक केवलज्ञान न पाया हो तब तककी अवस्थामें कितनी प्रशंसा होती हो तो वो अज्ञानी मत्सरी जीव सहन कर शकते नहीं, वैसें जीव अवर्णवाद बोलते होवे या पीडा करते होवै तो अपनी शक्ति स्फुरायमान करकें वो पीडा दूर करनी. मुंहसें बोलता हो तो उसकों समझाकरकें वैसी बातें बोलता बंध कर देना, या प्रभुजीकी परिक्षा लेनेके लीयेभी कितनेक देव पीडा-उपसर्ग करते है, तो उस देवकोंभी अपनी गुप्तशक्तिसें-मानसिक शक्तिसें दूर हठा देना, या मिथ्यात्वी जीव प्रभु प्ररुपित आज्ञान संबंधी बिगर दूषणकों दूषण कहकर निंदा करता होवै तो वोभी प्रभुजीकी आ-

शातना है उसकाभी समझ समझाकरकें आशातनासें दूर करके धर्ममें स्थिर करना. फिर अपनेमें शक्ति न हो तो दूसरे कोइ शक्तिवंत हो उसकों वीनती करकें उन्हकी शक्ति स्फुरायमान करवा के उन्हकी शक्तिसें आशातना दूर करनी. उसी तरह जिन विंब याने मूर्तिकी आशातना करता होवें वो दूर करना, अब जिनभुवनमें चोराशी आशातना दूर करनी उसके नाम नीचे मुजबः—

१ बलगमं या थूंक डालना, २ झूला बांधकरकें झूलना, ३ क्लेश—लडाइ—टंटा फिसाद करना, ४ धनुर्विद्या शीखनेका अभ्यास करना याने बाण साधनेमें निशानकी जगह बान लगे वो शीखना, ५ पानी पी करकें कुल्ले करना, ६ तांबूलादिक—पान सुपारी खाना या खाकर जाना, ७ तांबूल खाया हो वो वहां थूंकना, ८ दूसरेकों गालि देना, ९ जैसा वैसा-गाली गलुच-ठठाबाजी-दिल्लगी-बिभत्स बोलना या शाप देना, १० स्नान करना, ११ शिरके बाल या कोइभी बाल डालना, १२ नाखून डालना, १३ खून डालना, १४ मिठाइ वगैरः खाना, १५ शरीरकी चमडी डालना, १६ पित्त वमन करना, १७ सामान्य वमन करना, १८ दांत गिरगया हो सो डाले या दांतोंकों साफ करै, १९ थक लग गया हो तो विश्राम लेवें, २० गउ वगैरः चोपायेकों बांधना, २१ दांतका मैल डालना, २२ आंखोंका मेल डालना, २३ नाखून उतारै या उतरावै, २४ गंड-स्थळ—गालका मैल उतारै या डालै, २५ नाकका मैल डालै, २६ शिरमें कंगाइ फिरावै या सुधारै, २७ कानका मैल डालै, २८ शरीरकों सजावै, २९ मित्रकों भेटै, ३० घर-संसारी कामका नामा लिखै—या कागज लिखें, ३१ कुछ वैचान करें, ३२ थापन रक्खे, ३३ दुष्टासनसें बैठे, ३४ छाने थेपें, ३५ कपडे सूखावै, ३६ पापड सूखावै, ३७ वडीयें करै या सूखावै, ३८ राजाके डरसें भाग कर मंदिरमें छुप जाय, ३९ अनाज सूखावै, ४० मंदिरमें अपने सगोंकों याद करकें रोवै [भगवानके गुणानुवादका बहुमान करनेके वक्त हर्षके आंसु आवै वो आशातना नहीं गिनी जाती है.], ४१ विकथा याने राजकथा, देशकथा, भोजनकथा, स्त्रीकथाकी बाते करनी, ४२ शस्त्र बनावै, ४३ चोपाये बांधै, ४४ आग सुलगाके तापें, ४५ रसोइ बनावै, ४६ रुपै म्होरकी परीक्षा करै, ४७ निसिही कहकर संसारके कार्य निषेध किये परभी करै [और निसिहीका भंग करै सो व्रतभंगके दोष जैसा दोष है.] ४८ अपने शिरपर मंदिरमें छत्र धरावै, ४९ जूते-बूट मंदिरमें रक्खे, ५० चँवर धरावै—डुलावै, ५१

मनकी एकाग्रता न करे, ५२ शरीरको तेलका मालिश करावे, ५३ सचित्तभोग न तजे, ५४ अयोग्य अचित्त पदार्थ न तजे, ५५ शास्त्र रक्खे, ५६ प्रभुका मुख देखने परभी हाथ न जोडे, ५७ एक साडी उत्तरीय वस्त्र डाले सिवा मंदिरमें दाखिल होवे, ५८ मुकुट पघडी पर पहनकरे मंदिरमें जावे, ५९ पघडीका अविवेक करे, ६० फूल तुर्रे वगेरः शिरमें रखकर मंदिरमें जावे, ६१ शर्त करे, ६२ दडे-बॉलकी रमत करे, ६३ गेडीकी रमत-बेटबॉल खेले, ६४ मंदिरमे जुहार-सलाम करे, ६५ किसीको टूंकारा करे, ६६ लंघन करनेको बैठे, ६७ बथ भीडकर लडे, ६८ भांड चेष्टा करे, ६९ शिरवेणी सुधारे, ७० काम-याने खडे घोंटे रखकर कपडा बांधकर बैठे, ७१ खडाउ पहनकर मंदिरमें जावे, ७२ लंबे पाँव पसारकर बैठे, ७३ पीपुडी-सीटी बजावे, ७४ मंदिरमें कीचड करे, ७५ शरीरकी धूल उडावे, ७६ मैथुन सेवे या उस संबंधी चेष्टा करे, ७७ जुगार खेले, ७८ पानी पीवे-भोजन करे, ७९ कुस्ती खेले, ८० नेत्रज देखे-दवा देवे, ८१ मंदिरमें किसी जातका सौदा-सट्टा करे, ८२ बिछाना बिछावे, ८३ खानेकी चीजें [मंदिरमें] रक्खे, ८४ और मंदिरमें स्नान करे. इसतरहकी ८४ आशातनाएं हैं. वो कोइ वक्त किसीकोभी करनी नहीं चाहियें. अगर कोइ करता हो तो उनको रोक देना चाहियें. इनके सिवा मंदिरका पैसा खा जाना, या मंदिरके पैसेसें नफा हासिल करना, या मंदिरका पैसा घरकाममें खर्चना, मंदिरकी चीज लाकर काममें लेनी ये तमाम आशातनाएं गिनी जाती हैं. और देवद्रव्य खानेका दूषण लगे; वास्ते मंदिरकी कोइभी चीज अपने घरकाममें न लेनी. इस मुजब देवका पांच प्रकारसें विनय करना कहा है और देवभाषित धर्म जो आगममें लिखा है; वास्ते आगमका विनय करना. याने उसके विनयके साथ उसका ज्ञानभी करना. आगम याने शास्त्र उसको लिखवाना, लिखवानेके काममें पैसे खर्चना, जो आगम ग्रहण करना हो उनको नमस्कार, खमासण देकर लेना. छोडना जबभी उसी मुजब करना. आगमके पुस्तक धरे हो वहां दस्त पेशाव न करना. पॉवके या शिरके नीचे आगमको न रखना, उनके आगे आहार पानीभी न करना, मैथुन या मैथुनचेष्टाभी न करनी, हास्यविनोदभी न करना. इसतरह प्रभुजीके ज्ञानका विनय करना सो प्रभुजीकाही विनय है. मुख्य विनय तो यह है कि प्रभुजीका हुकम है कि आपके आत्मभावमें रहना. जो जो सुख दुःख होते हैं उनके कर्म पूर्वसमयमें या वर्त्तमान-

संयममें बंधे हैं उस मुजब सुख दुःख होते हैं, और आत्माका स्वभाव जाननेका है सो जान लेना; परंतु मुझकों सुख या दुःख हुवा असा मान कर हर्ष या अफशोष यें न होना चाहियें. ऐसे विचारमें रहनेसें नये कर्म नही बंधे जाते हैं ऐसा प्रभुजीने फ़रमाया है—ऐसा शोचना वही प्रभुजीका विनय है, और आत्माका हित होनेका कारण है. इत्यादि विनयका स्वरूप प्रभुजीने शास्त्रमें बहुत तरहसें बतलाया है. उत्तराध्ययनजीमें विनय अध्ययन हैं वो सुनकर तदनुसार विनय करना.

गुरुमहाराजजीका विनय करना सो कैसे गुरुमहाराजका करना? जिन महाशयने बिलकुल हिंसाका त्याग किया है—किसी जीवकोंभी मारना या दुःख देना बंधही कर दिया है. जूंठ बोलना छोड दिया है, कोइभी जातकी चोरी करनीभी त्याग दी है, कोइभी स्त्रीके साथ मैथुनक्रिया करनी त्याग दी है, स्त्रीकों छूनाभी बंध कर दिया है, धनधान्यादि नौ प्रकारका परिग्रहभी सर्वथा छोड दिया है—कौडीभी पास न रखना मंजूर रख्खा है, ऐसे पांच महाव्रतसै करकें युक्त जो मुनीमहाराज प्रभुजीकी आज्ञा शिरपर चडा करकें विचरते हैं—प्रभुजीकी आज्ञा बहार नहीं वर्त्तते हैं—अपने आत्मगुणमें आनंदित दिलवाले हैं—विषयकषाय नहीं सेवन करना हैं इससें विषयकषायसें मुक्त हुवे हैं—और कुछ अंशसें रहा है उससें मुक्त होनेके कामी हैं—शांतरसकेही उद्यमी हैं—शत्रु मित्र तुल्य हैं—वैसे आचार्य, उपाध्याय और साधुजीमहाराज, पर जीवपर उपकार करनेकोंही पृथिवी पर विचरते हैं और धर्मोपदेश देकर जगतके जीवोंकों अधर्मसें छुडाते हैं—कितनेक नहीं छुडाते हैं; परंतु छुडानेके वास्ते सन्मुख हो रहते हैं—ऐसे उपकारके करनेहारे पुरुष हैं वोही गुरु याने वडे हैं; वास्ते उन्ही महाशयजीका विनय करना. जब गुरुजीके पास जाना तब सचित्त पदार्थ न ले जाना, गुरुजीकों देखकर हाथ जोडकें नमस्कार करना, फिर पंचांग प्रणाम करकें, [इच्छकार सुहराइ सुहदेवसी सुख तप शरीर निराबाध सुख संयम यात्रा निर्वहो छोजी स्वामी शाता छेजी, भातपाणीनो लाभ देशोजी] ऐसा कहकर पीछे (इच्छाकारेण संदीसह भगवन अब्भुट्टिओहं अब्भिंतर देवसियं खामेउ) ऐसा कहकर गुरुजीकी आज्ञा मांगकर, आज्ञा मिले कि [खामेह] पीछे पंचांग प्रणामपूर्वक अब्भुट्टिओहं अब्भिंतर खामना. इच्छकार कहकर शाता पूंछकर अब्भुट्टिओ खामनेसें, कुछभी गुरुजीकी आशातना हुइ हो तो उसकी माफी मांगली है. अब जितने शक्

अभुट्ठिओमें आते हैं उतने बोल करनेसें गुरुकी आशातना होती है; वास्ते उतने बद त्याग करनेमें गुरुजीका विनय होता है, इस लिये अभ्युट्ठिओ खमानेका उपयोग रखना कि शायद कुछ भूल न हो जाय. फिर द्वादशावर्त्त वंदन गुरुजीकों करना वोभी गुरुजीका विनय है. [वो वंदन प्रतिक्रमणकी अर्थ सहित छपी हुइ कितावमें अर्थसह है वहांसें देखकर समझ लेकें उस मुजब करना.] फिर अरिहंतजीका पांच प्रकारसें विनय बतलाया है उसी तरह गुरुजीकाभी विनय करना-और वंदनभी करना. बाद गुरुजी धर्मकथा करते होवे तो सभा मौजूद होती है तो सभा अंदरके श्रावक श्राविकाओंकों प्रणाम करना. (अगर सभामें बैठे हुवे श्रोताओंसें आनेवाला पुरुष विशेष गुणवंत हों तो धर्मवंत-धर्मज्ञ-धनवंत हो तो वे बैठे हुवे श्रोताएं उन्हकों अव्वलसेंही प्रणाम करें, और सामान्य हो तो आनेवाला प्रणाम करे ऐसी मर्यादा है. उसकी मतलब यही है कि चतुर्विध संघका विनय करनेका है, सो प्रथम विशेषका सामान्यवाला विनय करे और विशेष होवे वो पीछेसें करे) फिर गुरुजीके पाससें जानेका दिल करे तबभी गुरुजीकों वंदना करके जाना. अगर गुरुजी घरपर पावन कदम रक्खे तो उन्होंके सन्मुख जाना, गुरुजीकों स्वच्छ-योग्य आसन देना, गुरुजीकों देखतेही नम्रतायुक्त नमस्कार करना, गुरुजीकों जिस चीजकी दरकार हो वो चीज हाजिर करना, कीमती चीज हो या अल्प-थोडी कीमतवाली हो सो वोभी अर्पण करना. मार्गमें गुरुजी मिल जाय तोभी नमन करना. गुरुजीकी तेत्रीस आशातनाएं दूर करनी सो नीचे मुजबः—

१ गुरुमहाराजके आगे बैठना, २ गुरुकी आगे खडा रहना, ३ गुरुके आगे चलना, ४ गुरुजीके पीछे नजदीकमें बैठना—५ या खडा रहना—६ अगर चलना ७ गुरुजीके दोनु तर्फ नजदीकमें बैठना, ८ गुरुजीकी बराबरीसें चलना, ९ या बराबर चलना, (ये नौ आशातनाकी मतलब ऐसी है कि बैठते खडे रहेते अपनी छिंक उवासी अधोवायुका सरना या श्वासका स्पर्श होवे वास्ते जिस तरह बैठने खडे रहनेसें थूंक श्वासादिकका स्पर्श न हो सके उस तरहसें बैठना-खडा रहना दुरुस्त. बा अगाडी या बरोबर बैठनेमें गुरुजीकी वडाइ किस प्रकारसें समाली जावे? बा बराबरीसें या आगे बैठनेसेंभी आशातना होती है.) १० आपसें विशेष पुरुष साथ थंडिल जावे, और उन्होंसें पेस्तर आवे [तोभी आशातना है] ११ गु

साथ वहारसें आये हुवे शिष्य गुरुजीसें पहिले मार्गके दोष आलोवे (तो आशातना लगे.), १२ रात्रिने गुरुजी बुलावे कि कौन सोया है-कौन जागता है और आप जागता हो तदपि 'मै जागता हुं ऐसा न कहे [तो आशातना लगे.], १३ उपाश्रयमें श्रावक आवे उसकों गुरुजी या आपसें अधिक पुरुषने बुलाये पेस्तर आप बुलावे (तो गुरु हो तो गुरुकी और अधिक हो तो अधिककी आशातना लगे.), १४ आहार ल्याकर आपसें अधिक याने बडे हो उन साधुजीकों आहार बतलायें बिगर दूसरे साधुओंको बतलावे, १५ आहारादिककी निमंत्रणा गुरुजीकों न करतें दूसरोंकों पेस्तरसें करे, १६ गुरुजीकों बूझे बिगर दूसरें साधुओंकों आहारकी निमंत्रणा करे, १७ गुरुजीकों बूझे बिदून दूसरोंको आहार देवे १८ सरस और स्वादिष्ट आहार आप वापरे और गुरुजीकों न देवे, १९ गुरुजीके वचन सुन लिये परभी गुरुजीकों जवाब न देवे, २० गुरुजीके जैसे वडिलने बुलाये परभी कठोर वचनसें जवाब देवे. या कुछभी अवज्ञा होवें वैसा जवाब देवे, २१ गुरुजीने बुलाया तोभी अपने आसनपर बैठ रहकेही जवाब देवें; परंतु तुरत पास न आवे, २२ गुरुजीने बूझा तोभी आसनपर बैठेही क्या आज्ञा है ऐसा कहे, २३ गुरुजीकों या वडिलकों टूंकारेसें बुलावें, २४ गुरुजी कहवे उसी मुजब अविनय बोलकर जवाब देवे, २५ गुरुजी, साधु साध्वी ग्लान-रोगी उनकी सार संभाल लेनेका फुरमावे तब गुरुजीकों कहवे कि आपही सार संभाल कर लो (ऐसा बोलकर अवज्ञा करे.), २६ गुरुजी धर्मकथा कहवे वो शून्य चित्तसें सुनै, कदाचित् सुनै तो सुनकर गुरुजीका बहुमान न करे (अहा! गुरुजी! आप शास्त्रके परमार्थ क्या बतलाते हो!! धन्य है!!! ऐसा कहना चाहियें सो न कहे.), २७ गुरुजी या रत्नाधिक धर्म उपदेश कहवे तब बोले कि ये अर्थ आप बराबर नहीं करते हो आपकों यथार्थ अर्थ करते नहीं आता है ऐसा कहे, २८ गुरुजी कथा फरमाते हो उस कथाका भंग करके आप दूसरोंको (सुननेवालोंके आगे) कथा कहवे और समझावे, २९ गुरुजी कथा करते होवे, गुरुजीकों और सभाकों कथासें आनंद हो रहा हो और चित्त लीन बन गया हो ऐसा जान लिये परभी शिष्य कहवे कि-महाराजजी! गोचरीका औसर हो गया है वास्ते कथा मोकूफ करो, पीछे गोचरी न मिलेगी. [इसतरह बोलनेसें चढती धारा हो वो टूट जाय, और व्याख्याका भंग होवे, इससें आशातना लगती है.] ३०

गुरुजीने जो जो अर्थ कर बतलाया हो वही अर्थ व्याख्यान मोकूफ कर लिये बाद शिष्य सभाकों विस्तारपूर्वक अपनी हुंशियारी दिखलानेके लिये व्याख्यान करै, ३१ गुरुजीके संथारेकों, या गुरुजीके पाँवकों पाँवका स्पर्श हो जाय तो तुरंत क्षमा न मांगै याने न खमावे, ३२ गुरुजीके संथारे या आसन पर खडा रहवै, या बैठै या सो रहवै, ३३ गुरुजीसें ऊंचे आसनपर बैठै या बराबर-समान आसनसें बैठै-इसतरह गुरुजीकी ३३ आशातनाएं हैं सो न करनी. और कोइ करता हो तो उसकों दूर करवानेका उद्यम करना. ये आशातनायें आपमें जबतक अहंकारदशा होयगी तब तकही होवैगी, और अहंकार दूर हो गया होगा तो सहजहीसें आशातना दूर हो जायगी; वास्ते मुख्यपनेसें मै गुरुजीसें बहुत ज्ञानी हुं, ऐसा अहमेव हो तो दूर करना; कारण कि यदि गुरुजीसें आपमें विशेष ज्ञान होवै तोभी वो गुरुजीकी कृपासेंही हुवा है, तो जिन्होंकी कृपामें हुवा उन्होंकी वडाइ रखनेका खियाल दिलमें न आवै तो तबतक ज्ञान पढा हो तोभी फरसज्ञान नहीं हुवा. जब फरसज्ञान हुवा होवै तो उपकारीका उपकार न भूलै, वास्ते कदापि उपकार भूल गया हो तो याद कर आत्माकी भूल सुधार लैनी, और गुरुजीकी वडाइ चित्तमें लाकर विनय करके आशातना दूर करनी, यही आत्माकों हितकारी है. फिर गुरुका द्वादशावर्त्त वंदन करनेमें बत्तीस दोष लगते हैं-छपे हुए प्रवचनसारोद्धारजीके पत्र २९ में लिखा है कि-निम्न लिखित दोष दूर करकें वंदन करनाः—

१ अणाढादोष उसें कहते हैं कि-आदरके सिवा गुरुवंदन करना याने आपकों वंदन करनेका हर्ष नहीं है; मगर कुल मर्यादसें करनेकी रीति है उस लिये करै, नहीं कि वदन करनेसें महा निर्जरा होवेगी, मुझकों एसे महान् पुरुषकों वंदन करनेका मोका हाथ लगा हैं ऐसा भाव ला करकें वंदन करता है. और जबतक ऐसा भाव न आवै तबतक गुरुजीका आदर न हुवा; वास्ते महान् हर्ष और आदर सहित वंदन करना कि अणाढादोष दूर हो जावै.

२ स्तब्धदोष उसें कहते है कि-द्रव्यस्तब्ध याने गुरुजीकों वंदन करनेका भाव है; परंतु शूलादिक रोगकी पीडासें चित्त अस्वस्थ हो जानेके लिये चित्त प्रफुल्लित न होवै. भावस्तब्ध याने द्रव्यसें क्रिया करै; मगर अंतरंगका उपयोग वंदनमें बिलकुल न होवै; वास्ते ये दोनु द्रव्य और भाव स्तब्धताकों दूर करकें गुरुवंदन करना.

३ प्रवीधदोष उसे कहते है कि:-जैसें किरांया देकर कोइभी मनुष्यकों कामपर लगाये परभी फक्त मजदूरीके पैसे तर्फही निगाह रखकर काम करे और ज्यौं त्यौं काम करकें चला जाय, वैसें वंदन करते व्यवस्था रहित वंदन पूर्ण किये विगर चला जावै.

४ सपिंडदोष उसें कहतें है कि:-आचार्यजी, उपाध्यायजी और समस्त साधुजीओंकों इकठ्ठा वंदन करे.

५ टोलकदोष उसें कहते हैं कि:-जैसें टीडी जानवर इधरसें उधर घूमते फिरे मगर एक जगह कायम न हो रहवे, वैसें वंदनके वक्त आघा पीछा फिरे करै.

६ अंकुशदोष उसें कहते है कि-जैसें महावत हस्तीकों अंकुशसें करकें अपनी मेरजी मुजब फिराता है, वैसें गुरुजीकों फिरावे याने आचार्यजी खडे रहे हो या बैठे हो या कोइ कार्यमें हो; तोभी गुरुजीका कपडा पकडकर आसनपर बैठाकि वंदन करै.

७ कच्छपदोष उसें कहते है कि-वंदन करनेके समय कछुवेकी तरह आगे पीछे नजर फिराता हुवा वंदन करै याने गुरुमहाराजजी तर्फ दृष्टि न रखते चारों ओर नजर फिरावै.

८ मच्छदोष उसे कहते है कि-मच्छ जैसें स्थिर न रहै वैसें शरीरकी अस्थिरतासें-विचित्रप्रकारकी चेष्टासहित वंदना करै.

९ मनप्रदुष्टदोष उसें कहते है कि-आपके या दूसरेके वास्ते गुरुजी मारफत कार्य सिद्ध न होनेसें मनमें द्वेष होनेपरभी वंदना करै.

१० वेदिकावंधदोष उसें कहते है कि-दोनु हाथ गोठनके उपर रखकर या दोनु हाथोंके वीच दो या एक गोठन रखकर वंदन करै-गोदमें हाथ रखकर-दोनु हाथ गोदमें रखकर वंदन करै-इसतरह पांच प्रकार वेदिका दोष है.

११ भयदोष उसे कहते है कि-वांदणे देनेके वक्त भय रक्खै कि नहीं वांदुगा तो गुरुजीकों द्वेष होयगा और मुझकों निकाल देवेंगे-ऐसे भय-डरके मारे वंदना करै.

१२ भजंतदोष उसें कहते हैं कि-दूसरे साधु आचार्यजीकों भजते हैं और मैं न आउंगा तो अच्छा न लगेंगा ऐसे विचारसें भजे

१३ मित्रदोष उसे कहते हैं कि–गुरुको वंदना करुंगा तो गुरुके साथ मित्रता होयगी ऐसे शोचके वंदना करे.

१४ गारवदोष उसें कहते हैं कि–गुरुको समाचारी जानकर या जाननेसें लोग पंडित कहवेंगे और विनीत जानेंगे ऐसे हेतुसें वंदे.

१५ कारणदोष उसें कहते हैं कि–गुरुमहाराजकों वंदन करुंगा तो गुरुजीके पाससें कंबली वस्त्र वगैरः इच्छित वस्तु मिलेगी.

१६ स्तैन्यदोष उसें कहते हैं कि–गुरुजीकों चुपकीदीसें वंदना करे–जाहिरमें न वंदना करे; सबब कि सबके देखते वंदना करुंगा तो में उन्होंसें छोटा कहा जाउंगा और गुरुकी बडाइ होगी ऐसा शोचके चोरकी मुवाफिक वांदे.

१७ प्रत्यनीक दोष उसें कहते हैं कि–गुरुजी आहारपानी करते होवें उस वक्त वंदन करे.

१८ हुष्टदोष उसें कहते हैं कि–कषायसें पूर्ण हुवा गुरुकों वंदना करे, और गुरुकों कषाय पैदा करावे.

१९ तर्जितदोष उसें कहते हैं कि–गुरुजी तो कोप या प्रसादभी नहीं करते हैं. काष्टकी पूतली जैसे हैं. या अंगूलीसें करके शिरपर या अंगूली–शिरसे तर्जना करनी.

२० शठदोष उसें कहते हैं कि गुरुजीकों वंदना करुंगा तो गुरुजी अगर श्रावक मेरा विश्वास करेंगे, तो मेरा इच्छित कार्य सिद्ध होगा.

२१ हीलनादोष उसें कहते हैं कि:–गुरुजीकों कहवे कि–हे आर्य ! हे ज्येष्ठ ! हे वाचक ! मैं तुझकों प्रणाम करता हुं. इसतरह हीलना करता हुवा वंदना करे.

२२ कुंचितदोष उसें कहते हैं कि:–वंदना करतें करतें बीचमें विकथा करे.

२३ अंतरितदोष उसें कहते हैं कि:–साधु प्रमुखकों अंतरेसें रहकर या अंधेरेमें रहकरकें वंदना करे कि जिस्में कोइ देखे नहीं.

२४ व्यंग दोष उसें कहते हैं कि–गुरुका सन्मुखपना छोडकर वाम दक्षिण बाजुपर वंदना करे.

२५ कर दोष उसे कहते हैं कि–जैसे राजाका कर देनेका हो वैसें मनमें विचार करे कि भगवानजीने कहा है उससें वंदने पडेंगे. वो वेठ है सो उतार देनी ऐसा धारण करके वंदे.

२६ मोचन दोष उसें कहते हैं कि- संसारके करसें मुक्त हुवे, मगर अरिहंत-जीके करसे मुक्त नहीं हुवे उससें वंदन करना पडेगा अैसा शोच कर वंदे

२७ अश्लिष्ट अनाश्लिष्ट दोष उसें कहतें हैं कि-वंदना करते रजो हरणकों हाथसें स्पर्शे; परंतु हाथ माथेकों न स्पर्शे, मस्तककों स्पर्शे, परंतु रजोहरणकों न स्पर्शे रजो-हरणकों हाथ न लगावे और मस्तककोंभी न लगावे.

२८ न्यूनदोष उसें करते हैं कि-वंदनाके कमती अक्षर बोले या बहुत झडपसें वंदन कर लेवे, उससें अवनमनादिक कम करै या न करै, प्रमादसें करकें ज्यों त्यों करै उसमें न्यून होवे वो न्यून दोष हैं.

२९ चूलिका दोष उसें कहते हैं कि-वंदन किये बाद बडे शब्दसें करकें ' मत्थ एण वंदामि" कहवे.

३० मूकदोष उसें कहते हैं कि-मूंगेकी तरह मुँहसें शब्द बोले बिगरहीं वंदन करै.

३१ ढढ्ढर दोष उसें कहते हैं कि-बडे स्वरसें वंदनका सूत्र उच्चार करै.

३२ चूडलिका दोष उसें कहते हैं कि-रजोहरण पकडकर आढाओंना-इधर-उधर फिराता हुवा वंदे.

इसतरह बत्तीस दोष वंदनाके दूर करकें गुरुजीकों वंदन करना-सो विनय है. गुरुजीकी आशातना करकें विनय करना सो योग्य नहीं; वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं गुरुजीकी आशातना न करनी. गुरूजीकी निंदा-हीलना करनेसें, गुरुजीका नाम छुपानेसें, गुरूजीकों पीडा-दिल दुभावे वैसा करनेसें ज्ञानावरणी कर्म बांधता है, ऐसा पहिले कर्म ग्रंथमें कहा है. उस लिये ज्यौं गुरूजीकी आशातना न होवे त्यौं करना, और जितनी मन वचन कायासें करकें भक्ति हो सके उतनी करनी कि-जिससें ज्ञानावरणी कर्मकी निर्जरा होवे.

धर्मका विनय सो-ज्ञान-दर्शन-और चारित्ररूप धर्म अंगीकार करना उसमें जितना जितना धर्म अंगीकार करनेमें आवे उतना उतना विनय होवे. ज्ञान अंगी-कार करना सो आत्माका ज्ञानगुण है वो गुण प्रकट करना, या प्रकट करनेके कारण सेवन करना. ज्ञान याने जानना, वास्ते जो जो वर्त्तना होवे वो जान लेनी; परंतु उसपें रागद्वेष न करना-ऐसी ज्ञानदशा बनानेसें संपूर्ण केवलज्ञान प्रकट होता है.

ऐसी दशा न हुइ वहांतक ऐसी दशा प्रकट होवै वैसे गुरूजीके पास ज्ञान पढना, सुनना, निर्णय करना. शक्ति हो तो आपही पढै, आपकों जितना ज्ञान हुवा होवै उतना दूसरोंकों पढाना येभी ज्ञानका विनय है. फिर पुस्तक लिखवाना, ज्ञानवानोंका और पुस्तकका विनय करना. वंदन नमनादिक करना, पुस्तककी संभाल रखनी, ज्ञानवृद्धि होनेके काममें द्रव्यकी शक्तिके अनुसार खर्च करना; शरीरकी शक्तिसें ज्ञानवृद्धि होवै वैसी मिहनत करनी, दूसरोंकों ज्ञानके विनयमें सामिल कर देना, ये तमाम ज्ञानका विनय है. इसी तरह दर्शनका विनय करना सो सम्यक्त्व अंगीकार करना, शुद्ध श्रद्धा रखनी, वीतरागके वचनमें शंका न करनी, ऐसे श्रद्धावंत पुरूषका याने साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाओंका विनय उचित विनय करना कि जिससें उत्तम पुरूषकी कृपा होवै और कृपा होनेसें अपनी श्रद्धामें कसर हो सो मिट जाय और शुद्ध होवै-इसका विस्तार गुरुविनयमें लिखा है उस मुजब करना.

चारित्रका विनय सो-मुख्यतासें आत्माका चारित्रगुण है, जो आत्माकों आत्मस्वभावमें स्थिर होना, जो विभावमें अनादिकालका आत्मा स्थिर हुवा होवै वहांसें पलटा करके अपने गुणमें स्थिर होना. जितना जितना परभावका प्रवर्त्तन रूकैगा उतना उतना चारित्रगुण प्रकट होवैगा-यही चारित्रका विनय है., अब ऐसे गुण प्रकट नहीं हुवे वो प्रकट करनेके लिये पंचमहाव्रतरूप चारित्र अंगीकार करना. और वो न वन सके तो श्रावककों बारह व्रतरूप देशविरति चारित्र अंगीकार करना. ये अंगीकार करनेसें अंतरंग चारित्र प्रकटैगा फिर उतनी दशा ल्यानके वास्ते ऐसे सर्व चारित्रवंत या देशचारित्रवंतका विनय करना. उसकी संगति करनी कि उत्तम पुरूषके संगसें उत्तमता आवै; वास्ते चारित्रवंत पुरूषका विनय शास्त्रमें विस्तारसें कहा है उस मुजब करना-वो चारित्रका विनय है. इसी तरह तप धर्मकाभी विनय करना-याने तप अंगीकार करना और तपस्वीका विनय करना सो विनयनामक अभ्यंतर तप कहा जाता है.

वैयावच्च तप सो-जो अरिहंतजी-सिद्धजी-आचार्यजी-उपाध्यायजी-तपस्वीजी-साधुजी-कुल-गण-संघ-नवदीक्षित और रोगीसाधु इत्यादि गुणवंतपुरुषोंका वैयावच्च करना. आहार-पानी-वस्त्र-पात्र-मकान-संथारा वगैरः पाट पटले आदि धर्मोपकरण वस्तु उत्तमपुरुषकों हितकारी जो जो वस्तु चाहियें वो देनी चाहियें,

वो दूसरेके पाससें दिलवानी चाहियें, अगर आप खुदकों ऐसे उत्तमजनोंकी पाँवचंपी वगैरः चाकरी करनी चाहियें. या ऐसे पुरुषोंकी स्थापना-मूर्ति हो उनकी भक्ति-नमन-विलेपनादिकसें करनी योग्य है और वो वैयावच्च है. उपर कहेहुवे पुरुष उपकारी हैं. वे उपकारीओंने आत्माकों कर्मसें मुक्त होनेका उपाय बतलाया है. फिर उन्होंकी ज्यौं ज्यौं सेवाभक्ति करेंगे त्यौं त्यौं अपनेमें योग्यता आवेगी, और त्यौं त्यौं गुरुजी विशेष उपाय बतावेंगे उससें विशेष बोध होवेगा. और गुन प्रकट होनेमें सहायकारी होवेंगे. ये उपकार करनेहारे पुरुषोंकी जितनी वैयावच्च करै उतना आत्मा सफल होता है; क्यौं कि उपकारीका उपकार भूलना सोही मिथ्यात्व है. और मिथ्यात्व गये विगर आत्माका कार्य होनेकाही नही; वास्ते जितनी जितनी वैयावच्च करेंगे उतना उतना मिथ्यात्व दूर हटेगा और समकित शुद्ध होवेगा. सम्यक्त्व शुद्ध हुवा कि आत्मगुण प्रकट हो चुका. इसी लिये वैयावच्चरूप लाभ होनेका अंतराय न टूटा है वहांतक वैयावच्च करनेका दिल न होवेगा, और मन हो आयगा तोभी अंतरायके योगसें ऐसे पुरुषोंका योग न बन सकेगा. योग बनेगा तो आलस वगैरः बीचमें विघ्न आवेंगे और वैयावच्च न बन सकेगा. परंतु उद्यम करतें करतेंही अंतराय टूटेगा; वास्ते शक्ति समय मुजब वैयावच्च करनेमें वीर्य स्फुरायमान करना-वही कल्याणकारी है.

सज्झायतप सो-सज्झाय ध्यान करना, वो पांच प्रकारसें है. वाचना याने गुरुजीशास्त्र वाचना देवै उससें गुरुजीकों वाचना देनेरूप वाचनातप होवै और शिष्यकों वाचना लेनेसें वाचनातप होवै. पृच्छना याने आप पढे होवै उनमें शंका पडै तो गुरुजीकों पूँछकर उसका यथार्थ निर्णय करना. [किसी मनुष्यकों खष्ट करनेके लिये न पूँछना-और पूँछे तो वो पृच्छनातप नहीं कहा जाता है.] परावर्त्तना याने पढाहुवा हो उनकों पुनः पुनः याद करना कि जिस्सें भूल जानेका डर न रहवे-और भूलभी न पडे; वास्ते जो पढ लिया हो वो हमेशा याद करना हररोज याद करनेका वक्त न मिलै तो एक दिनांतरमें याद करना नया पढना जारी रहवे और पुराना विस्मृत होनाभी जारी रहवै तो जानबुझकर ज्ञानके आवरण लगनेका वक्त हाथ लगें; वास्ते ज्यौं पढाहुवा विस्मृत न होवै त्यौं करना चाहियें. अनुपेक्षा याने पढी या सुनी हुइ वस्तुके तत्त्वबोधका विचार करना, और वस्तुके परमार्थका अनुभवगम्य

निर्णय करना. इसमें विशेष अनुमानशक्ति होवै तो हो सकै. जिसने भगवंतजीके व-चनोंका अनुभवगम्य निर्णय किया है उसकों फिर शंका नहीं रहती. और दुर्बुद्धिवाले उसका मन नहीं फिरा सकते. सज्झाय-ध्यान याने जिसकों सम्यक्त्व प्राप्त हुवा हो वही पुरुष सज्झायध्यान कर सकै और वही करनेकी जरूरते है. अनुपेक्षा ज्ञानवा-लेकों आत्मा अरूपी है तोभी वो साक्षात आत्मा देखता हो वैसा निर्द्धार हो जाता है. हरएक पुस्तक बांचकर विचार करना वही अनुपेक्षा है और यों किये विदून वांचे हुवे और पढे हुवेका बराबर फल नहीं मिल सकता है; परंतु जब ज्ञानावरणी कर्मका क्षयोपशम होवै तब बन सकै. बहुतभी पढे हुवे, क्रिया करते हुवे नजर आते हैं; मगर यह क्या कहा? मेरे किस लिये करना? वो नहीं जानते है, और यह क्रिया किस वास्ते की वोभी नही जानते हैं. उसका सबब कि निर्णय करनेकी बुद्धि जाग्रत न हुइ; लेकिन वो बुद्धि जाग्रत करनेकी आवश्यक्ता है. दुनियांमें कहनावत चलती है कि-"पढे, मगर गुने नहीं." वास्ते वैसा न होना चाहियें हरएक बाबतका नि-र्णय करनेकी बुद्धि रखनी. ऐसी बुद्धि जाग्रत हुइ हो तो उससें हरएक वस्तु अनु-भवगम्य होती है. [उसें अनुपेक्षा कही जाती हैं.] ऐसे अनुभववाले पुरुष धर्मोपदेश करते हैं वो धर्मकथा कही जावै. धर्मकथा करनेंसें परजीव संसारकी उपाधिसें मुक्त होवै, विषयकषाय शान्त होवै, तत्त्वज्ञान होवै, अपना आत्मतत्त्व प्रकट करनेका कामी होवै, या प्रकट करै. वैसा उपदेश देना, या वार्त्ता कहनी अगर सुननी, उसीका नाम धर्मकथा है. जो कथावार्त्ता कहनेसें विषयकी वृद्धि होवै, तथा तृष्णाकी, मोहकी, हिंसा-झूठ-चौरी वगैरःकी वृद्धि होवै उसका नाम धर्मकथा नहीं; मगर पापकर्मकथा है.

"यह पांचों प्रकारके सज्झायध्यानका नाम तो ज्ञान है और इसका नाम तप क्यौं कहा?" ऐसी शंका हो आवै तो उसके परमार्थका तो प्रथम अभ्यंतरतपका व-र्णन किया है, वहां दर्शाव किया है उसमें लक्ष देनेसें समझमें आयगा. तोभी सहजसें इस जगहभी दर्शाता हुं कि-तप इसका नाम है कि-कर्मकों क्षय करें. तो बांचनां प्रमुख करनेसें महा अज्ञानरूप जो कर्म उनका नाश हो जाता है-नाश कर-नेकी सन्मुखता होती है. फिर अज्ञानपनेसें कर्म नहीं क्षय होते हैं. जब ज्ञानदशा हो तभी कर्मक्षय होते हैं. बाह्यतपके साथभी ज्ञान होवै तो कर्मक्षय होता है, तो ज्ञानमेंही वर्त्तन रहना तो उसमें कर्मक्षय होवै इसमें नवाइ जैसा नहीं है! वास्ते ज्यौं बन सकै

त्यों सज्झायध्यानमेंही समय निकालना-इससेंही तमाम वस्तुकी प्राप्ति होवेगी.

अब ध्यान नामक तप-सो ध्यान किसकों कहा जावे? जिसमें मन, वचन, कायाकी एकाग्रता होवै उसें ध्यान कहा जाता है. उसमें धन, कुटुंब, व्यापारादि पुद्गलीक पदार्थमें एकाग्रता होवै उसे अशुभध्यान कहा जाता है और त्याग करने योग्य है; लेकिन वो तो सदाकाल जीवकों हो रहा है. वो ध्यान छोडकर आत्मतत्त्वके अंदर एकाग्रता करकें उसमें लीनतासें वर्त्तना वो ध्यान तपमें गवेषन किया है. वो ध्यान बहुतसे प्रकारका है. उसमें मुख्य धर्मध्यान और शुक्लध्यान कहे हैं. और जो जो ध्यान ध्याना वो अभ्यंतर तप है इसका स्वरूप प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें विस्तारसें है सो वहांसें देख लेना. यहां पर तो सामान्यतासें कहा गया है.

प्रथम धर्मध्यानके चार पाद हैं याने आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय. उसमें आज्ञाविचय सो-परमात्माकी आज्ञाका विचारना, जैसी जैसी आज्ञा है वैसा वर्त्तनेकी भावना करनी. अपायविचय याने आत्माका जो स्वरूप है सो स्वरूप नहीं वर्त्तता, उसका सबब कि मिथ्यात्वादिकके त्याग करनेमें एकाग्रता करनी. विपाकविचय सो कर्मका स्वरूप विचारना-कर्मसें मुक्त होनेका शोचना. संस्थानविचय सो चौदराजलोकका स्वरूप शोचना.

शुक्लध्यानकेभी चार पाद हैं याने पृथक्त्ववितर्क सप्रविचार, एकत्ववितर्क अप्रविचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती, और उच्छिन्नक्रियानिवृत्ति ये ४, शुक्लध्यानके पादमेंसे पहिलेके दो पाद केवलज्ञान प्राप्त होनेके पेस्तर प्रकट होते हैं और दूसरे पिछले दो पाद केवलज्ञान पाये पीछे सिद्धि जानेके करीब वक्तमें प्राप्त होते हैं. पहिले पादमें भेदज्ञान होता है, दूसरेमें अभेदज्ञान होता है, तीसरेमें बादरयोग रूका जाता है और चौथेमें सूक्ष्मयोग रूद्ध होता है. इसतरह वर्त्तना होती है.

वर्त्तमान समयमें शुक्लध्यान तो हो सकै ऐसा नहीं है; कारण कि पूर्वका ज्ञान हो उसें होता है. परंतु इस समयमें धर्मध्यान बन सकता है. फिर समाधि प्रमुख है उससें बाह्यके बहुतसें कारण रूके जाते हैं, और विषयसें विमुख हुवे विगर समाधि नहीं बनती है. इस कामका अभ्यास करनेके समयसेंही खट्टे, खारे, तीखे, विषयरूप स्वाद बंध करने चाहियें. स्त्रियोंके विषयकाभी त्याग करना चाहियें. तथा बाह्यके गप्पै आदि निकम्मी बातें करनेकाभी त्याग करना चाहियें. ये तमाम कारण

बंध करके और श्वासोश्वास रोक करके एक परमात्मपदमें लीन होनेसें उसीमेंही उपयोग रहता है वास्ते ये समाधि उत्तम है. फिर सहज समाधि होवे वो तो बहुतही उत्तम है; क्यों कि सहजसें दूसरे जडभावमें उपयोग नहीं रहता है और आत्मभाव स्थिर हो जाता है. ये समाधी तो धर्मध्यानके पेटमेंही है. पुनः कितनेक अक्षरोंका ध्यान करनेकी रीति है वोभी योगशास्त्रमें हेमचंद्राचार्यजीने बतलाइ है, उस परसें प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें दाखिल की है. इससें यहांपर फैलाव नहीं किया, दरकार हो उसमेंसें देख लेवे. परंतु मुक्तिका समीप साधन है वास्ते आत्मार्थिजनोंको ध्यानका लक्ष रखना बहुतही उत्तम है. जिस तरह पघडीके अंतमें किसबी पल्ला अच्छा लगता है विसी तरहसें धर्मसाधनमें ध्यान (उसी मुजब) अच्छा मालूम होता है। इसी वास्ते ध्यानका साधन करनेके लिये अभ्यास करनेकी अत्यावश्यकता है. परंतु ध्यानको अटकायत करनेहारे उपाधिके कारण हैं, वे कारण जब तक है तब तक सहजसें समाधी न हो सकैगी; क्यों कि एकांतमें विचार करनेमें वे कारण याद आवैगे कि जिस ध्यानमें स्थिर होना होवैगा उसीमें न हुआ जायगा; वास्ते ध्यान करनेकी इच्छावालोंको ज्यौं बन सके त्यौं बाह्यके कारणोंका त्याग करना चाहियें, और बहुत जनका परिचयभी त्याग कर एकांतमें मुख्यत्वतासें रहना चाहियें, तब ये ध्यान होना सुगम पडता है, और विशुद्धता हुवे पीछे तो एकांतकीभी दरकार नहीं रहती है. जिन पुरुषका चित्त जडभावसें दूर हो जाता है और अपने स्वभावमें स्थिर हो जाता है, वैसे पुरुष तो सदाकाल जगतका तमाशा देखते हैं. आत्माका ज्ञानगुण है सो जाननेका है. परंतु जबतक मिथ्यात्वभाव नहीं गया है वहांतक रागद्वेष सहित देखते हैं, और जो जो देखते हैं उसमें राग या द्वेष हुए विगर नहीं रहता; मगर मिथ्यात्वकी वासना हठ गइ है, जड, चेतन पदार्थका यथार्थ ज्ञान हुवा है और वस्तुधर्मका ज्ञान हुवा है उसके प्रभावसें जिस पदार्थका जो स्वभाव है वो जानते है कि पीछे रागद्वेष नहीं होता. ये दशा पाइ है उन्होंको तो एकांत और वस्ति सब समान है—उन्होंको ध्यानके लिये एकांत स्थलकी कुछ दरकार नहीं—ये ध्यान तपका स्वरूप कहा है.

कायुत्सर्ग नामक तप सो—कायाको वोसिराके एक स्थानमें रहना और जितनी देर की स्थिरता हो उतनी देर तक प्रभुजीका स्मरण करना.

इस प्रकारकें छः अभ्यंतर तप हैं. दोनु [बाह्य अभ्यंतर] तप मिलकर बारह प्रकारसें तप कहा है वो तपका लाभान्तराय मिटनेसें तपा चारकी प्राप्ति होती है, उस तपका अंतराय काहेसें होता है ? जब तप करनेसें कुछ शरीर बीमार होवें तब मनुष्यके मनमें आवे कि तप किया जिससें मुझकों पीडा हुइ, अब मैं तप नहीं करुंगा असा भाव आनेसें जीव तपका अंतराय कर्म बांधता है, तो फिर तप करनेका भाव नहीं होता है. लेकिन सच्चा कारण तो अशाता वेदनीकर्म जो पूर्वकालमें बांधा है वो उदय आता है तब शरीरकों बीमारी होती है. जिसने अशातावेदनीकर्म नहीं बांधा है वो तो अच्छी तरहसें तप करता है; परंतु उनकों रोग या पीडा नहीं होती. वास्ते तप किया और कभी बीमारी हुइ तो ज्ञानीपुरुष शोचे कि मैंनें कोइ जीवकों तप करनेमें अंतराय किया होगा कि उससें मुझकों तपस्यामें वेदनी कर्मका उदय आया, जिससें तपस्याकी वृद्धि न हो सकैगी. अब तो वेदनीकर्म क्षय करनेकों तैयार हुवा हुं; वास्ते वेदनीकर्म समभावसें भुक्तना कि फिर नया कर्म न बंधा जाय. अैसें समभावमें रहकरकें तपस्यामेंसें चित्तकों नहीं हठाते हैं. वैसें पुरुषकों तपका अंतराय टूटता है और तपाचारका लाभ होता है. और जो अैसा शोचता है कि तप करनेसें बीमारी हुइ तो वो कठीन कर्म बांधता है. साक्षिके लिये छपी हुइ अर्थदीपिकाके पत्र ७२ में रज्जा साध्वीकी कथा है किः—

भद्राचार्यके गच्छमें पांचसो साधुजी और बारहसो साध्वीजीएं हैं. उनके गच्छमें-कांजीका पानी, चावलका ओसामन और तीन उबालेका पानी ये तीन प्रकारके पानी सिवा और कोइ प्रकारका पानी नहीं वापरते हैं. कर्मयोगसें रज्जासाध्वीके शरीरमें गलित कुष्ट हुवा उस वक्त दूसरी साध्वीजीयोंने कहा कि—'दुकर! दुकर!" अैसा सुनकरकें रज्जासाध्वीने कहा—" ये क्या मुझकों कहते हो ? इस प्रासुक जलसेंही मेरा वदन बिगडा है." अैसा वचन सुनकर दूसरी साध्वीओंके मनमें आया कि—"सायद हमकोंभी प्रासुक जलसें गलित कुष्ट न हो आवै !" अैसा भाव मालूम हुवा. परंतु एक साध्वीके मनमें आया कि-" कभी मेरा शरीर अभी या पीछे सडकर टुकडे हो जाय तोभी मैं उष्ण जलही पीउंगी. उष्णजल पीनेसें शरीरका नाश नहीं होता; परंतु पुर्वकृत अशुभ कर्मोदयसेंही शरीरका नाश होता है—या रोग होता है." अैसा शोच करकें खेद करते लगे कि—" मुझकों धिक्कार हो ! इस पापिणीने न बोलने योग्य वचन कहा जिससे

आपने पाप बंध बांधा और औरोंको कर्मबंधनकी कारणीक बनवाइ. ऐसा भावनें शुद्ध अध्यवसायकी गाथा चिंतवन करते घातीकर्म नाश करकें केवलज्ञान प्राप्त किया. और केवलज्ञानके प्रभावसें समस्त साध्वीयोंका संदेह दूर हो गया. पीछे रज्जा आर्याका संदेह पूँछा कि इसकों किस सबबसें कुष्ट रोग हुवा ?" केवली साध्वीजीने कहा कि "इस बाइनें मकडीके सहित स्निग्ध भोजन किया उसके प्रतापसें रक्तपित रोग हुवा. फिर सचित्तजल ले करकें श्राविकाकी लडकीका मुँह प्रक्षालन किया उससें शासनदेवीने इस रज्जा साध्वीपर गुस्सा करकें शिखावन देनेके लिये आहारमें कुष्ट रोग हो आवे वेसा चूर्ण डाल दिया, उसके मारे कुष्ट पैदा हुवा; परंतु प्रासुक पानीसें नहीं हुवा है." ऐसा केवलज्ञानी साध्वीजीका कथन सुनकर रज्जासाध्वीने कहा–"हे भगवती ! मुझकों आलोयण दो कि मै शुद्ध होउं." केवलज्ञानी साध्वीजीनें कहा–"तुं शुद्ध हो सकै ऐसा कोइ प्रायश्चित नहीं है; क्यौं कि तूने क्रूर वचन कहे हैं उससें निकाचित कर्मका बंध हुवा है–उस कर्मके मारे कुष्ट, भगंदर, जलोदर, दमा, अतिसार, कंठमाला आदि महान् दुःख अनंत भव तक तुझकों भुक्तने पडेंगे." 'इस तरह कह कर दूसरी साध्वीजीयोंकों आलोयणा दी, उससें साध्वीजीएं शुद्ध हुइ. और रज्जा बहुत भवभ्रमण करैगी.' दिखिये ? जैसें पानीका दूषण निकालनेसें बुरे हाल हुवे और भवभ्रमण बढ गया वैसाही तपकों दूषण देनेसें होता है ये खूब समझ लैना, दुःख सुख सब कर्माधिन हैं और कर्माधिनता विचारनेसें एक साध्वी केवलज्ञान पाइ, एक साध्वीने कर्मविचार न किया और पानीका दूषण चितवन किया तो निकाचित अशुभकर्म उपार्जन किया; वास्ते ऊपर कही सो कथा याद रखकर तपकों दोष न देना. तप है सो तो कर्मक्षय करनेवाला है. उसकों अज्ञानतासें उलटे मार्गपर जोड देनेसें उलटा होता है; इस लिये वैसा जीवमें विकल्प संकल्प न करना. शरीरकी निर्बलतासें तप न हो सकै तो चितवन करना कि मेरा तप अंतरायकर्म कब टूटैगा कि मैं तप करुं. ऐसी भावनासें अंतराय कर्म टूटैगा, और तपाचारका लाभ होगा. इस तरह बारह प्रकारसें तपाचार है.

वीर्याचारका अंतराय टूटनेसें वीर्याचारका लाभ होवै, उससें दूसरे चारों आचारमें वीर्य स्फुरायमान होवै. और पीछे जो जो धर्मकरणी करै वो उत्साहपूर्वक और हर्षपुरःसर करै–वेंठरूप न करै. और जिसकों वीर्यके लाभका अंतराय होवै

उसकों वीर्यशक्ति हो तोभी धर्मकरणीमें वीर्य स्फुरायमान न कर सकै. धर्मकरणीके वक्त कहेगा कि–' मेरेमें ताकत नहीं.' और संसारीकाम करना हो उसमें तत्पर होवै. जैसें कि तमाशा देखना हो तो दो घंटे तक खडा रहकर तमाशा देखै, और प्रतिक्रमण खडे खडे करना हो तो वदमाश वहेलकी तरह ताकतदार होनेपरभी वैठकर प्रतिक्रमण करें, और कहवे कि मेरेमें शक्ति नहीं, शास्त्रमें तो वैठकरके प्रतिक्रमण करनेवालेकों आयंबिलका प्रायश्चित कहा है, वैसा जानबूझकर वैठे हुवेही प्रतिक्रमण करै. गुरुजी कहवे तोभी प्रमाद न छोडे. गुरुजीकों या प्रभुजीकों वंदन करनेका या खमासमण देनेका जैसे शास्त्रमें कहा है वैसे न देवै, और कभी देवै तो सत्तरह जगह पूंजनेका (आपके अंगमें) कहा है वैसें न पूंजे. पापध सामायकमें ध्यान करना चाहियें सो न करै प्रतिक्रमण भणाना हो तो कहेगा कि पूरा मेरेसें न भणाया जायगा, इसतरह प्रमाद करै. पुनः ज्ञानाभ्यास करना हो तो प्रमाद करकें न पढै–न वांचे या न किसीकों सुनावै या न आप सुनै. ये तमाम वीर्याचारके लाभांतरायका उदय है. इसतरह प्रमाद करनेसें या दूसरा धर्मका उद्यम करता होवै उसको रोकदेनेसेंभी अंतरायकर्म नया वंधा जाता है. उसी तरह मंदिरमें, धर्मशालमें, स्वामीवत्सलमें और विद्याशालामें कुछ काम करना हो तो उसमें प्रमाद करै, और सांसारिक कार्यमें कटिबद्ध रहवै–येभी अंतरायकेही फल हैं. और जिसकों अंतराय टूट गया है वो तो जो जो काममें आत्माका कल्याण होवै, आत्मगुण प्रकट हो सकै उसीमें वीर्य स्फुरायमान करै, और अति प्रसन्नतासें देवगुरुके हुक्म मुताबिक धर्मकरणी [यथार्थ] करै, वीर्यशक्ति न छुपावै. जो जो काम करने हैं उसमें मनकी वलिष्टताकी आवश्यक्ता है. तपस्या करनी ये दुष्कर है; क्यों कि तपस्यामें शरीर थोडा या वहुत नरम पडे विगर न रहैगा. मगर तपस्या करनेमें वीर्यशक्ति स्फुरायमान होती है तो उससें मन वलिष्ठ रहता है, उससें करकें कष्टपर लक्ष नहीं जाता और सुखसें तप होता है. वास्ते मनकी वलिष्टता होवे तो वो किये जाय. मन निर्वल हो तो शरीर वलवान होनेपरभी वो मनुष्य तपस्या न कर सकैगा. परंतु ये तमाम कब होना है कि वीर्याचारका लाभांतराय टूट गया होवे तभी धर्मकार्यमें वीर्य स्फुरायमान कर सकता है; क्यों कि धर्मकार्यके लाभका अंतराय टूटे विगर धर्मकार्यमें वीर्य स्फुराया नहीं जाता. लाभांतराय सद्गुरुजीकी संगतिसें टूटना है; वास्ते प्रथम तो उत्तमजनोंकी

संगत करनी उसमें वीर्योल्लास लयाना चाहियें. वो पहिले तो घुणाक्षर न्यायसें होगा याने किसी जगह किसी वक्त लकडेमें जानवरके जरियेसें अक्षर पड जाते हैं वो स्वाभाविकतासे पड जाते है–घुणा नामक लकडेमें एक जातका कीडा होता है उसके योगसें अक्षर जैसा आकार पडता है, वैसें स्वाभाविकतासें वैसे पुरुषका भवितव्यताके योगसें संयोग-मिलाप होता है और कुछभी सबबसें जानाआना होनेसें प्रीतिभाव [बाह्यसें] होता है, फिर उनकी अमृत जैसी वानी सुनतेही जो मिथ्यात्वमार्ग दं दवे तो विशेष प्रीतिभाव पैदा होता है; और ऐसी प्रीतिसें शिथिल अंतराय हो तो दूर हो जाता है. और संसारमें वीर्य स्फुराता हो तो वहांसें परावर्त्तमान हो जाकर धर्ममें वीर्य स्फुराया जाता है त्यौं त्यौं अभ्याससें कर्म छूट-टूट जाता है. इस प्रकार वीर्याचारकी वृद्धि होती है–उस मुजब स्वरूप कहा. ये पांच आचारमें जिस जिस आचारका लाभांतराय टूटा होवे उस आचारके लाभकी प्राप्ति होती है. संपूर्ण आचारकी प्राप्ति तो जब क्षायकभावयुक्त सब प्रकारसें अंतराय टूट जाय तब होती है और केवलज्ञान होता है. उसके पहिले क्षयोपशम भावसें क्रमसें करकें बारह गुणस्थानककी प्राप्ति होती है, और उसमें क्रमसें करकें आचारकी वृद्धि होती है.

दान और शील इन दोनुका स्वरुप कहा. तपका स्वरुपभी तपाचार में बहुत विवेचनके साथ बतलाया, अब भावका स्वरूप कहता हुं. भाव पांच प्रकारके हैं–याने उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायकभाव, परिणामिकभाव और उदायकभाव–ये पांच प्रकारके हैं उसके ५३ भेद हैं–वो प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें पत्र १३३ में कहे हैं. वहांसें देख लिजीयें. अगर तो भावप्रकरण नामक ग्रंथ है उसमें गुणस्थानकके अंदर विवेचन किया है वहांसें पढ लीजीयें. यहां तो नाममात्र कर्मग्रंथके आधारसें और अनुयोगद्वारजीमेंभी इसका विस्तार है उन सभीपर लक्ष रखकर लिखता हुं:—

पहिले उपशम भावसें मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायके दल उदय आये हुवे क्षय करे, उदय न आये हो तो उन कर्मके दल उदीरणा करके उदय लयाकर क्षय करें, उदीरणासेंभी उदय न आवे वैसें कर्मका अध्यवसायकी विशुद्धिसें उदय न आ सके वैसे कर रक्खे. अब पेस्तरके तीन भावमें कर्मके दल उदय आये क्षय करना, उदीरणा कर उदय लयाकर क्षय करना, विशुद्धिसें उदय न आ सके वैसे कर डालना, और उपशमाना, ये सब बावनोंका होना कृत्रिम नहीं; परंतु स्वाभाविक आत्मा-

की विशुद्धतासें हो जाता है. परमात्माजीके बनाये हुवे तो तत्त्वकी श्रद्धा हुइ और जडभावपरसें मोह ज्यौं ज्यौं उतरता है त्यौं त्यौं आत्म स्वरूपका ज्ञान होता है, और वो ज्ञानके प्रभावसें आत्माके सुखका आस्वादन होता है और वो सुखका आस्वादन होनेसें धन-कुटुंब-स्त्री-शरीरपरसें मेरेपनेका ममत्वभाव हठ जाता है. शत्रु मित्रपर समदृष्टि हो जाता है, विषयसें उदारा (?) है. ऐसी विशुद्धि होनेसें मिथ्यात्व अनुतानुबंधीका उपशम होता है उससें अंतरंग शुद्ध होता है. आत्म विचारके सिवा दूसरी चीजपर राग नहीं होता आत्मामें रमण करने सिवा दूसरा सुख मनकों नहीं रुचता है, मन बहुत निर्मल हो जाता है. वो उपशमभावके समकितका काल अंतर मुहूर्त्तका है. उपशमभावकाभी चारित्र होता है-वो आठवेंसें ग्यारहवें गुणस्थानकमें होता है, उसकाभी काल अंतर्मुहूर्त्तका है. फिर उपशम चारित्र रहेता नहीं, उतनी वेर वीतरागदशा पाता है-राग द्वेष मंदित होता है. ऐसे जो स्वभाविक विशुद्धभाव सो उपशमभाव, वोभी शुद्धभाव भावचक्रमें पांच वेरं होता है. ऐसे भावकी प्राप्ति लाभान्तरायकर्मके क्षयोपशमसें होती है.

दूसरा क्षयोपशमभाव-वोभी जो जो कर्म उदय आये हैं वो क्षयकरता है और उदय न आये हो तोभी उदय आने जैसे हो उसकों उदीरणा करकें उदय ल्यांकर क्षय करता है. जो उदीरणासेंभी उदय न आ सके वैसे है तो उसकों उपशमाता है-उसका नाम क्षयोपशमभाव है. ये क्षयोपशमभाव चार कर्म (ज्ञानवरणी, दर्शनावरणी, मोहनी और अंतराय ये चार) का क्षयोपशम होनेसें आत्माकी विशुद्धि होती है. जैसें बादलसें सूर्य छा गया-आच्छादित हो गया हो वो ज्यौं ज्यौं बादल दूर हठते है त्यौं त्यों प्रकाश प्रकाशमें आये जाता है, वैसें ज्ञानावरणीकर्मके आवरण ज्यौं ज्यौं हठते जाते हैं त्यौं त्यौं ज्ञानका प्रकाश विशेष उपयोगरूप होता जाता है. और दर्शनावरणी कर्मके आवरण हठनेसें सामान्य उपयोगरूप दर्शनका उपयोग निर्मल होता है. मोहनीकर्मकी दो प्रकृति है याने दर्शनमोहनी और चारित्रमोहनी. उसमें जब दर्शनमोहनीका क्षयोपशम होवे तब समकित-शुद्ध यथार्थ श्रद्धा होती है, और उसका आवरण लगनेसे विपरीत श्रद्धा होती है, वो आवरण ज्यौं ज्यौं हठ जाते हैं त्यौं त्यौं शुद्ध श्रद्धा होती है. वस्तुका निर्णयभी यथार्थ होता है. फिर चारित्रमोहनीका क्षयोपशम होनेसें इच्छायें रूकती जाती हैं, कषायकी परिणति शांत होती है, विरति

मुमुक्षके भाव जाग्रत होते हैं, जो जो वस्तु त्यागता है उस परसें इच्छा हठ जाती है, अंश अंशसें आत्मभावमें स्थिरता होती है और अंतमें पांचवे गुणस्थानसें लगाकर दशमे गुणस्थान तक क्षयोपशमभावका चारित्र है. इसतरह मोहनीकर्मका क्षयोपशम होता है, तब अंश अंशसें वीर्यादिशक्ति (आत्माकी) जाग्रत होती है, उसके प्रभावसें आत्माका वीर्य आत्मधर्म प्रकट करनेके काममें स्फुरायमान होता है. मलीन क्षयोपशमसें संसारी काममें शक्ति स्फुरायमान होती है. इसतरह जब कर्मका क्षयोपशमका भाव होता है वो क्षयोपशम शुद्ध होनेसेंही आत्माकी परिणती जाग्रत होती है और वो जाग्रत होनेसें जो जो धर्मकरणी होती है वो भाव सहित होती है. पीछे भावके भेद बहुत हैं. संयमके असंख्यात स्थानक है उनमेंसें जितना जितना क्षयोपशमभाव होवे उतने संयमस्थानक प्रकट होते हैं. इसतरह अल्पमात्र क्षयोपशमभावका स्वरूप लिखा है.

क्षायकभाव वो तो कर्मका बंध, कर्मका उदय, और कर्मकी सत्ता ये तीन प्रकारसें कर्मका नाश करता है. ये क्षायकभावका प्रथम समकित जब प्राप्त होवे तब अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, समकितमोहनी, मिश्रमोहनी, मिथ्यात्वमोहनी यह सातों प्रकृतियें सत्ता, उदय और बंधमेंसें नाश पाती हैं, तब क्षायकभावका समकित प्रकट होता है और वो प्रकट हुवे बाद नहीं जाता है. परंतु ऐसी विशुद्धि तो उपशमभाव, और क्षयोपशमभाव ये दोनुसें विशुद्धि होती है. उसबाद जब केवलज्ञान पानेके हो तब वो पुरुष क्षपकश्रेणी याने कर्म खपानेकी–क्षपक करनेकी पंक्ति, एक पीछे दूसरी प्रकृति क्षय करनी, अनुक्रमसें चारों कर्मका नाश करना वो श्रेणी कोइ चौथे–पांचवे–छट्ठे–सातवे–आठवे गुणस्थानकसें करे सो बारहवे गुणस्थानक तक क्षायकभावसें कर्म क्षय करते हुवे चले जाते हैं. क्षयोपशमभाव तो चलायमान होता है और पुनः कर्म बंधे जाते हैं. क्षायकभाव याने जो कर्म क्षय किये वो पीछे पुनः नहीं बंधे जाते हैं, वैसी क्षायकभावकी विशुद्धि है; वास्ते हरएक प्रकारसें क्षायिकभाव होवे तो कल्याण होवे. क्षायकभाव चार कर्मका नाश करता है; तब केवलज्ञान प्रकट होता है. अष्टकर्म नाश होवे, तब कर्मरहित होकें सिद्धपद पाता है–पुनः संसारमें आनाजाना होताही नहीं, ऐसे विशुद्धपदकी प्राप्ति होती है. इन तीन प्रकारके भावमेंसें जो कोइ भाव प्रकट होवे वो जब ये भाव पानेका लाभांतराय टूट गया हो तब प्रकट

होवै. और जिसकों ये गुण प्रकट होनेका लाभांतराय है, वहांतक उसकों ये भावमेंसें कोइ भाव प्रकट नहीं होवैगा. इनमेंसे कोइ भावकी प्राप्ति हुवे बिगर जो जो धर्मकरणी करैगा वो द्रव्यक्रिया है और द्रव्यक्रियाके प्रभावसें पुन्य बंधैगा—संसारीसुख पावैगा; मगर मुक्तिमहेलमें रमण करनेका उससें न हो सकैगा. जब क्षायकभाव आवैगा तबी मुक्तिरूप स्त्रीकी मुलाकात करैगा. क्षयोपशम क्षायकभावके कारणरूप है, उससेभी कर्म नाश होवैंगे. और उपशमभावसेंभी कर्म क्षय होवैंगे. इन दोनुमेंसें एकभी भावका समकित आनेसें निश्चेयसें मुक्ति तो होवैंगी. और ये भाववालेकों अंतमें क्षायकभावभी आनेका तो सही; वास्ते ये भावभी होवै तो कल्याण होवै. इन तीनों भावमें समकित पाये बिगर पूर्वकालमें मेरुपर्वत जितने ओघे, मुँहपत्ती धारण की; मगर जीवकों मुक्ति न मिली. ये भाव बिगर शुभ भावसेंभी जीव नौ ग्रैवेयक तक जाता है; और पुद्गलीक सुख भुक्तता है. वास्ते पुद्गलीक सुख भुक्तनेका भाव आवै; परंतु मुक्तिसुख भुक्तनेका भाव आना दुष्कर है. मुक्तिसुख भुक्तनेरूप भाव आया कि न आया उसकी पक्की परिक्षा तो न हो सकै; मगर आत्मिकभाव आनेवालेके लक्षण शास्त्रमें बतलाये हैं वो देखनेसें अनुमान हो सकैगा.

ये तीन भाव हैं सो आत्माकों निर्मल करनेहारे हैं. चोथा उदयीक भाव है सो कर्मके उदयसें प्राप्त होता है और उसके एकीस भेद हैं ये भावसें अशुभकर्म बंधे जाते हैं. और आत्मा मलीन हो मिथ्यात्व, अज्ञान, कषाय, लेश्या, अव्रत ये सब होते हैं. वो भावका यहां प्रयोजन नहीं है. परिणामिक भाव है वो तो स्वाभाविक है. वो सुख या दुःख कुछभी करता नहीं. भावकी संपूर्ण प्राप्ति तेरहवे गुणस्थानसें आत्माकों संपूर्ण लाभांतरायका क्षय होनेसें होती है. ये प्राप्ति न होनेके सबब कि जीव अपने अहंकारमें गुलतान हो आत्मिकगुण प्रकट करनेकी इच्छा नहीं करता है, और जो जीव आत्माके गुण प्राप्त करनेमें सन्मुख हैं या हुवे हैं उनकों रोक देता है, उनकी निंदा हीलना करते हैं—ऐसे जीव लाभांतरायकर्म बांधते हैं. फिर संसारमें धन वगैरः कोइ दातार हो किसीकों दे देता नहीं तो उसकों न देने दे, लेनेवालेके दूषण होवे न हो तोभी वो तो दूषणही बतला करकें उनकों देनेमें अंतराय करै उससें लाभांतराय कर्म उपार्जन करै. जैसें भिखारी मुट्ठीभर जुवारीके लिये दरबदर फिरता है; मगर लाभांतरायसें मिल नहीं सकता. वीसी तरह जो मनुष्य ऐसे मनुष्यकों देनेमें अंतराय करवाते हैं उनकों भीख मांगनेसेंभी लाभ न मिलैगा. वास्तें हरएक प्रकारसें

कोइभी जीव दुःखी हो तो उसकों सुखी करनेकी इच्छा रखनी, और अपनी जि-तनी ताकत हो उस मुजब उसकों दे करकें संतोष देना. पुनः दूसरे अपने मिलापीकों कहनेसें उसका दुःख दूर होता होवै तो उसकों कह करकें कुछ दिलवा करकें उसका दुःख दूर करना. फिर सुपात्र पुरुषके अंदर उत्साह दान देनेके लिये रखना और वैसेकों अवश्य दान देना, जिस्सें लाभ मिलना बहुत सुलभ होता है. एककों राजा और एककों रंक देखते हैं, उस तफावतका सबब यंही है कि उसने पूर्वभवमें सुपा-त्रकों देखकें दान दिये हैं उस्से राज्यपद मिला है. और जिसने पिछले भवमें कुछ सुपात्रमें न दिया हो और लाभांतरायकर्म बांधा हो उससें उन्कों कुछभी न मिलता है. कितनीक दफै देनेवालेका देनेका भाव हुवा है, तोभी लेनेवालेनें लाभांतरायकर्म बांधा है उसके प्रभावसें लेनेमें विघ्न आते हैं, और लाभ नहीं मिल सकता है. ये लाभांतरायकर्मका फल है. वास्ते ज्यौं बन सकै त्यौं लाभांतराय टूट जावै वैसा क-रना; मगर नया न बंधा जाय उसका खूब खियाल रखना.

अब तीसरे भोगांतरायका स्वरूप लिखता हुं:–भोगांतरायकर्म जीव अनादिसें बांधता हुवाही आया है, उसके प्रभावसें आत्माके स्वभाव रहना वो रूप भोग नही भुक्त सकता है. वो भोगांतरायकर्म बारहवे गुणस्थानके अंतमेंही क्षय होता है, तब सदाकाल आत्माकेही भोगकों भुक्तता है, उसका सर्वथा प्रकारसें भोगांतरायका त्याग हो जाता है. क्यौं कि विभाव वासना नहीं रहती. यहांपर किसीकों शंका हो आवैगी कि–"केवलज्ञानी महाराज समोवसरणमें बिराजमान होते है, देवकृत वगैरः अतिशय प्राप्त होते हैं, आहार करते हैं, सुंदर हवा आदि आती है इत्यादि भोग है या क्या है?" उसके संबंधमें ऐसा समझना कि–तीर्थंकरमहाराजजीने तीर्थंकरनाम-कर्म उपार्जन किया है, उस पुन्यके प्रभावसें बहुतसी वस्तुयेंकी प्राप्ति हुइ है या होती है; परंतु उसमें भगवंतजीकों न राग न द्वेष है. ज्ञानसें जानते है कि शुभाशुभ कर्मका उदय है वो उदयके प्रभावसें होता हैं, वो मात्र कर्म भुक्त लेने रूप है. उन वस्तुओंमें लेशमात्रभी राग नहीं. फक्त चार कर्म रहे हैं वो भुक्तकर निर्जराते हैं; वास्ते तीर्थं-करमहाराजजीका या केवलीजीका जो भोग है वो भोग नहीं जैसा है. और छद्मस्थ जीवकों जो जो पुद्गलके भोग करनेके हैं वो राग द्वेष सहित हैं. उसमें उन्होंकों

कर्मबंधका कारण रहा है, उससें आत्मिक भोग भुक्त नहीं सकते. आत्मिक भोग भुक्तनेके अंतरायकर्मका उदयभी दूर नहीं हुवा वहांतक आत्मिक भोग नहीं भुक्त सकते हैं. संसारी जीवकों रात और दिन भोगकी इच्छायें इतनी सारी बढ गइ हैं कि—जो जो पदार्थ जगतमें हैं ते रूपी देखते हैं या सुनते हैं उसकी इच्छा होती है; परंतु उसकी प्राप्तिका अंतरायकर्म बांधा है उससें नहीं मिल सकते हैं. और जिनके अंतरायकर्मका क्षयोपशम हुवा है उनकों वो सब मिलते है. और उसका उपभोगभी लेते है. मगर जो वै उसपर बहुत राग रक्खे तो या बहुत रागसें भुक्तें तो उससें पुनः नया भोगांतराय कर्म बांधते हैं, उसीके लिये फिर मिलनेमें हरकत आवैगी. किस तरह आवेगी? भोगकी वस्तु हाजिर है; मगर कृपणता आनेसें वो वस्तुका भोग नहीं कर सकता, या तो शोक आ पडैगा, या रोग होगा और वही चीजका उपयोग न करनेका वैद्य फुरमायगा जिससें उपयोग न कर सकैगा. या हरकोइ प्रकारका कारण आ जायगा, जिस्सें इच्छा है, वस्तु है; मगर भोगांतरायकर्मके उदयसें भुक्त न कर सकैगा. सम्यक् ज्ञानीपुरुष है वै तो ऐसे अंतराय आनेसें शोचते हैं कि पूर्वभवमें भोगांतरायकर्म बांधा है सो उदय आया है, वो समभावसें भुक्तुंगा तो कर्म न बंधेगा. ऐसी भावना प्रकट हुइ है उसके प्रभावसें वै तो अंतरायकर्मकी निर्जरा करते हैं. नये नहीं बांधते. और जिनकी ऐसी दशा जाग्रत न हुइ है वै जीव् बिचारे दूसरोंकों भोगका उपभोग करते देखकर अनेक प्रकारके कर्म बांधते हैं ये अज्ञानताके फल हैं. इस भवमें भोग मिलते नहीं और फिर भोग भुक्तनेके विकल्प करकें नये कर्म बांधते हैं उसकों आते भवमेंभी भोग न मिलैंगे ऐसे जीवका मनुष्यभव व्यर्थ जाता है. वर्त्तमान और आगत ये दोनु भव बिगडते हैं. विकल्प करनेसें. किसीकी अदेखाइ करनेसें कुछ भोग तो नहीं मिलते हैं, और नाहक मात्र कर्म बांधकर दुर्गतिमें जानेका मोका हाथ लगता है. देखियें—रामचंद्रजी बलदेव और लक्ष्मणजी वासुदेव जैसेकोंभी भोगांतरायसें करकें वनवासमें रहना पडा, पांडवोंकोंभी वनवास भुक्तना पडा और ब्रह्मदत्त चक्रवर्तिकोंभी जहांतक भोगांतराय था. वहांतक भागते हुवे फिरना पडा; वास्ते कर्म किसीकों छोडता नहीं. जो जो कर्म उदय आया वो जीवकों भुक्ते विगर छूटकाही नहीं होता समभावसेंभी भुक्तना और विकल्प करकेंभी भुक्तना, तो समभावसें भुक्ता जायगा तो नये कर्म न बंधे जाय. फिर

समभावके जोरसें शिथिल अंतरायकर्म होवैगा तो सहजहीसें नष्ट हो जायगा तो इस भवमेंभी भोग प्राप्त होवैंगे और आते भवमेंभी सहजहीसें भोग मिल सकैंगे. और ज्यौं ज्यौं विशुद्धि होवैगी त्यौं त्यौं बाहर जडके भोगकी इच्छा हठ जायगी और अपने आत्मस्वभाविक भोगकी इच्छा होवैगी. और उसके साधनभी करैगा-संसार छोडकर संयम लेवैगा उसमेंभी तप संयम अच्छी तरहसें पालन करकें आत्मज्ञान मिला, आत्मध्यानमें प्रवर्त्तकर शुक्ल धर्म ध्यान पावेगा. उसकों पा करकें सर्वथा अंतरायकर्म नाशकर्म केवलज्ञान पावेगा-वो निजगुण भोगी होवैगा तबी आत्म कल्याण होवैगा.

उपभोगांतराय सो-जो जो वस्तु वार वार भुक्तनेमें आवै वो उपभोग कहा जाता हैं याने मकान, दुकान, चोपाइ, पटले, चोकी, कॉच, कुरसी, गद्दी, तकियें, तलाइ, पहनने ओढनेके वस्त्र, सुने चांदीके जेवर, हीरें, मानक, मोती, स्त्री वगैरः सब वस्तुकी प्राप्तिमें अंतरायकर्म बांधा होवै तो वो उदय आवै तब ये तमाम उपभोगके पदार्थ न मिल सकैं. ये जीव अनादिके उपभोगांतरायकर्म बांधता है और भुक्तता है. जब जीव शुभ काम करता है, शुद्ध अध्यवसाय होते हैं, तब कुछ अंतरायकर्मका क्षयोपशम होता है. जब उतनी वस्तु मिलती हैं. धर्मकी वर्तना हुवे सिवा कर्म नहीं टूटता है. अंतरायकर्म काहेसें पुनः बंधा जाता है? उसके खुलासेमें यही है कि अधर्मप्रवर्त्तिसें उस अधर्ममेंभी मुख्य कोइ जीव उपभोगकी वस्तु किसीकों देता हो वो न देवै वैसी बातें करैं या उसकों समझावै कि 'तूं मत दे.' या देनेवालेकी हंसि-मश्करी-दिल्लगी करें, या निंदा करै, या उपभोग करता हो तो उसकों कोइ दूसरा काम सुपर्द करकें वो काममें भंग करैं-ऐसे कारणोंसें करनेसें या हिंसादिक काम करनेसें जिस जिस जीवके प्राण गत हुवे उसकों इस भव संबंधी उपभोगांतराय हुवा. इस तरहके काम करनेसें जीव उपभोगांतरायकर्म बांधता है. वास्तें प्रथम उपभोगांतराय न बंधा जाय वैसी जीवकों प्रवर्त्तना करनी. और पीछे पूर्वके बंधे हुवे कर्मका क्षय होवै वैसा उद्यम करना. अब वो उद्यम क्या करना सो बतलाता हुं. पूर्वकालमें श्री वीतरागजीनें जो जो उद्यम किया है और वो आगमोंमें बतलाया है सोही करना. यदि बन सकै तो संयम लैना, वो न बन सकै तो श्रावकधर्म अंगीकार करना, वो न बन सकै तो सम्यक्त्व अंगीकार करना. और वोभी न बन

सके तो मार्गानुसारीपना शुरु करना. जितना धर्म अंगीकार किया जावैगा उतनाही कर्म टूटैगा.

उपभोग दो प्रकारका है याने पुद्गलीक और आत्मिक-इन दोनुका अंतराय है; उनमें पुद्गलीक मिलने तो सहल हैं; मगर आत्मिक मिलने बडे दुष्कर हैं; और उसके साधनभी मिलने बडे मुश्किल हैं. जबतक संसारके उपभोगकी लालसा है वहांतक आत्मिक भोग नहीं मिलनेके हैं; वास्ते आत्मिक धर्म क्या है वो समझकरके जब सांसारिक उपभोगकी इच्छा साफ दूर हो जायगी तब आत्मिक भोगकी इच्छा हो आवैगी, और प्रकट करनेकाभी दिल होवेगा. उसका उद्यम-तप संयम आदिका ऐसा है कि-इच्छा तो आत्मभोगकी है; मगर संसारमें रहे है वहांतक पुद्गलीक और आत्मिक ये दोनु उपभोग मिलेंगे. और पुद्गलीक भोगकी इच्छासें ये दोनु न मिल सकैंगे-सिर्फ पुद्गलीकही मिल सकैंगे, और आत्मिक उपभोगका अंतराय होवेगा. अपना आत्मिकसुख छोडकर जडसुखकी इच्छा करै यही विपरीत है. फिर सांसारिक उपभोग बांधकरकें ज्यौं ज्यौं आनंदित होवे त्यौं त्यौं आत्मिक और पुद्गलीक ये दोनु उपभोगका अंतराय होवे; वास्ते संसारी उपभोगमें आत्मार्थी जीव आनंदित नहीं होते हैं, और वो भोगकी इच्छाभी नहीं करते हैं. पुद्गलीक सुखकों तो जबसें जीव समकित पाता है तबसें सुखरूप नहीं मानता है. पूर्वकी पुण्य प्रकृतिसें मिला है वो समभावसें भुक्त लेता है; मगर उसमें राग नहीं धारण करतें-इसतरहसें श्री तीर्थंकरजी वगैरः चलकरकें आत्मार्थिकों चलनेकी आज्ञा फुरमा गये हैं, उस मुजब चलना कि जिससें प्रथम उपभोगांतरायका क्षयोपशम होवै और पीछे विशेष विशुद्धिसें क्षय होवे और केवलज्ञानादिक अपनी आत्मिक ऋद्धि प्रकट होवै उसकेही उपभोग हरहमेशां अवस्थित होवै. उपभोगांतरायकर्म सत्ता, बंध, उदयसें क्षय होवै तब सहज स्वभाविक उपभोग होवै जिस्का वर्णन करनेमें कोइ शक्तिमान् नहीं हो सकै.

वीर्यांतरायकर्म वही है कि जिसके प्रभावसें जीवकी अनंती वीर्यशक्ति है-वो आच्छादित हो गइ है उससें, जीव आत्मवीर्य स्फुरा नहीं सकता. वीर्यांतरायकर्मके क्षयोपशमसें बालवीर्य और बालपंडितवीर्य ये दोनु वीर्य प्रकटते हैं. उसमें बालवीर्य प्रकटता है उसके प्रभावसें संसारमें प्रवर्त्तनेकी शक्ति आती है-संसारी काम कर सकता है. ये वीर्यका क्षयोपशमभी विचित्र प्रकारसें है-जैसें कि कोइ लडनेमें वीर्य

फैला सकता है, कोइ व्यापारमें, कोइ विषयमें, कोइ नाचमें, कोइ गानेमें और कोइ लिखने–पढने–काव्य बनाने या हुन्नरमें वीर्य स्फुरायमान कर सकता है–याने ऐसे अनेक प्रकारकी अलग अलग वीर्यशक्ति प्रकटती है. उसमें जिनके जिस बाबतमें विशेष आवरण हैं उनकों उस बाबतमें वीर्य स्फुरानेकी ताकत प्राप्त नहीं हो सकती. जिस काम संबंधी आवरण हठ गये हैं उस काममें शक्ति स्फुरा सकता है. अब उसमेंभी कितनेक जीव मद करते है कि–'मेरे समान कौन बलवान है ? मैं दश आदमियोंकों अकेलाही मार डालुं.' ऐसा मद–गर्व करके पीछा नया वीर्यांतरायकर्म बांधता है, वो जीवकों पुनः उतनीभी वीर्यशक्ति प्रकट न होवेगी. फिर जिन जिन हुन्नरमें जिसकी शक्ति चलती है उन उन बाबतका गर्व अज्ञानीजीव करते हैं, उसके प्रभावसें वीर्यांतरायकर्म बंधा जाता है. और इसी तरह अनादिकालसें जीव वीर्यांतरायकर्म बंधेही करता है और वो कर्म भुक्तेही करता है; परंतु जब जीवकी भवस्थिति परिपक्व होती है तब मोक्ष पानेका वक्त नजदीक आता है तब अच्छी नीतिसें वर्तना–सत्संग–सुगुरु प्रमुखका योग होता है और धर्म सुननेकी योगवाइ मिलती है, वो सुननेमें जीव वीर्य स्फुराता है और ज्ञान ग्रहण करता है. वीतरागजीके ज्ञानपर प्रीति जाग्रत होती है और धर्मके सन्मुख हो रहता है. संसारमें वीर्य स्फुरायमान करनेकी बुद्धि कमती होती है तब धर्ममें बुद्धि स्फुराइ जाती है और सम्यक्गुण तथा श्रावकपनेके गुण प्रकट करनेकों तत्पर होता है, तब वीर्यका क्षयोपशम होता है. सम्यक्पनेमें और श्रावकपनेमें जो जो त्याग देने लायक है वो छांड देता है, आदरणीय हो जो आत्मधर्म उसें आदरनेमें वीर्य स्फुरायमान होता है. श्रावकके बारह व्रत और ग्यारह प्रतिमा अंगीकार करता है, वो तप पालन करनेमें वीर्य स्फुराता है, तपस्या प्रमुखमेंभी वीर्य स्फुराता है और क्षयोपशमसें जितना वीर्य प्रकट हुवा है तदनुसारसें धर्ममें वीर्य स्फुराता है; परंतु संयम पालन करने जैसा क्षयोपशम नहीं हुवा वहांतक संयम न ले सकता है, और न संयममें वीर्य स्फुरा सकता है. संसारमें रहा है उससें संसारमें वीर्य स्फुराता है; वास्ते उसकों बालपंडितवीर्य कहा जाता है. पंडितवीर्य जब प्रकट होता है तब तो सभी पुद्गलीक वस्तुपरसें मोह उतर जाता है और सर्वथा संसारसें निकलकर एक आत्मगुण प्रकट करनेमेंही वीर्य स्फुराता है. और निज स्वभाविक सुखमेंही वर्त्तनेका कामी बनकर सर्वथा प्रकारसें वीर्यांतराय कर्मकों क्षय

करीकें केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रकट करता है, उनकों वीर्यांतराय कर्म सत्ता, बंध, उदयसेंभी न रह सकता है. निजस्वभावमेंही अनंत वीर्य गुण है सो प्रकट होता है. भगवंतश्रीने इसतरह सर्वथा वीर्यांतराय कर्मका क्षय करकें आत्मिकगुण प्रकट किये और मेरा आत्मा तो वीर्यांतराय सहितही रह गया; वास्ते हे चेतन! जिस तरह भगवंतजींने वीर्यांतराय क्षय किया वोसी तरह क्षय करनेका उन्होंने वतलाया है इस लिये उस मुजब मेंभी चलुं. ऐसी भावना ल्याकरकें आत्मगुण प्रकट करनेके कारण [ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप] उत्साह सह मिलाना. उत्साहसें धर्मकरणी सफल होती है और वीर्यके आवरण क्षय होते हैं-वीर्य स्फुरायमान होता है. जैसें मुनिमहाराज उत्साहसें तप संयमादिक पालन करते हैं, तो उसके प्रभावसें अठ्ठाइस लब्धियें उत्पन्न होती हैं, वो वीर्यांतरायके क्षयोपशमसें होती हैं. ऐसा योगशास्त्रमें हेमचंद्राचार्यजीने कहा है. और वैसेही प्रवचन सारोद्धारके वालाववोधमें पत्र ५२९ के अंदर अठ्ठाइस लब्धियें वीर्यके क्षयोपशमसें होती हैं वो वतलाइ हैं. उसी तरह यहांपरभी वतलाता हुं:—

प्रथम-आमर्षौषधि लब्धिः-लब्धि शब्दसें शक्ति समझनी. ये लब्धि जिस मुनिकों प्रकट होती है, उसके प्रभावसें वो मुनी रोगीकों हस्त स्पर्श करै कि फौरन रोग नाश हो जावै-सर्व रोगोंकी शांति होवै.

दूसरी-विप्रौषधि लब्धि-उसके प्रभावसै मुनिमहाराजजीके मलमूत्रसेंभी रोगीके रोगोंकी शांति होती है-ये तपके प्रभावकी शक्ति है.

तीसरी-खेलौषधि लब्धि-उसके प्रभावसें मुनीके श्लेष्मसेंभी रोगीके रोग जाते हैं.

चौथी-जलौषधि लब्धि-वो जिन मुनीकों उत्पन्न हुइ है उसके प्रभावसें दांतोंका, कानोंका, नासिकाका, नेत्रका, जीभका और शरीरका जो मैल होता है वो खुशबूदार होवै और उसी मैलसें रोगीके रोग जावै.

पांचवी सर्वौषधि लब्धि-जिस लब्धिके प्रभावसें लब्धिवंतके स्पर्शित जलसें समस्त रोग शांत होवें. लब्धिवंतकों स्पर्श किया हुवा पवन जिसके शरीरकों स्पर्श करे उसकेभी रोग मिट जावै, और उसी पवनसें करकें विष संयुक्त अन्न, तथा विषसें करकें मूर्छित हुवे प्राणी निर्विष हो जाते हैं. उनके दर्शनसें या वचन सुननेंसे रोग, विष दूर हो निरामय होते हैं. ऐसी प्रबल आत्माकी वीर्यशक्ति तपके जोरसें होती है.

छठी–संभिन्नश्रोत लब्धि–वो लब्धिवंतकों पांचों इंद्रियोंके अलग अलग विषय हैं; तथापि लब्धिके प्रभावसें एक इंद्रिसें करकें पांचों इंद्रियोंका विषय ग्रहण कर जान सकै; जैसें कि आंखें देखनेका काम करती है; मगर दूसरी चार इंद्रियोंके काम नहीं कर सकती; परंतु उस लब्धिवाला आंखसेंही पांचों इंद्रियों काम कर सकै–याने हरकोइ इंद्रिसें हरकिसी इंद्रिका काम बजा लेवै. पुनः चक्रवर्त्तीकी सेनामें सोरगुल मच रहा हो उसमेंसें एकंही साथ जो जो जातिका शब्द होता हो वो कुल अलग अलग जान ले सकै.

सातवी–अवधिज्ञान लब्धि–इस लब्धिके प्रभावसें इंद्रियोंकें बल सिवा रूपी पदार्थका ज्ञान आत्मासें कर सकते हैं–नजरसें देखनेकी जरूरत नहीं.

आठवी–अजुमती मनःपर्यव लब्धि–उस लब्धिसें अढाइ द्वीपमें न्यून संज्ञी पंचेंद्रिके मनमें चितवन किये गये भावकों सामान्यतासें जान लेवै; मगर घट चितवन किये गये द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावसें विशेष करकें न जान सकै.

नौमी–विपुलमती मनःपर्यव ज्ञान लब्धि–ये लब्धिवाला अढाइ द्वीपमें संज्ञीके मनमें चितवन किये हुवें द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावें–समस्त जान सकै और उसी भवमें मुक्ति पावै.

दशवी चारण लब्धि–वो विद्याचारण, जंघाचारण लब्धि–उसके प्रभावसें आकाशमार्गमें जा सकै. उसमें विद्याचारण लब्धि विद्याके प्रभाव बलसें प्राप्त होती है उस लब्धिवंतकों धीरे धीरे लब्धि वढती है, उसे पहिलें अपने स्थानसें उडकर मानुषोत्तर पर्वतपर जावै और दूसरी वक्त उडकर आठवे नंदीश्वर द्वीपकों जावै और वहांसें पीछे लौटनेके वक्त एकही सपाटे अपने, स्थानपर आ सकें. और जंघाचारण लब्धि, तपस्या तथा शुद्ध चारित्र पालनेसें पैदा होती है–इस लब्धिवंतकों अव्वलसेंही शक्ति वढती है, वापिस लौटनेके वक्त कम हो जाती है. पहिले उतपातसें तेरहवे रूचकद्वीपमें जाता है और पीछे लौटते शक्ति कम हो जानेसें पहिले उतपातसें नंदीश्वर द्वीप तक जाता है और वहांपर विश्राम लेकर दूसरे झपाटे अपने स्थानपर आसक्ता है फिर ये लब्धिवाले मुनिराज प्रतिमाजीकों वंदना करते हैं–ऐसी बाबत भगवतीजीमें है.

ग्यारहवी–आसी विष लब्धि–उस लब्धिके प्रभावसें शाप देवै उसी मुजब अमल होवै.

बारहवी–केवलज्ञान लब्धि–उनसें समस्त भाव जान सकै.

तेरहवी–गणधर लब्धि–श्री तीर्थंकरजी त्रीपदी फुरमावैं उससें द्वादशांगीका ज्ञान हो जावै और भगवानजीकी गद्दीपर वही विराजमान होवै.

चौदहवी–पूर्वधर लब्धि–उसके प्रभावसें पूर्वधरकी पदवी पावै.

पंद्रहवी–तीर्थंकर लब्धि–उसके प्रभावसें तीर्थंकर पदवी पावें.

सोलहवी–चक्रवर्तीनी लब्धि–उसके प्रभावसें छः खंडका स्वामी होवैं.

सत्तरहवी–बलदेव लब्धि–उसके प्रभावसें बलदेव होवै.

अठारवी–वासुदेव लब्धि–उसके प्रभावसें तीन खंडका राज्य करै.

उन्नीसवी–खीराश्रवलब्धि–उस लब्धिके प्रभावसें बोला गया वचन दूधके मुवाफिक मीठा लगै. और मध्वाश्रव लब्धिके प्रभावसें मिसरीके समान वचन मीठे लगें.

बीसवी–कोष्ट बुद्धि लब्धि–उसके प्रभावसें जो जो परोपदेशके लिये सूत्र अर्थ धारण किये हो उसकी विस्मृति न होवै. विगर याद कियेभी याद रहवै.

इक्कीसवी–पदानुसारिणी लब्धि–उसके प्रभावसें श्लोकका पीछेका या पेस्तरका पद जाननेमें आवै तो दूसरे तीन पदोंका ज्ञान हो जावै. जैसें अभयकुमार प्रधान भगवंतजीकों वंदन करकें वापिस आते थे और एक विद्याधर आकाशमें चडकर पड जाताथा, वो देखकर अभयकुमारने पूंछा कि "ऐसा क्यों होता है?" विद्याधरने जवाब दिया–"विद्याका एक पद भूल गया हुं याद नहीं आता–इससें नहीं उड सकता हुं." अभयकुमारने कहा–"तुम विद्याका पाठ बोल बतलाओ." विद्याधर पाठ बोला कि कम रहताथा सोही पद आपने पूर्ण कर दिया. आप पहिले कुछभी पढे हुवेभी न थे; तोभी पद पूर्ण इस लब्धिके जरियेसें किया, और विद्याधर आकाशमें चला गया.

बाइसवी–बीजबुद्धि लब्धि–इसके प्रभावसें–जैसें एक बीज बोया जाता है और बहुत कण पैदा होते है, वैसें ज्ञानावरणीकर्मके क्षयोपशमसें एक अर्थरूप बीजको सुन लेनेसें बहुतसे अर्थोंका ज्ञान हो जाय. जैसे गणधरमहाराजकों भगवंतजीनें त्रिपदी कह दी उससें उत्पात,–व्यय–ध्रुव ये तीन पद सुनतेही सारी द्वादशांगीका ज्ञान हूवा.

वैसें ज्ञान होवै. पदानुसारिणीमें एक पद सुणेसें दूसरे पदोंका और बीजबुद्धिवालेकों एक पदार्थका ज्ञान होनेसें बहुतसे पदार्थोंका ज्ञान हों सकै यह तफावत है.

तेइसवी–तेजोलेश्या लब्धि–उसके प्रभावसें किसी जीवके उपर खेद आ जाय और तेजोलेश्या छोडे तो स्हामनेवाले जीवकों जलाकर खाक कर देवै.

चोइसवी–आहारक लब्धि–उसके प्रभावसें आहारक शरीर मुंडे हाथका (पोंने हाथका ?) शरीर करकें श्री सीमंधिरस्वामीके पास या विचरते हुवे तीर्थंकरजीके पास भेज सके. और वो इतनी ताकीदीसें जवाब ला सके कि व्याख्यान करते हो उसमें संदेह पैदा हो तो वो शरीर भगवानजीकों खुलासा पूँछकर फौरन आकर कह दे शका निवृत्तन करै.

पचीशवी–शीतलेश्या लब्धि–उसके प्रभावसें किसीने तेजोलेश्या भेज दी हो तो उसपर (शीतलेश्या) छोडनेसें शीतलता कर होवे और तेजोलेश्या हत हो जावै.

छाइसवी–वैक्रिय लब्धि–उसके प्रभावसें आपका शरीर छोटा वडा जैसा करना हो वैसा कर सकै. देवके भवमें ये लब्धि भव प्रत्ययी होवै, और मुनिकों तप, चारित्रके प्रभावसें होती हैं.

सत्ताइसवी–आक्षिण माहानसी लब्धि–उनके प्रतापसें अल्प वस्तु हो जिसमें एक मनुष्य भोजन कर तृप्त हो सकै उतनेही पदार्थमें हजारोंकों जिमा सकै–जैसें गोतमस्वामीजीने एक पडघेभर क्षीरमें पंद्रहसो तापसोंकों जिमाये.

अट्ठाइवी–पुलाक लब्धि–उसके जरियेसें कोइ संघका कार्य होवै तो चक्रवर्तीकों भी चूर्ण कर देवै.

मुख्यतासें ये अट्ठाइसें लब्धि कही गइ हैं; मगर तपके प्रभावसें औरभी लब्धियें प्राप्त होती हैं–याने प्रकष ज्ञानावर्णी वीर्यांतरायकें क्षयोपशमसें करकें समस्त श्रुत समूह अंत मुंहूर्तमें अवगाह लेवै उसके अंदर जिनका मन हो उसकों मनोबल लब्धि कही जावै. इसी तरह अंतरमुहूर्त्तमें सर्व श्रुतका विचार करनेकी शक्तिसें करकें जो सहित होवै और पद वचन अलंकार सहित वचनको उंचे स्वरसें निरंतर बोलता रहवै तथापि स्वर न बैठै वो वचनबल लब्धि कही जावै. फिर वीर्यांतरायके क्षयोपशमसें प्रकट हुवा बल याने जेसें बाहुबलजी वर्ष दिन तक काउस्सग्गमें रहे तोभी शक्ति कम न हुइ-शरीर थक न गया, इसी प्रकारसें ये लब्धिवंत कायबल

लब्धिके प्रभावसें थक न जाय वो कायबल लब्धि कहा जावै. पुनः बहुत वर्मके क्ष-योपशमसें प्रज्ञाकां प्रकर्ष होवै जिस्सें चौदह पूर्व पढे विगरभी कठीन विचारोंके अंदर निपुण बुद्धि होवै और उसकों यथार्थ विचार होवै इत्यादि बहुत प्रकारकी लब्धियें हैं, और हेमचंद्राचार्यजीने स्वकृत योगशास्त्रमें दर्शाय दी हैं. इस समयमें पाश्चिमात्य प्रदेश-इग्लॅड-अमेरीका-जर्मनीमें बहुतसे युरोपियन विद्वान शोधक हेमचंद्राचार्यजी कृत योगशास्त्र पढते हैं और उस शास्त्रके कर्त्ताकों सर्वज्ञका बिरूद देते हैं येभी ज्ञानका क्षयोपशम है. एक समय हेमचंद्राचार्यजी राजसभामें तीन पटले धर करके उसपर विराजमान हो करकें धर्मदेशना देते थे और दरम्यान कुमारपालराजर्षिका पधारना हुवा तब तीन पटलेकों दूर हठा देकर अद्धर बैठ धर्मोपदेश देना जारी रख्खा-येभी योगसाधनकी शक्ति है. ऐसी अनेक प्रकारकी शक्तियें वीर्यांतरायकें क्षयोपशमसें होती हैं, और वै शक्तियें आत्महितके कार्यमें उपयोगमें लेवैं. उपकारार्थ या शासनो-न्नतिके अर्थ स्फुराते हैं. पूर्ण वीर्यांतरायका क्षय होता है. तब पूर्ण वीर्य प्रकटता है उ-सकों केवलज्ञान प्रकटता है, जिस्सें करकें तमाम लोकके भाव एक समयमें जानते हैं. अतीत-अनागत-वर्त्तमानके भावभी जानते हैं. अैसी आत्माकी पूर्ण शक्ति जाग्रत होती है. वास्ते हरएक प्रकारसें वीर्यांतिरायका क्षयोपशम या क्षय होवै वैसा उद्यम करना. वीर्यकी रीति अैसी है कि अभ्यास करने करनेसें वीर्य स्फुरायमान होता है इस लिये वीर्य स्फुरानेका हरहमेशां अभ्यास करना. अेक मनुष्यके वहां धेनु विहाइ-वछडा दिया. उसी वछडेकों उसी रोज उठाकर अेक वक्त मजलेपर ले गया याने इसी तरह उस वछडेकों उठा उठाकर माल-मजलेपर चड जाने लगा, और इसी अभ्याससें वो वछडा बडा होकर बेहेल हो गया तोभी उसकों उठाकरकें मजलेपर चड जाताथा. उसी तरहसें अभ्यास करनेसें मनोबळ-वचनबळ-कायबळ वढता है. तप, संयम और ज्ञानका हमेशां अभ्यास करना कि उससें वीर्यांतरायका क्षयोपशम होवैगा और वीर्य वृद्धि पावैगा. यदि जीव सांसारिक कार्यमें वीर्य स्फुरायगा और धर्मके कार्यमें प्रमाद करैगा तो नया वीर्यांतरायकर्म बांधेगा और इस भवमें जितना वीर्य-शक्ति है उतनाभी आते भवमें न मिल सकैगा. और अनादिकालका वीर्यांतराय बंधा हुवा है उसीसेंही आत्मगुण प्रकट नहीं होते हैं, वो बडा दोष है.

इस तरह पांच प्रकारके अंतरायकर्म भगवंतजीने क्षय करके आपके आत्मगुण प्रकट किये हैं, और अपने जीवने वैसा उद्यम न किया उससें अनादिका संसारमें

रूलता है–और जन्म मरणके दुःख भुक्तता हैं उन दुःखसें मुक्त होनेके वास्ते भगवंत-जीके हुकम मुजब चलना कि जिस्सें आत्माके गुण प्रकट होवै–इस तरह पांच दूषण बतलायें

छठ्ठा हास्य नामक दूषण हैं, उस दोषसेंभी भगवान्श्री रहित हैं. और संसारी जीव इस दूषणसें करकें सहित है. हास्य दोषसें बनसें अनादिका जीव ससारमें भटकता है और जब तक हास्यसें मुक्त न होगा तब तक आत्माका काम न होवेगा. हास्यसें संसारमेंभी कितनेक है वो सब मनुष्य जानतेही हैं; तोभी जाग्रत करनेके लिये लिखता हुं कि–कितनीक दफे हास्य–दिल्लगी करनेसें या हंसी करनेसे–हंसीसें आपके जाबडे दुःखने लगते हैं, हंसीकों रोकना चाहे तो नहीं रुकी जाती है. फिर जिसकी हंसी–मस्करी करै वो मनुष्य उस वक्त न बोलै याने मुंहपर साफ साफ न कह दे मगर अंतःकरणमें उसकों कितना दुःख होता है! वो जो मनुष्य आप विचार करै कि कोइ मेरी हंसी करता है उस वक्त मुझकों अंतरंगमें कितना दुःख होता है? इसी तरह स्हामनेवालेकोंभी दुःख होता होगा; वास्ते दूसरे जीवकों दुःख-कलेश देना उससें जियादे बुराइ कौनसी है? फिर वो मनुष्य जोरदार हो तो फिसाद खडा होकर मारामारी या गालागाली होवै उससें नया वैर बंधा जाय–ये प्रत्यक्ष दुःख है. फिर जितनी वक्त हास्यमें प्रवर्तें उतनी वक्त सात आठ कर्मोंका बंध होवे सो उदय आवै तब उन्होंके दुःख भुक्तने पडते हैं. जैसें कि–" कुमारपाल राजेंद्रकी भगिनी–बेन अपने पतिके साथ चोपटबाजी खेलतीथी. उसमें सोगठी मारनेके वक्त विधर्मीपतिने कहा कि–' मार कुमारपालके मुंड–साधुकों.' यह शुकन सुनतेही उसकी धर्मपत्नि नाराज हो गइ और उसी वक्त रिसाकर भाइके घर चल गइ. और वो हकीकत कुमारपालकों कह सुनाइ, उससें अपने साधु. मुनीराजजीकी हांसी–हीलना करी जानकर बडा गुस्सा आया, और पण–किया कि–' जिस जबानसें मेरे गुरुकी हांसी की है उसी जीभकों नै चढुं जब उसकों छोडूं.' ऐसा निश्चय करकें बेन्होइके साथ युद्ध किया और उसकों पराजित किया. अंतमें प्रधानोंने कुमारपाल महाराजाकों युक्तिसे–दयाभावसें समझाकर जीभ नोंम लेनेका मोकूफ करवा कि पहननेके जामेपर जीभकी आकृति पिछले भागपर रखनेका ठहराव करवाया और वैसाही करनेसें उसकों छोड दिया " दिखीए हांसीके कैसे फल हैं!

और इस सिवाभी हांसी-दिल्लगीसें बहुत नुकसान हैं. जिसकों ठट्ठाबाजी-दिल्लगी-खोरी-हांसी करनेकी आदत होती है उसकों लोगभी दिल्लगीबाज-मस्करा कहते हैं. फिर आत्मस्वरूपका विचार करनेसें हांसी आत्मगुणसें विपरीत प्रवृत्ति है. ये प्रवृत्तिमें वर्त्तनेसें आत्मा मलीन होता है. पुनः आत्मा निर्मळ करनेके कारण व्रतादि-कर्मभी इस्सें अनर्थ दंड व्रतके दूषण लगते हैं; वास्ते ज्यौं बन सकै त्यौं आत्मा निर्मल करनेका इरादा रखनेवालोंकों हांसीसें मुक्त-दूर रहना. कि जिससें आत्म निर्मल होनेका उद्यम होवै. सब हास्य मोहनीका क्षय भगवंतजीने किया है उस दशाकों पा सकैं वैसा उद्यम करना.

छठ्ठा रति नामक दूषण याने हरएक पुद्गलीक पदार्थके अंदर जो अनुकूल मिलै उसमें राजी होना. प्रतिकूल मिलै उसमें दिलगीर होना ऐसा जडकी संगतिसें जीवकों अनादिसें अभ्यास है, उसके जोरसें जीव उसी तरह वर्त्तन रखता है और कर्मबंधन करता है. और उसी कर्मबंधनसें अनादिका जीव जन्ममरणके दुःख भुक्तता है. जो जो पदार्थको जीव अनुकूल मानता है वही अज्ञानता है; कारण कि जो जो जडपदार्थ है सो विनाशी है और आत्मा अविनाशी है-वो आत्मा और जड दोनु भिन्न पदार्थ हुवे, तो भिन्न पदार्थकों अपना मान लेना यही मूढता है फिर जो वस्तु देखकर रति-आनंद करे छे वो वस्तु हरहमेशां कायम रहनेकी नहां. कितनेक खानेके पदार्थ हैं वै खानेमें रति करता है; मगर वही पदार्थसें पुद्गलकों उपाधि होती है. और रोग होते हैं. फिर कर्मबंधन होवै सो तो अलग. इसी बजरसें गरेना-आभूषण पहन करभी खुशी होना; मगर शरीरकों भार लगता है उसका विचार नहीं, और जोखम समालना पडै या जीका जोखम होनेका मोका हाथ लगै वो तो फिर अलग. कुटुंबके संयोगसें राजी होता है; मगर वो मनुष्यकी मरजीसें विरुद्ध कुछ वर्त्तन हुवा तो वोही शत्रुपना बतलावैगा, तो ऐसे अनित्य स्नेहसें राजी होना वो मूढता नहीं तो फिर क्या है? धन है उसकों देखकर राजी होता है; परंतु ये धन कितने समय तक कायम रहवैगा, उसका लक्ष देगा तो रति नहीं होवैगा; क्यौं कि अपना धन कितनी वक्त आया और चला गया. कभी किसी मनुष्यका अभी न गया हो तो दूसरे कितनोंका गया नजर आयगा; वास्ते नाशवंत है ये स्वभावपर लक्ष देना चाहियें. अस्थिर पदार्थपर राजी होवैगा और वो जब नष्ट हो जायगा तब

दिलगीर होनाही पडैगा. मगर धनकी संचलतापर लक्ष देवैगा तो धन आनेसें राजी और जानेसें दिलगीर न होवैगा. धनकों अपन छोडकर जायेंगे–या धन अपनकों छोडकर चला जावैगा–ये धनका स्वभाव है. इस लिये जो ज्ञानी हैं वे तो धनका त्याग करकें संयम लेते हैं और धन कुटुंबादि पदार्थोंकों जलांजलि देते हैं–शरीरमें रहते हैं; परंतु शरीरकों मेरा नहीं जानते हैं, उससें शरीरके सुख दुःखमें रति अरति नहीं करते हैं. एक अपने आत्मतत्त्वमें रमण कर रति मोहनीका नाश करकें स्वात्मगुण प्रकट करते हैं. और क्रमशः सिद्ध सुख भुक्तते हैं. आत्मार्थीकोंभी इसी तरह रति मोहनीका नाश करना यही कल्याणकारी है.

सातवा अरति मोहनी दूषण है वोभी रतिके मुजबही है; वास्ते इस जगहपर अलग विस्तार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं हैं. जैसें रतिके लिये है वैसेंही अरतिके लिये समझकर अरतिकाभी त्याग करना. जो जो अरतिके कारण है वो जड पदार्थ हैं और पूर्व भवमें विषय कषाय और अरतिमें वर्त्तनेसेंही कर्म बंधे हैं उसीसें अरतिके कारण उत्पन्न हुवे हैं ऐसें समझना. ज्ञानीपुरुष तो कर्मका स्वरूप जान गये हैं उससें समझते है कि–"पूर्व भवमें अशुभ कर्म बंध है उसके लिये अरतिके कारण आ मिले हैं. फिर विकल्प करूंगा तो इससेंभी कठीन कर्मबंध जायेंगे और अराति पैदा होवैंगी जैसें किसीका कर्जह होवै, वो न देवैं तो बेशक लहेनदार फारियाद करेगा, तो फिर विशेष दुःख भुक्तना पडैगा. वास्ते जो अशाता वगैरः दुःखके कारण उत्पन्न हुवे हैं वो समभावसें भुक्त लैना, ऐसा शोच करकें समभावमें रहते हैं, और उससें विशेष विशुद्धि होती है, और ए रतिमोहनीका नाश कर अपना आत्मस्वभाविक गुण प्रकट करते हैं–वही भगवंत होते है–याने इसी तरहसेंही हुवे हैं. जिस तरह भगवंतजी चले उसी तरह आत्मार्थी पुरुष चलेंगे, तो वैभी भगवंत हो जावेंगे, और अराति नाश हो जावैगी.

आठवा भयनामक दूषण है. वो भय सात प्रकारके हैं याने इह लोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्मात् भय, आजीवीका भय, मरण भय, और अपकीर्ति भय ये सात हैं. संसारी जीव इन सात भयके मारेही सदा भयभीत रहता है. और परमात्माश्रीजीने तो अपने आत्माका स्वरूप जान लिया है कि आत्मा अरूपी है– आत्माका विनाश होनेवालाही नहीं, उससें कोइ प्रकारका भय रख्खाही नहीं, उसी

लियेंही अपना आत्मपद स्वाधीन कीया है. संसारी जीव सात तरहका भय रखते हैं उसका अब विवेचन करता हुं.

इह लोक भय सो–जो जीव जिस गतिमें हो उसी गतिके दूसरे जीवोंका भय रखना–याने मनुष्य दूसरे मनुष्यका डर रख्खे, कि दूसरे मनुष्य मुझकों मारेंगे, या मार डालेंगे, या झहर खिला–लगा देवैंगे, या शस्त्र अस्त्र मारेंगे, या मंत्रादिसें मारेंगे, या मुझकों रोग पैदा होवैगा, ऐसे भय रख्खै वो इहलोक भय कहाजाता है. यह भय जीव अज्ञानतासें रखता है. जो ज्ञान हुवा होवै तो समझा जाय कि आत्मा अ· विनाशि है, विनाश होवैगा तो पुद्गलका होवैगा, वो पुद्गल मेरा नहीं है, तो मेरे किस प्रकारका या किस लिये भय रखना चाहियें? पुद्गलकी स्थिति, विनाशभी कर्मोदय मुजब होनेका है; वास्ते भय क्यौं रखना. संसारमेंभी जो मनुष्य भयभीत होता है उससें उद्यम नहीं हो सकता और भयके कारण दूर नहीं कर सकता. परंतु जिसका वीर्य स्फुरायमान हुवा है वो वीर्यके बलसें हीम्मत रखकर अपना आत्मधर्म साध सकता है; वास्ते उद्यम करकें ज्यौं बन सकै त्यौं भय संज्ञा दूर कर दैनी; क्यों- कि भय उद्यमसेंही दूर होता है. आठ दृष्टिमें दूसरी दृष्टि प्रकट होती है तब चार संज्ञायोंका विष्कंभ होता है–याने स्थंभितपना हो जाता है. ऐसा योग दृष्टिसमुच्चयमें हरिभद्रसूरिजी कहते हैं, इस लिये भयकी शांति होवै वैसें करना. क्रमशः ज्यौं ज्यौं विशुद्धि होवैगी त्यौं त्यौं सर्व प्रकारसें भयरहित होवैगा और दूषण दूर होवैगा.

परलोक भय सो–तीर्यंचका और देवताका भयं धारण कर फिकर करै याने शायद मुझकों विच्छू–सांप–शेर और व्यंतरादि देव पीडा करैं! इस भयका स्वरूप उपर मुजवही आत्मार्थी पुरुष चितवन कर भयरहित हो निज निर्भय गुण उत्पन्न करते हैं.

आदान भय सो–अपने घरमें जो जो पदार्थ याने धन–आभूषण–वस्त्रादिक वस्तुयें हैं, वो वस्तुकों शायद कोइ ले जावैगा! चोर आकर चोर ले जावेगा? या विनाश पावैगा?, या किसीकों व्याजसें धीरुंगा तो रुपै वापिस देवैगा या नहीं? या व्यापारमें नुकशान जायगा? इस तरहके भयकी चिंता करै. ऐसा भय रखना अगर उसका चितवन करना उसीकों ज्ञानीपुरुष आर्त्त या रौद्र ध्यान कहते हैं. और ये ध्यानसें जीव नरक तीर्यंचकी गति पाता है. इसी वास्ते ज्ञानीपुरुष होवैं सो सोचते

है कि-'ये वस्तु मेरी नहीं. कर्मके संयोगसें अज्ञानदशा हुइ है उस अज्ञानदशासें करकें ये वस्तुपर ममत्वभाव हुवा है वो ममत्वभावसें भय हुवा करता है वो मेरे करने योग्य नहीं.' ऐसा चिंतवन कर भयसंज्ञा दूर करता है कि-'ये धनादि वस्तुका स्वभाव अस्थिर है. जहांतक पुन्य बलवान् है वहांतक जानेका नहीं, और जब पापका उदय हो आवेगा तब बडे बंदोबस्तसें रक्खा हुवा धनभी नहीं रहता है; वास्ते जीव! किस लिये ममत्वभाव करता है.' इस मुजब चिंतन करकें भयसंज्ञासें निर्भय हो जाता है. विशेष ज्ञान होवे तब संसारका त्याग करता है, संयम लेता है, उस लिये ऐसी वस्तु छोड देनी कि भयभी दूर हो जायगा. आपके पास धर्मोपकरण या पुस्तक होते हैं उसकाभी भय नहीं रखते हैं. और अपने आत्माकों भावनेसें सर्वथा भयसंज्ञाका नाश करते हैं और आत्माके गुण संपूर्णतासें प्रकट करते हैं.

अकस्मात् भय सो-बाह्य कारण सिवा अचानक मनमें भयभ्रांत होवे-डर लगे ये कर्मोदय प्रभावसें है. ऐसे भयभी कर्मकी बाहुल्यतासें होते हैं. जिसकों आत्मगुण प्रकट हुवे हैं उसकों ऐसे भय नहीं लगते हैं.

आजीविका भय सो-समवायांगजीमें कहा है और ठाणांगजीमें वेदना भय कहा है वास्ते वो भयका स्वरूप लिखता हुं:-अपणा उदरपोषण संबंधी जीव भय कर रहे हैं; मगर इस दुनियामें धनवान और गरीब-मोताज कोइभी अन्न खाये बिगर नहीं रहता है. आजीविका पूर्ण होना वो तो पूर्वकर्मानुसार बननेका है; परंतु उस कर्मका ज्ञान नहीं उससें फिक्र करता है. हरएक कार्य उद्यमसें बनते हैं; वास्ते उद्यम करना. मगर भय रखना ये मूढता है. और ये मूढतासें करकें काम करनेका हो सो नहीं कर सकता और नये नये विकल्प कर कर्मबंधन करता है. फिर धनवान् पुरुष हैं उनकों कुछ आजीविकाकी कसर नहीं; तोभी आगामिक समय संबंधी विचित्र प्रकारकी चिंता किये करता है, बारिशकी खींच हुइ है तो क्या खायेंगे? बारिश न आया तो क्या खायेंगे? रसोइया भाग गया तो क्या खायेंगे? कोइ चीज महेंगी हुइ तो क्या खायेंगे? ऐसे विचित्र प्रकारका आजीविकाके संबंधी भय धारण करकें कर्म बंधता है. धनवान मनुष्यकों बदवक्तमें और अच्छी वक्तमें धनसें करकें सब चीज बन जाती है; तथापि अज्ञानताके लिये भयभीत रहता है. ज्ञानवंत पुरुषोंकों तो थोडा ज्ञान हुवा है; मगर स्वपर ज्ञान हुवा है. उस ज्ञानके प्रभावसें प्रथम तो क-

र्मकी प्रतीति है उससें उन्होंकों भय नहीं रहता है. दूसरी तरह अशुभ कर्मका उदय हुवा उससें आजीविकामें हरकत पडती है; तो विचार करै कि पूर्वसमयमें कर्म बंधे हैं उनके फल हैं. विकल्प करनेसें क्या फायदा? ऐसा शोचकर भय नहीं रखते, और बन सकै सो उद्यम करते है. और अतिशयसें विशुद्धि है वो तो बिलकुल भय नहीं रखते हैं. अपनी आत्मभावना विचारते हैं. जैसें ऋषभदेवस्वामीकों वर्ष दिवस तक आहार मिला नहीं तोभी उसके लिये विकल्प न हुवा. उसके स्मरणार्थ वरषी तप प्रकट हुवा. और अंतमें भयमोहनी क्षय करकें निर्भय गुण प्रकट किये. उसी मुताबिक आत्मार्थी पुरुषोंकोंभी करना, कि भयमोहनी नाश हो जावै. अब वेदनीभय सो—रोग आनेसें दुःख सहन न हो सकै उस्सें अनादिका जो भय है वो प्रकट हो आवै कि शायद रोग न बढ जाय! रोग न हो तो रोग आनेका भय रहवै. ऐसे भयके बदलेमें तपस्या प्रमुख नहीं करता है. तपस्या करनेसें नया वेदनीकर्म उदय आनेका हो तो क्षय हो जाता है, और उस बदल उलटे विचार करै वो मूढताका लक्षण है. आत्मार्थी जीव तो वेदनासें डरतेही नहीं. वेदना होवै तो शोचते है कि पूर्वकालमें जो जो वेदनीकर्म बांधा है वो ऐसें ज्ञानके [बोधके] वक्तमें उदय आयैंगे तो समभावसें भुक्तेंगे, और बहुत काल दुःख भुक्तनेका वो थोडे कालमें भुगता जायगा—नया कर्मबंध न होवैगा. पुनः विशेष विशुद्धिवंत तो जानते हैं कि वेदना होती है वो शरीरकों होती है—मेरा आत्माकों नहीं होती. इसी तरह महावीरस्वामीजीकों सख्त उपसर्ग संगमदेवने और व्यंतरीने किया; परंतु किंचित्‌भी भय धारण न किया, और वेदनाका दुःखभी ध्यानमें न लिया, तो अपने आत्माका गुण केवलज्ञानगुण प्रकट किया. इसी तरह जिसकों अपने आत्माका कल्याण करना है उसकोंभी महावीरस्वामीजीका मार्ग धारण कर लैना कि कोई तरहका भय रहवै नहीं और निर्भयदशा प्रकटै.

छठा मरणभय सो तो—जगजाहिर हैं. अनादिकालकी मरण होनेकी संज्ञा चली आती है, उसके प्रभावसें देवताभी आते भवका छः महीने पेस्तर बंध करै तबसें कल्पांत करै. मनुष्यकी समजदार उम्मर होवै तबसें मरणभयकी विचारणा करता है. ज्ञानीपुरुष तो अंशमात्रभी मरणका भय नहीं करते; कारण कि आत्मा मरता नहीं. मरता है सो पुद्गल है. तो जितनी आयुकी स्थिति है वहांतक यह शरीरमें रहना

हैं, तो भय किस लिये करना. कदापी संज्ञासें चित्तमें आवै तो शोचैं कि आयुकी चंचलता है, तो धर्मसाधन करनेमें प्रमाद न करना; क्यौं कि धर्मसाधन मोक्ष संबंधी करना है वो तो मनुष्यकी गतिमें हो सकता है. दूसरी गतिमें ऐसा साधन होनेका नहीं; वास्ते ज्यौं बनै त्यौं अप्रमादपणेसें धर्म करनेमें तत्पर रहना. आते कलपर क-रनेका विचार करैगा; मगर आते कल क्या होगा वो खबर नहीं है; इस लिये जैसें उत्तराध्ययनजीमें कहा है कि–' हे गौतम ! समय मात्र प्रमाद न कर.' ये उपदेश धारण कर कि जिस तरह आत्माकी निर्मलता होवैं वैसा उद्यम करना और संयम साधतें शरीर नरम पडता है या देवादिकके उपसर्ग होते हैं तोभी मरणका भय नहीं करते हैं. आत्माकों सोहाते हुवे विचरते हैं. परिसहकी फौजसें नहीं डरते, आप अ-पने ध्यानमें तत्पर रहते हैं, विसी तरह आत्मार्थीयोंकों रहना योग्य है. भगवंतजी ये भय क्षय करकें सिद्धि सुखकों पाये है और उन्होंकी जैसी आज्ञा है उसी मुजब चलेंगे तो मरणका भय नाश होवैगा.

सातवा अपकीर्ति भय सो–शक्ति उपरांत कीर्तिकी इच्छा करै और काम अ-पकीर्तिके करै. कीर्ति तो क्रियासें होती है. जो लुच्चाइ, चोट्टाइ, चोरी, जूँठ बोलना, परदारागमन, परनिंदा, परकों दुःख देना, पिराया खा जाना, व्यौपारमें अन्यायसें बोलना, वांका बोलना, ये कृत्य न करै. और दुःखीकों सुखी करना, परकार्यमें तत्पर रहना, द्रव्यानुसार दान देना, कितनेक जन तो ऐसा दान देवैं कि आप न खावै; मगर दूसरोंकों देनेमें तत्पर रहवें, ऐसी वर्त्तना करै तो सहजहीमें कीर्ति होवै. मगर धन होनेपरभी भिखारी पोकार कर मरै तोभी बिलकुल दान न देवे और अ-पकीर्तिका भय करै. अपकीर्तिका भय रखकर बुरी विचारणा न करै तो उत्तम है. अज्ञानतासें अपकीर्ति होवै वैसाही कारण करै; परंतु ज्ञानीजन तो अपने आत्माके दानादिक गुण है वो प्रकट करनेमें उद्यमवंत हुवे हैं, कितनेक गुण प्रकट हुवे हैं उसमेंभी कीर्तिकी इच्छा नहीं और अपकीर्तिका भय नहीं. इसी तरह उत्तमपुरुष किसी जीवकों दुःख होवै वैसी वर्त्तना नही करते, उसी तरह किसी जीवकों दुःख होवै वैसी वर्त्तना न करनी कि सहजहीमें अपकीर्तिका भय दूर हो जावैगा. इस तरह सप्त भयको ध्यानमें लेकरकें जैसें महात्मापुरुषोंनें निर्भयदशा प्रकट की वैसें करना. आ-त्मगुण प्रकट किया कि वो गुण जानेका भय रखना न पडैगा, वो नीत्य गुण है

अनित्यगुणका मोह है वहांतक जीवकों भय रहवैगा; वास्ते त्याग करना कि सह-जहीसें भय दूर हो जायगा.

दशवा शोक नामक दूषण-सो संसारी जीवोंकों हरदम लग रहा है. कुटुंबमेंसें कोइ बीमार हो आवै या मरजावै तो मनुष्य इतना सारा शोक करते है कि कितनेक तो अत्यंत शोकके मारे मरजाते हैं. या बीमार हो जाते हैं, शरीर सूखा देते हैं, कितनीक स्त्रीओंकी छातीमेंसें (कूटनेके लिये छाती फट जाती है उससें) लोहु निकलता है-चांदी पड जाती है, किसीकी छातीमें इसी सबबसें दर्द होता है-ऐसी उपाधि [शरीरकों] होती है. उस तर्फ लक्ष न देकर रोना पीटना शुरुही रखते हैं ये फल पानेका कारण अज्ञानता है. फिर बाजारकी अंदर-शरियाममार्गमें (जाहिर राहस्तेपर) भी इसी तरह रोना पीटना करकें दूसरेके जीवकोंभी दुःख देखकर दिलगीरी होती हैं. अच्छे घरानेकी औरतेंभी बेमुलाहजेसें-बेहुदी सिकल बनाकर खुल्लेसीनेसें खडी रहकर कूटती पीटती रोती चिल्लाती है येभी बेइज्जतकी बात है. अभीके राज्यकर्त्ताकोंभी ये बात पसंद नहीं हैं. राज्यद्वारी-अधिकारी-अफसर-विद्वानवर्गकोंभी बिलकुल ये रिवाज वाहियात मालूम होता है; तौभी यह काम जारी रखते हैं. कितनेक मनुष्य तो युं मानते है कि अपन कूट-पीट-चिल्लाकर न रोवेंगे तो लोगमें अपना बुरा कहा जायगा वास्ते शोभा दिखलानेके लिये याने मरनेवालेके ऊपर बडा प्यार, या जिसके घर मैयत-मरण हुवा हो उसके साथ गाढ संबंध दिखलानेके लिये जोरसें कूद कूद करकें लंबे हाथ कर चिल्लाकें रोते पीटते हैं और शोभा कायम रही मानते हैं-यह कितनी भारी मूर्खता है ? इन बातोंसें इस लोकमेंभी नुकसान हांसिल होता है और परलोकमें पापके लिये नरक तिर्यंचगते पाते हैं. तो जब इस कामसें उभय भव भ्रष्ट हो बहुत दुःख उठाने पडते है तब क्यों नहीं छोडना चाहियें ? ज्ञानी जन तो इतना शोच करते है कि जिस चीजका संयोग है उसका वियोगभी है. यातो अपन कुटुंब छोडकर या कुटुंब अपनकों छोडकर जाय इन दोमेंसें एक रीतिसें तो वियोग होगाही होगा. जो जो वस्तुका जो जो स्वभाव है वो ध्यानमें लेकर बिलकुल शोक नहीं करते हैं. धन-गुमास्ता-वस्त्र-मकान और ऐसीही इच्छित प्रिय वस्तु जानेसें शोक करते है उसमें शोचनेका है कि-इच्छित वस्तु पूर्वपुन्यसें स्थिर रहती है, पुन्य पूर्ण हुवा कि वियोग होता है पीछे गत वस्तुका शोक करनेसें कुछ फायदा

ों है. कितनेक मनुष्य अपमान होनेसें शोकवंत होते हैं; परंतु अपमान तो न करने योग्य काम या न बोलने योग्य बोलसें होता है, या पुन्यकी न्यूनतासें होता है; वास्ते वो काम छोड देवै तो अपमान न होवैगा. शोक करनेसें क्या फायदा? तोभी शोक करता है. इसी मुजब जिन जिन बाबतका शोक करता है उन उन बाबतोंसें पापकर्म बंधाते हैं. शोकसें शरीर नरम होता है, बुद्धिकीभी हानि होती है और शोकके कारण दूर करनेकाभी उद्यम नहीं हो सकता, उससें विशेष शोक पैदा होता है. इसतरह प्रत्यक्षतासेंभी अज्ञानीजन अज्ञताके मारे नहीं शोचते हैं. ज्ञानीजनकों तो शोकके कारण उत्पन्न होते हैं तो चिंतवन करते है कि मेरे आत्माके सिवा दूसरा मेरा पदार्थ हैही नहीं. जो पुद्गलीक वस्तुयें है वो तो संयोग वियोगसें करकें युक्त हैं तो मेरे किस लिये शोक करना? जो जो बनता है वो पूर्व कर्मबंधनानुसार बनता है; वास्ते जो जो कर्मउदय आये है वो समभावसें भुक्तने चाहियें कि जिस्से वो कर्मकी निर्जरा होवै और आत्माभी निर्मल होवै. ऐसी दशा बन जाय तो शोक [जीवकों] रहवैही नहीं या होवैही नहीं. भगवंतजी तो आत्मगुण सिवा दूसरी परभावदशा जो जो जडभावकी वर्त्ते उसमें राग द्वेष करतेही नहीं. उन्होंनें तो शोकमोहनीकर्मका नाश करकें आपके आत्मगुण प्रकट किये हैं. लाजिम है कि जिसको आत्मगुण प्रकट करनेकी दर्कार हो तो उसकों प्रभुजीकी मिसाल चलना तो बेशक आत्मगुण प्रकट होवै.

ग्यारहवा दुगंछा दूषण सो—कोइ खुशबुवाली चीज देखकर प्रसन्न होवै और बदबुवाली चीज देख दिलगीर होवै. अगर तो जो जो पदार्थ आपकों नापसंद हो वो पदार्थ दुगंछनीक लगै. यह प्रकृति जीवकों अनादिसें बनी हुइ है; परंतु ज्ञानवंत तो जिस वस्तुका जो स्वभाव है वो समझ लिया है इससें कोइभी वस्तुकी दुगंछा नहीं करते हैं. जो जो कारण मिलते है वो पूर्वकर्मोदय मुवाफिक मिलते हैं, उससें समभावमें रहकर उसके विकल्प नहीं करते. उनके मनसें तो जो जडपदार्थ आत्माकों घात करते हैं उनके उपर सहजसें दुगंछा होती है. और अज्ञानी जीव जिनकों जो पसंद पडे उसमें वो राजी खुसी होता है; परंतु विषयादिकके कटु फल ध्यानमें नहीं लेता है कि नरकमें इसके कितने और कैसे दुःख उठाने पडेंगे? और जन्ममरणकेभी कैसे दुःखं उठाने पडेंगे? देखिये, जिसकों तुम देखकर दुगंछा करते हो उनको भंगी शिरपर उठाकें जहां फेंकनेकी जगह हो वहां फेंकते हैं. ये काम किस लिये करना

पडता है? पिछले जन्ममें न करने योग्य काम किये उसके फल हैं तो अपनकोंभी विषय सेवन न करनेके लिये भगवंतजीने फुरमाया है कि-' जो विपय भुक्तेंगे उनकों ऐसे दुःख भुक्तनेही पडेंगे.' तो ये विषयादि दुगंछनीक जानकर त्याग करना. और आत्मगुणमे प्रवर्त्तना. भगवंतजीने इसी तरह चलकर दुगंछामोहनीका त्याग-नाश करकें आपके सहज स्वभावसें स्वाभाविक गुण प्रकट किये तिसी तरह अपनेभी गुण प्रकट होवें

वारहवा कामदोष-दूषण सो सर्व दूषणोंका सरदार-अफसर है. कामदेवके तावे होनेसें पुरुषभी महापुरुष होनेकी तक पाकरकें पीछे पड जाते हैं. संसारी जीव अनादिकालके कामके वश पडे हैं उसकी [काम] संज्ञा चली आती है. वाल्यावस्थामेंभी कामचेष्टा करते हैं. संसार भ्रमणका कारण कामदेव है. कामदेवके मारे माता-पिता-भाइ-लडके-मित्र-विरादर-ज्ञानी इन सवका स्नेह संवंध तोड देता है. कामके तावे होनेसें धनकाभी नाश होता है. शरीरभी निर्वल होता हैं, आयुकीभी हानि होवी है, और अनेक रोग शोक होते है. इतने दुःख तो जीवकों प्रत्यक्ष आजमायसमें आ रहेहैं; मगर अनादिकालसें कामाधीन रहनेके मारे कामांध हुवा है वो अंधतासें करकें कोइभी नुकशान या दुःख नहीं देख सकता है. कितनेक राजा महाराजा कामदेवके कैदी होनेसें राज्यभ्रष्ट-पदभ्रष्ट होते हैं वो अपनने देखाभी है और इतिहासभी वतलाही रहा है; तोभी जीवकों अकल नहीं-शानभान नहीं आती ए कैसी वडे आश्चर्यकी वात है ! ! कि कर्म किस प्रकार नाच नचाता है ? ! ! ! कामांधतासें कितनेक जन अपनी लडकी-भगिनी-जनेताकाभी शोच विचार नहीं रखते हैं, तो दूसरी संबंधी औरतोंके वास्ते तो कहनाही क्या ? उनके लिये तो विचारही क्या रक्खें ? कितनीक कामांध मातायें कामके तावे होनेसें अपने पुत्रका, पतिका नाश कर देती हैं. ऐसी कामदशा पीडती है, और उससें इस लोकके दुःख ऐसे अनेक प्रकारसें भुक्तने पडते हैं; और परलोकके दुःख श्रवण करने हो तो सुयगडांगजी सूत्रसें देख लेना. भवभावके ग्रंथसें देखो-नरकके अंदर परमाधामी लोहेकी अंगारेके समान तप्त हुइ पूतलीयोंसें लिपटवाते है. नरकमें पॉव रखनेकी जगह है वो ऐसी है कि-जैसी तलवारकी धारपर पॉव रखना. [वैसी है.] उष्णवेदना ऐसी है कि-हजारों मन लकडे जलते हो वैसी चितामें सुलावै उससेंभी जियादे वेदना होती है. शीतवेदना

ऐसी है कि उस जाडे-ठंडीका मुकाबला नहीं हो सकता-चाहे जीतनी आगसें शरीर शेक ले तोभी वो ठंडी निकलती नही. जन्मकी जगह ऐसी है कि राइ राइ जैसे टूकडे करकें उत्पन्न होनेकी जगहमेंसें बहार निकाले. वैक्रियशरीरका स्वभाव ऐसा है कि सब टूकडे इकट्ठे हुवे कि पारेकी मिसाल मिल जाय. (वैसें शरीर खडा हो जाय.) कि पीछे परमाधामी अनेक प्रकारकी वेदना करें. ऐसे दुःख मनुष्यके अल्प आयुमें मनुष्य उसमें अल्पकाल सुख माणते हैं मगर उस अल्प सुखके मारे बडे सागरोपमके आयु तक दुःख भुक्तनेके हैं ऐसा कितनेक जीव जानते हे; तोभी कामांधतासें वे दुःख लक्षमें नहीं ल्याते विशेष कामांध हो रहते हैं. जो पुरुष या स्त्रीकी भवस्थिति परिपक्व हुइ है वो तो संसारका त्याग करकें अपने आत्मस्वरूपमें आनंदतासें रहते हैं. कितनेक पुरुष बाहरसें स्त्रीका त्याग करते हैं; मगर अंतरंगमेंसें (स्त्रीपरसें) चित्त हठ नहीं गया होता है, तो पीछे संसारमें आते हैं-गिरतें हैं. कितनेक संसारमें नहीं आतें हैं; परंतु चित्त बिगडा हुवा रहता है. कितनेककों राग रहता है और जब स्त्रीका मुँह देखें तब शांत चित्त रहता है. ऐसें अनेक प्रकारकी कामविटंबनायें हैं. मगर जिनका आत्मतत्त्वमें दृढानुराग हो रहा है याने सुदर्शनशेठके समान हो रहा हो उसकों अभयाराणी जैसी विचित्र प्रकारसें शरीर स्पर्शें, अवाच्य (गुह्य) प्रदेशकों बहुत विटंबना करे; तोभी काम प्रदीप्त न होवै. अभयाके प्रपंची प्रबंधसें सुदर्शनशेठकों राजाने शूलीका हुकम फुरमाया और शूलीपर चडानेकों ले गये तो सत्य-अखंड-अनन्य शीलके प्रभावसें शूली मिटकर सुवर्ण-सिंहासन हो गया-ये महीमा कामदेवकों जीतै उनका है! चक्रवर्तीराजाकों एक लक्ष बाणु हजार स्त्री होती हैं, उनकोंभी जब ज्ञानदशा जाग्रत होती है तब उन स्त्रीओंके स्हामनेंभी नहीं देखते. इसतरह कामदेव जीतते हैं. उसी तरह भगवंतजीनें सर्वथा कामकों जीत लिया है, उससें काम दूषण नष्ट हुवा है और भगवंत हुवै. इसी मुताबिक जिनकों आत्माके गुण प्रकट करनेकी दर्कार हो उनकों कामेच्छासें मुक्त होनेका अभ्यास करना. अभ्याससें सभी चीज बनती हैं. कामसेवन करना यह जडधर्म है-आत्मधर्म नहीं. आत्मस्वभावमें वहार नहीं वर्त्तन करना. ऐसे भाव आनेसें सहजसें काम जीता जाता है याने उसका पराजित किया जाता है. जीनने कामदेवकों जित लिया उननें दुनियांमें सबपर जीत मिलाइही समझ लैना याने कामदेव जीत लिये बाद सबकों जीतना सुलभ-सरल है. जिन जिन

पुरुषोंनें कामका पराजय किया है उनके चरित्र बांचनेका उद्यम करना, शिलोपदेश-माला बांचनेसें काम जीतनेका फायदा–लाभ समझा जायगा. मुक्तिप्राप्तिका सर्वोत्तम समीप उपाय काम जीतना यही है.

तेरहवा अज्ञान नामक दूषण है–ये अज्ञान दोषभी अनादिका है, उससें करकें आत्मा क्या चीज है? शरीर क्या है? दुःख सुख काहेसें आते है? उनका चाहियें वैसा ज्ञान नहीं हो सकता. शरीरके दुःखसें दुःखी होता है, सुगुरुकों कुगुरु मानै, कुदेवकों सुदेव मानै, और सुदेवकों कुदेव, और कुधर्मकों सुधर्म माने याता सुधर्मकों कुधर्म मानै, शाताके कारणोंके अशाताके और अशाताके कारणोंकों शाताके कारण मानै, जो जो प्रकृति जडकी करै वो अपनीही मानै, धर्म प्रवृत्ति करै तो अधर्म होवै. वैसी करै, धन कुटुंबका मिलाप सो परवस्तु है उसकों अपनी मानकर आनंदित बनै, ज्ञानवंतकों ज्ञानवान् न जानै, तत्त्वज्ञान होवे वैसा उद्यम न करे, अज्ञानके जोरसें पंचेंद्रियके तेइस विषय हैं उसमें लुब्ध हो वर्त्तै, ज्ञानीजनने वतलाये हुवे षट् द्रव्य पदार्थ, उसके गुण पर्याय, उसका ज्ञान धारण न करै, उसकों नौ तत्त्वका ज्ञान न होवै, और अष्ट-कर्मकाभी स्वरूप नही जानै. कितनेक धर्म–मजहबवाले कर्मकों मानते हैं, मगर कर्म किसतरह या काहेसें उदय आवे? कर्म क्या पदार्थ है? कर्म काहेसें बंधे जाते हैं? और कर्मकी निर्जरा करकें आत्मा किस प्रकार निर्मल होवे? वो अज्ञानतासें करकें नहीं जानते हैं, ये अज्ञानका महात्म्य है. कितनेक बुरे कर्मके जोर प्रत्यक्ष हैं; तोभी अज्ञानताके जोरसें वो लक्षमें नहीं आते. किसी जीवकों कोइ मार डाले तो सरकार उसें फांसी देती है, वो प्रत्यक्ष दिखता है; तथापि फांसी जानेका डर मनुष्य नहीं रखते हैं और बदकाम करते हैं. झूठ बोलनेसें जूठी प्रतिज्ञाका काम–(केस–मुकदमा) चलता है. चौरी करनेसें कैद मिलती है. छिनाल करनेसेंभी कैद दंडकी शिक्षा होती है. याने ऐसी एसी वातें सबके समझनेमें हैं तोभी उन बावतोंके ऊपर अज्ञानतासें दुर्लक्ष दिया जाता है, और वैसे बदकाम कियेही करता है. अज्ञानतासें राजाके विरुद्ध आचरणभी करता है. ये अज्ञान दूर करनेका भाव हो आवे तो ज्ञानाभ्यास करना, शास्त्र पढना,–श्रवण करना, तो षट्द्रव्यका ज्ञान होता है. वो षट्-द्रव्य नीचे मुजब हैः—

१ धर्मास्तिकाय सो अजीवद्रव्य, अरूपी, अचेतन, अक्रिय, चलन साह्यगुण

सो जीव तथा पुद्‌गल चलै उसकों सहाय करनेका धर्म है. यहांपर किसीकों शंका होवैगी कि चलै उसकों सहायता क्या करनी है? उसका समाधान यही है कि मछली पानीमें तिरती हैं. अब तिरनेकी शक्ति तो आपकी है मगर पानीकी मदद चहिती है. पानी विगर नहीं तिर सकती है, उसी तरह जीव और पुद्‌गल चलें उसकों धर्मास्ति कायकी सहाय चाहियें.

२ अधर्मास्तिकाय–इसका स्वभाव धर्मास्तिकायसें विपरीत है. स्थिर रहनेकों सहाय करता है. मनुष्य, पानी हो और तिरते आता हो तो वो तिरता है; मगर थक जाता है, तो कोइ टेकरी या किनारा हाथ लग जाय तो स्थिर रह जाता है; परंतु जो ऐसी सहाय न मिलै तो स्थिर न रह सकता हैं. फिर धूपमेंसें आते थक गया हो तो वृक्ष या विश्राम स्थळ मिलता है तो वैठता है, उसी मुजब अधर्मास्तिकायकी सहायता–मददसें जीव, पुद्‌गल स्थिर होते हैं. इस द्रव्यकेभी चार गुण हैं याने अ-मूर्त्ति अर्थात् रूप नहीं, अचेतन अर्थात् जीवरहित, अक्रिय अर्थात् विभाविक कुछभी क्रिया न करनी, और स्थिर सहायगुण सो ऊपर मुजव स्थिर पदार्थकों सहाय करता है.

३ आकाशास्तिकाय–सो-लोक, जिसमें छ द्रव्यपदार्थ रहे हैं उसकों लोक कहा जाता है, अलोक, जिसमें आकाश सिवा पदार्थ नहीं. ऐसे लोकालोकमें व्याप्त होकर आकाशद्रव्य रहा है उसकेभी चार गुण हैं–याने अरूपी अर्थात् रूप नहीं, अचेतन अर्थात् जीवरहित, अक्रिय अर्थात् कोइ जातिकी क्रिया न करनी, और अवगाहना-गुण अर्थात् जीव पुद्‌गल पदार्थकों रहनेकी जगह देता है; कारण सारे लोकमें जीव पुद्‌गल भरे हुवे हैं, उसमें जगह नहीं वो आकाश जगह कर देता है. यहां शंका होगी कि जगह नहीं वो किस तरह कर देता है. इसका जवाब यही है कि दीवालमें बिल-कुल जगह नहीं होती; मगर खीला ठोकें तो दाखिल हो सकता है उसी तरह आका-शास्तिकाय जगह कर देता है.

४ कालद्रव्य उसमें पहेला वर्त्तनाकाल सूर्यकी चाल ऊपरसें गिना जाता है, जैसें कि–सूर्य अस्त होवै और उदय होवै उसके ऊपरसें गिनती होती है. वो गिनती संबंधी काल है. उसका माप सात श्वासोश्वाससें एक स्तोक होवै. सात स्तोकसें एक लव होता है. ७७ लवसें एक मुहूर्त्त (दो घडी) होता है. ३० मुहूर्त्तका दिवस, ३० दिनका महीना, १२ महीनेका एक वर्ष होता है. ऐसे पांच वर्ष होनेसें एक युग,

और २० युगसें १०० वर्ष होते है. दश सोसें १ हजार, सो हजारसें १ लाख, ८४ लाख वर्षसें एक पूर्वांग, ८४ लाख पूर्वांगसें एक पूर्व, एक पूर्वके अंक ७०५६००० ००००००००, चौराशी लाख पूर्वसें करकें एक त्रुटिटांग और ८४ त्रुटिटांगसें एक त्रुटित, ८४ लाख त्रुटितसें १ अडडांग, ८४ लाख अडडांगसें एक अडड होता है. ८४ लाख अडडसें १ अववांग, ८४ लाख अववांगसें १ अवव, ८४ लाख अववसें १ हुहुकांग होता है. ८४ लाख हुहुकांगसें १ उत्पलांग, ८४ लाख उत्पलांगसें १ उत्पल, ८४ लाख उत्पलसें १ पद्मांग, ८४ लाख पद्मांगसें एक पद्म होवै. ८४ लाख पद्मसें १ नलीनांग, ८४ लाख नलीनांगसें १ नलीन, ८४ लाख नलीनसें १ निपुरांग, ८४ लाख निपुरांगसें १ अर्थनेपुर, ८४ लाख अर्थनेपुरसें १ अयुतांग, ८४ लाख अयुतांगसें १ अयुत, ८४ लाख अयुतसें एक प्रयुतांग होता है. ८४ लाख प्रयुतांगसें १ प्रयुत, चौराशी लाख प्रयुतसें १ चुलिकांग, ८४ लाख चुलिकांगसें १ चुलिका होती है. ८४ लाख चुलिकासें १ शिर्षप्रहेलिकांग होवै और उसको चौराशी गुने करै तव शीर्षप्रहेलिका होवै. वो गुणाकारका अंक १९४ अक्षरका होवै सो नीचे मुजब है:—

७५८२६२२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४ ८०८०१८३१९६०००००००००००००००० ००००००००००००००००००००० ०००००० ००००००००००००००००००००००००००००००००० ०००००००००० ००० इस मुजब अनुयोगद्वार सूत्रजीकी टीकामें छपी हुइ चोंपडीके पत्र २४५ में है. १९४ अक्षरकी संख्या है. उससें अधिक संख्या गिननी मुश्किल पडनेसें विशेष अंक नहीं दर्शाये हैं; परंतु दूसरी तरहसें संख्या मनमें समझी जावै—मुंहसें न वोली जाय. फिर विशेष न्यून समझा जाय उसके लिये वतलाया है कि एक कुंवा चार गाउ उंडा ४ गाउ विशाल, और ४ गाउ लंवा हो उसमें युगलीएके सात दिनके वचेके केस लेकर उसके असंख्यात टूकडे करै, और उन टूकडोंसें वो कुवा भरकर उसपर हो चक्रवर्त्तिका लश्कर चला जाय तोभी वो दवाये हुवे वालके टूकडे न दव जाय वैसे भरै और हरहमेशां उन उसमें पानी प्रवेश न कर सके ऐसा सज्जड भर दे. पीछे उनमेंसें सो सो वर्ष हुवे वाद एक एक टूकडा निकालना. युं करनेसे कुल वालोके टूकडे बिकुल

गये बाद कुवा खाली हो जाय तब एक पल्योपम होवै. ऐसे दस कोटाकोटी पल्योपमसें एक सागरोपम होवै. वैसे सागरोपमके देव और नरकके आयु है. दूसरीभी गिनतियें काम लगती हैं-ये कालका स्वरूप जगतजीवोंके आयु वगैराकी गिनतिमें आता है. ये चंद्र सूर्यके आधारसें काल कहा जाता है. उसकों काल द्रव्यमें स्वाभाविक नहीं गिनते हैं. अब कालद्रव्य किसकों कहा जाय वो कहता हुं. छउं द्रव्यके अगुरु लघु पर्यायकी वर्त्तना होती है वो वर्त्तना एकसें दूसरी होनी उसका नाम काल्य है. वोही कालद्रव्य उपचरित है. पदार्थरूप नहीं. कारण कि द्रव्यकी वर्त्तना अपेक्षित है उससें पदार्थरूप नहीं. कालका गुण नइ वस्तुकों पुरानी करनेका है. कल जो वस्तु तैयार हुइ वो आज पुरानी कही जायगी. आज की सो नइ कही जावेगी. ये काल अपेक्षित कहा जाता है. काल अरूपी है. अचेतन अक्रिय नये पुराने गुण हैं. ऐसा कालद्रव्यका स्वरूप जानना.

५ द्रव्य पुद्गलास्तिकाय. उसके चार गुण हैं याने मूर्त्त अर्थात् नजर आते हैं. अचेतन अर्थात् जीवपना नहीं. सक्रिय अर्थात् मिलने विखरनेरूप क्रिया करता है-जीवकी साथ रहकर क्रिया करता है वास्ते क्रिया सहित है. और मिलन विखरन गुण है. जो पुद्गल परमाणुकों पुद्गल द्रव्य कहते हो वो परमाणु कैसा सूक्ष्म है! जलाया हुवा जलै नहीं, छेदनेसें छेदा न जाय, दृष्टिसें अगोचर है. ऐसें दो परमाणु मिलकर खंध होता है, उसें द्वीप्रदेशी खंध कहते है. ऐसें तीन चार आदि परमाणु मिलकर खंध होता है वो खंध दृष्टिगोचर नहीं होते. अनंत परमाणु मिलकर खंध होवै वो नजर आता है, उसें व्यवहार परमाणु कहते हैं. निश्चय नयसें तो खंध कहै. व्यवहारसे परमाणु कहनेका सबब यह है कि वैभी जलानेसें नही जलै, छेदनेसें छेद न हो सकै और एक परमाणुमें एक वर्ण एक गंध-एक रस-और दो स्पर्श रहे है. वर्त्तना मुजब और सत्ता मुजब तो पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श रहे हैं उससें परमाणुके पर्यायका पलटन पना होता है वो पलटन पनेसें सत्तामेंसें वर्त्तनारूप कालेका पीला होवै, पीलेका लाल वगैरः होवै-ऐसे फेरफार होवै. यह अधिकार अनुयोगद्वारजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र २७० में है वहांसें देख लेना. ऐसा परमाणुका स्वभाव है, उसस एक छूटे परमाणुका निश्चय परमाणु कहा है, और दूसरोंकों व्यवहार परमाणु कहा जाता है. निश्चय नयसें तो खंध कहा जावे. व्यवहारसें परमाणु कहनेका

सबब यही है कि दृष्टिसें अगोचर है वैभी जलानेसें न जले-शस्त्रसें छेदे न जाय ये व्यवहार परमाणु अनंतसें ऊतश्लक्षण श्लक्ष्णिका, वो आठसें करकें श्लक्ष्ण श्लक्ष्णिका कहै, उससें अष्टगुणेका नाम ऊर्द्धरेणु, वैसी अर्द्धरेणुसें एक त्रसरेणु याने जो सूर्य-ग्रासें छप्परके अदर छिद्रद्वारा मालूम होता है वो त्रसरेणु. वैसी ८ त्रसरेणुसें रथरेणु (रथ चलनेसें जो आकाशमें उडे वो रथरेणु कही जावे.) ८ रथरेणुसें एक देवकुरुके युगलियेका [मनुष्यका] वालाग्र होवे ८ वालाग्रसें १ हरिवर्षके मनुष्यका वालाग्र होवे. ऐसे ८ वालाग्रसें हेमवंतके मनुष्यका वालाग्र होवै, ऐसे ८ वालाग्रसें महाविदेह के मनुष्यका वालाग्र होवै. ऐसे ८ वालाग्रसें भरतक्षेत्रके मनुष्यका वालाग्र होवै. ऐसें आठ वालाग्रसें १ लीख होवै. ८ लीखसें १ जू, ८ जूसें १ यवमध्य होवै. ८ यवमध्यसें १ अंगुल होवै. छः अंगुलका १ पाद, १२ अंगुलसें १ विहस, २४ अंगुलसें १ हाथ, ४ हाथसें १ धनुष्, ऐसें दो हजार धनुषसें १ गाउ होवै. चार गाउका १ योजन, इसके तीन प्रकारके मान हैं वो अनुयोगद्वारजीकी प्रतमें पत्र ३९५ के अंदर देख लेना. इस मापकी वीचमेंके खंध और इससें वडे खंध अनेक प्रकारके होते हैं. विचित्र संस्थान विचित्र मापकें हैं. परमाणु वहुत और अवगाहना छोटी. परमाणु इससेंभी कम और अवगाहना वडी. कितनेक खंध नजर आवै-हाथमें पकडे न जाय. कितनेकके स्पर्श मालूम होवै; मगर नजर न आ सकें. कितनेक गंधसें मालूम होवै; परंतु नजरसें गंध मालूम न होवै-ऐसे विचित्र स्वभावके पुद्गल पुद्गलस्कंध होते हैं. और स्वभावसें विचित्र रीतिके पदार्थ वनते है-पीछे विखरभी जाते हैं वो देखनेमें आवे, और कामभी विचित्र प्रकारसें करै. जितने पदार्थ नजर आते है वो पुद्गल हैं. अपन जिसकों जीव कहते हैं वो जीव नजर नहीं आता; मगर जीवके ग्रहण किये हुवे शरीर नजर आते हैं; उस लिये समाधितंत्रमें यशोविजयजीने कहा है कि-"देखे सो चेतन नहीं, चेतन नहीं देखाय; रोष तोष किनसों करै, आपो आप बुझाय." याके कहनेकी मतलब इतनी है कि चेतन नजर नही आता. देखते हो सो चेतन नहीं मगर जड है-याने पुद्गल है. पुद्गलके लक्षण नौतत्त्वमें दश कहे हैं याने वर्ण, गंध, रस, फरस, शब्द, अंधेरा, उजाला, [illegible]-ताप, प्रभा, और छाउं-इन दश लक्षणोंमेंसें कोइभी लक्षण नजर आवै उसका नाम पुद्गल समझना. [illegible]रे पांच द्रव्य है वो नजर नहीं आते. ऐसा पुद्गल पदार्थका ज्ञान हो [illegible] विचारता है कि [illegible] आत्मा अरुपी और ये रुपी पदार्थ इसे मेरा कहता हुं यही अज्ञा[illegible] है. और ये अज्ञान [illegible] गड नहीं

यहांतक पुद्गलीक पदार्थकी इच्छा नहीं मिटती. और जड पदार्थकी इच्छा है वहांतक जीवकर्मसें मुक्त नहीं होता. ये पुद्गल पदार्थका ज्ञान भगवतीजीमें बहुत विस्तारसें है अनुयोगद्वारजी वगैरः सूत्रोंमेंभी है वो सुनोंगे तब विस्तार पूर्वक समझ पडेंगी. कर्म जो बंधे जाते हैं वोभी पुद्गल पदार्थ है पवन दृष्टिगोचर नहीं होता; मगर स्पर्श होता है वो पवनके पुद्गलोंका होता है. इस तरह कितनेक सूक्ष्म पदार्थ दृष्टिपथमें नहीं आवे-जैसें कि अंधेरा, उजाला-इनको पकडै तो पकडे नहीं जाय; पंतु रुप नजर आता है; वास्ते पुद्गल पदार्थ समझना. बादर पदार्थ जाननेसें सूक्ष्म पदार्थका अनुमानसें निर्णय करना.

६ जीवद्रव्य सो अरूपी याने जीवका स्वरूप नहीं. सचेतन-शक्ति है, (चेतन याने चैतना-जानना) जाननेकी शक्ति जीव बिदून दूसरे कोइ पदार्थमें हैही नहीं. अक्रिय-कोइभी क्रिया करनेका चेतनका धर्म नहीं, जो क्रिया होती है अनादिकालके जीव कर्मका संबंध है उन कर्मके संयोगसें अपने आत्माका स्वरूप भूल गया है. जैसें मदिरा पी करकें मस्त हो जाता है तब क्या करने योग्य है और क्या अयोग्य है, ये ज्ञान मदिरा पीनेवालेकों नहीं रहता है, और अपना जातिस्वभाव नीति छोडकर वर्त्तता है, वैसे आत्मा अपना स्वभाव छोडकर विभाववर्त्तनाकी क्रिया करता है. स्वाभाविक वर्त्तनाका नाम क्रिया नहीं-विभावमें वर्त्तै उसें क्रिया कही जावै; वास्ते स्वाभाविकधर्म अक्रिय है; मगर अज्ञानदशाके योगसें जीवका स्वभावही भूल गया है-शरीर है सोही मैं हुं ऐसा जानता है-शरीरके दुःखसें दुःखी होता है और शरीरके सुखसें सुखी मानता है, धन पुत्र परिवारकों देख करकें आनंदित होता है. ये सब पदार्थ आत्मासें भिन्न है; परंतु अज्ञानताके मारे नहीं जान सकता है. आत्माके छः लक्षण कहे हैं-याने अनंतज्ञान सो जगतमें अनंत जीव हैं-अनंत पुद्गल पदार्थ है, एक एक पदार्थमें अनंत गुण पर्याय रहे हैं उनकी त्रिकालवर्त्तना होती है वो सब एक समयमें जान सकै इतनी आत्माकी शक्ति है; मगर जडसंगतिसें आच्छादित हो गइ है, उससें जीव नहीं जान सकता है. अपने शरीरके अंदर सर्व व्यापी हो आत रहा है उसेंभी प्रत्यक्षतासें नहीं जान सकता है. और अंदर [शरीर अंदर] के वि गमें क्या क्या पदार्थ रहे हैं वोभी आत्मा नहीं जान सकता सो ज्ञान आच्छादित हो गया उसका फल है. जब जीवका भाग्योदय होता है तब सर्वज्ञके वचनकी प्रतीति

होता है. और आवर्ण क्षय होनेका उद्यम करता है तो क्षय हो जाता है, तब वो वस प्रत्यक्ष मालूम होता है. वो ज्ञानगुण सर्वथा तो ज्ञानावरणी कर्म क्षय होवै तब प्रकटता है. और थोडे थोडे कर्मका क्षयोपशम याने कितनेक क्षय पाये हैं–कितनेक उपशांत हुवे हैं इससें सत्तामें अभी उदय न आवै ऐसे किये हैं, उसकों उपशम कहा जाता है. इसतरह क्षयोपशम होनेसें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान ये चार ज्ञान होते हैं. सर्वथा प्रकारसें विशेष विशुद्धि हो कर्मका क्षय होनेसें केवलज्ञान होता है. ऐसे ज्ञान प्रकट न हुवे उससें अज्ञानपना रहा है. इसी मुजब आत्माका दर्शन गुण है. दर्शन और ज्ञानमें क्या भेद–तफावत है? ज्ञानका विशेष उपयोग और दर्शनका सामान्य उपयोग–इस प्रकार दर्शन लक्षण है. उसकेभी आवरणके लिये दर्शन गुण प्रकट नहीं होता; जैसें कि चक्षुका विषय १ लाख योजनका है, तोभी इतने दूर रहकर नहीं देख सकते, वो आवरणका जोर है. इसी मुजब पांचों इंद्रियोंकी शास्त्रमें शक्ति कही है. उतनी नहीं चलती वो आवरणका प्रभाव है. फिर केवलदर्शनसें सामान्य बोध सब पदार्थका होता है वो केवलदर्शनकों आवरण लगनेसें दर्शनगुणका लक्षण नहीं वर्त्तता–वो लक्षण सर्वथा आवरणके क्षय होनेसें प्रकटेगा. चारित्रलक्षण सो आत्मा आत्माके स्वभावमें स्थिर रहवै. अब वो स्थिरता आच्छादित होकें विभावमें स्थिरता हुइ है, और मोहनीकर्मका नाश होवैगा तब आत्मस्वभावमें स्थिरता होवैगी. उसके कारणरूप पांच चारित्र हैं और जितना जितना कषाय क्षय होवैगा उतना उतना चारित्रगुण प्रकट होवैगा. संपूर्ण क्षयसें संपूर्ण चारित्र लक्षण प्रकट होवैगा. तप लक्षण सो आच्छादित होनेसें तपस्या होती नहीं और विचित्र इच्छाये वर्त्तती हैं. और अंतरायकर्म क्षय होनेसें सर्वथा पुद्गल पदार्थकी इच्छायें नाश होवैगी, उसके पेस्तर अंश अंशसें इच्छायें रूकी जायगी उतना उतना तपलक्षण प्रकट होवैगा. पांचवा वीर्यनामक लक्षण वो आत्माकी अनंत वीर्यशक्ति है; मगर वो आच्छादित हो गइ है. जितना जितना वीर्यांतरायका क्षयोपशम होता है उतनी उतनी आत्माकी वीर्यशक्ति शरीरमें रह करकें चलती है. जैसें कि श्रीमत् वीराधिवीर वीरप्रभुजीनें एक दिनकी उमरमेंही पांवकी अंतांगुलीसें (अंगूठेसें?) मेरुगिरिकों चलित किया इतनी शक्ति काहांसें जाग्रत हुइ? किसी जीवकों दुःख नहीं दिया और आपकों किसिनें दुःख दिये हैं वो सहन किये. और दुःख देनेवालेकी फिर दया ल्याकर उसकों प्र-

तिबोध दिया. देखिये चंडकोशि सर्पनें दंश दिया तो उसकों प्रतिबोध देकर अनशन करा करें देवलोकमें वैमानिक देव बनाया इसतरह दयाके परिणामसें शक्तियें प्रकटकी. अपनी शक्ति नाश हो गइ है वो दयाके परिणाम नष्ट होनेसें-हिंसाकी प्रवृत्ति करनेसें वीर्य-बल नष्ट हो गया है. वो फिर दयाके भावमें वर्ते तो वीर्यशक्ति जाग्रत होवे. वो दया दो प्रकारकी होनी चाहियें याने द्रव्य दया और भाव दया. द्रव्य दया उसें कही जाती है कि एकेंद्रि जीवसें लगाकर पंचेंद्रि तक कोइभी जीवकों न मारना. न किसी प्रकारका उन्होंकों दुःख देना. भाव दया उसें कही जाती है कि-अैसे जीवोंकों दुःख देनेकी प्रवर्त्तना करनी सो आत्माका धर्म नहीं, आत्माकों आत्माके स्वभावमें रहना वो न रहनेसें आत्माके भाव प्राणकी हानी होती है. आत्माका भाव प्राण ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य यह चार कहे हैं. सो जितनी विभाव दशाकी वर्त्तना हो वैसी उतनी नाश होवैगी. जितनी जितनी विभाव दशा त्याग होवैगी उतनी भाव दया हो आवैगी. सो ऐसी भाव दया जितनी प्रगट होवैगी उतनी उतनी वीर्यशक्ति जाग्रत होवैगी. और संपूर्ण वीर्य गुण सब प्रकारसें कर्म नाश होवैगा तब प्रकट होवैगा यही वीर्यका लक्षण है.

६ उपभोग लक्षण-याने उपभोग क्या है वो जाननेकी शक्ति है; परंतु जाननेके लिये चित्त च्होंटाना उस रूप उपगोग नहीं करते वहांतक नहीं जान सकते है. वो उपयोग ज्ञान दर्शनके भेदसें बारह प्रकारका है वो कर्मग्रंथसें जान लैना.

यह छः लक्षण जीव द्रव्यके हैं. वो जब तक जीव नहीं जानता है तब तक उसकों अपनी पराइ वस्तुकी खबर नहीं पडती है, वो सब अज्ञानताके फ हैं. जीव सदा अविनाशी है, वो अपना स्वरूप न जाननेसें हमेशां मरनेका भय रखता है. अैसे अनंत गुण आत्माके हैं वो केवलज्ञानी महाराज सिवा दूसरे जीव नहीं जान सकते हैं. जीवके १४ भेद, अगर ५६३ बतलाये हैं. वो कर्म संयोगसें करकें शरीर, इंद्रियें वगैरः के तफावतका है. बाकी कर्मरहित सत्तासें सब समान हैं. भेद नहीं; तोंभी भेद जानना, वो अधिक न्यून व्यवहारमें है उसकी समझके लिये लिखता हुं.

१, एकेंद्रि सूक्ष्म सो-चर्मचक्षुसें मालूम नहीं होते, २, एकेंद्रीबादर सो-मालूम हो सकें. ३, बेइंद्रि-दो इंद्रिवाले, ४, तेइंद्रि-तीन इंद्रिवाले, ५, चौरेंद्रि-चार इंद्रि-

वाले, ६,असन्नि पंचेंद्रि सो मनरहित, ओर ७ सन्नि पंचेंद्रि सो मन सहित.

यह सात जातिके पर्याप्ते याने पर्याप्ति पूर्ण की हुइ. और अपर्याप्ते याने अपनी पर्याप्ति पूरी न की हुइ. अर्थात् ये सात पर्याप्ते और सात अपर्याप्ते मिलकर १४ भेद जीवके होते हैं. अब इसके ५१३ भेद विस्तारसें कहता हुं:—

१९८ देवताके भेद इस मुजब हैं कि, १० भुवनपति, १५ परमाधामिके देव, १६ व्यंतरजातिके देव, १० तिर्यक् जंभकदेव, १० योतिषिकी जातिके देव, १२ देवलोक–वैमानिककी जातिके देव, ३ किल्वीषियेकी जातिके (भंगी जैसे) देव, ९ लौकांतिक जातिके एकावतारी देव, ९ ग्रैवेयक जातिके देव और ५ अनुत्तर विमानके देव ये–कुल्ल ९९ जातिके देव सो पर्याप्ते अपर्याप्ते मिलकर १९८ हुवे. इन्ह देवोंकों कवल आहार नहीं, अपनी मरजी मुजब आहारका स्वाद आता है, [कितनेक हीन पुन्यवाले होवे उन्होंकों मरजी मुजब नहींबी बन सके] देवताकी जातिकों वैक्रिय शरीर है, उससें रोगादि पैदा नहीं होते हैं. मनुष्यके आयुकों उपक्रम लगता है वैसे देवकों न लगे–पूर्ण आयुष मरैं. एक दूसरेकी ऋद्धिमें फेरफार बहुत होता है, व्यापार रोजगार करनेकी कुछ जरूर नहीं पडती. ये सामान्यपनेसें देवकी जानी कही.

३०३ मनुष्यकी जाती हैं वो गिनाता हुं. (और उसमें तीन जातिके होते हैं.) १५ कर्मभूमिके मनुष्य. कर्मभूमि किसकों कहते हैं ? जहांपर असि याने हथियार–तलवार–भाला–छुरी–कोष–कुल्हारे–औजार इन वस्तुयोंकों असि (जीव वध होनेका ओजार) कहीजाती है. और जहां इनकी व्यपरास होती है. तथा मसी याने शाहीसें चोपडे–बही लिख में आती है, और कृषि याने खेतीवाडीका काम होता है–ये तीन जातिके कर्म जिस क्षेत्रोंम करनेका हो उसकों कर्मभूमि कहते हैं. और वैसी भूमिमें रहनेवालोंकों कर्मभूमि मनुष्य कहेजाते हैं. याने ३ जंबुद्वीपमें मनुष्य, १ भरतक्षेत्र, १ ऐरव्रतक्षेत्र, १ महाविदेहक्षेत्र. ६ धातकीखंडद्वीपमें मनुष्य, २ भरतक्षेत्र, २ ऐरव्रतक्षेत्र, २ महाविदेहक्षेत्र. ६ पुष्करावर्त्तद्वीपके अंदर मनुष्य, २ भरतक्षेत्र, २ ऐरव्रतक्षेत्र, २ महाविदेहक्षेत्र. ये १५ क्षेत्रमें रहनेवाले मनुष्य १५ जातिके हैं, उसमें भरतक्षेत्र तथा ऐरव्रतक्षेत्रके मनुष्यकी रीति समान है, कालस्थितिभी समान है, छउं आरेकी हकीकत समान है. पांच महाविदेहक्षेत्रमें सदा तीर्थंकरजी विचरते प्राप्त होते हैं. कममेंकम एक महाविदेहमें चार तीर्थंकरजी होने चाहियें–ऐसा जंबुद्वीपपन्नत्तिमें अधिकार है. कोइ ग्रंथमें

दोन्भी कहे हैं. ऐसा प्रवचनसारोद्धारमें कहा है. तत्त्वकेवलीगम्य. पुनः उत्कृष्ट कालमें एक महाविदेह क्षेत्रमें ३२ विजयं हैं उन सब विजयमें एक एक तीर्थंकरमहाराज होवें, इससें एक महाविदेहमें ३२ तीर्थंकर विचरते प्राप्त होवै. फिर केवलज्ञानी सदाकाल प्राप्त होवै. मोक्षमार्ग हमेशां चलता रहै, जैसें भरत, ऐरवृतमें मोक्षमार्ग तीन आरेमें होता है (खुल्ला होता है.) और दूसरे आरेमें मोक्षमार्ग बंध हो जाता है. वैसें वहां नहीं. आयुके अंदरथी भरत ऐरवृतमें कम वर्त्तता है. वैसें वहां नहीं. सदा क्रोड पूर्वका आयु है. शरीरमान पांचसो धनुष्यका है-यह तफावत है. दूसराभी तफावत शास्त्रसें देख लेना.

३० अकर्मभूमि और छपन्न अंतरद्वीपके मनुष्य युगलिये हैं, वो मनुष्योंको व्यापार, रोजगार, रसोइ बनाना, खेती करना, कोइभी जातके औजार बनाना, वस्त्र पहनना, ये कुछभी करनेका नहीं. मतलबमें असी–मसी–कृषि ये तीन कर्मभूमिके मनुष्य हैं वैसे वहां नहीं. फकत कल्पवृक्ष फल देवै सो खाना, कल्पवृक्षसें घर बन गये हुवेही रहते हैं–उसमें रहते हैं. जिसकी जितनी मर्यादा है उस प्रमाणसें आहारकी इच्छा होवै उस वक्त मरजी मुजब कल्पवृक्ष फल देवै, आयु, शरीरभी बडे हैं, वो हरएक क्षेत्र अपेक्षित है [सो आगे कहा जायगा.] और वहांसें मरकें देवता होवै. दूसरी गतिमें न जाय; क्यों कि सरल स्वभावी हैं. कठीन रागद्वेष नहीं.

१० हैमवंत और ऐरन्नत युगलियोंके क्षेत्र, २ जंबुद्वीपमें, ४ धातकीखंडमें और ४ पुष्करार्द्धमें. ये दश क्षेत्रोंमे युगलिये मनुष्य होते हैं उन्होंका शरीरमान १ गाउक, आयु १ पल्योपमका, एक रोजके अंतरसें आवलेप्रमाण आहार करैं, आयुष्यके अंतपर एक जोडेका स्त्री गर्भधारण करै, उनका जन्म हुवे बाद ७९ दिन तक उस बालक बालिकाकी माता पिता प्रतिपालना करै, पीछे माता पिता मरणके स्वाधीन हो देवलोकमें जाते हैं.

१० हरिवर्ष और रम्यक ये दोनु क्षेत्र नीचेके द्वीपमें हैं. २ क्षेत्र जंबुद्वीपमें, ४ पुष्करार्द्धमें, ४ धातकीखंडमें. इन दश क्षेत्रोंके युगलियोंका देहमान दो गाउ, आयु दो पल्योपमका, दो दिनके अंतर आहार बेर प्रमाण करै और ६४ दिन बालकोंकी प्रतिपालना करैं.

१० देवकुरु, उत्तरकुरुके युगलियोंका क्षेत्र, २ जंबुद्वीपमें, ४ पुष्करार्द्धमें, और

४ धातकीखंडमें हैं. इन दश क्षेत्रके युगलियोंका देहमान ३ गाउका, आयु तीन प-ल्योपमका, तीन दिनके अंतर अरहरके जितना आहार करै. [कल्पवृक्षके फलका आहार करै.] और ४९ दिवस बालकोंकी प्रतिपालना करकें काल कर जाँय. और देवता होवे. ये तीस क्षेत्रके मनुष्यकों अकर्मभूमिके मनुष्य कहेजाते हैं.

५६ अंतरद्वीपके मनुष्य सो-जंबुद्वीपकी जगतीके कोटकी नजदीक हेमवंत और शिखरी पर्वत हैं, उन दोनु पर्वतोंमेंसें दाढाएं निकलती है और वो कोटके ऊपर होकर समुद्रमें गइ हैं. ये दाढाएं चार चार होती हैं, और एक एक दाढाके ऊपर सात सात द्वीप हैं, तो दोनु पाहाडकी ८ दाढायोंके ऊपर ५६ द्वीप हुवें. उस द्वीपोंकों अंतरद्वीप क्यौं कहाजाता है? लवण समुद्रपर अद्धर रहे हैं उमीसें अंतरद्वीप कहेजाते हैं, और उस अंतरद्वीपपर रहनेवाले युगलियोंकों अंतरद्वीपके मनुष्य कहेजाते है. उन मनुष्योंका शरीरमान ८०० धनुषका, आयु पल्योपमके असंख्यातमें हिस्सेका और आहार कल्पवृक्षके फलका होता है. ये कुल १०१ क्षेत्रके मनुष्य पर्याप्ता अपर्याप्ता ये दोनु भेद गर्भजके गिननेसें २०२ भेद हुवे. उसमें १०१ भेद समूर्छिम मनुष्यके दाखिल करना जिस्सें कुल ३०३ भेद मनुष्यजातिके होतें हैं. समूर्छिम मनुष्य किसकों कहेजाते हैं? मनुष्यके मलमूत्र, लींट, वमन, थूंक, रूधिर, मांस, वीर्य, चमडीं वगैरः मनुष्य अंगके पदार्थमें उत्पन्न होवें. आयु अंतर्मुहूर्त्तका, अपर्याप्ति अवस्थामेंही मर जावें-पर्याप्ति पूरी करैही नहीं. शरीरमानभी अंगुलके असंख्यातवे हिस्सेका होता है. जिस्सें देखनेमेंभी न आ सकै. ये ७-८ प्राण बांधतेही मरण पावें.

तीर्यचके ४८ भेद हैं याने एकेंद्री सो जिसके एक स्पर्शेद्रि है. उसकेभी भेद इस मुजब हैं कि-पृथिवींकाय सो मिट्टी, पाषाण, रत्न, सुन्ना, धातु यें, मोती-ये पृथ्वि-काय कहेजावें. (मोतीकों अनुयोगद्वारजीकी टीकामें पृथ्विकाय और अचित्त कहे हैं.) इस बाबतमें शंका होवे कि 'सीपके वदनमें पृथ्विकाय क्यौं होवै?' तो हम खुलासा करते हैं कि-मनुष्यके शरीरमें पथरी-पाषाणवी होती है वो पृथ्विकाय है, वसी मुजब मोतीकाभी समझ लेना. ये पृथ्विकायके पत्थर वडे वडे नजर आते हैं तोभी ये असंख्याते जीवपिंड हैं. एक आंवलेके जितनी मिट्टी या पत्थर लिया हो उसमें असंख्यात जीव हैं. एक जीवका शरीर अंगुलके असंख्यातवे भागका है वो सबका पिंडभूत है. ये जीवके शरीर कल्पनासें खसखसके समान करैं तो एक लाख

योजनका जंबुद्वीप हैं उसमेंभी न समाये जाँय ऐसी पृथ्विकायके शरीरकी सूक्ष्मता है. ये पृथ्विकायका उत्कृष्ट आयु २२००० वर्षका है-सो बादर पृथ्विकायका याने नजर आ सके उनका स्वरूप कहा है. सूक्ष्म पृथ्विकायके जीवकों तो चर्मचक्षुवाले नहीं देख सकते हैं, फकत केवलज्ञानीजी अपने ज्ञानसें देखकर फुरमाया है. वे चौदह राजलोकमें सब जगहपर हैं. उनका आयुष्य जघन्य और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्तका है. ये पृथ्विकायके दो भेदकोंभी पर्याप्ते, याने जिसने चार पर्याप्ति पूरी की है वो, और अपर्याप्ते याने जिसने चार पर्याप्ति पूरी न की हो वो-[अपर्याप्ति अवस्थामेंही मर जावै.] अपर्याप्ते, सूक्ष्म और बादर ये पृथ्विकायके ४ भेद हुवे.

अपकायके चार भेद हैं-अपकाय सो पानीके जीव, उसमें कूपका, तालावका, समुद्रका, वर्षादका, धूमस मधुरवके पानीका समावेश है. ये पानीका पिंड नजर आता है, शरीरमान अंगुलके असंख्यातवे भागका है, उसके एक बुंदमेंभी असंख्यात जीव हैं-इन जीवोंका आयु जघन्य अंतर्मुहूर्त्तका और उत्कृष्टसें ७ हजार वर्षका है. ये बादर अपकाय कहाजाय. सूक्ष्म अपकाय वो तो नजरभी न आवे. ये दो भेद हुवे, और पर्याप्ते अपर्याप्ते मिलानेसें ४ भेद हुवे.

तेउकायके चार भेद हैं-याने सूक्ष्म और बादर, तथा पर्याप्ते, अपर्याप्ते-ये चार हुवे. इनका शरीर अंगुलके असंख्यातवे भागका, आयु उत्कृष्ट तीन दिनका. उसमेंभी सूक्ष्म तेउकाय अगोचर हैं.

वायुकायके चार भेद हैं याने सूक्ष्म, बादर, पर्याप्ते और अपर्याप्ते ये चार भेद हैं. वायुकायका शरीर अंगुलके असंख्यातवे भागका, आयु बादर वायुकायका उत्कृष्ट तीन हजार वर्षका और सूक्ष्म वायुकायका अंतर्मुहूर्त्तका.

वनस्पतिकायके छः भेद हैं-उसमें प्रत्येक वनस्पति याने एक शरीरमें एकही जीव होवै सो; जैसे कि एक फलके अंदर जितने बीज हो उतने जीव हैं, फलकी छालका एक जीव. फलके मगजका एक जीव, वृक्षकी शाखाका एक जीव, मूलका एक जीव, पेडमें एक जीव, पत्रमें एक जीव-इसतरह अलग अलग जीव होवै. कोइ कहवेगा कि सारे वृक्षमें एक जीव तो फलके बीजके अलग अलग जीव क्यों कहे? इसका समाधान यही कि स्त्रीके सारे शरीरमें एक जीव है, मगर उसके शरीरमें जितने गर्भ रहेवे वे गर्भके जीव भिन्न भिन्न होते हैं. वैसेंही बीजके जीव भिन्न भिन्न होवैं.

ऐसे फल हैं उनकों प्रत्येक वनस्पति कही जावै–वडे वडे दरख्त, वड, पीपल, नारि-येली वगैरःके पेड गेंहूं प्रमुख अनाज, शाक, फल, चीभडे वगैरःके वेले आदि ये कुछ प्रत्येक वनस्पति है. ये दो प्रकार और पर्याप्ते अपर्याप्ते ये दो मिलकर चार भेद हुवे. प्रत्येक वनस्पतिकायके जीवकों चार पर्याप्ति कही हैं, वै पूरी न की हो वहांतक अपर्याप्ता, और पूरी की हो तो पर्याप्ता. अपर्याप्ति अवस्थामेंभी कितनेक मर जाते हैं. पर्याप्ति प्रत्येक वनस्पतिके वृक्ष–वेले वडेमें वडे ३,००० योजन अधिकके होते हैं. वो वेले–लतायें निरावाध जगहमें लंवी फैलती हैं–ऐसा ध्यान रखना. पर्याप्ताके शरीरका मान अंगुलके असंख्यातवे भागका कहा है. उत्कृष्ट आयु १०००० वर्षका और जघ-न्य अंतर्मुहूर्तका कहा है. और अपर्याप्ताका जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तका है. एक प-र्याप्तेकी निश्रामें असंख्यात अपर्याप्ते रहे हैं. यह अधिकार पन्नवणाजीमें विस्तारसें कहा है. हरी वनस्पतिमें ये अपर्याप्ते संभवते हैं. साधारण वनस्पतिकाय सो–एक शरीरमें अनंत जीव रहे हैं उसकों अनंतकाय कहा जावै, और निगोदभी कहा जावै. वो निगोदकेभी दो भेद हैं याने वादर, और सूक्ष्म वनस्पति कि जो नजर आती है– अद्रक, मूली, गाजर, जमींकंद, रतालु, आदि कंदकी जातियें कि जो कंद काटने वादभी पुनः उगें वो और वो वृक्षमें उगते अंकुर जो जो पत्र फल प्रत्येकके योग्य न हुवे–और जिनके अंदरकी नसें वीज परव नजर न आवैं, तोडनेसें समान टूटै–काटे जैसा मालूम पडे–तोड दियेकी जगह पानीके विंदु नजर आवैं–ऐसी वनस्पतिकों अनंतकाय कही जावै. और साधारण वनस्पति उसकोंही वादर निगोद कही जावै. वो जीवभी दो प्रकारसें हैं याने पर्याप्ते, अपर्याप्ते हैं. इन्होंका शरीर अंगुलके असं-ख्यातवे भागका है, आयु अंतर्मुहूर्तका होता है. सूक्ष्म निगोद सो चौदह राजलोकमें सव जगह भरी हुइ है. सूक्ष्म निगोदके सिवा कोइ जगह खाली हैही नहीं. इसकी सूक्ष्मता ऐसी है कि अंगुलके असंख्यातवे भागमें निगोदके असंख्यात गोलक हैं, उनमेंसें एक गोलकमें असंख्यात निगोद हैं. वो एक निगोदमें असंख्यात जीव हैं. और उन-जीवोंका आयु एक श्वास लेकर छोड देवै उतनी देरमें सत्तरह भवसें कुछ ज्यादे भव होते हैं–याने उतनी देरमें १७ सेंभी विशेष वक्त जन्ममरण होता है. वै जीवभी पर्याप्ते, अपर्याप्ते ऐसें दो भेदके हैं. ये दो भेद प्रत्येकके, दो वादर–निगोदके और दो भेद सूक्ष्म निगोदके–ये तीनुं मिलकर वनस्पतिके जीवके छः भेद हुवे.

२ दोइंद्रिवाले जीव सो बेइंद्रि याने शंख, कौडी, कौडे, गंडोले, सूसर्प, मैंहर, सूक्ष्म कृमिजंतु, बडे कृमि वगैरः जीव कि जिनकों शरीर और मुँह ये दो इंद्रि हैं वो, और वोभी पर्याप्ते, अपर्याप्ते ऐसे दो भेदवंत हैं. वो जीवोंका शरीर बडेमें बडा बारह योजनका होवे. उस समयमें मनुष्यका शरीरभी बडा होता है. कितनेक जीवोंको भगवंतवचनोंकी प्रतीति नहीं होती उसकों इन बातोंसें व्यामोह होता है कि इतना बडा शरीर क्यों करकें होय? मगर बुद्धिमानोंकों और प्रभुवचनकी श्रद्धावालोंकों शंका नहीं होती; कारण कि अभी एक अखबारके अंदर पढनेमें आयाथा कि एक छिपकलीकी हड्डीये सवा गजकी थी. और यहां तो ४ तसुकी नजर आती है, हड्डीयें इतनी बडी नजर आती है! कोइ वक्त ऐसी बडीभी होती होगी वैसा हड्डी देखनेसें निश्चय होवे. देशकी तफावतसेंभी बडे छोटेका तफावत नजर आता है. काकरेची बहेल जैसे बडे होते हैं वैसे बडे बहेल इस प्रांतमें नहीं होते है. घोडे विलायतसें आते है याने आस्ट्रेलियन, अरेबियन हॉर्स आते हैं वो इतने बडे आते हैं कि वैसे इस देशमें (गुजरातमें) पैदा नहीं होते हैं.. मनुष्यभी पंजाबमें कदावर मजबूत होते हैं वैसे गुजरातमें नहीं होते. इसका सबब यही कि हवा पानीके तफावतसें करकें छोटा बडा और सबल निर्बल प्राणी होता है. उसी तरह समयके फेरसें तफावत हुवा होगा ऐसें समझकर बुद्धिवंतोकों शंका नहीं होती. ये बेइंद्रि जीवोंका आयु बारह वर्षका होता है.

२ तेइंद्रि जीवके दो भेद है याने पर्याप्ते और अपर्याप्ते हैं. ये जीव खटमल, कीडे, चींटी, मकोरे-वगैरः समझ लेना. इन जीवोंका शरीर बडेमें बडा १ गाउका होता है. उत्कृष्ट आयु उनपचास (४९) दिनका कहा है, वोभी पर्याप्तेका, और अपर्याप्तेका तो अंतर्मुहूर्तकाही होता है.

२ चोरेंद्रि जीवभी दो प्रकारके हैं याने पर्याप्ते और अपर्याप्ते. इन जीवोंको पांच पर्याप्ति हैं वो पूरी करे तब पर्याप्ते और उसमेंसें अपूर्ण पर्याप्ति होवे वो अपर्याप्ते मख्खी, मच्छर, बिच्छू, प्रमुखजीव समझ लैना. इन जीवोंकों स्पर्शेंद्रि, रसेंद्रि (जीभ), घ्राणेंद्रि (नाक), चक्षुइंद्रि [आंख]-ये चार इंद्रिये होती हैं. उत्कृष्टायु छः महीनेका और उत्कृष्ट शरीर एक योजनका होता है.

पंचेंद्री तिर्यंचके २० भेद है याने १जलचर सो-मच्छ, मच्छी, ग्राह वगैरः जलमेंही रहनेवाले, २थलचर सो-गैयें, भैंस, बहेल, बकरी, हथी घोडे इत्यादि. ३खे-

चर सो-पंखी-आकाशमें ऊडनेवालोंकी जाती. ४उर्परिसर्प सो-पेटके सहारेसें चलै-वैसे-सर्प आदि. ५भुजपरिसर्प सो-भुजाके सहारेसें चलै-वैसे नकुल, खिलकूडी वगैरः ये पांच प्रकारके तिर्यच सो गर्भसें उपत्न होवै वो गर्भज-याने स्त्री पुरुषके संयोगसें पैदा होते हैं. इन जीवोंके शरीरका मान, आयुष, क्षेत्र, काल, जीव अपेक्षासें अलग अलग हैं. वो पन्नवणाजीमें, जीवाभिगमजी या जीवविचारसें जान लिजीयेजी. ये जीव कर्मभूमिमें और अकर्मभूमिमें पैदा होते हैं. दूसरा भेद समूर्छिम तिर्यच वो स्त्रीके संयोग सिवा पैदा होते हैं; जैसें कि मेंढक मर गया हो और उसका कलेवर पड होवै उसमें मेघदृष्टिकी बुंद पडनेसें फिर नये मेंढक फौरन पैदा हो आते हैं. बिच्छूके कलेवरमें बिच्छू पैदा हो आते हैं. गोवरमेंभी बिच्छू उत्पन्न होते हैं. और कितनीक वस्तुओंके प्रयोगमें [संयोगसें] जीव पैदा होते हैं, उसें समूर्छिम कहा जावै. येभी पंच प्रकारके होते हैं. इससें गर्भज और समूर्छिम मिलकर दस भेद हुवे. उस गर्भजके छः पर्याप्ति हैं और समूर्छिमके पांच पर्याप्ति हैं. उस मुजब पर्याप्ति करै उसे पर्याप्ते कहेजावें. पर्याप्ति पूर्ण न की वहांतक अपर्याप्ते कहेजाते हैं. इसतरह ये दो भेदसें गिननेसें २० भेद होवें, वो बीस प्रकारके तिर्यच पंचेंद्रि समझ लेना. एकेंद्रियसें लगाकर तिर्यच पंचेंद्रि तलकके भेद इकठे करनेसें ४८ भेद कुल तिर्यचके हुवे.

अब नरकके जीव चौदह प्रकारसें नॉव भेदसें होते हैं याने रत्नप्रभा नरकके नारकी १, शर्करामभा नरककें नारकी २, वालुकाप्रभा नरककें नारकी ३, पंकप्रभा नरकके नारकी ४, धूमप्रभा नरकके नारकी ५, तमः प्रभा नरकके नारकी ६ और तमतमा प्रभा नरकके नारकी ७ इन सातों नरकोंमें जीव पैदा होवै उसें नारकी कही जावै.

पहिली नरकसें दूसरी नरकमें ज्यादे दुःख, आयुष्य और शरीर होते हैं. याने इसी तरह एकसें एक नरकका दुःख, आयु, शरीरमान ज्यादे ज्यादे होते हैं. उन नरकके दुःख ऐसें हैं कि उसके मुकाबिलेके दुःख मनुष्यलोकमें हैइ नहीं. कितनीक नरकोंमें परमाधामीकी की हुइ वेदना है, और कितनीक नरकोमें स्वभाविक क्षेत्रप्रभावसें वेदन है. जो जो कठीन पाप किये जावै उनके फल नरकमें भुक्ते जाते हैं. ज्यादेमें ज्यादे आयुष्य तेत्तीस सागरोपमका है. उसमें असंख्याता काल चला जाता है, उतने काल तक दुःख भुक्तनेका है. और मनुष्यमें विषयका अल्पकाल सुख माना हुवा भुक्तनेका है, वस्तुतासें तो विषयमें सुख नहीं; मगर अज्ञानतामें सुख मानकर विषयसुख भुक्तना

है और उसके फलसें जीव नरकमें जाकर अकथनीय दुःख भुक्तता है, उन नरकके जीवोंके दस प्राण हैं. छः पर्याप्ति हैं. वो बांध न रहा होवै वहांतक अपर्याप्ता कहा जाय, और पूर्ण बांध लेवै तब पर्याप्ता कहाजाय. वो पयाप्ते अपर्याप्ते मिलकर चौदह प्रकारके नारकी हुवे.

एकेंद्रिसें लगाकर पंचेंद्रि तकके कुल भेद इकट्ठे करलेवें तब चारोंगतिके कुल ५६३ भेद होवे सो निम्न संख्या मुजब हैं:—

१९८	देवताके,	३०३	मनुष्यके भेद,
४८	तिर्यंचके,	१४	नारकीके.

यों सब मिलकर सामान्यतासें जीवके ५६३ भेद होते है. विस्तारसें तो जीवके भेद और जीव स्वरूप वर्णन करनेसें आयुष्यभी खतम हो जाय इतना वर्णन शास्त्रमें कहा गया है; वास्ते विस्तार समझनेके लिये रुचिवंत जीव शास्त्राभ्यास करके जान लेवें, मगर जहां तक अज्ञानकी प्रबलता है वहां तक जीवको वीतरागभाषित शास्त्र देखनेकी या सुनेकी रुचिही न हो आवेगी. युं करतें जोराइसें या शरमसें सुन लेवै तो उन वचनोंमें श्रद्धा न करै; क्यों कि जो पूर्वजन्मकी विपरीत श्रद्धाकी संज्ञा चली आती है उनके जोरसें सची वस्तु नहीं रुचती हैं. उन्मार्गकीही रुचि होवै. विपरीत वस्तुपर कल्पित न्याय जोड कर उसकी श्रद्धा करै. दूसरे जीवोंकोंभी कुयुक्ति कर समझाके उन्मार्गमें गिरावै. और इसी तरहसें करनेके सबबसें अनेक धर्म–मत हो गयें हैं. और जो मनुष्य जिस धर्मको मानता है उस धर्ममें क्या फरमाया है वोभी नहीं जानता है. आप जिसको देव मानता है वो देव किस सबबसें मानता हुं, उन देवमें देवके लक्षण हैं या नहीं, वोभी नहीं देखता. कितनेक ब्राह्मणोंनें क्रिश्चियनी धर्म अंगीकार करके वेद धर्मको छोड दिया है; लेकिन वेदमें क्या भूल है उसको वो नहीं जानते हैं. एक क्रिश्चियनसें पूंछा गया था तो उसकी तर्फसें संतोषकारक जवाब याने भूल न बता शका था. उसका सबब उतनाही है कि स्त्री और धनके लोभसें खिस्ती धर्म स्वीकारते हैं, उसको पीछे कुछ धर्म जाननेकी जरूरत नहीं रहती है. अज्ञानके जोरसें सत्य ढूंढनेका दिल नहीं होता. कितनेक बह्मन जैनकी निंदा करते हैं वो इतने तककि वैश्याके घरमें जाना; लेकिन जैनमंदिरमें न घुसना. यह कथन कितना भूल भरा हुवा है वो नीचेकी हकीकतसें सहज समझमें आयगा.

माननीय महाभारत शास्त्रमें फरमाया है किः—

युगे युगे महापुण्यं दृश्यते द्वारिकापुरि ॥
अवि तीर्णो हरिर्यत्र; प्रभासे शशिभूषण. १
रेवताद्रौ जिनो नेमि युगादि विमलाचले ॥
ऋषिणामाश्रमा देवः मुक्तिमार्गस्य कारणम्. २

इस मुजब कल्कावतार वेदव्यास विरचित महाभारतमें श्लोक हैं, इन श्लोकमें जैनका तीर्थ जो रैवतगिरि कहा है उसें आधुनिक समयमें गिरनार कहेते हैं और वहां नेमिनाथजी महाराज बाइसवे तीर्थंकर हैं उनकाही महीमा जैनी मानते हैं, वही तीर्थका और नेमिजिनका बहुतमान पूर्ण किया है. फिर विमलाचल कि जिसें अभी शत्रुंजय कहेते हैं, वहां युगादिजिन हैं याने श्रीऋषभदेवजीकों जैनमें युगादिजिन कहे हैं-ऐसाही भारतमें कहा है. ये दोनुं तीर्थोंकों मोक्षका कारण इस श्लोकमें बतलाये हैं. उन भारतकोंही माननेवालेकों ये जिनतीर्थोंकी और जिनदेवोंकी मोक्ष कारणभूत सेवना करनी चाहियें या निंदा करनी चाहियें? भारत तो हमेशाः वांचा जाता है; तथापि ये बात निगाहमें न रखतें उलटा रस्ता पकडते हैं वो अज्ञानकी राजधानीका फल है; परंतु जिनका कुछ अज्ञान पतला पड गया होवे उसके कान खोलनेके लिये यह वार्त्ता जाहिर की है. दूसरी जगहभी कहा है किः—

ऋक्वेदका मंत्र.

ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थंकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानांतान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये.

यजुर्वेदका मंत्र.

ॐ नमोर्हतो ऋषभाय, ॐ ऋषभपवित्रं पुरहुतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परममाह संस्तुतावारं शत्रुंजयं तं सुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा.

यजुर्वेदका दूसरा मंत्र.

ॐ त्रातारमिन्द्र ऋषभंवदंति अमृतारमिन्द्र हवेसुगतं सुपार्श्वमिन्द्र हवेसक्रम जितं तद्वर्द्ध मानपुरहुतमिन्द्र माहुतिरिति.

तीसरा मंत्र.

ॐ नमं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भसनातनं उपैमिवीरंपुरुषमर्हंतमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात स्वाहा–

पुनः ऋक्वेद–मंत्र १, अ. १४ सू. १०

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः

इस तरह वेदमें मंत्र हैं वो दयानंदछलकपटदर्पन नामक किताबमें मैने पढे हुवे हैं. [पत्र २१९ वेमें हैं] उसपरसें वेदके जाननेवाले शास्त्रीकों मैने बतलाये और पूँछा कि–'ये मंत्र तुमारे वेदमें है?' शास्त्रीजीने सत्यदशा ग्रहण कर कहा कि–'हम हमेसाः वेदाध्ययन करते हैं उसमें ये मंत्र आते हैं.' उन शास्त्रीके कथनसें प्रतीति हुइ कि वेद अंदरकेही हैं. उससें इस किताबमें दाखिल कीये हैं. जो हठ विगरके होंवे उसें समझा जाँय कि जैनके देवकोंभी वेदवालोंने मान्य किये हैं, तो उन्होंकी निंदा क्यौं कर करूं? फिर जैनधर्म नया है ऐसा जिनके दिलमें हो वो शोचो कि जैनके ऋषभदेवजीसें लगाकर चोइसवे महावीरस्वामी तक चोइस तीर्थंकरकों बहुत मानपूर्वक नमस्कार किया है. तो ये जैनधर्मके देव हुवे बाद वेद हुवे या पेस्तर? जो वेद अनादि होता तो इन देवोंका स्मरण न होता, [क्यौं कि ये नाम तो इन चोवीसीके देवके हैं ऐसी तो अनंत अनंत चोवीसी हुइ हैं. यदि वेद पुराना होता तो वो बात उसमें आती; मगर वो नहीं है; वास्ते इन वर्त्तमान चोइसीके पीछे वेद रचा गया होना चाहियें ऐसा प्रमाण मिलता है.] वास्ते जैन अनादि है यह वेदसेंही निश्चय हो जाता है; मगर यह बात जिनका मिथ्यात्व पतला हो गया होवे उसकोंही समझमें आयगी; परंतु जो हठवादि कदाग्रही है–अज्ञानका पूर्ण जोर है वैसे मनुष्यकों सत्य विचार करनेकी बुद्धिही जाग्रत नहीं होती, और सत्य समझनेमें आताही नहीं. 'करते आये हैं वही करना'–इतना सिर्फ समझ रक्खा है. जब अज्ञान दूर हो जायगा तब सचा या झूंठा ढुंढनेकी बुद्धि जाग्रत हो आयगी, और सत्य अंगीकार करेगा. जो जो मनुष्य अपना देव मानते हैं और उन देवोंने धर्म बतलाया है उन मुजब वो देव धर्ममें चले हैं या नहीं? उस वास्तेही देवोंके चरित्र शास्त्रोंमें बतलाये हैं, वो देख लेने चाहियें. और उन चरित्रोंमें जिस मुजब अपनकों नीति रीति रखनेके लिये फरमाया गया है उसी मुजब वे पुरुष आपकी नीति रीति–वर्त्तन रखते थे या नहीं? और

सर्वज्ञपणा माना जाता है वो चरित्रोंके उपरसें सिद्ध–साबित होता है या नहीं ? और उसकी सबूती न मिले तो पीछे उन्होंकों देव किस लिये मानने चाहियें ऐसा विचार अज्ञान दूर हठनेसेंही आवेगा; मगर उसं विगर न आवेगा. फिर गुरुपणा धराते हैं और लोगोंकों धर्मोपदेश देते हैं कि अहिंसा धर्म (दया) सभीमें मुख्य है यों समजाते हैं; मगर आप खुद हिंसाका त्याग करते नहीं. झूंठा न बोलना यह बात पट्दर्शनवालोंकोंभी मान्य हं; तोभी गुरु होकर झूंठ बोलनेमें बिलकुल नहीं डरते हैं. चोरी करनी नहीं, किसीकों ठग लेना नहीं. क्यौं कि ये जगतमें निंदनीक हैं और उसका कुल धर्ममें निषेध किया है; तदपि गुरुनाम धारण करकें चोरी, ठगाइ, कपटके काम करते हैं. परस्त्रीका त्याग सब धर्मोंमें है और जगतमें अनिंदनीय हैं. तथापि गुरु होकर सेवककी स्त्री, बहन, माता और लडकीके साथ मैथुन सेवनेमें नहीं डरते हैं. साधुकों धन न रखना चाहियें, ये आर्यधर्मकी मर्यादा है; तौभी सेवककें पाससें धन लेते हैं. फिर कपट-लुचाइ करकें धन लेते हैं. सेवकोंपर जुल्म गुजारकर धन हाथ करते हैं. ऐसी वर्त्तना करनेवालेकों गुरु मान लेवै, उनकों हजाराः रुपैये दे देवै ये तमाम अज्ञानदशाकी प्रबलता है. ऐसेकों गुरु माननेका विचार नहीं वो दूसरे सत्य-असत्य धर्मकों क्या तपास लेवैगा ? अज्ञानतासें ऐसे अज्ञानी गुरुसें ठगाते हैं, उतनेसेंही बस नहीं होता; मगर आगतजन्ममें सच्चे धर्मकी निंदा करनेसें जो कर्म बंधे जाते हैं उससें जन्मोजन्म दुर्गतिके दुःख भुक्तेंगे. और जो पुरुष आत्मार्थी हुवा हैं अगर थोडा अज्ञान दूर हो गया है उसके प्रभावसें न्यायकी बुद्धि जाग्रत होती हैं उससें सत्यासत्य मार्गकी परीक्षा करकें खोटा मार्ग त्याग कर सच्चा मार्ग अंगीकार करता है. जैसें गौतमस्वामीजी श्रीमन्न् महावीरस्वामीजीकी महत्त्वता सुनकर बहुतही रोष और अहंकारमें व्याप्त हुवे थे, और भगवान्‌जीके साथ वाद करनेकों समोवसरणमें आये थे; लेकिन भगवंतजीनें वेदके अर्थ समझाकर सच्चा मार्ग गौतमस्वामी महाराजकों समझा दिया, वो गौतमस्वामीजीनें न्यायकी बुद्धिसें विचार करकें सत्य जानकर ग्रहण किया, और आपके असत्य धर्मका त्याग किया; और भगवान् सर्वज्ञ है ऐसा दृढ करकें आप भगवानजीके शिष्य हुवे भगवंतजीने वासक्षेप किया उतनेमें भगवानजीके प्रभावसें करकें आवरण क्षय होनेके सबबसें द्वादशांगीके ज्ञाता हुवे. क्रमसें करकें शुक्ल ध्यानमें स्थित हो घातीकर्म खपा करकें केवलज्ञान पाये और मोक्षमें

पधारे, वैसें जो जो आत्मार्थी पुरुषोंनें अज्ञान खपाकर ज्ञान प्राप्त करकें अज्ञान खपानेका मार्ग दर्शाया है, वो मार्ग अंगीकार करकें चलना कि सहजहीमें अज्ञान क्षय हो जायगा. जिन पुरुषकी अंदर अज्ञानका अंशभी नहीं रहा है वही पुरुष सर्वज्ञपणा प्राप्त करता है और भगवान्जी उनीकोंही कहे जाते हैं.

१४ मिथ्यात्व नामक दोष है सो मिथ्यात्व किसकों कहा जाय उसका खुलासा करते हैं. सची वस्तुकों झूंठा मान लेवै, झूंठी वस्तुकों सची मान लेवै, सत्यका असत्य मान लेवै, असत्यको सत्य मान लेवै, धर्मकों अधर्म मान लेवै, अधर्मकों धर्म, देवकों अदेव, अदेवकों देव, चेतनकों अचेतन, और अचेतनका चेतन माने याने जो जो पदार्थ हैं उसके जो जो धर्म रहे हैं उससें विपरीत धर्म मान लेवै, या न्यायकों अन्याय और अन्यायकों न्याय मान लेवै ऐसी विपरीत बुद्धि होवै वो मिथ्यात्वकी राजधानी है. यहांपर कोइ शंका उठावेगा कि 'अज्ञान नामक दूषण कहा गया उसमें और मिथ्यात्वमें क्या तफावत है?' उन शंकाके समाधानमें यह खुलासा है कि अज्ञानसें करकें जडबुद्धि होती है और मिथ्यात्वसें करकें विपरीत बुद्धि होती है–यह तफावत है. जिसकों मिथ्यात्व है उसकों अज्ञानभी है, और जिसकों अज्ञान है उसकों मिथ्यात्वभी है. यह दोनु साथही रहते हैं उससें एकत्रता मालूम होगी; मगर दो शब्दके मायने अलग हैं और भावभी भिन्न हैं ये मिथ्यात्वकी बुद्धिवालेकों बहुत प्रकारके हैं वो समझाने लिये सिद्धांतकारने पचीश भेद कहे हैं. और वो पचीश प्रकारसें श्रावकके बारह व्रत अंगीकार कर लेवै तब सम्यक्त अंगीकार होतेही पचीश प्रकारसें त्याग करते हैं वो स्वरूप किंचित् यहां लिखता हुं.

१ अभिग्रह मिथ्यात्व सो कुगुरु, कुदेव कुधर्मका झूंठा हठ पकडा हुवा है वो मिथ्यात्वके जोरसें गर्दभ पुंछकी तरह छोड देवै नहीं, यह देखकर किसी पिताने पुत्रकों समझाया कि जो पकडना सो छोडना नहीं. उस वातका विशेष स्वरूप समझ लिये बिगर वो बात चित्तमें निश्चयतासें कायम करकें पीछे कोइ वक्त बाजारमें गया वहां गद्धा दोडता हुवा आया उसकों रोकनेके वास्ते उसका पुंछ पकड लिया. जब उस गद्धेने लातें मारनी शुरू की तब वें लातें खानीही शरू रख्खी; लेकिन पकडा हुवा पुंछ न छोड दिया. वो देखकर लोगोंकों दया आनेसें उसकों समझाया कि 'पुंछ छोड दे, नहीं तो लातें खाकर मर जायगा.' उसने एकही जवाब दिया कि-

'मेरे बापने मुजकों शिक्षा दी है कि जो कुछ पकड लिया सो कभी छोड देना नहीं; वास्ते मैं पकडा हुवा पुंछ बेहोश होनेतक न छोडुंगा.' ऐसा कहकर पुंछ न छोडा और लातें खाकर दुःखी हुवा; वीसी तरह यह मिथ्यात्वके जोरसें सद्गुरु सचा मार्ग बतलावे-बहुत तरहसें समझावें; तदपि सुगुरुका वचन मान्य न करै और कहवै कि जो बापदादे करते आये हैं वही करना. क्या बुढ्ढे दीवाने थे? ऐसे हठ पकडकर सची बात न समझे और प्रत्यक्ष कुगुरु अपनी औरत या माता भगिनीके साथ बुरी तरहसें चालचलन करता होवै तौभी बापदादाका हठ पकडकर कुगुरुकों न छोडे सो अभिग्रहिक मिथ्यात्व कहा जाता है.

२ दूसरा अनभिग्रही मिथ्यात्व सो सचे देव और खोटे-झुंठे देवकों, कुगुरु सुगुरुकों, और सत्य धर्म असत्य धर्मकों-इन सबकों समान समझें, सुदेव और कुदेवकों भी नमस्कार करै, सचे झूंठेका भेद न मानै, मुहसेंभी बोले कि सर्व देवकों नमस्कार करना; मगर उसका परमार्थ नहीं जानता है कि देवकों तो नमस्कार करना योग्य है; लेकिन देवपना नहीं और उसमें देवपना कैसें मानना चाहिये, वैसा विचार नहीं, उससें गुणी निर्गुणीकों समान मानता है. उसमें भाग्योदयसें सुगुरु मिला तो कल्यान; मगर वो मिल न सकै. यदि मिलै तो अैसी बुद्धि रहवे नहीं, और एसी बुद्धि रही है तो उससें मालूम होता है कि कुगुरु मिले हैं और उसकी संगतीसें तत्त्वकों अतत्त्व मान लेवै उससें शुद्ध आत्मधर्म और आतमधर्म प्रकट करनेके कारण न मिल सकै. और भवका विस्तार होवै नहीं; वास्ते आत्मार्थी सत्य असत्यकी परिक्षा करकें शुद्ध देवगुरु धर्म अंगीकार करना कि अनभिग्रहीक मिथ्यात्व दूर हो जाय.

३ अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सो सत्य देवगुरुकों जाने; मगर मिथ्यात्वके जोरसें उसकों आदरे नहीं. कोइं समझावे तो उसकों कहेवे कि बाप दादे मान्य करते हुवे आये है वो कैसें छोड दिया जावे! यदि छोड देवें तो नाककट्टी हो जाय, बाकी हम-जानते है कि अच्छे तो नहीं हैं.' अैसा जवाब देवै और ममत्त्व करकें असत्य प्ररुपणा करै.-खींचा तानी करै-उन्मार्ग बतलावै, आत्माकों कर्मबंधनका भय नही उस्सें वीत रागका मार्ग सत्यजाने तौभी वीसी तरह अपने अहंकारके लिये प्ररुपणा न करै. आप वर्त्तेभी नहीं और सत्यपर द्वेष करै. अैसे हठवादी पार्श्वनाथजीकी परंपराके साधु गोशालाके साथ रहे हुवेथे उनोंकों श्रीमत् वीरपरमात्माजीके श्रावकने जाकर कहा

कि–' आपने श्री पार्श्वनथाजीका उपदेशभी श्रवण किया है और गोशालेकाभी श्रवण कीया है, उसमें सत्य क्या है ?' उस वक्त उन साधुने जवाब दिया कि–महावीर स्वीमीजी जैसा पार्श्वनाथजी उपदेश देतेथे वैसाही देते हैं; परंतु हमकों तो ममत्व बंधाया है उससें वीरका मरोड उतारेंगे. हम दुर्गति जानेमें नहीं डरते हैं.' अैसा जवाब अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके जोरसें दिया. वीसी तरह वर्त्तमान समयमेंभी सच्चा जान नेपरभी अैसें आग्रहसें उत्सूत्र बोलतें नहीं डरते हैं, दूसरे जीवोंको उन्मार्गका उपदेश दे कर उनकोंभी उन्मार्गके अंदर सामिल करता है. वीतरागके सत्मार्गकी निंदा करै अैसी दशा है सो मिथ्यात्वके प्रवलताकी है. और अैसी दशा हैं वहां तक अपने आपके सहज स्वभावकोंभी न पिछान शकैगा विभाग स्वभावकों न छोडैगा और शुद्ध तत्त्वकी श्रद्धाभी न रहवैगी वास्ते ये मिथ्यात्वका परिहार करना.

४ संशय मिथ्यात्व सो वीतरागजीके वचनमें संशय पडै; जेसें कि शास्त्रमें ऋषभदेवजी महाराजके समयमें पांचसो धनुषके मानव शरीर थे, और आयु क्रोड पूर्वका था. एसा सुनकर शंका करै कि–' इतना वडा शरीर और आयुष् होवै नहीं.' ऐसा मानकर प्रभुजीके वचनकों न सईहै; लेकिन शोचै नहीं कि ऐसी गतसमयकी वावतें और अरूपी पदार्थकी श्रद्धा आप्त पुरुषकी जो सर्वज्ञ उनके वचनकी प्रतीत करनेसें होती है; वास्ते आप्त पुरुषकी पेस्तर प्रतीति कर लेनी चाहियें. प्रतीति करनेका साधन अभी तो इतनाही है कि जो जो लोक जो जो देवकों मानते हैं उन देवोंकों वै सर्वज्ञ मानते हैं, तो वैं देव सर्वज्ञ हैं या नहीं वो मध्यस्थ वुद्धिसें तपास करनेके वास्ते सव देवोंके चरित्र पढ देखना; उसमें सर्वज्ञताकी न्यूनता मालूम हो आवै या नहीं. जैसे कि महादेवजीनें पार्वतीके वनाये हुवे पुत्रकों पुत्र न जाननेसें उसकों जारपुरुष जानकर मार डाला. फिर उसका उडाया हुवा शिर कहां गया वोभी ज्ञानसें मालूम न हुवा, उससें हाथीका शिर ल्याकर गनपतिके धडपर कायम किया. एसे दृष्टांत देखनेसें सर्वज्ञ है या नहीं वो प्रतीति हो जायगी. वीसी तरह श्री महावीरस्वामीजी केवलज्ञान पाकर सर्वज्ञ हुवे पीछे सर्वज्ञताकी खलना किसी जगहपर नही होती है. तो जिस पुरुषमें सर्वज्ञताकी न्यूनता मालूम नहीं होती उस पुरुषके वचनमें संशय न करना चाहियें. युक्ति करनेकी शक्ति होवै तो उस युक्तिसें तपास करनी मुनासिव है. वर्त्तमान समयमेंभी इनाकी फेरफारीसें मजवूत मनुष्य

मालूम होते हैं, वीसी तरह उस समयकी हवा अेसी अनुकूलथी उससें ऐसे बन शके
ऐसा बिचार करनेसें हमकों तो वीतरागजीके वचनमें कोइभी संशय होताही नहीं.
और दूसरेके चरित्र देखे तो उसमें सर्वज्ञताकी न्यूनता नजर आइ है. आधुनीक सम-
यमें चरित्रचंद्रिका नामक बुक छापी गइ है उसमें बहुतसें देवोंके चरित्र हैं वो मैंने
अवलोकन किये हैं, वीसी तरह परीक्षक जनोंको मध्यस्थ बुद्धिसें पढनी दुरूस्त है.
उस किताबमें महावीरस्वामीजीकाभी चरित्र है वो बरोबर नहीं लिखा है. तौभी उसमें
सर्वज्ञताकी न्यूनता नहीं है. जैनाचार्य हेमचंद्राचार्य कृत द्विजवचनचपेटा और धर्मप-
रीक्षाका राश ये दो पुस्तक देखोगे तो कितनेक देवके चरित्र नजर आवेंगे और उनकी
सर्वज्ञताकी न्यूनताभी मालूम हो जायगी; वास्ते जिनपुरुषमें न्यूनता नहीं है उन पु-
रुषके वचनमें कोइभी बाबतके वास्ते संशय हो आवै उसें संशय मिथ्यात्व जानना.

५ अनाभोगिक मिथ्यात्व सो जिसकों ये मिथ्यात्वका संग हुवा हो उसकों
धर्मकर्मकी खबर नहीं होती है, उसकी खोजनाभी नहीं, और मूढतामें मस्त रहता है.
धर्मके सन्मुख दृष्टिही नहीं देता; जैसे कि एकेंद्रि प्रमुख जीव अव्यक्तपणेमेंही काल
गुमाते हैं, वैसें वो काल गुमावै, उसें अनाभोगिक मिथ्यात्व कहा जावै.

अब दश प्रकारका मिथ्यात्व ठाणांगजी सूत्रमें फरमाया है तदनुसार लिखता हुं:—

१ धर्मकों अधर्म मानै वो मिथ्यात्व. अब धर्म है सो दो प्रकारका है याने एक
निश्चय धर्म सो आत्मस्वभावमें रहना. और उससें विपरीत जो जडधर्म है, उसमें
प्रवर्त्त कर उसें धर्म मान लैना सो अधर्म. पुद्गल प्रवृत्ति दो प्रकारकी है–एक पुद्गल
प्रवृत्ति आत्मधर्म प्रकट होनेके कारणरूप है, वोभी आदरणीय है, उसकों व्यवहार
धर्म कहा है. निश्चय और व्यवहार इन दोनु धर्मोंकों जो जो स्वरूपसें है उसी स्वरू-
पसें मानना वो धर्म, और उससें विपरीत मानना सो मिथ्यात्व, व्यवहार धर्म, जो
जो गुणस्थानपें गुणस्थान मर्यादा मुजब न आदरै और धर्म मानै येभी मिथ्यात्व है.
हृदयमें निश्चय धर्म धारण करना वो न करै और व्यवहार वर्त्तनाकोंही निश्चयरूप
मान लेवै तो वोभी मिथ्यात्व है. जो जो अंशसें आत्मा निर्मल होवै, कषायादिसें
मुक्त होवै उसकों निश्चय धर्म कहा जाय. वो प्रकट होवै वैसे कारण अंगीकार करने
चाहियें. कारणकों कारणरूप मानकर वर्त्तनेसें ये मिथ्यात्व दूर हो जायगा.

२ अधर्मको धर्म मान लेवै याने अनादि कालका जीव अधर्मकों सेवन कर रहा है. फिर अधर्मीके कुळमें जन्म पाया है उससें उनकी बातें सुनकर वो रीतिकी श्रद्धा करें और हिंसा करकें धर्म मान लेवै; जैसें कि कितनेक लोग बिच्छु, सांप, सेर-सिंहादि हिंसक जीवकों मारडालनेमें धर्म है ऐसा मानते हैं. फिर बकरीदमें बकरे मारनेमें धर्म मानैते हैं: इस तरह अज्ञानतासें जीवहिंसा करकें धर्म मान लेवै सो अधर्मकों धर्म मानते हैं ऐसाही कहा जायगा. पुनः लोंगोमें आर्यलाग कहे जाय, दयाळुभी कहे जाय और कितनेक बकरे घोडे वगैरः जीव यज्ञ करकें उसमें होम देवै उसकों धर्म मानै, कोइभी जीवकों दुःख होवै तो उसका फल यही है कि उस पापसें अपनकों दुःख भूकना पडै ऐसा सब धर्म-मजहबवाले मानते हैं; तथापि ऐसे प्राणीओंकों दुःख देनेमें पाप नहीं मानते है ये अधर्मकों धर्म मान लिया कहा जायगा, वास्ते जो जो मनुष्य कोइभी जीवकों दुःख देना, जूठ बोलना, चोरी करनी, परस्त्रीगमन करना, धनकी तृष्णा रखना-इन वस्तुओंमेंसें कोइभी वस्तु करके धर्म मानै वो अधर्मकों धर्म मान लियाही कहा जायगा. यहांपर कोइ प्रश्न करेगा कि तुमारे जैनी घोडे गाडीपर बेठनेवाले, अच्छे आभूषण जेवरके पहननेवाले, ढोलीयेपर अच्छी शय्या बिछाकर सोनेवाले और हर हमेशां मिष्टान भोजनके करनेवाले सुखिये जीवकों संसार छुडा करकें दीक्षा दिलाकर नंगे पैरसें चलाते हो, खुल्ले शिरसें फिराते हो, जमीनपर सुलाते हो, घर घर भीख मंगवाते हो, जैसा (लूखा सूका) आहार मिलै वैसा खिलवाते हो और सुंदर विगय खानेका मना करते हो ये क्या ? उसकों दुःख देकर धर्म मान लिया है ऐसा न कहा जायगा? इस विषयमें खुलासा करेंगे कि हमारे जैनी मुनि महाराज किसीकोंभी जोराइसें-जबरदस्तीसें इस तरह नहीं करवाते हैं. और जबरदस्तीसें इस अंदरका कुछभी किसीकों करवावें और धर्म मानें तो बेशक तुम कहते हो वैसाही होवै; मगर हमारे मुनि तो संसारमें क्या क्या दुःख हैं, फिर संसारमें सुखकों दुःख माननेसें क्या फल होता है, मोक्षसाधन किस तरह किया जाता है उसका धर्मोपदेश देते हैं. वो धर्मोपदेश आत्मार्थीजन सुनकर जड शरीरमें रही हुइ अज्ञानताकी प्रवृत्ति अनिष्ट लगती है और आते जन्ममें विषय कषायके कडुफल जाननेमें आते है वो जानकर संसारका त्याग करकें ऐसी प्रवृत्ति अपनी प्रसंन्नतासें करते हैं, और वैसा करनेसें संसारमें जो जो धन पैदा करनेके दुःख हैं, रसोइ बनानेके, वस्तु त्याने

के आभूषनका बोजा उठानेके और विषयभोगसें शरीर खराब–पायमाल करनेके दुःख दूर हो जाते हैं. (विषय सेवनके समय शरीरकों कितनी तकलीफ उठानी पडती है और सेवन कर रहे पीछेभी शरीरकी कैसी स्थिति हो जाती है ? वैसे कुल् दुःख दीक्षाग्रहण करनेसें दूर हो जाते हैं.) क्रोडपतिकोंभी धन संबंधी कितनी फिकर करनी पडती है ? कुटुंब होवै तो उनके झगडेमें कितना दुःख ? उनकों अज्ञानपनेसें दुःख नहीं मानते है; लेकिन बुद्धिसह शोच किया जाय तो संसारमें प्रातःकालसें उठ खडा होवै वहांसें लगाकर फिर रात्रिमें सोने तक कितने दुःख भुक्तने पडते हैं, उनमेंसें एकभी दुःख साधुपनेमें नहीं है. सदाकाल आनंदमेंही जाता है, नया नया ज्ञान प्राप्त होता है, उससें बुद्धिमान जन महान् प्रसन्नतामें रहते हैं; वास्ते जैनी लोग किसीकों दुःख देकर धर्म नहीं मानते हैं. और जो जो आत्मार्थी जन हो उनोंकों उक्त कथित पांचों अधर्ममेंसें कोइभी अधर्म प्रवृत्ति करकें धर्म नहीं मानना, और जो मानेगा तो वो अधर्मकोंही धर्म मान लिया कहा जायगा.

३ मार्ग जो मोक्षमार्ग है वो मार्ग साध्य करकें वीतरागपणेकों पाये हैं, आत्माका ज्ञान–दर्शन–चारित्र रूप गुण प्रकट किये हैं, केवलज्ञानसें करकें जगतके भाव एक समयमें जान रहे हैं, वैसे पुरुषोनें बताया हुवा मोक्षमार्ग याने मोक्षसाधन उस साधनकों उन्मार्ग मानै और उसका आराधन न करै, आराधन करनेवालेकी निंदा करै उस मार्गकों उन्मार्ग माननेरूप मिथ्यात्व जानना.

४ हिंसा करनेकी बुद्धि देवै, झूंठ बोलै, लोगोंकों ठग लेनेमें न डरै, स्त्रीगमन करै, पैसेकाममत्व लोभ ज्यादे रक्खै, वैसे गुरुकी सेवा करकें धर्म मानै याने जगतके पदार्थका जिसकों ज्ञान नहीं; तदपि पदार्थका स्वरूप विपरीत बतलावै और बोलै कि यह मोक्षमार्ग है. पांच यम तो जगत्प्रसिद्ध है, वो यमकों अच्छे कहवै; मगर आप पालन न करै. बिगर छाना हुवा [अनगल] पानी उपयोगमें लेवै, उसमें त्रस थावरजीवकी हिंसा होवै और नदीमें न्हानेमें पुन्य मानै. शोच करो कि महाभारतमें दुपट्ट गलणा रखकर पानी गालनेका कहा है, तो नदीका पानी किसतरह छान लिया जायगा ? न छाना जाय तो हिंसा होयगी. और पीछे कहने लगै कि नदीमें न्हानेका महा पुन्य है. यज्ञ करकें जीवहिंसा करनेका उपदेश देवें उसकों मोक्षमार्ग कहैं. फिर जैनी होकरभी संतानकी, धनकी, और परलोकमें राजा देवता होनेकी लालचसें ध-

र्मकरणी करे और उसकों मोक्षमार्ग मानै, यहभी उन्मार्गकों मार्ग माननेरूप मिथ्यात्व है. फिर मानके लिये, यशके लिये और लोगोंकों अच्छा बतलानेके वास्ते आत्महितकी बुद्धि विगर वीतराग मार्गकी अश्रद्धानपणेसें जो धर्मकरणी करे वो उन्मार्गकों मार्ग माननेरूपही है. पुनः जो मार्ग वीतरागजीने शास्त्रमें निषेध किया है वैसी धर्मकी प्रवृत्ति करकें मार्ग मानै, अविधिमें प्रवर्त्त कर दूसरेकों प्रवर्त्तना करावे वो उन्मार्गकों मार्ग माननेरूप मिथ्यात्व जानना.

५ जीवकों अजीव मानें सो मिथ्यात्व; जैसे कि कितनेक नास्तिकमति तो जीवही नहीं मानते. पांचभूत मिलकर शरीर बनता है सो जीव है, उस विगर जीव अलग नहीं. पांचभूत बिखर जाय कि कुछभी नहीं. परजीवभी नहीं, ये जीवकों अजीव माननेवाले सर्वथा प्रकारसें जानना कितनेक पंचेंद्रि तिर्यंचकों जीव मानै; परंतु पांच थावरकों जीव नहीं मानते हैं येभी जीवकों अजीव माननेका मिथ्यात्व जानना. जैनी लोग पांच थावरकों तो जीव मानते हैं; मगर कितनीक शास्त्रके बोधकी खामीसें सचित्त वस्तुकों अचित्त माननी होती है. जैसें कि गुलाबजल कितनेक समयका हो उसकों कितनेक सचित्तके त्यागी अचित्त मानकर उपयोगमें लेते हैं. शास्त्रमें सबसें ज्यादे चूनेके पानीका काल है. चूनेके प्रावीसें गुलाबजलमें कुछ ज्यादे गर्मी नहीं है कि उससें ज्यादे काल तक रहनेसें सचित्त न होवे. ऐसा विचार करनेसें सचित्त होवै ऐसा मालूम होता है; तथापि अचित्त मानना योग्य नहीं. और जो जो जीव पदार्थकों अचित्त माननेसें जीवकों अजीव माननेरूप मिथ्यात्व लगै; वास्ते सर्वज्ञमहाराजजीने जिसकों जीव कहे हैं उसकों जीव कहनेसें यह मिथ्यात्व दूर होता है.

६ अजीवकों जीव मानना सो मिथ्यात्व, वो सब शरीर हैं सो अजीव हैं सो मैंही हुं, युं करकें ममत्वभाव करना. पुनः वेसमझसें शास्त्रमें जिस वस्तुकों अचित्त कही हावै उसें सचित्त मानै सोभी मिथ्यात्व लगै.

७ साधुकों असाधु मानना सो मिथ्यात्व है. जो मुनीमहाराज पंचमहाव्रत पालते हैं, प्रभुजीके हुकम मुजब चलते हैं, मोक्षमार्गमें तत्पर हो रहे हैं, स्त्री धनकी ममतासें दूर हैं और सावद्य वचन मात्र नहीं बोलते हैं ऐसे मुनीराजकों असाधु मानै. आपने संसार-धन-स्त्रीके अभिलाषी गुरुवोंकासंग किया है उनोंने बुद्धिकों विपरीत बना दी है, उससें सत्य साधुकों असाधु मानै ये मिथ्यात्व है. सब मुझेकों

परीक्षा ज्ञान हुवेसें होती है, उस बिगर जिस जिस मजहबमें जो जो पडे हैं–फंसे हैं वै दूसरे मजहबके साधुकों खोटे–झूंठे मानते हैं, और हरएक मजहब–पंथमें रचनाभी ऐसी हो गइ है कि जिस्सै उत्तम पुरुषभी ऐसाही मानकर एकदूसरेकी निंदा करते हैं. मगर इतना विचार करें कि पांच यम तो सब दर्शनवाले मानते हैं. और यथार्थ प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह यह पांचों वस्तुके संपूर्ण त्यागवाले कौनसे साधु है ऐसा जो दर्याफत करै तो जल्दी समझनेंमें आ जाय, और उत्तमपुरुषकी निंदा करनी मोकूफ हो जाय.

८ असाधुकों साधु माने सो मिथ्यात्व है, याने असाधु जो साधु नाम धारण किया है; मगर धन और स्त्रीका त्याग नहीं किया है, जीवहिंसादि आरंभकों तो नहीं छोडा है, व्यापार रोजगार करते है, मंत्र यंत्र करकें आजीविका निभाते हैं, लोगोंकों विपरीत समझाकरकें पैसे लेते हैं, ऐसेकों साधु मानना सो, और कितनेक लोगोंकों ठगलेनेके लिये बाह्यसें धनका त्याग बतलाते हैं; लेकिन चित्तमें पैसेकी इच्छा होवै वोभी असाधु कहे जाय. कितनेक साधुपणा पालते हैं; परंतु जिनराजजीके वचनकी श्रद्धा नहीं. कितनेक परलोकके सांसारिक सुखकी इच्छासें साधुपणा पालते हैं; मगर मोक्षके लिये उद्यम नहीं करते हैं. पुनः कितनेक पंचांगीकों नहीं मानते है. जिनप्रतिमा भगवंतजीने मान्य करनी कही है–गृहस्थीकों पूजनेके लिये फरमाया है; तथापि गृहस्थकों उपदेश करै कि जिनप्रतिमा पूजनी नहीं; पूजनेसें पाप होता है. ऐसी प्ररुपणाके करनेवालेभी असाधु कहेजाते हैं. उनोकों साधु मानै सो असाधुको साधु माननेरूप मिथ्यात्व जानना. दूसरी रीतिसे आपकी विभाव परिणति नहीं मिटी है, विभावमें [विषयकषायमें] मग्न रहेवे और आपके मनसें " मै अच्छा करता हुं " ऐसा मानकर आपकी प्रशंसा करै सो आपके विषे असाधुपणा है; तदपि आपमें अच्छापणा–साधुपणा मानना वो असाधुकों साधु माननेरूप मिथ्यात्व है.

९ सिद्धभगवान जो अष्टकर्म याने ज्ञानावरणी क्षय करकें अनंतज्ञानरूप केवलज्ञान प्रकट किया है. दर्शनावरणी कर्म क्षय करकें सामान्य उपयोगरूप केवलदर्शन प्रकट किया है. मोहनीकर्म क्षय करकें चारित्रगुण (आपके आत्मस्वभावमेंही स्थिर रहना उस रूप चारित्रगुण) तथा क्षायक समकित प्रकट किया है. अंतरायकर्म क्षय करकें अनंतवीर्यादिक गुण प्रकट किये हैं. नामकर्म क्षय करकें अरूपीगुण प्रकट किया

है, गोत्रकर्म प्रकट करकें अगुरु लघुगुण प्रकट किया है. वेदनीकर्म क्षय करकें अव्याबाधसुख प्रकट किया है. आयुकर्म क्षय करकें अक्षयस्थितिकों पाये हैं. इसतरह आठ कर्म क्षय करकें अष्टगुण प्रकट किये हैं—ऐसे सिद्धमहाराजजीकों सिद्ध न मानै—भगवंत न मानै और ऐसे पुरुषकी निंदा करै, ऐसे देवकों देव मानते होवे तो उसकों उलटा सुलटा समझाकर ऐसे देव परसें आस्ता उठावे. ये मिथ्यात्व सेवनसें आत्माके शुद्ध गुणभी कोइ दिन प्रकट नहीं होवें; सबब कि ऐसे गुणकी इच्छा होवे तो ऐसेही पुरुषके गुणग्राम करता; मगर नहीं करता है और निंदा करता है वही मिथ्यात्व जानना.

१० सिद्ध नहीं हो याने जिनके अष्टकर्म रहे हैं, नये कर्मभी बांधे रहते हैं, विषयकषायमें आसक्त हैं, वो उनके चरित्रसें सिद्ध होता है; ऐसा होनेपरभी वैसे देवोंको सिद्ध मानना—भगवंत मानना, उनोंकी आज्ञा मुजब चलना, वही संसारवृद्धिका कारण है. वही आत्माके गुणोंका घातकारक है. वास्ते मिथ्यात्व छोडनेका इतनाही उद्यम करें कि अपनकों धर्मकरणी करनेकों बतलाते हैं वो करणी करकें देवोंने देवपणा प्राप्त किया है या अपनकोंही विषयकषायसें मुक्त होनेका कहकर आप खुद विषयकषायमें मग्न रहते है? यदि कथन मुजब वर्त्तन न हो तो एक ठगाइ जैसा काम हुवा ऐसा बुद्धिमानोंकों सहजमें समझमें आ जायगा. और जिसमें गुण प्रकट हुवे हैं वोभी समझमें आयगा. वास्ते अष्टकर्म क्षय किये होवे वही सिद्ध—भगवान्—देव—इश्वर माननें योग्य है. ऐसा करनेसें ये मिथ्यात्व दूर हो जायगा—यह दस प्रकारके मिथ्यात्व हैं.

औरभी छः मिथ्यात्व है याने पहिला लोकिक देवगत मिथ्यात्व सो उपरके दश मिथ्यात्वकी अंदर असिद्धकों सिद्ध माननेका मिथ्यात्व लिखा है वैसे देवकों देव मानना या सांसारिक कार्यके लिये मानत—आखडी रखनी उसे लोकिकदेवगत मिथ्यात्व कहाजाता है. १,

दूसरा लोकिकगुरुगत मिथ्यात्व सो गुरुनाम धराके रातदिन पांच अव्रत सेवन करै ऐसे संन्यासी—फकीर—पादरी वगैरःकों गुरु मानना सो गुरुगत मिथ्यात्व कहाजाता है. २,

तीसरा लोकिकधर्मगत मिथ्यात्व सो जिस पर्वके दिन धर्मका परमार्थ रहा नहीं, फक्त कितनेक पाखंडीओंने उत्पन्न किये हुवे पर्व याने होली, बलेव (श्रावणी

पूर्णीमी.), नागपंचमी, रांधनछठ, शीलसप्तमी, वगैरः पर्वकों धर्मपर्व मानना, और हिंसामय, विषयकषायमय प्रवृत्तिकों धर्मप्रवृत्ति माननी, तथा पुद्गलभावकी प्रवृत्तिकों धर्मप्रवृत्ति माननी उसें लोकिकधर्मगत मिथ्यात्व कहाजाता है. ३,

लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व, सो श्री तीर्थंकरमहाराजजीकों तो मुक्तिके वास्ते देव मानना ये तो योग्य है; क्यौं कि मुक्तिके लिये माननेसें समस्त कार्यसिद्धि होती है; परंतु वो इच्छा छोडकर संसारी कामके लिये मानना याने मेरे बेटा होगा तो मैं सो रुपये चडाउंगा ऐसी मानत माननेसें लोकोत्तर मिथ्यात्व लगता है; सबब कि भगवंतजीकी यथार्थ श्रद्धा होवे तो सहज स्वभावसेंही होगा; लेकिन पुत्र होवेगा तो चडाउंगा ऐसा न मानै. वो तो युंही जानता है कि जितनी बन सके उतनी भगवंतजीकी भक्ति करनी. भक्ति सब कार्य-सिद्धिदायक है. भगवंतजीकी भक्ति करनेपरभी कभी कार्यसिद्धि हाथ न लगै तो जानता है कि जो बनता है सो पूर्वकर्मके उदयसें बनता है और निकाचित कर्म टालने-हठानेकों कोइ समर्थ नहीं. भगवान् वीरस्वामीजीकोंभी कर्म उदय आये सो भुक्तने पडे, ऐसा शोचकर श्रद्धा भ्रष्ट न होवै. और जिनकी श्रद्धा मजबूत नहीं है उनकी विचारणा मानत माननेकोंही रहती है. पूर्वके निकाचितकर्मके जोरसें कार्य न हुवा तो फिर उसकी कुछ बावतोंमें अज्ञानताके मारे श्रद्धा उठ जाती है और धर्म भ्रष्ट होता है; वास्ते ऐसी मानत-आखडी न करनी. करनेसें लोकोत्तर मिथ्यात्व लगता है. पुनः जिनपुरुषका मिथ्यात्व नष्ट हुवा है उनोंनें तो भगवंतजीनें मोक्षमार्ग बतलाया है वो अंगीकार किया है; उससें मोक्षके सिवा पुद्गलीक सुखकी इच्छाही नहीं है. फकत आत्मतत्त्वकीही सन्मुख हुवे हैं. जो जो कर्म उदय होवे वो खुशीके साथ भुक्तते हैं कि मुझकों उदय आये हुवे कर्म संमभावसें भुक्ते जाय तो नये कर्मोंका बंध न हो सकै ऐसी भावना बन रही है, उससें स्वप्नमेंही ऐसी मानत की इच्छा नहीं. सिर्फ सहजसुखके कामी हैं, वे लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व सेवन नही करते हैं. ४,

लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व, सो जैन के गुरुमहाराज मोक्षमार्ग दायी हैं उनोंकों मोक्षके लिये मानने योग्य है. वो छोडकर संसारके मुतलबी काममे मानै सो लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व है. जैनके साधुका वेष पहनते हैं; परंतु प्रभुजीकी आज्ञासें बहार (विरुद्ध) वर्त्तन रखते हैं, उत्सूत्र प्ररुपणा करते हैं, उन्मार्ग चलाते हैं-ऐसे वेषधारी

सुफेद या पीले कपडेवाले नामधारी साधुकों गुरु मानना सो लोकोतर गुरुगत मिथ्यात्व है. ५,

लोकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व वा पर्वगत मिथ्यात्व, सो जैनके पर्व संसारार्थ करना; जैसें कि फल पंचमी करें तो लडके होवें, आशापुरीके आयंबिल करें तो आशा पूर्ण होवें; ऐसी इच्छासें जो जो पर्वाराधन करना सो पर्वगत मिथ्यात्व है. और जो तपस्या कर्मक्षयके लिये करें तो वो निर्जरारुप फलदायक है, वो कुछ दोषित नहीं. संसारकी आशासें करना सो पर्वगत मिथ्यात्व है. धर्मसाधन करकें यह लोक परलोककी इच्छा करनी वो समस्त कर्म आनेका कारण है; क्यौंकि एक मनुष्यने देवलोककी या राजा होनेकी इच्छासें संसारका त्याग किया; अब ये त्याग इच्छा सहित है. उसकों देवता या मानवसुखकी या भोगकी इच्छा है, तो ऐसी इच्छासे तप करें तो संसारकीही वृद्धि होय; वास्ते ऐसी इच्छाका त्याग करना और आत्मगुण प्रकट करनेकी इच्छासें धर्मकरणी करनी कि सहजसें ये मिथ्यात्व दूर हो जायगा, ६—ये छः मिथ्यात्व हुवे. अब तीसरी रीतिसें चार मिथ्यात्व हैं वो कहते हैं:—

१ प्रवर्त्तना मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वकी अंदर, प्रवर्त्तना रखनी याने कोइ मिथ्या सेवन करता है, उसकी सहाय्यतामें, या मिथ्यात्वीके जलसेमें,—वरघोडे—संरभसमें, वरातमें, पधरामणीमें, या अपने कुटुंबी अन्य देवकी सेवा करते होवे उनके साथ वर्त्तन रखना, या मिथ्यात्वके पर्व करना ये प्रवर्त्तना मिथ्यात्व है.

२ प्ररुपणा मिथ्यात्व, सो जिनेश्वर महाराजजीने आगममें पंचांगीमें, या पूर्वाचार्यजीके ग्रंथोंमें जिस जिसतरह धर्म प्ररुपा है उससें विपरीत—अपनी मतिकल्पनासें प्ररुपणा करें; जैसें कि दिगंबर मार्ग चलानेवाले जैनी होनेपरभी वीतरागजीके आगम जो विद्यमान—प्रवर्त्तमान हैं, और कपोल-कल्पित शास्त्र तैयार करकें जुदा मार्गही चलाते हैं. कितनेक ग्रंथोंकी रचनामें निःकारण श्वेतांबरमतकों दोषित किया है, जैसें कि संयमसें भ्रष्ट वर्त्तने वालेकों वंदन पूजन करना श्वेतांबरीभी निषेध करते हैं; तदपि असें साधु श्वेतांबरी मतके हैं, उससें ये मत झुठा है. ये लिखना कितनी और कैसी भूलसें भरपूर है ! मगर जिसकों उत्सूत्र बोलनेका डर नहीं वही बोलते हैं. दिगंबर मत चलानेवालेने साधुकों वस्त्र न रखना ऐसा बतलाया है उससें क्या हुवा कि वस्त्र रहित साधु होना बंध हो गया, और साधुका मार्गही बंध हो गया,

नाम मात्र कोइ [साधु नग्नपनेसें रहनेवाला] होता है तौभी वो दिगंबर साधुभी उपरसें वस्त्र ओढकर रखता है. इससें मरुपा हुवा मार्ग कायम रहाही नहीं. प्रभुजीका एक अंग पूजते हैं, प्रभुजीने आभूषणका त्याग किया है वें आभूषण न चडाना; तो प्रभुजीने स्नानकाभी त्याग किया है तब प्रभुजीकी मूत्तिकों पखाल [प्रक्षालन] भी क्यौं करते हो ? यदि पखाल करनेमें, एक अंगपूजनमें तुमारे अभिप्रायसें हरकत नहीं आती तो शोचो कि येभी निषेध किया हुवाही तुम करते हो. वैसेही-सब अंगोंकी पूजा करो और आभूषण चडावो तो क्या हरकत होवे ? लेकिन विगर विचारसेंही ये बात फेलाइ है, श्वेतांबर रीतं मुजब चलते हैं. जैसें मेरुशिखरपर भगवंतजीका जन्माभिषेक इंद्र महाराजने किया उस वक्त आभूषण पहनाये थे वो भाव ल्याकर ये सब कर्त्तव्य करना हैं, भगवंतजीकी मूर्त्ति आरोपित है उन्होंकों जो जो अवस्था आरोपकर भक्ति करै वो होवे, ये विचार न करतें अष्टद्रव्यसें भक्ति करनेहारेकों निंदा करता है, वही विपरीत प्ररूपणा है. फिर स्त्रीकों मुक्ति नहीं मानते हैं. और गोमटसार दिगंबरका करा हुवा है वो उन्होंने मान्य किया है. ये नामांकित ग्रंथ है, उसमें एक समयमे दश स्त्री मोक्ष जाय असा कहा है; तथापि उस बाबतपर लक्ष न रखकर स्त्रीकों मुक्तिही नहीं एसी विपरित परुपणा करते हैं. दिगंबर मतकी चर्चा विशेष प्रकारसें अध्यात्ममत परिक्षामें उपाध्यायजी यशोविजयजी महाराजने दर्शाइ है उससें यहां ज्यादे नहीं लिखता हुं. ऐसेंही ढूंढीए तेरापंथी वगैरः आगमसें जितनी विपरीत प्ररुपणा करते हैं वो प्ररूपणा मिथ्यात्व जानना. ये प्ररुपणा मिथ्यात्वज्ञान हुवे विगर दूर होनेका नहीं; वास्ते वीतरागके वचनकी श्रद्धा सहित ज्ञानका अभ्यास करना कि प्ररूपणा मिथ्यात्व दूर होवे. बोध विगर ज्यौं करते आये है त्यौंही करना, ऐसा करनेसें मिथ्यात्व दूर नहीं हो सकता; वास्ते ज्ञान निष्पक्षपातसें करना.

३ प्रणाम मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वमोहनीका जहांतक उदय है वहांतक प्रणाम मिथ्यात्व दूर नहीं होवैगा. व्यवहारसें प्रभुपूजन प्रमुख करैगा; मगर अंतरंगमेंसें मिथ्यात्वका क्षयोपशम या उपशम हुवा नहीं वहांतक प्रणाम मिथ्यात्व नहीं हठैगा. ये जवें उपशम समकित या क्षयोपशम समकित पावैगा, तव प्रणाम मिथ्यात्व दूर होवैगा. वास्ते ज्ञानमें और ज्ञानीपुरुषकी उपासनामें तत्पर रहेना. और ज्ञानीके वचन मुजब चलनेकी अति उत्कंठा रखनी. देवगुरुका अतिशय आराधन करना, उससें ते मि-

यात्व दूर हो जायगा. अब ये मिथ्यात्व दूर हुवा है या नहीं उसकी परीक्षा समकितके लक्षण समकितकी सज्झायमें यशोविजयजी महाराजने कहे हैं, उस मुजब आपमें है या नहीं वो मुकाबला कर लेनेसें मालूम हो सकेगा, और अनुमानसें धारण किया जायगा. निश्चय तो अतिशय ज्ञानीके वचनसेंही होवे, वो तो वर्त्तमानकालमें विरह है इससें लाइलाज हैं. और अतिशय ज्ञानीकों पूंछे विगर निश्चय न होवे उनका दृष्टांत कि इशानेंद्रमहाराजने भगवंतजीकों प्रश्न पूंछे कि 'मैं भवी हुं या अभवी? समकिती हुं या मिथ्यात्वी?' ऐसा तीन ज्ञानवालेसें मुकरर न हुवा, तो अपन क्या मुकरर कर सकै? तौभी शास्त्राधारसें उद्यम करना. मार्गानुसारीके गुण हरिभद्रसूरीजीने धर्मबिंदु ग्रंथमें बतलाये हैं उसके साथ मुकावला कर लेना, और मुकावला करनेमें लक्षण न मिलते आवै तो मिथ्यात्व दूर नहीं हुवा है ऐसा समझना.

४ प्रदेश मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वके दलिये आत्मप्रदेशके साथ क्षीर नीरकी तरह एकत्र हो रहे हैं, वो जब क्षायकसमकित होता है तब दूर होता है. मिथ्यात्व बंध, उदय, सत्ता ये तीनुं प्रकारसें हट जाय तब क्षायक समकित होता है; वास्ते वो समकित प्रकट करनेका भाव रखना कि प्रदेशमिथ्यात्व दूर हो जाय.

ये सब मिलकर पचीश प्रकारके मिथ्यात्व शास्त्रमें दर्शाये हैं. इसमें कितनेक भेद एक दूसरेकों मिलते हैं, उसका सबब इतनाही है कि सच्ची वस्तुकों झूठी कहेनी ये मिथ्यात्व है, तो अच्छी बुद्धिवालेकों तो एक शब्दही बस है; मगर विषमकालमें मेरे जैसे मंदमतिवालोंकों रूपांतरसें भेद दर्शाये हुवे नजर आवै तो मन सुधर जाय; वास्ते अलग अलग भेद हैं. वो समझकर हरएक प्रकारसें विभावदशा मुक्त होनेका कामी होनाही दुरूस्त है. कितनेक जैनी नाम धारण करवाते हैं, पोषध प्रतिक्रमण करते हैं, जिनभक्ति करते हैं, गुरुकी सेवा करते हैं, परदेशसें गाँवके लोगोंकों धर्मबोध होनेके लिये साधुजीकों बुलवाते हैं; मगर गुरुजी स्याद्वाद मार्ग दर्शाते हैं उससें कोइ भव्यजीव प्रतिबोध पाता है, और दीक्षा लेनेकों तत्पर होता है. कि उसके माता पिता और सगेसंबंधी गुरुकी निंदा करनेकों तैयार होते हैं, लडनकों कटिबद्ध होते हैं और गाली गलुच देनेमें बेधडक हो जाते हैं किंचित्‌भी पापका भय नहीं रखते हैं. यह कैसे अन्यायकी वात है कि जिनोंकों उपदेश देनेके लिये बुलानेमें आये है वो तो हर प्रकारसें संसारसें उदास होवे वैसाही उपदेश देवे, उससें कोइ उत्तम जीव

दीक्षा लेनेकों तत्पर हो जाय, तो उसमें साधुजी माहाराजकी क्या कसुर कि निंदा करनेकों–लडनेकों तैयार होते हैं? साधुजी कभी फेरफार युक्तिसें करकें बोलें; तो श्रावक कहेंगे कि साधु होकर झुंठ बोलते हैं. युं कहकर विचित्र प्रकारसें निंदा करने लगते हैं. ये सब जोर मिथ्यात्वका है वास्ते अैसी वर्त्तना नहीं करनी. पुनः शास्त्रकी श्रद्धा है अैसा सब लोग कहते हैं; परंतु आपकों स्वार्थ सिद्धिरूप बात मालूम न हुइ तो शास्त्रपरभी लक्ष नहीं देते हैं–ये किसके फल हैं? अंतरंगमेंसें मिथ्यात्व नहीं गया उसका फल हैं. यदि मिथ्यात्व हठ गया होता तो यह दशा होतीही नहीं. साधुजी दीक्षा लेनेकों निकले उसकी कितनेक हकीकतें धर्मबिंदु ग्रंथमें हरिभद्रसूरिजीने दरशाइ है. (वो ग्रंथ बालबोध सहित टीकावाला छपगया है, उसमें दीक्षा लेनेवालेकों मातापिताकी रजा लेनेका अधिकारही कहा है.) वो किस तरहसें कहा है उसका सारांश यह है कि दिक्षा लेनेवालेनें मातापिताकों समझाकर रजा लेनी चाहिये, वे रजा न देवें तो योतिषिकों समझावे कि तुम मेरे मा बापकों कहो कि इसका आयुष कम है वास्ते इसकों रजा देदो–मना मत करो. पीछे योतिषी इस तरह झूंठ बोले उस वास्ते वहां तर्क किया है कि–जो दिक्षा लेनेकों निकले और ऐसा झुंठ बोलै सो झूंठा बोलनेमें नहीं गिना जाता है. ऐसा १७१ पत्रकी अंदर लिखा है. इसपरसें शोचो कि झूंठ बोलनेकी ऐसें मोकेपर छुट्टी है; क्यौं कि जिस कामसें जावजीव झूंठ बोलनेका त्याग होता है. इस लिये ऐसी परवानगी आचार्य महाराजोंने दी है. तो श्रावक निंदा करे तो शास्त्रसें विरुद्धही है या नहीं? वो विचार करना चाहियें. लेकिन मिथ्यात्वकी प्रकृति दूर हुइ नहीं वहांतक शुद्ध मार्गकी श्रद्धा होनेकी नहीं, और श्रद्धा बिगर आत्मतत्त्वका ज्ञानभी होनेका नहीं; क्यौं कि आत्मतत्वका ज्ञान श्रद्धा गम्य है–प्रत्यक्ष नहीं; वास्ते वीतरागजीके प्ररूपे हुवे शास्त्रपर श्रद्धा रखकर आत्मतत्त्व प्रकट करनेके कामी होना. कितनेक श्रद्धा रखते हैं, तो रागी द्वेषीकी श्रद्धा रखते हैं उससें धर्मका नाम और अनेक प्रकारके मत ममत्व करते हैं. धनादिककी, स्त्रीकी कामनामें आशक्त होते हैं–येभी मिथ्यात्वकाही जोर है. वास्ते जिनपुरुषके वचनोंसें संसारपर प्रीति बढकर शरीरादि पदार्थपर राग बढै, मोहका जोर ज्यादा होवे, काम, क्रोध प्रदिप्त होवे, ऐसें बतलाये हुवे धर्मकों धर्म नहीं मानना. जो इससें विपरित याने संसार–कुटुंब–धनादिपरसें राग दूर हठ जावे, अपना आत्मतत्त्व प्रकट करनेमें सन्मुखपणा होवे,

ज्ञानमें चित्त लीन होवै, पंचेंद्रियें वश हो जाँय, मन काबूमें आवै, अपने आत्म स्वरूपमें लीनता होवै, यथार्थ वस्तुधर्मका ज्ञान प्राप्त होय—ऐसे प्ररूपे हुवे शास्त्रपर श्रद्धा करनी दूरूस्त है. और ऐसें गुरुपर यकीन रखना यही मिथ्यात्वनाशक चिन्ह है. प्रभुजीने राज्यऋद्धि, कुटुंब, देहपरसें ममत्वभाव त्यागकर संयम लिया. किसीकेपर रागद्वेष नहीं, इसतरहकी वर्त्तना करकें केवलज्ञान—केवलदर्शन प्रकट किया और मिथ्यात्व सत्ता, उदय, बंध—इन तीनु प्रकारसें नाश किया विसी तरह अपनकोंभी करना कि जिस्से कल्याण होवै याने यही कल्यान है.

१५ पंदरहवा निंद्रा नामक दोष है सो दर्शनावरणी कर्मके उदयसें प्राप्त होता है. निंद्रा पांच प्रकारकी है. पहेली निंद्रा, सो ज्यादे उंघ न होय और जगानेसें सुखपूर्वक जाग उठे—दिलगीर न होवै. जगानेवालेपर गुस्सा न ल्यावै. दूसरी निंद्रानिंद्रा, सो जगावेमें बहुत महेनत पडे, जगानेवालेपर गुस्सा ल्यावै और अपना मन दुःख पावै जब जागे. ये निंद्रा पहेली निंद्रासें ज्यादे आवरणवाली है. तीसरी प्रचला सो चलते चलते उंघ लेवै. घोडा है सो उंघताही चलता है. इसी रीतिसें मनुष्यभी निंद लेते हुए बहुतसें चले जाते हैं. आंखोमें निंदही घरकाव हुइ रहती है. ये विशेष दर्शनावर्णीके आवर्ण होनेसें आती है. पांचवी थीनद्धिनिंद्रा सो छः महीनेमें एक वक्त आती है. वो निंद लेता होय उस वक्त वर्त्तमानकालमें अपने बलसें दुगुना बल होता है. जागृतावस्थामें जो काम न किये जाँय वैसे बल स्फुरायमान करनेके काम निंदमें करता है. दिनमें जो काम चिंतन किया होय वो काम निंदमें करै. एक साधुजीकों निंद्रा आवेसें रात्रीमें उठकर हस्तीके दंतुशल निकाल लायेथे. ऐसे थीनद्धिनिंद्रावाले जीव नरकगामी होते हैं. ये साधुभी संयमसें पतीत होकर नरकमें गये थे यह पांचों निंद्राका त्याग होवै तब मोक्ष जाता है. अज्ञानतासें निंद आनेमें सुख मानता है; परंतु सुख मानने लायक नहीं है. सुख माननेसें, आलस्यतासें और निंदकी बहुत इच्छाएं करनेसेंही ये दर्शनावरणी कर्म बंधा जाता है. निंदसें आत्माका उपयोग आच्छादित हो जाता है. जीता मनुष्य मुवे हुवेकी अवस्थाकों पाता है. निद्रासक्तवालेके आगे कोइ बोलै चालै या शरीरपर कुच्छ करै तौभी उसकों खबर पडे. तब उपयोग आच्छादित हो गया ये प्रत्यक्ष नुकसान हुवा; वास्ते हरएक प्रकारसें जागृत दशा होवै ऐसी इच्छा रखनी. भगवान् श्रीमहावीरस्वामीजी कि जिन्होंकों बार वर्षमें दो घडी

निंद आइ हैं. बाकी सब समय अप्रमाददशामेंही गया है—आत्मतत्त्वके विचारमें गर्क है उन्होंने खुद स्वाभाविक आत्मगुण प्रकट किया; वास्ते जिसतरह भगवंतजीने दर्शनावरणी कर्म क्षय किया विसतरह क्षय करनेका उद्यम करना कि जिससें अपनाभी दर्शनावरणी कर्म क्षय हो जावे, और केवलज्ञान केवलदर्शन प्रकट होवे. पुनः इस संसारमेंभी बहुत निंद लेनेवालेकों दरिद्री कहते हैं, आपका काम करनेमेंभी शक्तिवान नहीं होता. अभ्यास करनेवालेकों ज्यादे निद्रा होय तो वो विशेष अभ्यास नहीं कर सकता है, गुरुजीके पास व्याख्यान सुननेकों जाय तो वहां बैठे बैठे निंद लेवे इससें व्याख्यानकी धारणा नहीं कर सकता है और ऐसे प्रमादीके घरमें चोरभी मजेहसें चोरी कर सकता है—इतने इस लोकमें नुकसान होते हैं और परलोकके नुकसानमें दर्शनावरणी कर्म पैदा होता है. ऐसा जानकर भगवंतजीनें निंदकी इच्छाका नाश करके केवलदर्शन प्रकट किया है जिसमें सब दर्शनगुण रहे हैं. विसी तरह अपनकोंभी भगवंतजीकी आज्ञा मुजबही दर्शनावरणी कर्म क्षय करनेका उद्यम करना और निद्राका नाश करना.

१६ अव्रत नामक दोष सो आत्मामें रहा हुवा है उसके प्रभावसें अनेक प्रकारकी इच्छाएं होती हैं, हिंसासें, झूंठ बोलनेसें, चोरी करनेसें, मैथुनकी वांछासें और परिग्रहकी ममतासें याने इन पांच अव्रतसें चित्त नहीं हठता है. ये पांच अव्रत कैसे हैं? एक अव्रत सेवनेसें दूसरे अव्रत सहजसेंही फैलें जाते हैं. पुनः ये अव्रत सेवनके निमित्तभूत पांचों इंद्रियके तेइस विषय और मनकी चपलता जब तक पांचों इंद्रि और छट्ठा मन छूट्टा रहता है, उसकी कामना बनी हुई रहती है, वहांतक छः कायकी हिंसा रूकी जाती नहीं. अब ये विषय हैं वो यह लोक और परलोकमें दुःखके देनेहारे हैं; जैसे कि अपनकों कोइ सूइ बदनपें चुभका देवे तो कितनी तकलीफ होती है. और डाकतर नस्तरद्वारा व्रण वगैरः हुवा हो उसे चीरता है तो आंखोंमेंसें आंसु गिरते हैं, फिर चिल्लाताभी है कि जिस्सें दूसरोंकोंभी थास्ती लगे. इस बातका सबकों अनुभव होनेसें इसका बयान ज्यादे करनेकी जरूरत नहीं. जैसें अपनकों दुःख होता है—पीडा होती है वैसेंही दूसरे जीवकों जब काट डाले तो उसकों क्यों दुःख न होवे? अवश्य दुःख होवे! वो दुःखसें उसके मनमें बुराभी लगे तो सरकारमें फरियादभी करे तो उससें अपनकों शिक्षाभी होवे. शायद फरियाद न करे और जोरदार होवे तो मारभी

मार बैठे तो प्रत्यक्ष दुःख भुक्तना पडे. कोइ मनुष्यकों कोइ उस वक्त साह्यकारी [मददगार] न होवे तो जब मददगार मिल जाय तब उसकों हरकतमें डाल देवे. इस मुजब दूसरे जीवकों दुःख देनेसें यह लोकमें दुःख भुक्तना पडता है. और वो जीवकी अभी शक्ति न होवे तो आते जन्मकी अंदर उस जीवकों शक्ति प्राप्त होनेसें दुःख देवेगा, या नरकादिकमें परमाधामी वगैरः दुःख देवेंगे–इस लिये एकेंद्रीसें लगाकर पंचेंद्रि तकके किसी जीवकों दुःख नहीं देना ऐसी बुद्धि प्राप्त होवेगी तो हिंसा करनेकी बुद्धि उत्पन्नही न होवेगी. झूंठा बोलनेसेंभी दूसरे जीवोंकों दुःख होवेगा. चोरी करनेसेंभी उस जीवकों दुःखका पार न रहवेगा; सबब कि गरीब या क्रोडपति कोइ हो; मगर सबकों धनकी इच्छा होती है; और वो धन ले जावे तो दुःख क्यों न होवे? अलबत होवे! जैसें कुमारपाल राजाने एक उंदर–मूसेकों अपने दर–बिलमेंसें सुवर्णम्होरें निकालकर उसके साथ गैल करता हुवा देखाथा. उस परसे राजाके दिलमें आया कि इस तिर्यंचकों धनपर प्रेम समझसें है या बेसमझसें है? उसका तमाशाः देखनेके लिये मुहेकी सुवाम्होरें उठाली. थोडी देरके पीछे चूहा तडफडाट करकें मर गया, कि कुमारपालकों बहुत दिलगीरी पैदा हुइ, और उसके प्रायश्चितमें उंदरीआ प्रासाद बनवाया. इसपरसें ख्याल करो किं तिर्यंचकोंभी धनपर कितनी तृष्णा है? तो मनुष्यकों तो धनसेंही सब कारभार चलता है. उसका धन कोइ चुराकें ले जाय तो मनुष्यकों बेशक अपार दुःख होता है. दुनियांमें शरीरकी पीडासें मनकी पीडा याने कायिक रोगसें मानसिक रोग–व्याधिसें आधि बहुत पीडाकारी है. कितनीक दफै धन चला जानेसें मनुष्यका मरण हो जाता है–शरीर सूख जाता है वो मनकी पीडासेंही होता है; वास्ते उससेंभी दूसरे मनुष्यकों तकलीफ होती है. पराइ स्त्रीके साथ मैथुन करनेसें जब उसके पतिकों खबर हो जाय या उसकें मावाप आदिकों खबर हो जाय तब कितना दुःख होता है वो जगजाहिर है. किसी वक्त जारपुरुषका जान चला जाता है. अगर कोइ समय उस व्यभिचारिणीकाभी जान जोखममें फंस जाता है. अगर तो उस स्त्रीके पतिका जीव जोखममें गिरफतार होता है. कभी जीव न जाय तो रातदिन इसकी पीडा दुःख देती है. फिर अपनी स्त्रीके साथ संभोग करनेसें योनिमें समुछिम जीव असंख्याते मर जाते है, तो उन जीवोंकों दुःख होता है. पुनः अपना शरीरभी नरम हो जाता है–शरीरमें तक-

ठीक होती है, और अंतमें रोगके भोग हो मरनके शरन हो जाता हैं. परिग्रहकी इच्छा होवै वहांतक हर प्रकारसें धन इकट्ठा करना—उसमें लुचाइ—ठगाइ—दगावाजी करनेमें निडर रहते हैं. झूंठ वोलनेसेंभी नहीं डरते हैं, किसीका प्राण लेनेसेंभी नहीं डरते हैं, और आप खुदभी विचित्र प्रकारसें दुःखी होते है, ये परिग्रहकी मूर्छाके फल हैं यह पांचों अव्रत ऐसें है कि एकका सेवन करनेसें दूसरेका सेवन हो जाता है अगर तो हो जाय, उससें भगवंतजीने पांचो अव्रतका त्याग किया है. और भगवानजीका यही उपदेश है कि हरप्रकारसें अव्रतका त्याग करना चाहिये. यदि विशेष विशुद्धि होवै और सव प्रकारसें अव्रतका त्याग होवै तो वो करना, और सव तरहसें त्याग न हो सकै तो देशसें त्याग करकें श्रावकके वारह व्रत धारण कर लेना. इस तरहसें श्रावक या साधु धर्म बाह्यसें अंगीकार करकें (अंतरंग शुद्ध न हुवा तो अव्रत दूर नहीं हो सकता है वास्ते) अंतरंग शुद्धिके लिये कषायकी परिणती त्याग करनी चाहिये. वहारसें प्रवृत्ति न करै तोभी अंतरमें इच्छाएं—हुवेंही करैं तो पीछे कर्मवंध होता हुवा नहीं रुकता है. पुद्गल भावसें अनादिकी इच्छाएं—हिंसाकी—झूंठकी—चोरीकी—मैथुनकी—धनकी इन पांचो पदार्थकी इच्छाएं मुक्त हो जावै तव आत्माका काम होता है. देखो, तंदुलि मच्छ है वो मत्सकी पापनमें होता है. वे जिस मत्सकी पापनमें होता है, उस मत्सका मुंह वडा है उससें कितनेक मत्स उसके मुंहमें आते हैं और निकलते हैं वो तंदूली मत्स देखता है. देखकर शोचता है कि यदि मेरा मुंह इतना वडा होता तो एक जीवकोंभी पीछा नही जाने देता. ऐसा दुष्ट विचार करनेके सववसें मरकर वो सातवीं नरकमें जाता है. उसने कुछ खाया पिया नहीं, मगर तिव्र इच्छासें दुष्ट ध्यान ध्याता है उसके प्रभावसें नरकमें जाता है. ऐसेंही दुनियामें जो चीजें हैं सो सव अपनको प्राप्त नहीं हो सकती हैं; मगर वै चीज उपयोगमें लेनेकी इच्छा होती है. हुवाही करती हैं. कितनीक वक्त पैसेकी तंगीसें मिल नहीं सकती, अगर पैसा है पर कृपणतासें पैसे खर्चे नहीं जाते उससें नहीं मिल सकती है. कितनीक दफे शरीरकों प्रतिकूल (वो वस्तुएं) होनेसें उपयोगमें नहीं ले सकता हैं; परंतु अव्रतके उदयसें इच्छाएं हुवाही करती हैं वो अज्ञानकाही प्रभाव है. अपनी क्या वस्तु है, आपके आत्मभावमें किस तरह वर्त्तते रहना उसकाभी ज्ञान नहीं उसके मारे इच्छाएं हुवा करती हैं, दुनियामें हजारोः चीए हैं, वै कोइ मुंहपर थुंकनेकीभी नहीं; मगर जो जो दृष्टिगोचर होती हैं

कि चित्त दौडे या कानोंसें सुन लेवै कि फलानी स्त्री बहुत खुबसूरत है तब चित्त दौडै परंतु ये बात अज्ञानके जोरसेंही बनती है वास्ते वो न होना, चाहियें. पुनः धन जो बिलकुल न हो तो शोचै कि हजार रुप मिल जाय तो अच्छा, मगर जब हजार मिल चुके तब लाखकी इच्छा होती है. लाख मिलै तो करोडकी इच्छा होती है, करोड मिले तो अबजकी इच्छा करता है और उससेंभी ज्यादे मिलै तो राजकी इच्छा होती है, राजा हुवा तो वासुदेवके राजकी इच्छा होती है, वासुदेवपणा मिला तो चक्रीपद-की होती है, और चक्री हुवा तो इंद्र होनेकी इच्छा होती है. अब ऐसी इच्छाएं करता है उससें कुछ हाथ आता नहीं; परंतु जीवकों तृष्णा नहीं मिट सकती है—ये अव्रतकी राजधानी है. फिर कितनेककों दस बीस हजार मिलते हैं कि व्यापार बंध करते हैं क्यों कि ये मिले हुवे शायद न चले जाँय.! इसके डरकेमारे विशेष धन पैदा करनेका उद्यम नहीं करता, उससें उसकी तृष्णा रुक गइ है ऐसा न समझना, वास्ते हरतरहसें इच्छा रोक देनी योग्य है. कभी संसारका त्याग किया और चेला चेलीकी, पुस्तककी मानकी इच्छा न दूर हुइ या इंद्रिये वश न हुइ तोभी अव्रत दूर नहीं होता है. कभी इस लोकके विषय रोक दिये; मगर परलोककी इच्छा करै कि मैं मरकें राजा होउं-धनवान होउं-देवता होउं—देवताकी, इंद्राणीका सुख भुक्तुं—ऐसी इच्छाएं हैं वोभी अव्रत है. उपाध्यायजी महाराजने मंडुक चूरण न्याय कहा है याने मरे हुवे मेंढकके चूर्णमें मेघजलकी बुंदे पडे तो बहुतसें मेंढक पैदा हो जाँय, विसी तरह इस भवके वि-षय छोड दिये और परभवके बहुत विषयकी इच्छाएं की इससें कुछ अव्रत दूर नहीं हुवा शुभ किया है वो कारणरुप है, वो कारणरुप धर्म जानकर करनी; मगर उसकों आत्मधर्म न समझना. आत्मधर्म तो जितनी जितनी इच्छाएं होती बंध हो जा-यगी—वो कर्तम नहीं—स्वभाविक धन—स्त्री—पुत्र—शरीर किसीकाभी दरकार न रक्खे, और अपनेही स्वभावमें आनंदित होवे और स्थिर रहवे. जो जो पुद्गलकों होवे वो जानने देखनेका स्वभाव है वो स्वभावमें रहना, उसमें रागद्वेष न करना यही आत्मा-का कार्य है इस दस दशामें रहवे कि सहजहीमें अव्रत दूर हो जायगा. कषायका सर्वथा नाश होनेसें अव्रत सर्वथा दूर हो जाते हैं. अंशअंशसें देशविरती गुणस्थान पाता है वहांसें दूर होना शरु होता है. भगवंतकों सर्वथा अव्रत दूर हो गया है उससें भगवान हुवे हैं.

१७ राग नामक दूषण है. ये रागके घरके माया और लोभ हैं. ये राग परिणती अनादिकालकी है. धनके ऊपर या कुटुंब, स्त्री, पुत्र, स्वजन, मकान, दुकान, बाग, बगीचेके ऊपर राग होता है. मिली हुइ वस्तुपर राग होता है और न मिली हुइ वस्तुपरभी [राग] होता है, देखी हुइ–बिन देखी हुइ, सुनी हुइ और पढनेमें आइ हुइ वस्तुपरभी राग होता है–ऐसें अनेक प्रकारसें रागदशा है. और रागदशाके प्रभावसेंही पापी जीवका संयोग मिलता है और ऐसे खराब मनुष्यका संग मिलनेसें पीछा द्वेष जाग्रत होता है. परवस्तुके ऊपर राग होनेसेंही जीव अनादिका संसारचक्रमें परिभ्रमण करता है. अनेक प्रकारसें जन्समरण करने पडते हैं. परस्त्रीपर राग होवे तो आप मरजाय तोभी उसकी इच्छा मुक्त नहीं होती. ऐसे अधर्मीजीवोंको मनुष्यजन्म तो प्राप्त होवेही नहीं; मगर मनुष्य शरीरके भीतर कीडा या कृमीके भवकों प्राप्त होवे यही रागका प्रभाव है. जो जो कर्मबंध होता है वो रागद्वेषसेंही होता है और जीव संसारमें रूलता है. द्वेषभी रागसें होता है–अपनी वस्तु मानली है वो वस्तु कोइ ले जाय तो यह वस्तुपर राग है उससें ले जानेवालेपर द्वेष होता है. द्वेष करनेवालेकों कोइ कहनेवाला मिले कि तुम मुग्ध होकर कषाय करते हो; मगर रागकी बाबतमें मुनीमहाराजजी सिवा कोइ समझानेवाला नहीं. यह जडपदार्थपर राग करनेसें आत्माके गुणोंकों राग नहीं होता, और उसके कारण जो ज्ञान–दर्शन–चारित्र है उसपरभी राग नहीं होता रागके वशसें जीव लज्जाकों छोडकर निर्लज्ज कर्म करते हैं. उच्च जातिके मनुष्यकों धन–कुटुंब–रूपवती स्त्री होवे; तथापि नीच जाती–भंगीकी स्त्री पर राग हुवा होवे तो ये धन कुटुंब छोडकर उसकी साथ संबंध करता है, ये रागकी विटंबना है. जो वस्तु खानेसें शरीरकों उपाधि होती है, धर्म भ्रष्ट होता है; तोभी रागके बंधनसें वो वस्तु खाता है–और ऐसी वस्तु खानेसें कितनीक वक्त मनुष्य मरजाता है वो दिखता है तोभी ऐसे काम करता है. धनके रागसें करके लोभ होता है वो चाहें उतने पैसे मिल जाय तदपि संतोष नहीं पाता. और असंतोषसें लंबे व्यापार करनेसें असल पैसे होवें वैभी चले जाते हैं किंतु लोभकों नहीं छोडता. और कितनेककों देवाले निकालने पडते हैं. कितनेक बददानतसें पैसें होवे तोभी लोगोंके पैसें नहीं देता है. वै लोक ऐसा नहीं शोचते है कि ऐसा करनेसें जन्मपर्यंत दुनियामें बेइज्जत होवैगी, और लडकोंकोंभी कहेंगें कि तेरे बापने देवाला निकालाथा. ऐसी बाबत बननी है तोभी धनके

रागसें स्हामनेवालेका और आपके भाइका, बापका, माताका प्राणभी लेता है तो औरोंका प्राण लेवै इसमें तो कहनाही क्या ? ये विटंबना रागकी है. चोरी करते, ठगाइ करतेंभी रागसें करकें जीव डरता नहीं. विश्वासघात करनेमेंभी भय नहीं मानता कदाचित् गृहस्थपणा छोडकर दीक्षा लेता है; परंतु जडपदार्थपरसें राग गया नहीं उससें पुनः साधुके वेषमें गृहस्थकी प्रवृत्ति करता है–गृहस्थकी तरह धन मिलाता है, लडकेके रागकी तरह चेलेका राग जागृत रहता है. पुस्तकका राग सजग रहता है और ऐसी वर्त्तना करकें संयममें भ्रष्ट होता है आत्मभावमें नहीं रहते, शास्त्रका बोधभी निकम्मा जाता है. ज्ञानका बोध तो जैसें ज्ञानमें जाना गया वैसें वर्त्तन करै तब ज्ञानका फल होवै. जैसें कोइ मनुष्यने जान लिया कि यह झेर है; परंतु खायगा तो बेशक मर जायगा, वैसें ज्ञान पढकर राग बंध तो मुक्त नहीं होता कर्मबंध हुवे विना रहते नहीं. और जिसकों निरागदशा प्रकट हुइ है उसके प्रभावसें कोइ कुछ ले जाता है तो, कोइ मारता कुटता है, पीडा देता है, निंदा करता है और किसीका वियोग होता है; तोभी आपकों खेद नहीं होता, मरनेकीभी फिकर नहीं, आपने अपना आत्मस्वरूप जान लिया है उससें जानते हैं कि मेरा आत्मा मरनेका ही नहीं ! मरता है सो जड है. आत्मा अविनाशी है. शरीरकों पीडता है सोभी पूर्वकालमें जडकी सोवतसें दूसरे जीवोंकों पीडा की है उससें पीडता है, तो जैसा जैसा जडसंगतिसें कर्म बांधा गया है वैसा वैसा भुक्तना है. कोइ वस्तु ले जावै सो मेरी नहीं है; मगर जडकी संगतिसें मेरी मानली है और मेरी मानकर पराइ वस्तु ली है तो मेरी ले जाता है. पूर्वकालमें जिसने किसीकी वस्तु ली नहीं उसकी वस्तु मार्गमें पड रही हो तोभी कोइ नहीं ले जाता है. ऐसे ज्ञानके प्रभावसें जरासाभी खेद धारण नहीं करते हैं–अपने आनंदमेंही रहते हैं. ज्ञानीजन तो समवृत्तिसें करकें जो जो सुख दुःख प्राप्त होता है, उसमें राग-द्वेष करतेही नहीं. आत्माका जाननेका स्वभाव है सो जो जो रूप बनते हैं सो जान लेता है. कर्मका स्वरूप जान लिया गया है उससें कर्मके उदय मुजब बना हुवा रहता है–ऐसा जानकर कोइभी अनुकूल वस्तुपर रागदशा धारण नहीं करते. इसी तरह भगवंतजीने रागद्वेष क्षय करकें आत्माके अपने गुण प्रकट किये हैं. उन्होंके कदम दर कदमसें आज्ञा मुजब चलै तो अपने आत्माके गुण प्रकट करकें परमपद पावै.

१८ द्वेष नामक दूषण है–ये द्वेषकी प्रवृत्ति जगतमेंभी निंदनीय है. द्वेषके दो पुत्र हैं याने पहेला क्रोध और दूसरा मान. क्रोध करनेसें दूसरेकों दुःख करता हुं ऐसा मानता है; परंतु आप खुदकों प्रत्यक्ष दुःख होता है–आपकाही शरीर भिन्न रूपवंत हों जाता है याने लाल लाल हो जाता है, छातीमें घभडाहट होता है, लोहु उछल जाता है उससें खून सूख जाता है और निर्बल हो जाता है. ये बनाव क्रोधसें होता है. क्रोधी मनुष्य कही नौकरी रहनेकों जाय तो उसें कोइ नोकर नहीं रखता. किसीके वहां क्रोधी व्याजु पैसे लेनेकों जाय तो वोभी खुश होकर देवै नहीं. दुकान की हो तो शांत मनुष्यके वहां जितने ग्राहक आवै उतने ग्राहक क्रोधीके वहां नहीं आते. कन्याकी जरूरत हो तो खुशीसें नहीं मिलती. फिर क्रोधी मनुष्य अपनेही हाथसें अपनां सिर फोडता है–कूवे वगैरः में गिरता है–जहर खाता है–फांसा डालकर जान निकालता है. अपने हाथसेंही अपना घात करता है और जगतमें अपयश पाता है. क्रोधीजन कभी संसार त्यागकर साधु होता है तो कषायसें करके उसमेंभी शोभा नहीं पाता, और आत्माकाभी कल्याण नहीं होता; मगर संसारकी वृद्धि होती है. जैसें कि चंडकोशिये सॉपने पूर्व भवमें साधुपणेकी अंदर क्रोध किया तो मरे बाद पुनः क्रोधी होनेकाही वक्त हाथ लगा. वहांभी क्रोधसें मरण पाया और सॉंप होनेका वक्त रुजु हूवा. इसी तरह जो जो मनुष्य क्रोध करै उसकों यह लोकमें दुःख होवै और परलोकमें नरकगतिमें जाना पडै; वास्ते हर प्रकारसें क्रोध दूर करनेका उद्यम करना अग्निशर्मा तापस मास मास खमणके अंतर पारणा करता था; तोभी दुर्गतिमें जानेका वक्त आया. (इसकी विस्तारसें हकीकत समरादित्यकेवलीके रासमें देखो. कितनेक भव तक द्वेष रहा और कैसे कैसे दुर्गतिके फळ मिले है ?) क्रोधसें प्रत्यक्षमें मार खाता है, वक्तपर प्राणभी जानेका मोका हाथ लगता है; वास्ते ज्यौं बन सकै त्यौं क्रोधकों जीतकर समतामें रहना कि जिससें यह लोकमें सुख होवै क्रोधीकों संसारमें सुख नहीं और परलोकमेंभी सुख नहीं. नरकादिककी कठीन वेदनाएं भुक्तनी पडेगी. फिर मान करनेसें आप ऐसा समझता है कि मेरी वडाइ होती है; परंतु वो वडाइके बदलेमें लघुता हांसिल होती है. मद करनेसें बडे वडे राजाएंभी दुःखमें पड चुके हैं तो दूसरोंका तो कहनाही क्या ? इसलिये ज्यौं बन सकै त्यौं अहंकारकों त्याग देना. अहंकार क्रोधकाही बीज है अहंकार नाश पावै तो क्रोध आवैही नहीं. जगतमें जितनी

भीजें हैं उसमें जड है सो नजर आती है, तो आप चैतन है, तो जड चीज प्रि अप्रिय करनेसें अप्रिय चीजपर द्वेष होता है; परंतु जो परवस्तु याने पराइ है उसके पर द्वेष करनेसें कफ कर्मबंध करने सिवा दूसरा कुछ लाभ नहीं वास्ते जो व वस्तुके जो जो धर्म है वो जान लैना. जो जो अवसरपर जो जो वस्तु ग्रहण करनेका उदय हुवा वो वस्तु ग्रहण करनी. उसमें द्वेषकर ग्रहण करनेसें कर्मबंध सिवा और कुछ फायदा नहीं. आत्मा मलीन होता है. मुनीमहाराजोंने और तीर्थंकरमहाराजनीने द्वेषका त्याग किया और केवलज्ञान पाये; वास्ते दूसरेभी आत्मार्थी जीव उन्हीकी रीति मुजब द्वेषका त्याग करना. खानेकी-पीनेकी-पहननेकी-ओढनेकी-बिछानकी-सोनेकी-चलनेकी कुछभी-कोइभी वस्तु प्रतिकूल मिलै उसमें द्वेष धारण नहीं करना. कोइ धन ले जावै, कोइ मारकूट कर जावै तोभी कर्मका विचार करना कि पूर्वके पुन्यकी न्यूनता होवै जब ऐसा बनता है; वास्ते रागसें जीवपर द्वेष करना वो निकम्मा है. ऐसा शोच करकें समभावदशा धारण करनी. द्वेषका अंशभी जागृत न होवै वैसी प्रवृत्ति करनी, और सत्ता, बंध, उदय इन तीनुं प्रकारसें नाश करना कि केवलज्ञान-केवलदर्शन गुण प्रकट होवै.

इस मुजब यह अठारह दूषण भगवंतजीने क्षय किये हैं, उससें आत्माके संपूर्ण गुण उत्पन्न हुवेले हैं कि जिससें एक समयमें तीन जगतके भाव जान सकेत हैं, ऐसी शक्ति प्राप्त हुइ हैं. एक एक द्रव्यके अंदर समय समय अनंत पर्याय परावर्त्तमान हो रहे हैं, वो एक एक द्रव्यमें पूर्वकाल याने जिस कालका अंत नहीं और आते कालमें पर्याय होनेके वो समस्त एकही साथ जान सके ऐसा ज्ञान जिन्होंको प्राप्त हुवा है. आत्माकी अनंत वीर्यशक्ति प्राप्त हुइ है-ऐसे आत्माके समस्त गुण प्रकट हुवे हैं, उसके प्रभावसेंही देवता स्फटिक रत्नमय समवसरणकी रचना करते हैं-तीन गढ रचते हैं-उसमें तीसरे गढमें देव सिंहासन कायम करते हैं उसपर विराजमान होकर भगवानजी देशना देते हैं. वो देशना कैसी है? जिसमें किसी प्रकारका आपका लाभ नहीं रहा हुवा होता है, किसी प्रकारसें स्त्री या धनकी स्वप्नमेंभी इच्छा नहीं. जिनकों धनादिककी और मान-गर्वकी इच्छा रही है वो धर्मोपदेश देते हैं, उसमें स्वार्थ रख देते हैं, और जहां स्वार्थ आया वहां सच्चा धर्मस्वरूपका दर्शाव होताही नहीं. तैसेंही सुननेवालेका ध्यानभी उपदेशकके स्वार्थ पर जानेसें उनका

उपदेश श्रवण करनेहारेकों लाभकारी नहीं हो सकता; सबब कि हमेशाः जो धर्मोप-
देश देनेवाला जैसा उपदेश देवै उसी मुवाफिक वे खुद नही प्रवर्त्तते हैं, तब सुनेवाले
शोचते है कि गुरुजी या भगवंतजीसेंभी इसतरह नही हो सकता है, तो अपन किस
तरह चल सके? ऐसा शोच करकें आप जिस स्थितिमें है वही स्थितिमें कायम रहवै.
मगर आत्माके गुण प्रकट करनेकों उत्सुक नहीं होते है. और जिनोंके अढारह दूषण
नष्ट हुवे हैं उन्होंकों तो वीतराग दशा प्रकट हुइ है. न किसी वस्तुपर राग है न द्वेष
है. केवल जगतके जीवोंका उद्धार करनेके लियेही वसुधापर विचरकें धर्मोपदेश
देते हैं, उससें श्रोताओंकाभी कल्याण होता है. सुनेके लिये वारह पर्षदा बैठती हैं.
(यह अधिकार श्राद्धशतक नामक प्रश्नोत्तरमेंसें यहांपर लिखता हुं.) केवलज्ञानीमहा-
राज पूर्वद्वारसें समोवसरणकी अंदर प्रवेश करते हैं, सोभी जिनेश्वरजीकों तीन प्रद-
क्षिणा कर ' नमोतीथ्थस्स ' कहीकें पूर्व और दक्षिणके बीच बैठतें हैं. उनकें पीछे
मनःपर्यवज्ञानी–अवधिज्ञानी–चौदह पूर्वधर–दस पूर्वधर–नव पूर्वधर और लब्धिवंत
मुनिभी पूर्वद्वारसें दाखिल होकर भगवंतजीकों तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार कर ' नमो-
तीर्थाय, नमोगणधरेभ्यो, नमोकेवलीभ्यः ' इसतरह कहकरकें केवलज्ञानीजीके पीछे
बैठक लेते हैं. उस पीछे दूसरे समस्त साधुजी पूर्वद्वारसें प्रवेश करकें तीन प्रदक्षिणा
दे ' नमस्तीर्थाय, नमोगणभृद्भ्यो, नमःकेवलिभ्यो नमो अतिशयज्ञानीभ्योः ' इसतरह
नमस्कार करकें–पहेले बैठे हुवे मुनिवरोंके पिछाडी बैठते हैं तदनंतर विमानीक
देवी पूर्वद्वारसें प्रवेश करकें प्रभुजीकों तीन परकमा देकर ' नमस्तीर्थाय, नमः सर्व
साधुभ्य. ' इस तरह नमन कर साधुजीके पिछाडी बैठक लेती हैं. पश्चात् साध्वीजी
पूर्वद्वारसें प्रवेश करकें भगवानजीकों तीन प्रदक्षिणा देकर नमन कर वैमानिक देवी-
ओंके पिछाडी बैठक लेवैं. भवनपतिकी, व्यंतरकी, ज्योतिपिकी देवीएं दक्षिण द्वारसें
प्रवेश करकें वैमानिक देवीओंकी तरह भगवंतजीकों प्रदक्षिणा, नमन करकें दक्षिण
और पश्चिम दिशाकी बीचमे क्रमवार बैठक लेवैं. तत्पश्चात् भवनपति, ज्योतिपी, और
वाणव्यंतरके सुर–देव पश्चिम द्वारसें प्रवेश कर प्रभुजीकों प्रदक्षिणा नमनादि करके
पश्चिम और उत्तरके बीच क्रमसें करकें बैठक लेवैं वैमानिकदेव और मनुष्य, मनुष्य-
णीएं ये तीन उत्तर द्वारसें प्रवेश कर प्रदक्षिणा नमनादि करकें पूर्व और उत्तरकें बीच
बैठक लेवैं. इस मुजब वारह पर्षदा समवसरणमें जिनवाणी सुनेकों बैठती हैं. कहां

भगवंतजीके अतिशय प्रभावसें तीन तर्फ भगवंतजीका प्रतिबिंब देवता बनाते हैं, उससें चारों कोर बैठे हुवे भगवंतजीकों सन्मुखही देशना देते हुवे देखते हैं, इससें चारों मुखसें देशना देते है ऐसा समझनेमें आता है. देशनाकि ऐसी खुबी है कि जिस जिसके मनमें जो जो शंका होवै या शंका पडती है वो सब प्रभुजी जान लेकरकें ज्ञानसें उत्तर देते हैं. किसीकोंभी प्रश्न करनेकी जरूरत नहीं रहती है, ऐसी जिन्होंकी शक्ति है. किसीके दिलका संदेह दूर करना मुश्कील नहीं. ऐसी भगवंतजीकी वाणी सुनकर निकट भवीजीव तो उसी वक्त प्रतिबोध पाकर संयम लेते हैं. और वैसी विशुद्धि न होवै तो वे श्रावकधर्म या सम्यक्त्व अंगीकार करते हैं और आत्माका कल्याण करते हैं ये दोनु प्रकारके धर्मका विस्तार युक्त वर्णन प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिमें है, इससें यहांपर लिखनेकी आवश्यक्तां नहीं; परंतु सारांश यही है कि हर प्रकारसें संसारमोहनी, स्त्री पुत्रादिककी मोहनी और धनादिककी रागदशा अनादिकी है, वो रागदशा उतार डालनी, और आत्मदशाकी सन्मुख ज्यौं ज्यौं विकल्प दूर हठ जाय वैसा उद्यम करना, और विकल्पके कारण छोड देना. जहांतक संसारमें मन है वहांतक आत्मदशा जाग्रत होनेकीही नहीं, उस लिये संसार छोडकर साधु होनेकी जरूरत है. साधुजी होते हैं तब व्यापारादिकके कारण दूर हो जाते हैं, स्त्री वगैरःके कारणभी अलग हो जाते हैं, उससें आत्मज्ञान किसतरह करना उसके शास्त्र देखनेका निवृत्तिसें वक्त मिल सकता है. कितनेक शास्त्र तो ऐसे है कि वांचनेसेंही मोह हठ जाता है और आत्मभाव प्रकट होता है. आत्मभाव प्रकट होवै ऐसे बहुतसे शास्त्र हैं उसके अभ्याससें मग्न होते हैं पीछे अनुभवज्ञान प्रकट होता है, तब तो शास्त्रकीभी जरूरत नहीं. आपके प्रबल ज्ञानसें ध्यानादिकद्वारा कर्म क्षय करते हैं और केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्रकट करते हैं. इतनी विशुद्धि नहीं होवै तो मरनकें बाद देवता होता है. वहां देवसुखका अनुभव करकें पुनः मनुष्य होकर धर्माराधन कर मुक्ति प्राप्त करते हैं. वास्ते ऐसे अठारह दूषण रहित देवकों देव मानने चाहियें, उन्होंकी भक्ति करनी और उन्हीके हुकम मुजब चलना. जो प्रभुजी मोक्ष पाये हैं उन्हीका बतलाया हुवा मार्ग अंगीकार करै तो अपनभी मोक्ष प्राप्त कर सकै.

किसीकों प्रश्न होगा कि क्या जैनधर्मकेही देव अठारह दूषण रहित है ? क्या दूसरे देव अैसें नहीं है ? उसका समझाना कि, हम कुछ अैसा नहीं कहते हैं. इस संबंधमें जैनधर्म सिवाके होवै उन्होंने अपने आपसेंही आपके देवोंके चरित्र लिखे हुवे होवैं वे देख लेने चाहियें, और वै चरित्र देखनेसें यदि अठारह दूषणमेंसें कोइभी दूषण न होवें तो उन्होंकों वडी खुशीके साथ देव मानने चाहियें. और वैसे देवकों हमभी नमस्कार रातदिन करते हैं. बांचनेवालेकों देवका चरित्र देखनेंही जो अठारह दूषणमेंसें दूषण देखनेमें आवै तो वें दूषणवाले देवकों कौन मानेगा ? जिनकों ये दूषण न छोडने होवेंगे वही मानेंगे. और जो त्याग करने होवेंगे तो शोचेगा कि जिसने आपके आत्माका उद्धार न किया तो अपने आत्माका क्या उद्धार करेगा? ऐसी विचारकरकें सहजसेंही सत्य देवकीही आज्ञा धारण करेगा.

प्रश्न—बडे बडे पंडित हो गये और बडे बडे भारी शास्त्र बनायें उन्होंनें क्या देवकी पहेचान न की होगी ? न्याय और व्याकरणके शास्त्र जैनीओंकोंभी ब्राह्मणके पास पढने पडते है; वास्ते ऐसे विद्वानने कुछ देखनेका बाकी रक्खा होगा ? इस संबंधमें यही समझना कि यह बात अपना अपना मन जान सकै ऐसी है. कितनेक अन्यदर्शनके विद्वानोंके साथ बात हुइ हैं, वै विद्वान अपने धर्मकी पुष्टि करते हैं; परंतु खानगी—गुफतगो करनेके वक्त उनोंके मुँहसें उससें विपरीत बोल निकलते हैं; जैसें कि आचार्य महाराज श्री आत्मारामजी पेस्तर ढुंढक मतमें थे, उस वक्तमेंही ढुंढकके पास पढनेके लिये गये थे. उस ढुंढकने शिक्षा दी कि–' प्रतिमाजीकी निंदा जो तुम करते हो, वास्ते में तुमें न पढाउंगा; क्यौं कि आगमजीमें देखनेसें प्रतिमाजी पूजनेका व्याजवी मालूम होता है. ' और उसने प्रमाणस्थल बतलाकरकें प्रतिमाजीकि श्रद्धा करवाइ. तब आत्मारामजीने कहा कि–'तुम झूठ मार्गमें क्यौं पड रहे हो? जवाब दिया कि–अब निकलनेसें लज्जा आती है.' ऐसी रीति हैं; वास्ते दूसरेकी तर्फ देखनेका विचार करना सो व्यर्थ है. अपने आपसेंही शास्त्र देखकर निष्पक्षपातसें तपासकर लैना कि सच्चा क्या है ? वो सहजसेंही समझमें आ जायगा. जैनी व्याकरण न्याय पढते हैं वो तो कक्का सीखने समान है. उसमें कुछ मार्गका ज्ञान करनेका नहीं मार्गका ज्ञान किसी ब्राह्मणके पास लेनेंकों नहीं जाते हैं. मार्गका ज्ञान तो मार्ग पाया हुवा मनुष्यभी बतला सक्ता है, तो मुनि महाराज तो एक संसार त्याग करनेका कम कर चुके हैं. व्याक-

रण पढानेवाला तो संसारमें पडा हुवा है वो क्या बता सके ? वास्ते यह सब पराये विचार छोडदेकर यदि अपना काम करना हो तो उसकों अपने आत्माका उद्धार करनेके वास्ते आप खुद शास्त्राभ्यास करकें देवगुरुकी तजवीज करो सोही दुरुस्त समझ लो तो बहुत फायदेमंद है. अनादिकी आदत तो ऐसी है की जिस मजहबमें पडे वही किये करना; लेकिन वो रीति छोडकर अपनी बुद्धिसें सूक्ष्म विचार करकें जो जो देव नाम धरवा कर अपनकों जो धर्म करनेका कहते हैं वो धर्ममें वी चले हैं ? और स्वभावमें रहकर विभावसें मुक्त रहेनेका कहते हैं वैसे रहे है ? ए देखनेका मुख्य काम है और अपनकोंभी मनुष्यजन्म पाकर यही करनेका हैं वास्ते अंशअंशसें जडकी प्रवृत्ति कमी होवे. और आत्मस्वभावमें स्थिरता होवे. ये उद्यम करना. ये उद्यमसेंही वर्त्तमान समयमें या कलांतरमें अनुक्रमसें आत्मगुण संपूर्ण उत्पन्न होवेंगा; वास्ते ज्यौं बन सकै त्यौं आत्मतत्त्वकी शुद्धिषट् दर्शनमेंसें जिस दर्शनमें विशेष मिल सकें उस दर्शनकों ग्रहण करकें उस दर्शनकी श्रद्धा रखकर स्वगुरु खोजनेके कामी होना.

प्रश्न—तुमारे जैनदर्शनमें व्यवहार क्रियामें वर्त्तते हैं; परंतु कोइ आत्म खोजना करनी या आत्मगुणमें वर्त्तना, वैसे तो मालूमही नहीं होते.

उत्तर—सब जीव कुछ आत्माके शोधक नहीं होते हैं, और आत्मगुणमें वर्त्तनेवालेभी नहीं होते हैं. सबब कि यह दुषम कालमें ज्ञानीओंनें पेस्तरसेंही ज्ञानमें देख लिया है कि वर्त्तमान समयमें कोइ इस क्षेत्रकी अंदरसें मोक्ष नहीं जावेगा. इससें मोक्षमें जावें वैसे ध्यानदिकके करनेवाले कहांसें होवे ? लेकिन, वर्त्तमानकालानुसार साधन कर सकै ऐसे उत्तम जीव तो अभी मिल जावे. ध्यानादिक करकें समभाव दशा ध्यानी है, विषय कषायसें मुक्त होना है, तो कोइ मारपीट कर जाय या तो पूजा सत्कार कर जाय तो उन दोनुपर तुल्य दशा करनी चाहिये. वो करनेके उद्यमी तो निकलें गें; मगर कितनेक धर्मवाले ध्यान करनेका नाम देकर गांजेकी चिलम फूंकते हैं–भंग पीते हैं, उससें ज्ञान नष्ट हो जाता है ओर विषय कषाय बढते हैं. ऐसा उद्यम करकें कहवे कि हम ध्यान करते हैं वो क्यौं मान लिया जाय ? अन्य दर्शनमेंभी कितनेक वेदिये प्रभु कहेजाते है वो कैसे होते है ? कि जो वेदांतकी बातें करैं, उसकी कथा करै और विषयकषायमें वर्त्तें. तब कहने लगे कि जडका काम जड करता है उसमें हमकों क्या ? जो खानेका दिल होवै सो खाना, भोगकी इच्छा हुइ होवै तो भोग करना, कुछभी

जडकर्त्तव्यमें रूकावट नहीं करनी. ऐसा धर्मपालन करके स्वेच्छा मुजब चलै विषय-कषायमें मशगुल रहे. और कहेवे कि हम ध्यानी हैं, उसें दुनियामें वेदीए पशु कहे-जाते हैं. पातांजली योगशास्त्रमें अष्टांग योग साधनेका कहा है, उसमें प्रथम योग यम है वो पांच वस्तुके त्यागसें होता है याने जीवहिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह इन पांचोंका त्याग होवै तब यम नामक योग प्रकट होवे दूसरा योग नियम है, उसमें शौच, संतोष, तप, सज्झायध्यान और इश्वरध्यान इन पांचोंके सेवनसें नियम सिद्ध होता है. तो ये जैसें जैनमें व्यवहार कहा है वैसेंही योगशास्त्रमें कहा है. तीसरा आसन योग है–याने आसन स्थिर करना, ये तीन सिद्ध हुवे पीछे चौथा प्राणायाम योग होता है, उसमें पूरक, कुंभक और रेचक करना कहा है–ये हठ समाधि योग है. पांचवा प्रत्याहार योग है, उसमें पांचों इंद्रियके विषयोंका संवर होता है. संसा-रसें और जडभावसें विमुख होता है. तत्त्वबोध होता है, सूक्ष्म ज्ञानभी होता है. छठ्ठा ध्यानयोग है. सातवा धारणायोग और आठवा समाधियोग है ये तीन योग केवल सहज समाधिकी प्राप्तिके साधन है सो होवै. अब शोचा कि अष्टांगयोगके साधनवा-लोंनेभी प्रथमके योगमें व्यवहारशुद्धि बतलाइ है, वो व्यवहारशुद्धि न करै और कहवै कि ध्यान करते हैं वो बात ज्ञानवंत क्यौं कबूल करेंगे? जैनशासनमेंभी क्रमशः चड-नेकों गुणस्थानकका क्रम बतलाया है, उस मुजब उसमेंभी योग्यता मुवाफिक ध्याना-दिक हैं, और क्रमरहित गुणस्थानमें चडनेवालाभी पीछा पडता है, वो संयमश्रेणीकी स्वाध्यायमें कहा है. पुनः बृहत्कल्पकी शाक्षी दी है; वास्ते क्रमशः जिसतरह ध्यान नादिककी रीति कही है, अष्टांगयोगकी व्याख्याभी योग्य दृष्टि समुच्चयमें हरिभद्रसूरि-जीने विस्तारपूर्वक कही है उसमें ज्यादे तफावत नजर नहीं आता है. और जैनी जानते नहीं, शोध करते नहीं, ये कहेना जैन धर्मशास्त्रके अजानपनाके लिये है. जैनमें क्रमसें गुणस्थान चडनेका कहा है, उसमें योग्य होता है तब ध्यान करता है. योग्यता न आवे वहांतक भावनाएं भावै. ये भावना ध्यानका स्वरुप ध्यान शरीक, योगशास्त्र, ध्यानमाला, षोडशकजी वगैरः ग्रंथोमें देखोगे तो अच्छी तरहसें समझा जायगा. मैनेभी अंशमात्रसें प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिमें दर्शाया है. उससें यहां नहीं लिखता हुं; वास्ते उसमेंसें देख लैना. तुमारा प्रश्न इतना स्वीकारते है कि मार्गमां दर्शामे मुजब मेरेसें नही हो सकता है वो प्रमाददशा है. बाकी जो महापुरुष हुवे हैं और होनेवाले हैं वे

पुरुष तो आत्मतत्त्वकीही शोधमें वक्त व्यतीत करते हैं, निजस्वरूप शोचते हैं, आपके गुणपर्याय विचारते हैं. आपका स्वरूप शोचतें आपकी विपरीतदशा मालूम होवे उसें दूर करनेके लिये व्यवहारमें वर्त्तते हैं. व्यवहारमें वर्त्तनेसें जितना आत्मा कर्मसें मुक्त होता है और निर्मल होता है उसकोंही धर्म मानते हैं, उसीमेंही आनंदित होते हैं. आपके आत्माकी परीक्षा करनेकों कष्टभी सहनकर देखते हैं; सबब कि वातें करनेरूप जडपदार्थ मेरा नहीं ऐसा कहते हैं; परंतु ज्ञानी तो कष्ट सहन करनेके वक्त परीक्षा करते हैं कि जो शरीरकों कष्ट पडता है तब वो कष्ट मुझकों हुवा माना जाय या नहीं? जो दुःखमें चित्त लिप्त होता है तब तो कथनरूप हुवा, और जो शरीरकों कष्ट होता है उसमें समभाव रहते हैं तब सच्चा ज्ञानी हुवा स्वीकारते हैं, ऐसी स्वाभाविकदशाही स्वस्वरूप परस्वरूप ज्ञान होनेसें हुई है, उसके प्रभावसें जो जो दुःख होता है उसमें किंचित्भी खेद नही पाते हैं, आपआपने आनंदमें रहते हैं. कर्मफलकी प्रतीत होती जाती है कि पूर्वसमयमें पाप किये हैं, उसका यह फल भुक्तता हुं. अबभी पाप करुंगा तो उसके फल भुक्तने पडेंगे, ये बिचार जम गये हैं उससें कर्म क्षय करनेके प्रभुजीने जो जो उद्यम कहे हैं उससें व्यवहारमें वर्त्तते हैं, निश्चय स्वरूप हृदयमें चिंतन करते हैं, उसकी विचारणा कर रहे हैं. विशेष विशुद्धिवंत ध्यानादिमें लीन होते हैं, और ऐसे उद्यमसें पुरुष मोक्ष पावेंगे यह निश्चय वार्त्ता है; परंतु जिसने उद्यम छोड दिया उसकों तो कुछभी होनेका नहीं.

प्रश्नः—धर्मका उद्यम तो सब धर्मवाले अपने अपने विचार मुजब करते हैं तो जैनधर्ममें क्या विशेष है?

उत्तरः—जैनधर्मके मार्गमें निश्चय और व्यवहार ऐसें दो प्रकारका मार्ग है, उससें करकें वस्तुधर्मका यथार्थ निर्णय होता है, और यथार्थ प्रवृत्तिभी कर सकते हैं. जैन होकरकेंभी कितनेक अकेला निश्चय ग्रहण करते हैं. कितनेक अकेला व्यवहार ग्रहण करते हैं और निश्चयपर दृष्टिही नहीं देते. इन दोनुमें यथार्थ जैनपना ही नहीं. इस वास्ते यशोविजयजीने कहा है कि—'स्यादवाद पूरण जो जाने, नयगर्भित जस वाचा; गुणपर्याय द्रव्य जो बूझे, सोइ जैन है साचा.' इसतरह कथन है. और इसी मुजब चले उसीकोंही जैनी कहना दुरुस्त है. तो जैसें जैन नाम धारण करकें एक पक्ष ग्रहण करै तो उसें जैनीकी गिनतीमें नहीं गिना जावे; सबब कि वो यथार्थ आ-

त्मसाधन न कर सकै. त्रिसी तरह अन्यदर्शनमेंभी एकांत पक्ष ग्रहण करै उसें वस्तुधर्मका यथार्थ ज्ञान न हो सकैगा. और वस्तुधर्मके बोध सिवा आत्मधर्मकों आत्मधर्मके स्वरूपसें न जान सकै; जडधर्मकों जडधर्मके रूपसें न जान सकै, जैसा आत्माका लक्षण है वैसा लक्षण न जान सकै, परमात्माका जैसा लक्षण है वैसा न जान सकै, वो कदाचित् परमात्माका ध्यान धरे तोभी सफल किसतरह होवै? कितनेक कहते हैं कि–' इश्वर सिवा कोइ पदार्थ हैही नहीं. जडपदार्थ है ऐसा कहते हैं सो भ्रांति है. अब प्रत्यक्ष पदार्थकों भ्रांती कहते हैं वै मनुष्य उसके अनुसार ध्यान धरै तो आत्मकार्य किस प्रकारसें हो सकै? वास्ते जो जो वस्तु जिस जिस रूपसें रही है उस उस स्वरूपका ज्ञान करकें ध्यान धरै तो कल्याण होवै; बाकी जिस जिस जीवोंकों अपने आत्माका कल्याण करनेकेही बुद्धि है और वो बुद्धिसें जो उद्यम करते हैं वो परंपरासें हितकारी है; सबब कि आत्मधर्म पानेके सन्मुख हुवे हैं,' उनोंकों सद्गुरुका योग मिल जाय तो ज्ञान होनेमें देर न लगै. वास्ते सन्मुख भाव करना ये अच्छा हैं. उससें परंपरासें कल्याण होवैगा, और एक पक्षकी बुद्धि छोडकर निश्चय दृष्टि हृदयमें स्थापन कर निश्चय प्रकट होवै वैसे कारण सेवन करने चाहियें कि उससें कल्याण होवै, और परंपरासें इच्छित सुख होवैगा. उसमें मुख्य शास्त्रज्ञान करनेका विशेष उद्यम रखना, उस ज्ञानानुसारके परभावसें मुक्त होनेके साधन करने चाहियें कि उससें सर्व श्रेय होवैगा.

प्रश्नः––जैनमें कितनी वस्तु कही हैं?

उत्तरः—जड और चेतन दो पदार्थ है, इनकी व्याख्या पेस्तर बहुतसी की है, इससें यहांपर नही लिखता हुं. अब इतनाही लिखनेका है कि जड जो शरीर–घर–हवेली–कपडे–आभूषण वगैरः प्रकट पदार्थ हैं, उसकों अद्वैतवादी कहते हैं कि भ्रांति है, पदार्थ नहीं. अविद्याके प्रभावसें मानते हो. यह जो कहा हुवा है इस विषयके बहुतसें ग्रंथभी लिखाये गये हैं और न्यायभी रचे गये हैं; परंतु मेरे विचारमें सर्वज्ञ पुरुषने क्या बतलाया हैः–यह जडपदार्थ हैं, उससें ये पदार्थ मेरे नहीं, इन पदार्थोंमें मेरापना मानता हुं सो भ्रांति है–अविद्या है, आत्माका चेतन स्वभाव है वास्ते परस्वभावकों मेरा कहना सो भ्रांति है ओर यही भ्रांतिसें अनंतकाल हुवा संसारमें परिभ्रमण किया; वास्ते जिसकों संसारमें भटकना न होवै उसकों इन पदार्थोंपरसें मेरेपणेका ममत्व छोड देना, इसतरह परमात्माका कथन है, उसका रुपांतर

हो गया है. फिर जैनमत स्याद्वाद है, उसकों अंजानपनेसें युं जानता है कि हा और ना ये किस तरह वन सकै ? परंतु जो जो पदार्थ रहे हैं उसमें दो दो धर्म रहे हैं तो वै न माननेसें कार्यकी सिद्धि किस प्रकारसें हो सकै ? उसका दृष्टांत कि-औरतकों लडके होते हैं. अव एक पक्ष पकडकर कहैं कि औरतकों लडके होतेही है, तो क्या दूषण आता है कि वंध्यास्त्रीकों लडके नहीं होते हैं. अब वंध्याकों होवैही नहीं ऐसा मानते है उसमेंभी दोष आता है; क्यौं कि वंध्याकों औषध देनेसें वंध्यादोष मिटता है और लडके होते हैं. अब युं कहै कि औषधसें वंध्यादोष दूर होता है तो वोभी झूठा है; सबब कि कितनीक औरतोंकों औषधसेंभी वंध्यादोष नहीं मिटता है, तो एकांतसें युंभी कहैं तो दूषण आयगा. शरीरकी निरोगता अच्छी मावजत रखनेसें रहती है ऐसा यदि एकांतसें कहेंगे तो महाराणी साहवाकों मंदगी भुक्तनी पंडी और शरीर त्याग करनेका समय आया, क्या उन्होंने मावजत करनेमे कुछ कमी रक्खी होगी ? मगर पूर्वकृत कर्म जोर करै वहां मनुष्यका कुछ नहीं चल सकता है. अब यहांपर ऐसा सवाल होवैगा कि शरीरकी मावजत रखनेके लिये कुछ जरूरत नहीं, कर्मसें होता है सोही होवैगा, येभी एकांत पक्ष नहीं. हिफाजतसेंभी बचाव होता है; जैसें कि जानबूझकर विष खायेंगे तो फिर क्यौंकर जिया जायगा-जीवन कुशल रहवैगा ? महामारी वगैरःकी हवा चलती होवै वहांसें दूर जाना चाहियें, युं करनेसें बचाव होता है-येभी एकांत नहीं. अब डाक्तरकोंभी भग जाना चाहिये ये सवाल ऊठैगा; क्यौं कि दूसरे भगें तब डाक्तर क्यौं न भग जाय ? तब हम कहेंगे कि भाग जानेका एकांत नहीं. डाक्तर महामारी लागु न हो सकै ऐसे बंदोवस्तसें रह करकें लोगोंकी सलामती समालै-डाक्तर भग न जाय. दूसरे जन दूसरी जगह चले जाय तो हरकत नहीं. इसी तरहसें धन पैदा करना, सो महेनत करनेसें धन पैदा होता है और नहींभी होता. बुद्धिवंत बुद्धिसें धन पैदा करता है, वोभी एकांतसें नहीं कहा जायगा, बुद्धिवंत देवालेभी निकालते हैं. और मूर्ख होवे है सो धन समालकर रखते हैं, वोभी एकांत नहीं; बुद्धिकी न्यूनतासें बहुत नुकशान होता है. खाना वो अच्छा है मगर वोभी एकांतसें नहीं क्यौं कि शरीरमें खाया हुवा हजम नहीं हुवा और फेर और खाय लेवै तो अजीर्णादिक रोग होवै, वास्ते उसकों न खाना, उसमेंभी एकांत नहीं; सहज पदार्थ संतोषके लिये-निभावके लिये, खोराक लिया पाचन होनेके लिये खाना चाहियें.

घी वहुत उत्तम पदार्थ है, खाने लायक है; मगर निरोगीके वास्ते है, रोगीके लिये नहीं. रोगीकोंभी न खाना ऐसा एकांत नहीं, औषधके अनुपानमें–रोगपर या शरीरस्थितिपर विचार करकें वैद्य–डाक्तर खानेकों कहें तो खानाभी चाहियें. दान देना उत्तम है; मगर एकांत नहीं. अपने सिरपर करजे होवै वो न देवै, और दान देवै, उस प्रकारसें दान न देना येभी एकांत नहीं आपके खानेके वास्ते दो रोटी बनाइ है उसमेंसें आधी या एक रोटी देकर वाकी रही हुइ रोटीसें आपका गुजारा चला लेवै. सो उत्तम है. दान न देता तो आप खाता; मगर आपने खाया नही और दान दिया. सो महा फलदायी है. किसीकों दुःख न देना ये शब्द एकांत है तोभी वो एकांत नहीं. किसी उत्तमपुरुषकों रोग हुवा है, वो रोग मिटानेके लिये दुःख देवै तो वो लाभकारी है; जैसें कि वर्ण व्रण गया हो और नस्तर देवै तो उससें दुःख होता है सही; परंतु शाता करनेके वास्ते दुःख देना है तो वो दुःख देना निषेध नहीं. लडकोंकों पढानेके लिये शिक्षक आदि विद्यार्थियोंकों मारते हैं–दुःख देते हैं वो दुःख देना निषेध नहीं. वोभी एकांत नही. मारनेसें हाथपॉव टूट जाय, जखम हो जाय, खून निकलै, कोइ भारी इजा होवै ऐसा मार वगेरःभी न मारना चाहियें. फिर कोइ कोमल अंगका होवै वैसेकों विलकुल न मारना चाहियें. फिर कोइ शिष्य अयोग्य होवै तो न मारना चाहियें. इसतरह सव विद्या पढनी यह साधारण नियम है; परंतु वो एकांत नहीं. मंत्र–विद्या वगैरः विद्या सिद्ध करनेकी जिसमें शक्ति न होवै उसको वो विद्या पढनीही न चाहियें. और तप करना सो लाभकारी है, वोभी एकांत नहीं, जिसकी शक्ति होवै वो तो सुखसें तप करै; मगर ताकत न हो तो तप करनेसें परिणाम विगड जाता है. वैसेकों तप न करना वोभी एकांत नहीं अंतिम मरण समय है और उस वक्त शक्ति हो या न हो तोभी चारों आहारकों त्याग करनाही दुरूस्त है. वोभी एकांत नहीं, जिनके भाव अच्छे न रहैं और परिणाम विगड वैठे तो उसकों त्याग करना व्याजवी नहीं. धर्मोपदेश देना ये अच्छी वात है; मगर एकांतसें नहीं. जिसने यथा प्रकारसें शास्त्रका ज्ञान मिलाया है वो उपदेश देवें; परंतु जिसने वैसा ज्ञान न मिला लिया हो वै ओर उपदेश देने लगै तो प्रभुजींकी आज्ञा विरूद्ध देनेमें आ जाय, वास्ते ज्ञान रहित हो उसें उपदेश न देना. ज्ञानवंत है वोभी श्रोता उपदेशके लायक न होवै तो उपदेश न देवै–वोभी एकांत नहीं.

वर्त्तमानकालमें लायक श्रोता नहीं है, मगर उपदेश देनेमें लायक बनेगा ऐसा मालूम हो सके तो देना. अयोग्यका जवाव न देनेसें शासनकी लघुता होती हो तो लघुता दूर करनेके लिये उपदेश देना यह स्याद्वाद रीति है अपेक्षा अपेक्षाके वचन भिन्न भिन्न हैं. अब ऐसी अपेक्षाएं न समझै और एकही रीतिकी बात कहवे वो ज्ञानी कि अज्ञानी ? सरकारके कायदामेंभी अपवाद हैं. इसी तरह जैनशासनमेंभी उत्सर्ग अपवाद मार्ग बतलाया है. बिगर अपेक्षासें हा उसकी ना ऐसा जैनमार्ग नहीं. इस तरहसें जैनमार्ग समझ लिये बिगर किसी जगह शास्त्रमें उत्सर्ग मार्गकी बात होवे और किसी जगह अपवाद अपेक्षासें होवे, वो विचार ध्यानमें लिये बिगर कहते है कि जैनमें एक जगह कुछ कहा है और दूसरी जगह और कुछ कहा है–ऐसा कहेनेवाले केवल मूर्खताका उपयोग करके कहते हैं. जैनशासनकी सुज्ञता प्राप्त हुइ होती तो कभी ऐसा न कहेते. जैनमें जो सात नय सप्त भंगी आदि बतलाइ है वो ऐसा अपेक्षा ज्ञान होनेके लियेही है. वो नयादिकका यथार्थ ज्ञान हो जाय तो समस्त जगह जो जो नयका वचन है वो वो नयको उसी जगह स्थाप लेवें तो किसी बातका संदेह रहवेही नहीं. परंतु वो ज्ञान बिगर जैनशासननी स्याद्वाद बातके संबंधमें विपरीत बोलै–भाषण करै ये अपने मजहब–पंथका हठ है. जो-जो पदार्थ रहे हैं उसका निर्णय स्याद्वाद ज्ञानसेंही होता है दुनियामें कोइभी वस्तुका स्वभाव स्याद्वाद सिवाका नहीं है; जैसें कि जीव है सो अविनाशी है ये सत्य है, किसी रोज जीवका विनाश होताभी नहीं. यही पक्ष पर अेकांतसें रहवे तो जो जो जीव संसारमें परिभ्रमण करते हैं वे एक शरीर छोडकर दूसरी जातिका दूसरा शरीर धारण करते हैं. तो पेस्तर हाथी था तब आपके आत्म प्रदेश हाथीके सारे बदनमें फैलकर रहे हुवे थे, वो हाथीभी मर गया और मख्खी हुइ तो जो हाथीमें फैलाव था उसका संकोच कर मख्खी जितनेमें समाया–इसी तरह आत्मप्रदेश हुवे तो हाथीवाली अवगाहनाका नाश हुवा, और हाथीकी–बोलने–चलने खाने–पीने वगैर; जो जो प्रवर्त्तनाथी वो बंध हो कर मख्खीपणेकी हुइ तो हाथीपणा नाश हुवा, उस अपेक्षासें जीवमें नाश धर्म भी रहा है. जो नाश धर्म न मानै तो विपरीत कि कैसा ? परमाणु पदार्थ अविनाशी है; मगर एक दूसरे मिलजाना, अलग हो जाना ये धर्म रहा है, सो विनाशी धर्म है. इसी तरह मिट्टीके अनेक घाट होते हैं, वो विनाश होते हैं, मिट्टी अविनाशीपणेसें है, तो इसी-

मेंभी दो धर्म रहे है, विसी तरह दो दो धर्म सबमें मौजूद हैं. आत्मामें स्वभाव धर्म और विभावधर्म–ये दोनु दोनु अपेक्षासें रहे है. स्वभावधर्म कर्तृम नहीं, स्वभावधर्म जडमें रहेनेका; मगर जडकी साथ वर्त्तनेका नहीं. मुँह नहीं उससें बोलनेका नहीं, चलनेका नहीं; फकत जानना–देखना–स्वभावमें स्थिर रहना ये स्वभाव आत्माका हैं. अब एकांत मानै तो जडप्रवृत्ति करता है सो कौंन करता है? वेदांतीलोग ऐसा कहते है कि मायासें अविद्या होती है तो उस रीतिसेंभी परसंयोगसें वर्त्तनातो हुइ. तो जीवमें स्वभाव न होवै तो किसतरहमें वर्त्तना करें? अब वर्त्तनेका स्वभाव मानै तो इससें राहित होवै नहीं. ऐसें एकस्वभाव माननेसें कुछभी वस्तु निर्णय नहीं हो सकैगा. जैनशास्त्रकारें स्वाभाविकधर्ममें कुछभी जडप्रवृत्ति नहीं ऐसा कहते हैं सो सत्य है. वैसा न होवै तो संसारसें मुक्त होकर कोइ शुद्ध हो सकेही नहीं. वास्ते शुद्ध नि-श्चयनयके पक्षसें निंजस्वभावमें रहना यही धर्म है. अशुद्ध निश्चयनयके पक्षसे जडकी संगतके जोर कर्म बंधे हुवे हैं. वो कर्मके संयोगसें जडकी प्रवृत्ति होती है. जड ज्यौं वर्त्तता है त्यौं आत्मा वर्त्तता है. अब वो प्रवृत्ति छोडनेके वास्ते व्यवहारमें धर्मसाधन करना है और जो जो कर्म बांधे हुवे हैं वो क्षय होवै वैसा उद्यम करना. कर्म क्षय करनेकाही यथार्थ उद्यम किये विगर आत्मा निर्मल होनेकाही नही और कर्मक्षय हो-नेकेही नहीं. ऐसे वस्तुओंमें स्वाभाविक विभाविक धर्मोंका ज्ञान विगर ध्यान करै तो विपरित ध्यान होवैगा. वास्ते पदार्थोंके धर्मका दर्शाव जैनशास्त्रकी अंदर बहुत वि-स्तारपूर्वक है, वो जानकर पीछे दया दानादिक करै तो सफल होवै, और मोक्षसा-धनभी उसें कहा जावै. स्वभाव धर्मकों स्वभावपणेसें श्रद्धा करके विभाव धर्ममें वर्त्तना है वो दूर करनेमें पेस्तर विभाव वर्त्तना करनी पडेगी; जैसें कि गृहस्थपणेकी प्रवृत्ति विभाविक छोडकर साधु धर्मकी प्रवृत्ति करनी. अब निश्चयनयकी अपेक्षासें येभी वि-भाव है. परंतु ये विभाव कैसा है? स्वभावकों आवरण लगा हुवा होवै उसे हठाने-वाला है–वीतराग आज्ञासें साधुपणा आता है सो तो विभावके अंश क्षय होनेसेंही आता है, वो ज्यौं ज्यौं संयममें तत्पर होवै और सयम स्थानमें चडता जाय त्यौं त्यौं विभावदशा हठती जावै और आत्मशुद्धि होवै. अनुक्रमसें गुणस्थान चडता जाय सो सर्वथा विभावसें मुक्त होवै और स्वभावधर्ममें प्रकट होवै उससें अनंत ज्ञानशक्ति प्रकट होवै और एक समयमें तीनलोकके भाव जाननेमें आवै. अनंतदर्शन प्रकट होवै उससें

सामान्य उपयोग रूप बोध होवै. अनंत चारित्रगुण प्रकट होवै उससें स्वभावमें स्थिर रहवै. अव्याबाधसुख वेदनीकर्मके क्षयसें प्रकट होवै. नामकर्मके क्षयसें अरूपिगुण प्रकट होवै. गोत्रकर्मके क्षयसें अगुरु लघुगुण प्रकट होवै. अंतरायकर्मके क्षयसें अनंत-वीर्य प्रकट होवै. आयुकर्मके क्षयसें अक्षयस्थिति प्रकट होवै. इसतरह अनंत आत्माके गुण प्रकट होवैं और लोकाग्रमें सिद्धिके अंदर विराजमान होवै.

प्रश्नः—सिद्ध स्थान कहां है और वहीं किस लिये रहना?

उत्तरः—सिद्ध स्थान चौदह राजलोककी उंचाइ है उसके अंत भागमें अलोक-कों छूके रहे है. अलोक याने वहां धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पु-द्गलास्तिकाय, काल ए पांचों पदार्थ नहीं उससें अलोक कहाजाता है. वो अलोकके नीचे रहे हैं; सबब कि धर्मास्तिकाय अलोकमें नहीं उसकी सहायता बिगर चला नहीं जाता वास्ते वहां रहे हैं. वहां कैसें रूपसें रहे हैं? देह नहीं उससें वर्ण नहीं, गंध नहीं, स्पर्श-फर्स नहीं, रस नहीं, अरूपीपणेसें रहे हैं. सो सदाकाल अवस्थितपणेसें रहे हैं कोइभी दिन पुनः चलित होनेकाही नहीं–अचल स्वभावी [संसारी सुख अस्थिर है वैसा अस्थिर सुख नहीं.] स्थिर सुख है, जन्म मरण करनेके दुःख दूर हो गये हैं, संसारमें विकल्पकाही दुःख है, जब विकल्प न होवै तब संसारमें सुख होता है उससें सिद्ध महाराज सदा विकल्प रहित हैं–कोइभी वक्त, कोइभी कारणका विकल्प नहीं उससें सदा काल सुखमयी रहते हैं. संसारमें इच्छाएं प्रवर्त्तती है वैसी इच्छाएं पूरी न होवै उसका दुःख है; परंतु सिद्ध महाराजकों कोइभी संसारी चीजकी इच्छा नहीं उससें दुःख नहीं जिससें सदा सुखमयी है. जो जो पदार्थ देखनेमें जाननेमें आते हैं उस संबंधी रागी जीवकों राग होता है. पीछे वो मिलता नहीं उसका दुःख होता है. और महाराजजी वीतराग दशाकों पाये है उससें उन्होंके जानने देखनेमें चौदहराज लोकके पदार्थ समय समयमें आते हैं; परंतु वीतराग दशाके लिये जो आपके आत्माके स्वभावसें मालूम होते हैं उसमें कुछभी चित्त नहीं, विकल्प नहीं, मगर स्वभावानंदमें वर्त्तते हैं. जितने जितने संसारमें दुःख हैं उस अंदरका एकभी दुःख सिद्ध महाराजजी कों नहीं. पुनः संसारके जो जो सुख है वो दुःखमयी हैं–अनित्य हैं, मात्र सुख मानते हैं इतनाही है. ज्ञानदृष्टिसें सोचै तो सुख नहीं है; सबब कि जगतके जीव स्त्रीके भोगसें करकें आनंद मानते है; परंतु इसी वक्त शरीरकों कितनी तकलीफ होती हैं उसपर

लक्ष नहीं देते हैं. उसकों दुःख न मानते सुख मानते हैं विषयसें आयुष्यकी हानी-पैसेकी खराबी होती है, वो सब बात बाजुपर रखकर सुख मानते हैं. किसी तरह तमाशे खेल देखनेकों जाय वहां रात्री जागरण करता है, खडाही खडा रहता है, उसें दुःख नहीं मानता. जेवर पहनकर खुशी होता है, उसका बोजा उठाना पडता है और शरीरकों पीडा देता है परंतु उसपर लक्ष नहीं. युंही खानेके विषयमें कितनीक ऐसी चीज है कि खानेसें रोगकी उत्पत्ति होती है; मगर उसकी तरफ लक्षही नहीं. कितनेक पदार्थ शरीरकों अरुची करे ऐसें नहीं है तोभी वे प्रमाणसें खावै तो. यदि प्रमाणपर लक्ष न रक्खै और पशुकी तरह अतिशय खावै तो अजीर्ण होवै और मर जाय या बीमार होवै, उसकाभी विचार विषयके आगे बेमालूम रहेता है. यदि प्रमाणसें खावै तोभी उसमें कितने दुःख भुक्तने पडते हैं, जैसें कि जीवकों दुग्धपाक खानेका दिल हुवा है और दुग्धपाक खाकर खुश होता है, मगर दुग्धपाक बनातेही कितना पसीना निकला जब तैयार हो सका उसका कोइ विचार नहीं करता. इसतरह संसारी सुख दुःख गर्भित है. स्त्रीयोंकों विषयके लिये पुरुषका दासपणा करना पडता है. यदि विषयकी इच्छाही न होवै तो पाणीग्रहण करनेकी जरूरतही न पडै; परंतु विषय सेवनकी इच्छासें पाणीग्रहण करती है. पीछे पुरुष मारे पीटे-गालीयां देवै-सारा दिन घरका काम करावै-इतना दुःख भुक्ते तब विषयके पहननेके सुख मिलते हैं. वास्ते वस्तुपणेसें संसारीसुख सुख माननेरूपभी दुःखमयी हैं. और सिद्धमहाराजजीकों इनमेंसें एकभी दुःख नहीं. केवल सुखही है, और सादि अनंत भांगे हैं याने सिद्धिमें गये तबसें आदि है; परंतु ये सुखका अंत नहीं आनेका. इसका स्वरूप अकल है-किसीसें पार लिया जावै नहीं ऐसा अगम है. त्युं ये सुख मुंहसें कहा जा सकै वैसा नहीं. शास्त्रमें एक दृष्टांत दिया है कि-एक राजपुरुष वक्रशिक्षित अश्वपर आरुढ हुवा और पीछे ज्यौं ज्यौं उसकी लुगाम खींचता गया त्यौं त्यौं खडे रहनेके बदलेमें घोडा दौडता चला गया और कही जंगलमें ले गया. अपने मनुष्य सब पीछे रह गये और राजा अकेला जंगलमें भटकने लगा. राजाकों डर लगनेसें लुगाम छोड दी कि फौरन घोडा खडा हो रहा. पीछे अश्वपरसें नीचे उतरा. राजाकों बडी प्यास लगीथी, परंतु पास जलपात्र कुछभी न था. इतनेमें एक भील वहांपर आ चडा, उसकी पाससें राजाने पानी मांगा तो उसने दया ल्याकर पत्तेके

दडियेमें जल ल्याकर पिलाया, और पानी पीकर राजा प्रसन्न हुवा. उस पीछे भीलने फल वगैरः ल्याकर दिये वो राजाने खाये उससें राजा बहुतही खुश हुवा. उतनेमें प्रधान वगैरः सब आ पहुंचे. तब राजाने कहा कि इस भीलने मेरे प्राण बचाये हैं. पीछे राजा भीलकों अपने साथ ले गया. वहां विविध मेवा मिठाइ खिलाइ, उससें भीलभी खूब राजी हुवा, और कितनेक रोज वहां रहकरकें राजाकी रजा मांग अपने घर गया. तब औरतने पूंछा कि 'नगरमें कैसा सुख था?' जवाब दिया बहुत सुख था.' औरतने कहा-'उसका ठीक ठीक बयान कर बतलाओ.' मगर वो कुछ बयान न कर सका. किसी तरह सिद्धमहाराजजीका सुख मुँहसें कहा जावे ऐसा नहीं है. सब कि उस सुखका बरोबर मुकाबला कर बतलावे वैसी चीज सुख पूर्ण संसारमें हैही नहीं; वास्ते सच्ची रीतिसें तो वो सुख वैसी दशा पावे सोही जान सके. कितनेक सुख लिखनेमें आये हैं वे दृष्टांतरूप हैं. उससें बुद्धिवंत कितनाक समझ सके. ऐसा सिद्धमहाराजजीका सुख अठारह दूषण त्याग करनेसें होता है. वास्ते हरएक दूषण भगवंतजीने दूर किये, उसका स्वरूप वे दूषण नाम मात्रसें बतलाया है. विस्तारसें शास्त्रमें हैं, वहांसें देखकर भगवंतजीने दूषण त्याग करनेका उद्यम द्रव्य भावसें कहा है जिसतरह करना कि आत्माका कल्याण होवै, और सिद्धमहाराजजीके बीच भेद है वो दूर करकें सिद्धमहाराजजीके समान गुणवाला आत्मा होवै, यही मनुष्य जन्म पायेका फल है.

प्रश्नः—आत्माके गुण आत्माकों देना उसें दान कहा और आत्माके गुणकी प्राप्तिकों लाभ वगैरः बतवाया वो कौनसें आधारसें?

उत्तरः—देवचंदजी कृत चौवीसीमें सुपार्श्वनाथजीके स्तवनकी अंदर दर्शाया है. पुनः आनंदघनजीकी चौवीसीमें भी वैसा दर्शावेह उसके आधारसें लिखा है.

प्रश्नः—वर्त्तमान समयमें महापुरूषोंके किये हुवे ग्रंथोंके और सूत्रोंजी-सिद्धांतजीके भाषांतर होते हैं सो योग्य है या नहीं?

उत्तरः—अभी जो भाषांतर होते हैं वे भाषांतर कोइ मुनी महाराजजी तो करते नहीं. पेस्तरके किये हुवे बालावबोध मुनि महाराजजी और आचार्यजीके बनाये हुवे हैं, उसमेंभी टीकाके जितना विश्वास विद्वान नहीं रखते हैं-टीका देखकर मिलता हुवा आवे याने टीका के साथ मिलता होवै तो उसें मान्य करते हैं. अभी तो ऐसे

पुरुष कोइ ग्रंथका भाषांतर करते हुवे मालूम नहीं होते. फक्त अपनी आजीविकाके वास्ते जैनी गृहस्थ या ब्राह्मणपंडित करते हैं. जो मनुष्य अपनी आजीविकाके वास्ते करते हैं उन्होंने जैनशासनकी रीति पेस्तरसेंही लुप्त कर दीहैं; सबब कि यह लोकार्थ प्रभुजीका पूजन करे उसें लोकोत्तर मिथ्यात्व कहा है. तो ज्ञानका अर्थकर या ज्ञान (पुस्तक) बेचकर पैसे पैदा करना सो इस लोकका लाभ है, तो प्रथम हीसें मिथ्यात्व हुवा, सो मिथ्यात्व लगता है, ऐसा शास्त्रसें जाने; परंतु आपको मिथ्यात्व लगता है वो नहीं मानते हैं. ऐसी दशावाले जैनी या विप्र मिथ्यात्वी हैं, ऐसे जीवोंकों यथार्थ सिद्धांतका बोध किसतरहसें हो सके? और यथार्थ बोध विगर अर्थका अनर्थ हो जाय; वास्ते ये कार्य आत्मार्थीकों करना योग्य नहीं. कदाचित् आजीविका-गुजरानके लिये काम करते हैं उन्होकों क्षुद्र क्षयोपशम नहीं होता है. फिर विशेषावश्यकजीमें तो ऐसा कहा है कि सामायक अध्ययन गुरुके पाससें पढना; मगर "ननु पुस्तक चोर्यात्" अपने आपसें पुस्तककी अंदरसें पढना नहीं. तो ये तो सिद्धांतके अर्थ करनेके हैं. पुनः पयन्नादिक विगर दूसरे आगमजी (अंगउपांगादि) श्रावककों साधुजी पढावे तो प्रायश्चित निशिथजीमें कहा है. तो पढानेकी तो मनाही होवे, और ये तो अपने आपसेंही अर्थ कर लेते हैं, उसमें गुरुमहाराजजीके आशय नहीं आसकते हैं उससें पूर्णपणेसें अर्थ न हो सकेगा; वास्ते आत्माका डर रखकर ऐसे काम करनेमें समता रखनी. और जो जीव भय न रक्खे और ऐसे काममें प्रवर्त्ते तो उसके किये हुवे बालावबोधपर आत्मार्थी विश्वास न रक्खेंगे. और जिसकों मार्गका ज्ञान नहीं, मार्गके ज्ञानवंतकी अनुयायीसें चलना नहीं वो तो अपनी मरजी मुजब चलेगा उसमें तो कोइ इलाज नहीं-लाइलाज हैं.

प्रश्नः—तुमारे लिखे हुवे प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिमें जिनपूजनकी अंदर अल्प हिंसा लिखी है, और दूसरे शास्त्रोंमें तो अल्पहिंसाभी नही लिखी उसका क्या सबब है?

उत्तरः—पूर्वपुरुष अनुबंध हिंसा नहीं कहते सो कहना व्याजबी है. पूजामें अनुबंध तो कुशलानुबंधी है इससें मोक्षमें मिला दे सके वैसा अनुबंध है; वास्ते अनुबंध हिंसा नहीं. स्वरूप हिंसा है. वो कथनमात्र है, फल नहीं त्यों हमारा कथन शब्द भेद है, आशय एकही है. हम अल्प जिसकों मुक्तिसुखकी देनेहारी जिनपूजा है याने जिनपूजा मोक्षसुखदायक है-अल्पहिंसाका फल नहीं होवे. अल्पशब्द अभा-

वंधोंकीभी हैं, वैसाही समजना. इसतरह कहनेसें पूर्वपुरुषोंके कहने मुजवही है. पूर्वपुरुषसें हमारी विरुद्ध श्रद्धा नहीं. किसी जगह हमारी भूल हो जावे; परंतु महंतपुरुषोंकी भूल होवेंही नहीं–यही हमारीभी श्रद्धा है. हमारी बुकमें जहां जहां पूर्वपुरुषसें विरुद्ध लेख देखनेमें आवे उसकी श्रद्धा न करनी. वहां वहां पूर्वपुरुषकीही श्रद्धा करनी. और हमकोंभी मालूम करना कि हम हमारी भूल सुधार सकै.

प्रश्नः—प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणीमें पत्र १९७ की अंदर क्षायकसमकित शुद्ध अशुद्ध भेदके लिये तत्त्वार्थकी साक्षी दी है वो तत्त्वार्थमें है?

उत्तरः—तत्त्वार्थमें तो सादि सपर्यवसान, सादि अपर्यवसान–इसतरह दो भेद कीये हैं. सो पहेले भेदके स्वामी श्रेणीकादि छद्मस्थ कहे हैं और केवलज्ञानीका क्षायकत्व सादि अपर्यवसान है ऐसें दो भेद हैं. यही भेद नवपद प्रकरणकी टीकामे शुद्ध अशुद्ध कहे हैं वे दोनु साक्षी एकत्रकी लीखी हैं. शुद्ध अशुद्ध भेदके अक्षर नवपद प्रकरण टीकाके पत्र ४९ में और नयसुंदरजी कृत प्रश्नकी अंदर है वहांसें देख लैना.

प्रश्नः—दिगंवरमत पहेला है या श्वेतांवरमत पहेला?

उत्तरः—दिगंवरमतके वास्ते शास्त्रमें बहुत जगह कहा है कि भगवंत चर्म तीर्थंकरजी वीरस्वामीजीके निर्वाण बाद ६१७ वर्ष पश्चात् शिवभूति आचार्यने दिगंवरमत प्रकट किया है. वो वात दिगंवरी नहीं मानते हैं; क्यौं कि उन्होंने नये शास्त्र रचे हैं. एकादश अंग, द्वादश उपांगादिक प्रकट है; मगर कहते हैं कि विच्छेद हुवे हैं. और अपने मतके निकालनेवालेकेही ग्रंथ हैं. उसीके आधारसें चलते हैं. इससें उन्होंकों शास्त्रसें समजावे सो कबूल रख्खेंही नहीं; मगर न्यायसें समझाने चाहिये. वो आत्मार्थी तो सहजसेंही समझ सके वैसा है. जो न्यायकी बुद्धि जागृत हुइ होवे तो वर्त्तमानसमयमें संप्रति राजाके भराये हुवे हजारों जिनबिंव हैं. वो संप्रति राजा श्रीवीरनिर्वाणके पीछे करीब ३०० वर्ष परही हुवा है. उन प्रतिमाजीकों लिंगका आकार नहीं. फिर कच्छदेशमें भद्रेश्वरकी अंदर महावीरस्वामीजीकी प्रतिमाजी है वहां तांबेपत्रपर लेख है–उन प्रतिमाजीकों २५०० वर्ष हुवे हैं. पुनः महुवामें जीवितस्वामीजीकी प्रतिमाजी है, वो महावीरस्वामीजीकी प्रतिमा वीरप्रभुजीके विद्यमान-समयमें भरी हुइ है. इत्यादि दिगंवर मत पेस्तरकी जिनप्रतिमाजी बहुतसी जगहपर विद्यमान

हैं. उन प्रतिमाजीके लिंगका आकार नहीं, और उस पीछेकेभी श्वेतांबरमंदिर बहुतसे है और जिनबिंबभी हैं वैं सब लिंगाकार विगरके हैं. और दिगंबरके मंदिरमें लिंगवाले जिनबिंब हैं, तो शोचो कि श्रीवीरप्रभुजीसें चलता आया हुवा धर्म दिगंबरका होता तो पुराणी प्रतिमाजी लिंगवालीही होती, या श्वेतांबरमत नया होना तोभी पुराणी प्रतिमाजी लिंगवाली होती; परंतु वैसी कहीं नजर नहीं आइ. इसलिये श्वेतांबरमत वीरनिर्वाणके समयसेंही चला आता है. दिगंबर प्रश्न करते हैं कि–' हमारे जिनबिंब पुराणे हैं. ' उसका खुलासा यही कि वे पुराणे हैं ऐसा कोइ सबूतीवाला पूरावा नहीं और श्वेतांबरके पुराणे हैं ऐसे पूरावे मौजूद हैं. भद्रेश्वरका लेख है, संप्रतिराजा कब हुवे वोभी लेख है; वास्ते पूरावा बलवान् है. आबुजी, तारंगाजी, समेतशिखरजी, गिरनारजी और सिद्धाचलजी इन बडे तीर्थोंपर पुराणे मंदिर किसके हैं ? कब्जाह किसका है ? असलसेंही श्वेतांबरीका कब्जा है. फक्त श्वेतांबरी श्रावकोंने महेरबानीके खातिर कहीं कहीं दिगंबरी मंदिर बनाने दिये मालूम होते है. सबब कि मुख्य जगहपर तो श्वेतांबरीकेही मंदिर हैं. और दिगंबरीके अभी थोडे वक्तमें हुवे हैं. ये देखनेसें श्वेतांबरीधर्म श्रीमत् वीरस्वामिजीसें चला हुवा आया है वही है. अभी कहीं कहीं श्वेतांबरीकी वस्ती कम है और दिगंबरीकी ज्यादे है, वैसी जगहपर मालिकीका पदप्रवेश करते हैं. उसमें श्वेतांबरोंओंने दया ल्याकर मंदिरमे पैठने दिये और दिगंबरी प्रतिमाजीकों कितनीक जगह पधराने दी उस दयाके बदलेमें अपकार करके मालिकीका दावा संबंधी तकरारें कितनीक जगहपर उठाइ है. मगर श्वेतांबरीका उपकार नहीं शोचते यह दिगंबरीकी ज्ञानदशाकी न्यूनता है. परंतु मंदिरोंके कब्जे और मंदिरोंसें सबूत होता है कि श्वेतांबरी अव्वलसेंही है यह निश्चयं वार्त्ता है. दिगंबरमतका वाद अध्यात्ममत परीक्षामें बहुत है, इससें यहांपर लिखनेकी जरूरत नहीं; मगर कितनाक न्याय विचारमें आता है वो लिखता हुं. दिगंबरीने वस्त्रहिन मुनिमार्ग प्रकाशित किया, और श्वेतांबरीका सिद्धांत स्थविरकल्पी साधु वो वस्त्रहित होवें, यह विधि चलता हुवा आया सो चलता है, उससे श्वेतांबरीके हजारोः साधुजी त्यागी विरागी आत्मार्थी नजर आते हैं और दिगंबरोंके साधुजीका लोप हुवा है. शायक क्वचित क्वचित होते हैं, वे वस्त्र ओढते हैं, तो नाम दिगंबर धारण करके पीछे वस्त्र पहननेकी जरूरत पडी तब वस्त्र पहन लिये और नाम दिग्–अंबर रख्खा

ये कैसी बाल ख्यालके जैसी बात है? यहांपर कोइ दिगंवरी प्रश्न करैगा कि–सिकंदरबादशाहकी तवारीखमें है कि जैनके नग्न साधु गाँव बहार थे. तो असल वस्त्र नही ऐसा सबूत होता है.' ऐसा कहने लगे उसें समझादेना कि श्वेतांवर साधु हरदम कपडे रखते हैं ऐसा नहीं समझना. एकांतमें ध्यानादिक करैं तब वस्त्ररहित होवैः क्यों कि श्वेतांवरी एकासणे, पच्चख्खाण करते हैं उसमे 'चोलपटा आगारेण' ऐसा आगार है याने एकासणा करनेकों मुनिमहाराजजी बैठे हैं और उस वक्त गृहस्थी आ गया तो उठकर चोलपटा पहन लेवैं तो एकासणाका भंग न होवै–ऐसा अर्थ है. मगर ये आगार गृहस्थके वास्ते नहीं. यह देखनेसें गृहस्थीकी रुबरु वस्त्र पहने हुवे ये समझनेमें आता है. वास्ते सिकंदरबादशाहने देखे हुवे श्वेतांवर साधु जंगलमें ध्यानमें वस्त्ररहित देखे होवैंगे, उससें कुछ दिगंवरी साधु नहीं हो गये. वास्ते मार्ग वस्त्रसहितका श्वेतांवर चलनेसेंही साधु साध्वीका मार्ग कायम रहा है. फिर दिगंवरमत निकालनेवालेकोंभी साध्वी वस्त्ररहित रहवै ये अच्छा मालूम न हुवा उससें साध्वी होनेका मार्गही नष्ट होगया. और श्वतांवरमतमें हजारों साध्वीजी हो गइ हैं, होती है, और होवेंगी, और उस्से आत्माका कल्याण करेंगी. और दिगंवरीस्त्रीओंका तो आत्म कल्याण नष्ट होगया. ये दिगंवरीबाइयोंकों फायदा किया या केवल धर्मसाधन करनेमेंही अंतराय किया? फिर दिगम्बरीओंनें स्त्रीओंकों मुक्तिही नहीं ऐसा मतदर्शाया; परंतु उन्हींकेही गौतमसार ग्रंथमें स्त्री लिंगसें मुक्ति जानेका कहा है. उस ग्रंथका अपमान करते हैं और स्त्रीओंका मोक्ष साधन अटका देते है. तो जितना जितना नया मार्ग कथन किया है उसमें फायदेका तो नामही नहीं. उन्होंने अपने ग्रंथमें श्वेतांवरी साधुजीकी कितनीक निंदा की है, वैसा मार्ग श्वेतांवरी साधुका है नहीं और विस तरह साधु चलतेही नहीं. कोइ संयमसें भ्रष्ट होकर चलें तो उसें कोइ श्वेतांवरी साधु मानता नहीं. ऐसा होने परभी श्वेतांवरी साधुजीकी निंदा कीहै, उससें आपकाही आत्मा बिगडता है. साधुजीकों कुछ हरकत होनेकी नहीं. आपके साधुजीकी महत्ता करते हैं; परंतु पंच महाव्रतकों दूषण लगैं ऐसाही व्यवहार कायम किया गया है. मुनिकों सावद्य प्रवृत्ति कुछभी न करनी और न करवानी चाहिये; तथापि दिगंवरी साधु आहार लेनेकों आवै तो दो मनुष्य वहां परदा पकडकर खडे रहते हैं, और आहारभी उन्होंकों काम लगैं वैसा कर रखते है. एक मनुष्य थाली बजाता है. ये रीति कुछ असंयमीसंयमी

वास्ते करै तो असंयमी निरवद्य काम किस तरह करेंगे? सावद्यही करेंगे. और वो सावद्य मुनीकों लगेगा तो पंचमहाव्रत किस तरहसें पाले जायेंगे वो विचार दिगंबरीओंकों करनेका है श्वेतांबरी साधु असंयमीके पाससें कुछ भी नहीं करवाते हैं. आपके लिये किया गया भी काममें नहीं लेते है. गृहस्थनें आप खुदके लिये किया होवै उसमेंसें थोडासा आहार अंगीकार करते हैं. दुबारा गृहस्थकों रसोइ बनानी पडे वैसा आहार ग्रहण नहीं करते हैं, थोडा थोडा जगह जगहसें अंगीकार करते हैं. इससें किसीकों तकलीफ नहीं. इस सबबसें श्वेतांभरी साधुजीकों कोइभी तरहसें सावद्य नहीं लगता है. दिगंबरी साधुजीके लिये जो बनाया गया हो वही आहार काममें आता है इससें सावद्य लगता है तब संयम कहां कायम रहा? ये होनेका सबब इतनाही है कि भगवंतजीके प्ररूपे हुवे आगम विद्यमान होनेपरभी उसें न मानना. और अपनी मरजी मुजब [स्वकपोल कल्पित] शास्त्र मानना उस कल्पनाकी अंदर सर्वज्ञजीके समान ज्ञान कहांसें हो सके? ये साफ मालूम होता है. फिर दिगंबरी गृहस्थ प्रभुजीकी पूजा एकअंगकीही करते हैं. और कहते है कि श्वेतांबरी भगवानजीकों आभूषण चढाते हैं वो योग्य नहीं; परंतु वे शोचते नहीं कि आप खुद कच्चे पानीसें प्रतिमाजीकों पखाल करते हैं वोभी गृहस्थावस्थाका आरोप करते हैं. फिर एक अंगमे केसर वगैरः चढाते हैं वोभी साधुपणेका आरोप नहीं. परंतु जिस वक्त इंद्रमहाराजने भगवंतजीकों राज्याभिषेक किया उस वक्त युगलियोंने एक अगूठेपें पखाल वगैरः किया, वैसा हेतु धारण करते होवै तो येभी राज्यावस्थाका है, या मेरूशिखरपर इंद्रने अभिषेक किया वो अवस्था ग्रहण करते होवै तो ये दोनु अवस्थामें सब अंगोंपें केसर–चंदन–वस्त्र–आभूषण हैं. तो एक अंग पूजनेकी कौनसी अवस्था है वो शोचेंगे तो आपकी भूल मालूम हो जायगी. यदि केवली अवस्था कहोगे तो उस वक्त ठंडा पानी चढानेका हैही नहीं, वास्ते वो अवस्था स्थापित न की जायगी. और वो नहीं स्थापित करोगे तो जन्मअवस्था या तो राजअवस्था विगर दूसरी अवस्था स्थपायगीही नहीं. और वो स्थापोगे तब तो सब अंग पूजो, आभूषण धारण करावो फिर दिगंबरके तेरापंथियोंने तो ऐसा तर्क आनेसें एक अंग पुजनाभी छोड दिया है; फकत पखालही करते हैं. तो वो पखाल वक्तमेंभी कौनसी अवस्था विचारेंगे? पुनः अरिहंतजीके आगे नैवेद्य रक्खेंगे तब कौनसी अवस्था विचारेंगे? उन्होंसेंभी दूसरी अवस्था स्था-

पित न की जा सकैगी; परंतु आपकी भूल आत्मार्थी समझेंगे ये भूल होनेके सबब आगमोंको नहीं मानते वही है, दूसरी नहीं. भगवंतजी आहार करतेही नहीं ऐसा मानते हैं और नैवेद्य धरते हैं वो उनको विचार करनेका है. हम तो 'आहार करते हैं' ऐसा मानते है, इससें श्वेतांवरीको तो सब सुलटा है. दिगंवरीकृत समयसार नाटकमें तो कहते हैं कि ज्ञानीपुरुषका भोग है सो तो निर्जराका हेतु है, तो भगवंतजी ओछे ज्ञानी है ? कि कर्मबंधका हेतु होवैगा ! ऐसा विचार करै तो आहार करनेसें भगवंतजीकों दोष लगता है वो कहना झूठा है ऐसा समझमे आयगा. इन वातोंका विशेष विस्तार अध्यात्ममत परीक्षामें है, उससें यहांपर जियादा लिखना मोकूफ रखता हुं. [इस ग्रंथमेंसें देख लेना.] आत्मार्थीजीवकों श्वेतांवर दिगंवरमतकी परीक्षामें इतनाही देखनेका है कि आत्माका जो स्वभाव है वो प्रकट होनेका साधन कोनसे मार्गमें है वो देखना. जो जो आत्म निर्मल होनेके सवव दोनु मजहबमें वतलाये हैं, उसमेंसें निकट कौनसे मार्गमें हैं वो देखना चाहियें.

कितनेक अध्यात्मा ग्रंथ दिगंवर मार्गमें है. उसें पढकर वहुतसें जीव संसारमें पड जाते हैं, उसका सवव इतनाही है कि जैसें यशविजयजी उपाध्यायने अध्यात्मके शास्त्र बनाये हैं उसमें एक ढाल निश्चयकी है. और एक ढाल व्यवहारकी है, उससें उसें पढकर कोइ मार्गमेंसें उन्मार्गी या वक्री नहीं होते है, और वैसा दिगंवरके ग्रंथमें नहीं, इस सववसें दिगंवरके ग्रथ पढनेसें निश्चय नहीं पाते हैं, और व्यवहार नहीं पालते हैं, उसके मारे जीव दोनु मार्गसें भ्रष्ट होते हैं. उसका सवव इतनाही है कि आगम नहीं माननेसें. आगममें तो इस समयमें विशेष चार नयकीही व्याख्या करनेकी कही है, उसका सवव, व्यवहारमार्गमें पुष्ट नहीं हुवे, वो जीव निश्चय एकांत पढनेसें संसारमें लीन हो जाते हैं. और जो व्यवहारमार्गमें मजबूत हुवेले होवै, उसको निश्चय मार्गका ज्ञान होनसें व्यवहारमार्ग पालते होवै उसका अहंकार नष्ट हो जाता है. ज्यों प्रभुजीने आत्मतत्त्वमें रमना कहा है त्यों रमण नहीं किया जाता; वास्ते निज स्वभावमें रमुंगा वो दिन पूर्ण धर्म किया गिनायगा. उस मार्गकी मेरेमें न्यूनता मिटानेके लिये साधन करना. वो साधनमें तत्त्वज्ञान के शास्त्र वो तत्त्वज्ञानके जाननेवाले पुरुषकी संगति करं ऐसा शोचकर निश्चय धर्म पानेके उद्यमी होवै कि गुणकी वृद्धि होवै. मगर जो सख्स ऐसा शोचे कि ज्ञान विगर क्रिया काया क्लेश है; वास्ते क्रिया करनीही नहीं. युं क्रि-

चारके क्रियापरसें विमुख होते हैं वे क्या करते है ? तप न करै, तब खाकर पुद्गलकी पुष्टि करैं, विषयकषायकी वृद्धि करै, फरसुदके वक्तमे निंद लेवै या लडकोंकों रम्मतगम्मत करावै या गप्पे मारै, ऐसा निकम्मा वक्त जावै. और ऐसे गप्पे मारनेकी आदत पडनेसें पढनेका अभ्यासभी छूट जाता है, पीछे संसारमें मग्न हुवे नजर आते हैं: वास्ते पूर्व पुरुषोंने " ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः " ये पाठ रख्खा है. इस लिये आत्मार्थीकों अध्यात्माज्ञानका अभ्यास करकें संसारी विषय कषायकी क्रियासें मुक्त होना चाहियें और कुशलानुबंधी अनुष्ठान है सो आदरना चाहियें. और जो जो गुणस्थानमें जो जो क्रियाएं मुक्त करनेकी है उसें छोड देवै और ग्रहण करनेकी हो उसें ग्रहण कर लेवै-तभी गुणस्थान चडनेका वक्त आ मिलता है, और आत्मविशुद्धि होवै. वैसी वैसी प्रवृत्ति होनेसें अध्यात्मज्ञान पक्का हुआ गिना जाय. नाम ध्यात्म, ठवण अध्यात्म और द्रव्य अध्यात्म तो आनंदघनजी छोडनेका कहते है-उन अध्यात्मोंसें कार्य सिद्ध होनेका नहीं. भाव अध्यात्मही आत्माका कार्य फतेह करनेवाला हैं वो अध्यात्यम दिगंबरी श्वेतांबरीका अलग नहीं; परंतु सामान्य रीतिसें ठीक है; मगर वस्तुधर्मके ज्ञानमें फेर न होवै. फेर होवै उसकों जिनागममें भाव अध्यात्म नहीं कहते हैं. प्रभुजीके फरमाये हुवे वस्तु धर्मकी यथार्थ श्रद्धा करकं ध्यानादिक करते हैं तो सफल होवा है परंतु वो विपरीततासें श्रद्धा करकें ध्यान करै सो सफल नहीं होता है. अरुपीपदार्थज्ञान और रुपीपदार्थकें वस्तु धर्मका ज्ञान सर्वज्ञता आये विगर यथार्थ नही होता; वास्ते उसकी श्रद्धा आगमानुसारसें करै तभी बन सकै, और उन आगम मुजब न करै तो यथार्थ श्रद्धा कहांसें हो सकै ? और वो न होवै वहांतक भाव अध्यात्म नहीं आ सकता और आत्मकार्य हो सकता नहीं. वो आगमकी श्रद्धा श्वेतांबरधर्ममें है; वास्ते यही कल्याण करनेवाला है.

प्रश्नः—तुम युं कहते हो कि आगमकी श्रद्धासेंही भाव ध्यात्म आ सकै तो जैनागममें पंद्रह भेदसें सिद्ध हुवे है वो क्यों करकें माना जायगा ?

उत्तरः—पंद्रह भेदसें सिद्ध कहे हैं वो प्रमाण है और उनमें कितनेक भेद तो आगम माननेवालेकीही है. फकत अन्यलिंगसें सिद्ध कहे हैं वे आगम माननेवाले न होवै; परंतु वे जिस पक्षकों मानते होवें उसमे आगमसें विरुद्ध वार्त्ता होवैं उसपर सहजसेंही अश्रद्धा होती है जैसें कोइ मनुष्यकों विगर उपरनमें जंगीनमें पांव घुस जाय

और निधान नजर आ जाय, वैसें वे जीवोंको सिद्धांत मुजब श्रद्धा आपके क्षयोप-शमके जोरसें जागृत होती है, उससें जो जो उसके आगममें जैनागमसें विपरीत है वो विपरीत आ जाय और जैनागम देखे बिगर जैनागममें कहे हुवे मुजब श्रद्धा होवै उसें भाव अध्यात्म प्रकट होता है. इसी तरहसें दिगंबरकोंभी होवै उसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है. वीतरागधर्म केवल कुछ लिंगमें नहीं; मगर यथार्थ नौ तत्वका और परद्रव्यका ज्ञान जिसकों होवै उसकों भाव अध्यात्म प्रकट होवै; वास्ते वस्तुधर्म यथार्थ ढूंढनेका उद्यम करना जिस्सें कार्य हो जायगा.

प्रश्नः—जैनमें रोने पीटनेकी रीति है सो योग्य है ?

उत्तरः—जिन याने रागद्वेषकों जीत लेवै उसें जिन कहेजाय, उन्होंके श्रावक-सेवककों जैनी कहेजाते हैं; तो जिनजीका उपदेश रागद्वेष जीत लेनेका है. उपदेशके सुननेवाले राग धारण करकें रुदन करै, छाती कूटे-शिर कूटे तो उससें प्रभुजीकी आज्ञाका उल्लंघन होता है, फिर रोनेसें और मरनेवालेकी फिकर करनेसें कितनेक मनुष्य मरभी जाते हैं देखो, लक्ष्मणजीका संबंध ! लक्ष्मणजी और रामचंद्रजीके बीच जो स्नेह था उसकी प्रशंसा इंद्रमहाराजने की है, वो किसी देवसें सहन न हो सकी उससें परीक्षा देखनेकों आया. मनुष्यलोकमें आकर लक्ष्मणजी सुनै ऐसा सीताजीका दुःख लेकर रामचंद्रजी मर गये, इस संबंधमें रोने लगा. और लक्ष्मणजीकों पूज्यभ्राताके अंतकी बात सुनी कि मनमें अत्यंत शोक प्राप्त हुवा और उस अनावधि शोकके मारे तुरंत लक्ष्मणजीका मरण हो गया. ऐसी हानी वासुदेव जैसे पुरुषकों हुइ, तो उन्होंके वीर्यकी अपेक्षासें अपनेमें कुछभी बल-शक्ति-वीर्य नहीं है, तो अपने शरीरकों कितनी हानी पहुंचे ? कभी उन्हमें भाइका राग था, उससें कमी राग होवै तो मरण न होवै; मगर ताकत तो कम होवेही होवै, रोगादिकभी शायद हो आवैं. और फिकरके मारे इन्सान दिवाने-भ्रमित-बुद्धिभ्रष्ट हो जाते हैं-ये बडा भारी नुकसान है. फेर जगतमेंभी इज्जत नहीं बढती. राज्यकर्त्ता यवनराजा है, तदपि ये रोने पीटनेकी रीतिकों धिकारता है. अपनी जगतमें उच्च कोम कही जाती है, उसकी नीच कोम हांसी करै ये बात अपनी इज्जतकों कितना बुरा लगानेवाला है. बाजारके बीच रोना पीटना होता हो उसें देखकर राहदारी लोगभी तकलीफ पाते हैं और दिल्लगी करते हैं. फिर कितनेक मुल्कमें घुंघट निकालनेवाली औरतें होनेपरभी शिरपरका पल्ला क-

मरपर बांधकर कूटते पीटते हैं. कमरके उपरका शरीर सब खुल्लाही रहता है ये कैसा हंसी लायक है ? ये रीति नीच कोमके जैसी है या नहीं सो विचारसें देखो तो समझमें आ जायगी. हमेशाः मनुष्यकों छातीका जोर अच्छा होगा तो बुद्धि अच्छी रहती है, और छातीपर जोरसें कूटने पीटनेसें छातीमें कमजोर हो जाता है उससें बुद्धिभी कम हो जाती है, और उससें हार्टडिसीझ-हृदयरोग हो जाता है. वो रोग ऐसा है कि उसका दर्दी एकदम मरजाता है, काम करनेमें अशक्त हो जाता है और वैसे छातीके दर्दवाले लोग बहुतसे नजर आते हैं. उन मनुष्योंकों तप-संयम-ज्ञान वगैरःका अभ्यास करनेमें बडी हरकत आती है. गुजरात अहमदावादमें पेस्तर रोने पीटनेका बहुतही रिवाज था, मगर अब कुछ सुधारा हुवा सुननेमें आया है; परंतु अहमदावादके जितना सुधारा और शहेरोंमें नहीं हुवा है. मगर मेरी समझ मुजब और ज्ञानीपुरुष हो गये हैं उन्होंके विचार मुजब रोने पीटनेका रिवाज बंध करने लायकही है. अपने देव वीतराग है और उन्होंका हुकमभी वीतरागदशा लानेका है, तो मनुष्य मर गया उसें देखकें शोचना कि ये मनुष्य छोटी उमरमे मर गया, तो मैं कब मर जाउंगा वो खबर नहीं, अगर मैं बुढा होकर मर जाउंगा येभी किसीकों मालुम नहीं-निश्चय नहीं. उससें धर्ममें तत्पर रहना सोही सर्वोत्तम है. ऐसी मेरी आत्माकी स्वभावदशा है वो प्रकट करनेका मुख्य सबब रागद्वेष है उसें मुक्त हो जाना, या तो दिनप्रतिदिन रागद्वेप कम होते जावे वेसा मार्ग ग्रहण करना. प्रभुजीने रागद्वेषकी न्यूनता हो जानेके लिये योग-वैराग्य शास्त्र फरमाये हुवे हैं उसका अभ्यास करुं कि जिससें मेरी रागदशा कम हो जावे-ऐसें विचार करना चाहियें, वो न करतें उलटा रोष बढे वैसा करना वो अयोग्य है, और मुंहसें कहता है कि मेरे मेरे भाइके साथ बहुत स्नेह था सो याद आता है उस्सें रोता हुं; मगर उस वास्ते कोइ नहीं रोता. ऐसा कहता है सो लोगोंमें मान पानेके वास्ते; लेकिन चित्तमें तो अपना स्वार्थ जो भाइसें होताथा वो मोकूफ हो गया उसके वास्ते रोता है. परंतु उस स्वार्थके लिये रोनेसें वो कार्य होनेका नहीं. कर्मका विचार करना चाहियें. आपने जो कुछ उसके पास लहेना रख्ला था वो ले चूंके अब वो कहांसें दे सकें ! मगर पुन्य बलवान होवैगा तो भाइसें विशेष काम करनेवाला आपही आप मिल जायगा. मगर ऐसें रोनेपीटनेके विकल्पकरनेसे नाहक बुद्धि भ्रष्ट होजाती है और जो कामकरनेके है वे नहीं हो सकते.

फिर कितनेक रोनेका ढोंगभी करते है याने लोगोंके देखते रोते हैं और भतीजे या भोजाइ या भाइकी मिलकत होवे वो खा जाते हैं और उन्ह लोगोंके वास्ते बराबर खानेपीनेकाभी बंदोबस्त नहीं करते हैं. या तो सब मिलकत हजम करजाते हैं. या तो भोजाइकेसाथ बदचलन,चलानेमें भाइका स्नेहभी शोचते नहीं वैसे मनुष्यका रोनापीटना वो ढोंगसोंग नहीं तो क्या है ? फिर सगे प्यारे या ज्ञातीके लोग आते हैं उन्होंका काम यही है कि इस मनुष्यका भाइ मर गया है सो हम जाकर उसें संतोष देआवें; मगर संतोषके बदलेमें आपखुद रोते हैं और वै रोते बंध हुवे होवे उसें फिर रोना शुरु करवाते हैं. पुनः बाइ लोगोंकों पीटनेके वक्त उपदेश देते है कि औसा क्या कूटते-पीटते हो ? जोरसें कूटो-पीटो-एसी मतलबका उपदेश करते हैं, उससें कोइ समझदार कम कूटता होवे तो उसें जोरसें कूटना-पीटना पडता है. परंतु ये उपदेशसें क्या फळ होवेगा वो अज्ञानतासें नहीं जान सकते है कि रोना पीटना ये रोद्रध्यानका आलंबन है याने इससें रोद्रध्यान होवै और रौद्रध्यानका फल ज्ञानीजीने नरक प्राप्ति बतलाया है. तो नरकके दुःख कैसे कहे हैं वो जीवभावना ग्रंथ या सुयगडांगजी सूत्र सुननसें हृदय कांप उठे वैसे नरकके दुःख इन उपदेशसें मिलते हैं. कोइ सुज्ञ मनुष्य ऐसें सुंदर विचार करकें कम रोवै पीटै या बिलकुल न रोवै पीटै, उसकी अज्ञानतासें निंदा करते हैं. ऐसी निंदाके करनेवालेकों दुर्गति सिवाय क्या फायदा हांसिल होवै ? वास्ते जो वीतरागी धर्मवंत ऐसा नाम धारण करते हैं वो नामका महात्म्य पालन करनेकी फिकर रखकर ज्यौं बन सकै त्यौं वैसी निंदाका त्याग करना, और रोना पीटना बंध करनेवालोंकों धन्यवाद देना. और अपनी शक्ति मुजब उपदेश देकरकें रोनेपीटनेका कुचाल बंध पडते जाय वैसा मार्ग हाथ धरना-और वैसी शक्ति न होवे तो जो लोग अच्छे काम करनेकी इच्छा रखते होवे उन्होंकों मदद देनी और उनके संपमें कायम रहकर ये काम बंध करनेमें जैसी वो सलाह देवै वैसा करना तो उससें कल्याण है. फिर पैसेका जोर होवे तो पैसोंकी लालच देकर ये काम बंध करवा देनेके जैसा मोका होतो बंध करवानेका इलाज करना. ज्ञातीके शेठसें हो सकै वैसा हो तो ज्ञातिके जोरसें बंध करवा देना. मतलबमें जो जो उद्यम करनेसें ये काम बंध हो सके वैसा प्रयत्न करना चाहियें. कदाचित् हठीले मनुष्य होवैं तो मध्यस्थ रहकरकें ये कामसें आप मुक्त रहवै. अगर अनुकूल मनुष्य होवै तो उस्सें समझाकरकें रोने पीटनेसें छुड-

वा देवै कि जिससें आर्तरौद्रध्यान न हो सकें और नरकादि गतिके महेमान न होना पडे. सब मनुष्योंका वाद करनेकी जरूरत नहीं. अपने अपने वहां सुधारा करना चाहियें और पीछे धीरे धीरेसें दूसरेभी सुधरें वैसा उद्यम करना चाहियें कि जिससें बेशक सुधारा हो सके. " आप न जावें सासरै, औरनकों सिख देत"–ऐसा न करना चाहियें; क्यों कि स्हामनेवालेके दिलमें युं करनेसें पूरी असर नहीं होती वास्ते पहेले आप कर बतलाके पीछे औरोंकों वैसा करनेका बोध देवै कि फौरन असर हो जाय और सच्च कहें तो युं करनेसें कितनीक जगहपर सुधारा हुवाभी है. वास्ते बुद्धिमानोंकों लाजिम है कि पेस्तर अपनेही मकानसें रोने पीटनेका कुचाल बंधकर देना चाहियें. बंध करनेसें निंदा होवै उसका डर रखना नहीं चाहियें. ऐसा भय रखने-नसें अपन धर्मध्यान नहीं कर सकते हैं. मैंने मेरे माजी गुजर गयेथे तब ये खानाखराबी रिवाज बंध करनेका मुकरर किया, उस वक्त मेरे पूज्य पिताजीभी विद्यमान थे; और वैभी बडे धर्मचुस्त थे, उन्होंने मेरी बातमें सामिलगिरीकी और कहने लगें कि बेशक ऐसाही करना दुरुस्त है. इस वक्त ये खराब रिवाज बंध हो जायगा तो मेरेमरने बादभी बंध रहेगा तो मुझकोंभी बहुत लाभ मिलैगा. ऐसा शोचकर मेरे पिताने वीर्य स्फुरायमान करकें वो बुरा रिवाज मोकूफ कर दिया, उस्सें बेसमझदारोंने निंदाकी और समझदारोंने धन्यवाद दिया. पीछे मेरे पिताजी कालधर्मकों प्राप्त हुवे उस वक्तभी वैसाही किया, मगर मेरी मातुश्रीके वक्त जितनी निंदा करते थे उतनी न हुइ. मतलब कि शुरुमें अज्ञानीजन कुछभी बकते हैं उसपर निगाह न रखकर समभावसें काम कियेंही करना; क्यों कि पेस्तर युंही कियेसें फतेहमंदी हाथ लगती है. सब चीज उद्यमके आधीन है, और अपने घरके आप राजा है वास्ते आपके व्हांसें अपनीही मुनासफीसें रोना पीटना न करे तो कुछ ज्ञातीवाले ज्ञातवहार नहीं छोडनेके ! इस लिये हिम्मत पकडकर ऐसे कुचालोंकों रोकने चाहियें. रोकनेका काम ऐसा है कि एक मनुष्य रोता होगा वो बात शांतपुरुषके सुनेमें आनेसें उसके दिलमेंभी राग पैदा होनेसें आंसु आते हैं, उसका निमित्तभूत रोनेवाला है; वास्ते ज्यों बन सके त्यों ये बुरा रिवाज सुज्ञपुरुषोंकों कम करना चाहिये, उसके बदलेमें ये वहीवट हुवा हैं कि अपन दूसरेके वहां रोने पीटनेकों न जायेंगे तो अपने वहां कौन आवेंगे ? इससे ये मुद्दा नीकलाके जीते हुवे मनुष्यभी रोवै पीटैं उसमें शोभा मुकरर की–ये कैसी अज्ञानताकी राजधानी है ! ! मरनेके बाद खुद

तो देखनेकों आनेवाला नहीं, या रोवेंगे पीटेंगे कि नहीं उसकीभी उसें खबर न मिलेगी, त-थापि नाहक कर्म बांध लेते है ये अज्ञानवाही है. याने जीसके लिये रोते है उसकों तो दरकार नहीं और मुफत रोना उसें क्या फायदा ? वास्ते ये अज्ञानता आत्मार्थीकों अवश्य दूर करदेनीही लाजिम है. रोने पीटनेकी इच्छा तो न रखनी; मगर आपके मरने बाद कुटुंबी न रोवैं वोभी पेस्तरसें समझाकरकें बंध करवा देना चाहियें कि मरनेके बाद कर्मबंध न हो सकै. कर्म बांधनेका भय लगा यही शुभ परिणामसें शुभ कार्य उपार्जन होवै; वा-स्ते ऐसा ठहरावही करना कि मेरे मरनेके बाद रोना पीटना नहीं. शायद कुटुंबी वो हुकम अमलमें न लेकर रोवेंगे पीटेंगें, तोभी मरनेवालेकों कर्मबंध न होगा. इस लि-खानसें ऐसा न समझना कि मैयत होवै वहां जानाही नहीं. जाना तो बेशक; क्यों कि स्नेही या ज्ञातिके मनुष्यकों दुःख पडा तो जरुर आकरकें संतोष-दिलासा देना, और उसका कामकाज कर देना. यदि ऐसा न करैं तो निर्दयता मालूम होवै ास्ते जुरूर जाना चाहियें, और दिलासा प्राप्त होकर दिलगीरी दूर होवै वेसी बातें करनी चाहियें, कि जिससें शांत चित्त हो जाय. फिर मरनेवालेके स्थूल शरीरकों मरघटपें पहोंचानेमें मदद करनी ये जुरूरी काम है.स्नेहीकों मदद करनी और ज्यादा वक्त लगनेसें मुर्देमें जीवकी उत्पत्ति होवैगी ये फिकर रखकर जुरूर जाना चाहिये और उसका कामकाज करना चाहियें. रोने पीटनेका विकल्प बंध कराना या कमती करवाना येभी जुरूरी काम है. कितनेक मुल्कमें अबीभी हिंदुवर्गमें मरनेके वक्त रोते पीटते नहीं; मगर ढोल वगैरः बाजे बजाते-गाते-भजन करते हैं, तो उन लोगोंको .मरनेवाले शख्सपर राग नही होगा ? रागसें आंखमें आंसु आवै ये स्वाभाविक नियम है; मगर थोडे वक्तमें शांत हो जाय; परंतु मरनेवालेके काम रूप वगैरः यादीमें ल्या-कर रोवै उसका पार नहीं आता है और बुरा ध्यानभी ज्यादे होवै फिर स्त्रीएं पतिका सुख याद करकें रोवै उससें कामदेवभी दिप्त हो आता है और कुलक्षण सेवन करनेकी कुबुद्धिभी पैदा हो आनेका संभव रहता है. ऐसे नुकसानकारक कुरिवाजोंकों सुधार लैना ये बडे पुरुषोंकी फर्ज है. हमेशां रोना पीटना शुरुही रहनेसें पतिकों स्त्रीसंबंधी विकार जाग्रत होनेका साधन होता है; वास्ते इसके बदलेमें उतना समय धर्मसाधनमें व्यतीत करना यही मुकरर किया जाय तो वैराग्यदशा जाग्रत होवैं, और विकल्पकी शांति होवै, खोटे मार्गकी बुद्धि होवे नहीं-और होय सो नष्ट हो जाती है; वास्ते ऐसे

समयमें वैराग्यकी कथा वगैरः श्रवण करनेमें वक्त व्यतीत करना—यही जुरूरी बात है. मगर वर्त्तमानसमय जैनीओंमें जैसी रीति प्रचलित हा रही हे वैसी रीति पेस्तर हो थी, ऐसा संभवही नहीं. यहांपर कोइ प्रश्न करेगा कि जिस वक्त मरुदेवी माताजी निर्वाणपद पाये उस वक्त भरतमहाराजजीने जोरसें रोना शुरु कियाथा—ये वात शास्त्रमें हैं, मगर यह कुछ धर्मरीति नहीं, संसारकी रीति है, ऐसा रोनेसें लोगोंके जाननेमें आवे जिससें लोग इकठे हो जाँय—ये तो मरनके समयकी एक क्रिया है; परंतु ऐसा बाजारके बीच वेअदवीसें चिल्लाके रोना पीटना दिवानेके जैसे ढोंगसोंग करना, हमेशाःरोना शुरु रखना ये कुछ इससें साबित नही होता. उस वक्त रागके बंधनसें रोना आ जाय, लोगोंको मैयत हुवेकी खवर होनेके लिये पुकार वाचक शोकेद्गार जाहिर करै ये कृत्य संसारनीतिका है; परंतु उसके पीछे जो विशेष कृत्य किया जाता है वो धर्मीष्टकों करने योग्य नहीं. धर्मीष्टकों तो रागादिक कमी होवै वोही करना यही सार है.

प्रश्नः—जैनकोमकी चडती दशा किसतरह होवे ?

उत्तरः—यह प्रश्नका जवाब तो अतिशय ज्ञानी विगर दूसरा कोइ देनेकों समर्थ नहीं, और वो अपने तकदीरकी न्यूनतासें अतिशय ज्ञानीका विरह पडा है, इससें प्रतीतिपूर्वक जवाब देनेमें अशक्त हुं. पुनः में जवाब लिखता हुं उस करतेंभी मेरेसें ज्यादे बुद्धिमान ज्यादे वता सकैं; वास्ते जिसका विशेष होवै सो अंगीकार करना.

१ पेस्तर तो अन्यायकी प्रवृत्ति जैनमें जो धनाढ्यपणेसें शोभायमान होवै वैसे पुरुष या शेठीएका नाम धारण करनेवाले हो या धर्मी गिनाये जाते होवै उन्होंकों बंध करनी चाहियें; क्यव कि यथाराजा तथाप्रजा—याने ऐसे वडे पुरुषोंकी ऐसी सुंदर प्रवृत्ति देखकरकें छोटेजनभी न्यायमें प्रवर्त्तने लगै. ऐसे वर्त्तनेके वास्ते मार्गानुसारीके गुण योगशास्त्रमें—धर्मबिंदुमें और श्राद्धगुण वर्णनमें बतलाया हैं उसपरसें पूर्व पुस्तक प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिकी अंदर वै गुण दाखिल किये हैं उसें देखोगे तो मालूम हो जायगा. ये पैंतीसें मार्गानुसारिके गुणोंमें जैनकोम प्रवर्त्तने लगै ऐसा उपदेश मुनिमहाराजुकोंभी शुरु रखनेकी अत्यावश्यक्ता है. और रात्रीभोजन, वगैरःके नियम करवानेमें उद्यम करते हैं वैसा उपदेशके उद्यममें प्रवर्त्तना शुरु रक्खे तो विशेष लाभ होवै. ऐसा उपदेश नहीं देते है ऐसा मेरे कहेनेका मतलब नहीं; मगर देनेवाले महापुरुषोंका उत्साह बढानेके लिये और कोइ सामान्यपणेसें देते होवै वे विस्तारसें देवै ये हेतुसें लिखा है. गृहस्थोंकों ऐसी प्रवृत्ति रोककरके

अपने स्नेही अन्याय त्याग करदें वैसी प्रेमयुक्त ताकीद दियेही करनी चाहियें. कदाचित कोइ उसकी अमल न करै तोभी उदास होकर वैसा उपदेश मोकूफ न करना. हमेशां शुरु रखनेसें कुछ न कुछ सुधारा होताही रहेगा. अन्यायका धन कायम नहीं रहेता है ऐसा श्राद्धविधिमें और दूसरेभी ग्रंथोमें जगह जगह लिखा है. वास्ते न्यायकी प्रवृत्तिसें धन मिलता है वही कायम रहता है, और जैन कोमका दूसरी कोममें बहुतही विश्वास पडे उससें व्यापार करनेकों पैसे चाहियें वोभी मिल सकते हैं. फिर नौकरी करनेकों जाय तो तुरंत नौकरी अच्छे पगारकी मिल सकती है. दलाली करनेकों जाय तो उस धंदेमें पैसा पैदा करता हैं, हरकोइ माल बेचनेकी दुकान खोलै तो बहुतसें ग्राहक उसकी दुकानपर सौदा लेनेकों आते हैं. सुरतमें कल्याणभाइ करकें एक उत्तम श्रावक थे, उन्हकी साख ऐसी पडीथी कि जिससें टोपीओंके व्यापारमें दो तीन हजार रुपै हरवर्ष पैदा करते थे. उन्हके पिताके पास धन नहीं था तोभी स्वोपार्जीत धन ९०००० दम नकद पैदा कियाथा, वो तीन भाइयोंने और पिताने धन बांटलिया. उस बाद आपने व्यापार करना छोड दिया; मगर भाइ वैसी दुकान न चला सके और पैदास न होनेसें दुकान बंध करनेका वक्त आया. भरूचमें एक पारसीकी दुकान है वो एकही तरहका भाव रखता है उसमें उसके वहां बहुत खरीदी होती है. बंबइमें ऑफिसवाले बडे व्यापारी एकही रीति रखते हैं तो उसमें वे सुखी भये हुवे दिखते हैं; वास्ते व्यापारमें जो अन्याय बंध किया जाय तो बेशक अच्छी छाप पड जाय और पुन्यानुसारसें अच्छी पैदासभी हो सके. गतकालमें सत्यवादी श्रावक हो गये हैं वे इतनी छाप लगाकर गये हैं कि श्रावक गैरव्याजबी रीतिसें नहीं चलै. उससें इस समयमें श्रावक लुच्चाइ बुरा काम करते हैं उतने अर्थमें श्रावक लुच्चाइ न करै ये छाप चली हुइ आती है. उसके बदलेमें वर्त्तमानसमयमें धर्मी नाम धारण करकेंभी कितनेक ठगाइ करते हुवे नजर आनेसें दूसरे धर्मीश्रावकके वहां कोइ प्रतीतिवचन कहता है तो धनवान गृहस्थों उनका विश्वास नहीं करते और धर्मठगकी उपमा देते हैं; वो मैनेभी सुनी है. ऐसा होनेमें धनवानकी भूल नहीं; परंतु धर्मी होकरकें ठगाइका धंदा करै तब लोगमें सबी धर्मीकी निंदा होवै और व्यापाररोजगारमें विश्वास उठनेसें पैदास नहीं होवै और सुखी होनेका वक्तभी न मिल सकै; वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं श्रावकोंकों अच्छी छाप बैठानी चाहियें. कितनेक व्यापारी व्यापार करते हैं उसमें

नुकशान लगता है तब देनेमैंसें छूटनेके लिये सरकारके पास जाते हैं और लाभ लेते हैं—नादार बनते हैं याने कायदेका फायदा मिलाकरकें कर्जसें मुक्त होते हैं, उसमें पैसा छुपा रखते हैं यह खुल्ली तरहसें अन्यायही है. शायद किसीने न रख्खा और पीछे पैसे पैदा किये तोभी पेस्तरके ल्हेनदारोंकों कुछभी न देवै, तो जगतमें जैनकोमकी सुंदर छाप किस तरह पडे ? सो विचारना चाहियें. और ऐसा पैसा रखकर शासनकी प्रभावना करै—संघकों जिमावै उसमें अन्यायके पैसे आवै तो जीमनेवालोंकी बुद्धि क्युं करकें सुधर सकै ? साधारण मनुष्यभी दृष्टांत लेवै कि दैनेवाले तो ऐसे धनवान होते हैं. शासनके स्थंभ समान कहे जाते हैं वे नहीं देते हैं तो अपने क्यौं करकें देवैं ? ऐसें विचार फैलानेसें लोगोंके दिलमें ऐसा आया कि पैसा होवैगा तो इज्जत मुरतबा कायम रहेगा. दैनदारकों सब पैसा दे देवैंगे तो प्रतिष्ठा नहीं पावेंगे—ये बुद्धि फैला गइ है. इस विषयमें संघका या ज्ञातीका ऐसा अंकुश चाहियें कि दैनदार हो जाय तो ल्हैनदारोंके सब पैसे देने चाहिये और उस बाद बडे ज्ञातीभोजन, स्हामीवत्सलके खर्च करनेकी परवानगी दैनी चाहियें. ऐसीचीज करनेकों कोइ तैयार हुवा कि फौरन—तुरंत ज्ञातीवाले खूब हितरूप कथन करैं कि तुनें नादारी ली है उस वक्त पैसें दैनदारोंकों कम दिये हैं—बाकीका दैना रह गया है सो दे दो और उसके बाद मरजी मुजब ज्ञातीभोजन वगैरः करो. ऐसा अंकुश ज्ञातवाले आगेवान रख सकै तो जैनकी बडी इज्जत बढै और ऐसी छापसें श्रावकोंकों धीरधार करनेमें कोइभी दिल न चोरै, उससें सबसें शिरोमणी कोम हो जाय. परंतु अभीके वक्तमें तो श्रावक प्रथम देवद्रव्यका पैसा खानेवालोंपर ऐसा अंकुश नहीं रख सकते हैं और उससें लोग दुःखी हुवे बिगर नहीं रहते है. कितनेक गाँवोंमें ऐसीभी रीति है कि देवद्रव्यका दैना होवै वहां तक श्रावक उसके घर ज्ञातीभोजन करनेकों नहीं जाते हैं, उससें वैसे गाँवोंमें देवद्रव्यके ल्हैनेका तुरंत निकाल—फैसला आ जाता है; परंतु ऐसा रिवाज तमाम शहर और गाँवोंमें हो जाय तब जैन कोमकों खुशी होनेका साधन है. फिर किसीने नादारी ली नहीं, अपनी रीतिमें है मगर पैसा पदरमें नहीं, वो मनुष्य कर्ज करकें ज्ञातीभोजन वगैरः करै उसका ज्ञातीभोजन न स्वीकारनार. पुनः लुच्चाइ ठगाइका व्यापारही करता है तो उसकों ज्ञातीकी तर्फसें सिक्षा होनी चाहियें. ऐसी रीति हो जायतो ज्ञाती सुखी होवै. अगर इस लोकमें व्यापार रोजगार अच्छा चलै. जगतमें इज्जत मान बढै, सुखी

होवे.और उसके पुन्यसें परलोकमेंभी सुखी होवै. विद्याभ्यास करके हुशियार होकर अन्यायका चालचलन न सुधरै तो उससें कोमकी इज्जत न बढेगी. इज्जत बढनेका सबब यही है कि अन्यायका त्याग करना, और वो पेस्तर बडे पुरुषोंको करकें दिखलाना चाहियें, जब बडे लोग वैसा करेंगे तब साधारण लोग वैसाही करना मंजूर रखेंगे; मगर बडेलोगही चालचलन न सुधारै तो फिर औरोंको क्या कह सकै ? वास्ते आगेवान गृहस्थ पेस्तर करकें दिखलाना यही सर्वोत्तम है. और देवद्रव्य-साधारण द्रव्य-ज्ञानद्रव्य ऐसें द्रव्यका श्रावकके वहां विशेष व्याज पैदा होता होवै तदपि न देना चाहियें, ए विषयमें श्राद्धविधि और द्रव्यसितरी वगैरः शास्त्रोंमें मना की है और विस्तारसें उसमैं दूषण बतलाये हैं वो अवलोकन करना चाहियें ' देवादिकद्रव्य जिसने खाया-हजम किया उसकी सातपेढी तक उसका वंश सुखी नहीं होता है वास्ते धीरधारका रस्ताही बंध करना चाहियें और रखनेवालोंकों व्याजसें तो न लैना; मगर धीकी टीपके पैसे देनेके होवें वोभी रखने न चाहियें. रखनेसें शास्त्रकी अंदर बहुत सा नुकशान बतलाया है; वास्ते इस बातपर खूब लक्ष रखनेसें सुखी होनेका साधन है. मंदिर संवर्धाके पैसेमें आपके पैसेंका कुछभी संबंध न करना, उससें यह लोक और परलोकके सुखभाजन होवैगा.

२ दूसरा, जैनकोमके शेठियोंको जो सट्टेका व्यापार अपनी कोमवाले करते होवै उसें मना करवा देनेका अवश्य ध्यान देना चाहिये; क्यौं कि सट्टेके व्यापारसें मनुष्यकों बहुत तरहके नुकसान होते हैं-पेस्तर सट्टेका व्यापारी आलसु-सुस्त हो जाता है, तमाम व्यापारकी शोध करनेकी या शीखनेकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, व्यापारकी रीतिकीभी खबर उसें न पड सकती है, नामा लिखनेकी या समझनेकी रीतिभी वो नहीं शीख सकता है, दूसरे व्यापारकीभी उसें माहेती नही हो सकती; उससें कदाचित् सट्टेमें नुकसान गया तो फिर सुखी होनेका वक्तभी मुश्कीलीसें मालूम होता है. सट्टेके धंदेसें मनुष्य वक्र बोलना-बोल पलट देना, लुचाइ करनी, मुखस्वादको बढा देना इत्यादि बहुतसी बुरी आदतें शीखता है. कोइ भाग्यवंत ऐसी आदत न शीखै तो उसें ये लेख लागु नहीं है. मगर ये कारण ऐसाही है. सटोरियेके पास ५०० रुपै देनेकी शक्ति होवै और पांच हजारकी नुकसानी जावै ऐसा व्यापार करै तब नुकसानी कहांसें देवेंगा ये फिकर तो रहनीही नहीं; क्यौं किनुकसानी होवै तो ना-

दारी लेनी पडे. कभी फिर पैसेदार हो जाय तोभी कर्जा देनेकी दानत नहीं रहती ये अन्याय नहीं तो क्या है? सट्टेका धंदा लंबा क्यौ चला सकता है कि व्यापारमें पैसे रोकने नहा पडते हैं. जो रोकने पडते होवे तो सहजसेंही लंबा व्यापार न हो सकै. फिर जुगार और सट्टेमें कुछ तफावत नहीं-फकत नाममें फेर है. जुगारमेंभी पैसेकी जरूरत नहीं-फकत एकी बेकी-दोमेंसे एक बोलनेमें आवे वो सचा हो जाय तो जीतता है. आंकके धंदेमेंभी ऐसाही है. कलकत्तसें मिलता हुवा आंक आ जाय सो जीतता है और नफा लेता है-ये दोनु रीति एकही जैसी है. अभी सुरतमें बाइ-लोगनेभी सट्टेका व्यापार करना शुरु कीया है-अफसोस! अपनी श्रावक कोम इस स्थितिपर पहोंच गइ है!! अब सुखी क्यौं करकें हो सकै? सट्टेमें एक पैदा करै और एक गुमावै, इससें एक श्रावक सुखी हुवा और दूसरा दुःखी हुवा. उसमें कुछ ब-हारसें पैसा आया नहीं. दूसरे व्यापारमें तो माल देशावर चडाना पडता है या मंग-वाना पडता है उसमें फायदा होता है. कोइ कहेगा कि-'क्या श्रावक सिवाय और ज्ञातीके लोग सट्टेका धंदा नहीं करते हैं?' तो कहेंगे कि सबी कोम करती है; तोभी श्रावककी वस्तीके प्रमाणमें बहुतसे श्रावक सट्टेका धंदा करनेवाले निकलते हैं. बडे शहरोंमें दलाल और सट्टेका धंदा करनेवाले विशेष मालूम होते हैं; उसमें हा. दलालीके धंदेवालोंकों बुरे नहीं कहते हैं या उन्होंकी टीका नहीं करते हैं; क्यों कि दलालीका धंदा बिगर जोखमका है-नुकसानका नामही नहीं-वो पैदा करनेका ही धंदा है; मगर जो सट्टेके दलाल हैं वे दलालीपर संतोष करकें रहवै तो जरूर दला-लीमें अच्छे पैसें पैदा कर सकै; परंतु वे दलाल तो फिर सट्टा करनेकाभी शोख रखते हैं उससें दलालीसें पैदा किया हुवा धन सट्टेमें गुमाते हैं, इससें करकें दलालोकोंभी सुखी होनेका वक्त नहीं मिलता है. फिर जिसका बाप सट्टा करता होवे उसके बेटेभी वही धंदा पसंद करते हैं, उसके मारे पढने गुननेमें वे दिल नहीं देते हैं, और मावा-पकोंभी लडकोंकों जास्ती पढानेकी फिकर नहीं रहती है; वास्ते सट्टेका व्यापार जैन-कोमकों न करना ऐसा ज्ञाती या संघ तर्फसें बंदोबस्त किया जाय तो जैनकोमकों दूसरे व्यापार ढूंढनेकी जिज्ञासा होवै, मावाप और लडकोंकों ज्यादा इल्म शीखाने और शीखनेकी बुद्धि जागृत होवे और लडके विद्वान होवै तो न्याय अन्याय सह-जसेंही समझने लगै उससें अन्यायका त्याग होवै; इस लिये हरएक प्रकारसे सट्टेका

चंदा छूट जाय वैसे लेक्चर-भाषण अगर मुनीमहाराजजीका उपदेश शुरु करकें मनुष्योंके दिलमें सट्टेकी नुकसानीकी बातें ठसा देकर पीछे ज्ञाती तर्फसें बंदोबस्त हो जाय तो अच्छी तरहसें सुधारा होनेका स्थान है.

३ तीसरा कि, जैनकोममें विद्याभ्यासकी बहुतही न्यूनता है; वास्ते जैनोंकों विद्याभ्यासमें सामेल करदेनेकी कोशिश करनी चाहियें. लेकिन वो काम धनाधीन है. धन बिगर नहीं बन सकता है. अब धन इकट्ठा करनेमें ऐसा होना चाहिये कि जो पैसे खर्च किये जाते हैं उनमेंसें बचाकर वैसे कामके लिये रकम निकालनी चाहियें, जिससें कोम खर्चके बोजेमें न आवें. उसके वास्ते ऐसा होना चाहिये कि लग्न-सीमंत-मरणके पिछाडी हजाराः रुपै खर्च किये जाते हैं. कितनीक ज्ञातीमें-कितनेक शहरोंमें लग्नकी अंदर एक एक लडका पाणीग्रहण करता है तब पैसे बांटनेका रिवाज है सोभी सौ देढसो रुपै बरबाद किये जाते हैं, वो रिवाज बंध करकें वे बचे हुवे पैसे विद्याभ्यासके फंडमें ले लिये जाय. जिस ज्ञातीमें लग्न और गर्भाधान संस्कारका ज्ञातीभोजन एकसें ज्यादे वक्त करनेका रिवाज है उस ज्ञातीमे वो रिवाज बंध करके दूसरी वक्तके ज्ञातीभोजनके बचे हुवे पैसे विद्याभ्यासके फंडमे लिये जावें. और उसके वास्ते ऐसा अंकुश चाहिये कि जहांतक ठहराये हुवे पैसे फंडमे न देवै वहांतक हस्तमिलाप वगेरः न हो सकै. यह ठहराव पसार हो अमलमें आ जाय तो हरवर्ष कितनीही आमदनी हो आवै. फिर मरणके पिछाडी कितनीक ज्ञातीमें ज्ञातिभोजन करवानेका रिवाज है, ये रिवाज बहुतही दिलगीरीभरा हुवा है, ये रीति बहुत करके अन्यदर्शनीओंकी जैनमें दाखिल हुइ मालूम होती है. ये ज्ञातीभोजन कितना निर्दयतावंत है उस संबंधमें कुछ इसारा करता हुं. कितनेक मुल्कोंमें जिस दिन ज्ञातीभोजन होवै उसी रोज परदेशके मनुष्य रोनेकों आते हैं, वै बहुत करकें जिस वक्त भोजन करनेकों बैठे उस वक्त रोने पीटनेका शुरु करते हैं. अब जिस मनुष्यके वहां मरण हुवा हो उसके दिलमें कितनी दिलगीरी होगी वो सबके जाननेमेंही है. जहां ऐसी दिलगीरी फेल रही होवै वहां भोजन, वोभी मिष्टभोजन खानेका काम वज्र जैसी कठोर छातीवालोंसेंही हो सकता है. दयालु मनुष्यसें ऐसा निर्दयतावाला काम कभी न हो सकेगा. और हो सकै तो निर्दयता साबित होती है; क्यौं कि एक बाजुपर रोने पीटनेसें दिलगीरी छा रही होवे और छातीमेंसें पीटनेके सबबसें खून बहन होता

नजर आता है, और दूसरी बाजुपर प्रसन्नतासें मीठे भोजन उडाते है ये कैसी निर्द-यता ? फिर कितनेक बुड्ढे मनुष्य मोतके बिछोनेमें पडे होवे और उसकों देखनेके लिये आवे वें बोलते है कि अब तो लड्डु स्ही हो जायगे, [बुड्ढोंका मरण विवाहके जैसा है.] पीछे वो मनुष्य मरजाता है, तब खुशी होते हैं कि अब लड्डु खानेकों मिलेंगे. वो लड्डु खानेके बदल खुश होते हैं उसमें गर्भित पंचेंद्रिके मरणकी अनुमोदना होती है. ये पाप कितना है वो ज्ञानी फरमावें सो सही; मगर खानेकी तृष्णाके लिये मनुष्य नहीं विचारते हैं और ये रिवाज चलाये जाते हैं; वास्ते ये रिवाज बंध होवे तो पैसेभी बच जाँय और पाप मिश्रित अनुमोदनाका पापभी दूर हो जाय. इसलिये ये रिवाज बंध करकें बचे हुवे पैसे विद्याभ्यास फंडमें ले लेवें. फिर मरण पिछाडी शुभ मार्गमें हजारों रुपे निकालते है उनमेंसें कुछ हिस्सा इस खातेमें लेनेका प्रबंध रखना चाहियें. और बडे गृहस्थोंकों लाजिम है कि खुशीसें बडी रकमकी मदद इस कार्यमें देनी चाहियें. ऐसा होनेसें व्यय होते हुवे पैसे इन फंडमें आवेंगे उससें विशेष बोजा न उठाना पडेगा, और विद्याभ्यासके कार्यमें इन फंडमेंसें अच्छी मददभी मिल सकेगी. कदाचित् इतने पैसेसें बस न हो सकेगा तो आमदनीपर सेंकडे एक रुपया या आधा रुपया याने हजार रुपेकी पैदासवालोंके पाससें सेंकडे आधा रुपया और हजारसें ज्यादे पैदा करनेवालोंके पाससें एक रुपया लेना मुकरर करना चाहियें. वडी पैदास-वालेकों कुछ भारी पडे ऐसा नहीं, सबब कि शास्त्रमें तो हेमचंद्राचार्यजीने पैदासमेंसें चौथा हिस्सा शुभमार्गमें व्यय करनेका कहा है, तो यह तो एक रुपया है वो कुछ भारी पडनेका नहीं. इस सिवा ज्ञातीमें कितनेक दंड लिये जाते है वो दंडके पैसे इस फंडमें लैना चाहियें. ऐसा होनेसे पैसेकी उत्पत्ति अच्छी होनेका संभव हे और हमेशां उस-मेंसें जो जो काम करने होवेंगे वो हुवेही करेंगे. अभी हरएक ज्ञातीमें ज्ञातीकी पुंजी (धन) है वो इस फंडमें जो दि जाय तो कामकी शुरुआत सहजसें हो जाय और किसीकों घरमेंसें पैसाभी न निकालना पडे तथा हमेशांकी आमदनी शुरू रहै. पैदा-समेंसें लेनेका अनुकूल न आवे तो बहुतसी जातके माल व्यापारके लिये आता है उन हरएकपर कुछ लेनेका ठहराव कीया जाय तो मुरादवर आनेका वक्त आवें. ऐसा ठहराव पींजरापोलके लिये है तो वो खाता सुखपूर्वक चलता है; मगर वस्तुतासें पैदासका ठहराव उत्तम है. व्यापारपर डालनेसें व्यापारमें कितनीक हरकत पडनेका

संभव है; वास्ते पैदाशपर किया जाय तो अच्छा, अगर ज्यों लोगोंकों अच्छा लगै वैसें करना. सबकी प्रसन्नतासें ऐसे काम अच्छी तरहसें होते है; वास्ते किसीकों अप्रीति पैदा न होवै त्यौं करना योग्य है. ये काम करनेसें जैसे आपकी ज्ञातीके मनुष्यकों भोजन करनेका मिलता है वो अपने लडके हुशियार होवेंगे तो विशेष भोजन करनेका मिलेंगा. भोजन करनेका बंध नहीं होवेंगा. फंडमें पैसे देवेंगे तो लडकोंकों पढानेके लिये स्कूलोंमें ज्यादे फी देनी पडैगी वोभी बच जायगी. वास्ते तमाम भाइ अवश्य ये बात दिलमें शोचकर विद्याभ्यासके वास्ते पैसे इकठे करनेका फंड खोलनेका यत्न करै तो बहुतही फायदा हांसिल होवैगा. पैसे विगर कुछ काम होनेकाही नहीं.

४ ये पैसे खर्च करनेमें पेस्तर गुजराती, इंग्रेजी, संस्कृत और जैनधर्मका शिक्षण दिया जाय वैसी स्कूल ओपन करनी चाहियें, और वहां अन्यायमेंसें दिल हठ जाय वैसा उत्तम शिक्षण देना चाहियें. संस्कृत पढनेवालोंकों बहुत वर्ष तक अभ्यास करना पडता है, वहांतक उनके कुटुंबका पोषण हो सकै वैसा बंदोबस्त करनेकी जरूरत है; उसकी न्यूनतासें करकें अभीके वक्तमें संस्कृतशालाओंमें लडके अभ्यास करते हैं; मगर वै पूरा संस्कृत ज्ञान नहीं मिला सकते हैं; क्यौं कि धनवानके लडके तो बहुत करकें अभ्यास नहीं करते हैं और करनेवाले विरलेही निकलेंगे. साधारण स्थितिके लडके २५–३० वर्षकी उमर तक अभ्यास करैं. तब संस्कृतज्ञान पूर्ण प्राप्त हो सकै, और उतनी उमर तक उनके कुटुंबका निर्वाह क्यौं करकें हो सकै? धनकी तृष्णा धनवानोंकों लखो रुपै हाथ लगै जाय तोभी शांत नहीं होती, तो साधारण मनुष्यकी तृष्णा क्यौं शांत हो सकैं? वास्ते पंद्रह वर्षकी उमर होवै तबसें कुटुंबके निर्वाहकी फिकर, होती है वो फिकर, पढानेवालोंकी तर्फसें न होनेका बंदोबस्त हुवा होवै तो सुखसें करकें अभ्यास पूर्ण हो सकता है; इस वास्ते व्याकरणका अभ्यास करै उसकों माहावारी पांच रुपै देनेका शुरू करना. पीछे ज्यों ज्यौं अभ्यास वढता जाय त्यौं त्यौं परीक्षा लेकर पगार वढाना चाहियें. अंतमें न्यायशास्त्र पूर्ण करने तक अभ्यास करै तो माहावारी ५० रुपैका महिना देना. ऐसा आशा होवै तो संस्कृतका अभ्यास करनेवाले उमेदवार लडके निकलेंगें; वास्ते ऐसे नियम बांधनेसें जैनमें संस्कृत पढे हुवे विद्वान प्राप्त होवेंगे. फिर ब्राह्मणोंके पास साधुजीओंकों पढना पडता है वो नहीं पढना पडैगा, उसी श्रावकभाइकों संघ पगार दे करकें रख लेगा कि श्रावकके पैसे

दूसरी कोममें हरवर्षमें कमसेंकम करीब पचीश हजार पगारके दिये जाते होंगे वो जैन कोमकों प्राप्त होवेंगे. वास्ते ये फंड होवें तो ये प्रबंध करनेकी आवश्यक्ता है. कोइ सुखी मनुष्य होगा वो स्वात्मार्थके वास्ते पढेगा तो वो माहावारी पगार नहीं भी लेगा परंतु ऐसी शालाओंमें वडेमेंवडी ५० रुपिये माहावारी तनख्वाहकी आशा देनेकी जरूरत है. ९० का पगार एक वर्षसें ज्यादा इस फंडमेंसें देना न पडेगा; मगर उस पठित लडकेकों ५० का पगार देनेवाले वहुतसें गृहस्थ मिल जायेंगे. फिर संस्कृतके भाषांतर वगैरः में दूसरी शालाओमें ऐसी पैदाश हो सकैगी और जैनोंकी विद्वत्ता प्रशंसापात्र होवेगी और उसके साथ वाद करनेकोंभी कोइ शक्तिवान् हो सकैगा, इससें वडी प्रभावना होवेगी. अभी सुरत और अहमदावादमें धर्मके ज्ञानका अभ्यास जैसें एक एक कलाक कराया जाता है, वेसें करतेही रहेंगे तो वहुतही शोभिता होगा.

जो मनुष्य विनरोजगारी और दुःखी है उसके वास्ते हरएक वडे शहरोंमें उद्योगशाला करनेकी जरूरत है. उस शालामें उन्होंकों दाखिल किये जाय और उन्होंकों लायक काम सुपरद किये जाँय. याने जो काम जिस मनुष्यसें वन सकै वो काम उसकोंही सुपरद करना, जिस्सें जैनकोमका भूखमरा वंध हो जावै. ये शालाओंमें कुछ मालभी वेचनेमें नुकशान होवै सो इस फंडमेंसें देना चाहियें. वहुतसी जातके व्यापार हाथोंसें करनेके है और जो आ सकै ऐसे काम उद्योगशालामें रखने चाहियें, जिससें वै सहजसें हो सकै; वास्ते नमुने मुवाफिक वतलाया है. जो चीजें जैनोमें हजारो मन उपयोगमें आती है, वो वनानेका काम औरतोंका है और वै सरलतासें शीख सकै. दशीएं वनानेका कामभी कर सकै वालाकुंचीयें वांधनेका काम शीख सकै वैसा है. निर्वल स्थितिकी वाइयेंकों दाल विननेका काम आदि सोंप दैना, और भाइयोंकों वीडीएं वालनेका, सूतके दडे वनानेका, डोरीएं वुनने-गुंथनेका, और कितनेक सूखे पदार्थकी गोलीएं दवाके लिये उनके वेचनेका काम कर सकै ऐसे है वै सोंप दैना योग्य है. मीलोंमें काम कर सकै वेसे होवै वैसेकों धंदेमें सामिल कर देवै. और विलकुल अशक्त मनुष्य होवै उसें गुप्त मदद दैनी योग्य है. ऐसा होनेसें जैनकोममें निराधार विशेष न रहेवेंगे. यह उद्योग तो एक नाम मात्र लिखे गये है. जगतमें वहुतसी तरहके व्यापार है, उनमेंसें जो वन सकै और उसमेंभी जिसमें नफा विशेष और नुकशान कम हो वैसे देखकर दाखिल करने चाहियें. वनाइ हुइ वस्तु वेचनेका कामभी उसें सुपरद करना कि जिससें गाँवमें चक्कर लगाकर वेच लेवै.

५ जैनकोमकी लडाइयें सरकारमें जाती है, या ज्ञातीमें फाटे पडते हैं और उससें एकदूसरोंमें द्वेषबुद्धि रहती है—एकसंप नहीं रहता और उन एकदूसरेके बीच बहुत मुद्दततक फिसाद चलता है. और उस बदल हरएक बाबतोंमें तकरारें पेठ जाती है उससें सरकारमें हजारां रुपे जैनकोमके नाहक बिगडते है. मन भिन्न होनेसें एकदूसरेका काम बिगाडनेकेही तदबीर चलाते हैं; वास्ते वैसा बंदोबस्त किया जाय कि जैनकी हरएक गाँवमें लवाद कोरटें कायम करनी और जो तकरारें होवें वो लवाद कोरटमेंही रुजु की जावें ऐसा ज्ञाती तर्फसें ठहरावही हो जाना चाहियें. मगर उसमें मुकरर करना कि उस गाँवकी लवादके फेंसलेसें नाराज होवै तो बडे शहरोंकी लवादमें अपील करै. अहमदाबाद और बंबइ जैसेमें तीन तीन कोरटें रख्खें, लंबर पहेले—दूसरे—तीसरेकी रख्खें उसमें लंबरवार एकसें एक बडी रखनी चाहियें याने अव्वल दर्जेकी अव्वल लंबरकी, उसमें जो तीसरे कलासकी कोरटसें नाराज होवै वो दूसरे लंबरकी और अंतमें पहेले लंबरकी कोरटमें अपील करै कि जिस्सें पक्षपातका शक रहने न पावै; और हरएक टंटा फिसाद टूंकेमें बंध पड जाय. मारामारीकी तकरारें वगैरःके तोफान करनेवालोंकों लायक शिक्षाभी करनी चाहियें कि जिससें कोरटके सिपाइ वगैरःका पगारभी वसूल होता रहेवै. ऐसा ठहराव होनेसें बहुतसें टंटे तकरार कम हो जावेंगे, और ज्ञातीमें कुसंप न रह सकैगा. ज्ञातिके रिवाजके कायदे ज्ञातिमें अनुकूल होवै वो बांध रखने चाहियें, उसमें एक दो वर्ष होवै कि बहुतसे मतसें सुधारा करना चाहियें; मगर हमेशां चल सके वैसें करने चाहियें. ऐसा हो जाय तो बहुत फायदा हांसिल हो सकै. वारिसनांवेकी तकरारेंभी बडी रकमकी हो उसकाभी फेंसला मिलता रहवैं. लाख रुपैसें ज्यादे रकमके फेंसलेके लिये एक दस बीस मनुष्योंकी सभा करनी चाहियें, उसमें सब देशके बडे गृहस्थ लिवादमें कायम करने चाहियें, और अंतके फेंसले उन्हीकों सुपरद करने चाहियें कि अपक्षपातसें इन्साफ मिल सकै. और जैनकोमकी ऐसी तकरारोंमें धनका नाश होता है वो बंध पड जाय.

६ वीसाश्रीमालीकी ज्ञाती बहुतसें गाँवोंमें हैं; तथापि एक दूसरेकों उंच नीच गिनते हैं वो न गिनना चाहियें. वस्तुतासें तमाम श्रावकोंमें भेदही न होना चाहियें. लेकिन वो भेद भांग देनेका अभि योग—समय मालूम नहीं होता है. शायद शुरुः हो जाय तो बहुतही अच्छा. और कभी, वैसा न हो सकै तो अपनी

ज्ञातिका मनुष्य कोइभी शहरमें होवे उसकों कन्या देनेमें या लेनेमें भेद न रखना चा-
हियें, और कन्या देकर पैसे लिये जाते है वो न लेने चाहियें, उसके बंदोबस्तकीभी
वडी जरूरत है, उसमें वो गॉववालोंका वडा हिस्सा समान होवें वहां ज्ञातिका जोर
नहीं चल सक्ता है, वास्ते उन्हको रोक देनेके लिये दूसरे शहरवालोंको रस्ता निकाल
देना चाहियें. बहुत करकें वडे शहरवालें पैसे देते हैं, वे देनेवालोंके उपरभी जबरदस्त
अंकुश रखना चाहियें, तो कन्याविक्रयका मांर्ग बंध सहजसेंही हो जाय, और अयोग्य
स्थानमें कन्या जाकर दुःख न पावें; वास्ते पैसे लेने देनेवालोंको याने दोनुकों मनाकी जाय
तो ये काम सुधर जाय. श्रीमाली, पोरवाड, ओशवाल, वगैरः जो जो ज्ञाती जो जो देशमें होवे
उन्ह सबके साथ संपसें लेने देनेका वहीवट करनेमें रुकावट है वो निकाल देनी चाहियें. दसा
वीशेका भेद है वोभी दूर हो जाय. तो विशेप अच्छा हो जाय. इनमेंसें ज्यौं बहुत मतसें
बंदोवस्त हो सके वैसा है. फिर जैनधर्मके पालक कितनीक ज्ञातिके हैं वे सब अपने
धर्मीभाइ हैं, उन्हीके साथ इकठे बेठकर भोजन करनेका रिवाज नहीं है वोभी खराब
है, सबब कि अन्यधर्मी बनिये बहमनका खाते है, वो खानेमें हरकत है; क्यौं कि वे
लोक जिसकों अपने अभक्ष कहते हैं वो चीजें खाते हैं; वास्ते उन्होंका बनाया हुवा
भोजन न खाना चाहिये. ये खानेकी प्रवृत्ति है वो रोक देनेसें श्रावकके व्रतमें दूपण
नहीं लगेंगे इतना फायदा है. जो जैनी है, छाना हुवा जल पीते है और अभक्षकाभी
त्याग करते हैं उसके वहां न खाना पीना ये अच्छी बात है ? इससें प्रभुजीकी आज्ञा-
का लोप होता है—स्वामीभाइयोंका तो बहुत मान [सत्कार] करना ये समकितका
आचार है, उसके बदलेमें उनकों नीच कहे; उससें समकित मलीन क्यौं न होवेगा ?
यहांपर मुझकों कोइ सवाल करैगा कि तुम खुद एसा समझनेपरभी क्यौं नहीं करते
हो ? उस विषयमें मेरा जवाब यही है कि बहुतसें लोग वैसी प्रवृत्ति नहीं करते हैं वो
प्रवृत्ति मैं करुं तो बहुतसें लोगोंके साथ विरोध हो जाय; वास्ते वो विरोध अपनी
ज्ञातिके साथ न होवे वैसा मैं चलता हुं; मगर मेरी श्रद्धा तो दूसरे कोमके श्रावकोंके
साथ भेद न रखना यही है. और मेरे जैसी जिनकी श्रद्धा होती है उनकों तो मैं यही
विचार दृढाता हुं कि एकके साथ संप करकें एकके साथ विरोध करना उससें कुच्छ
फायदा नहीं है. और वर्त्तमान समयमेंभी सब लोग, जैनधर्मकी क्या मर्यादा
है वो नहीं जानते हैं वहांतक ये बात मान्य नहीं करेंगे; कितनेक शहरोंमें

भिन्न ज्ञातिके जैनीओंका सीधा (भोजन सामग्री) लेकर खाते है और कितनेक शह-रोंमें ऐसा ममत्व बंधा गया है कि वैसाभी नहीं करते हैं, और कहते हैं कि लाडवे श्रीमाली पीछेसें जैनधर्मी हुवे हैं. पीछेसें हुवे कि नहीं उसका कही प्रतीतिवंत लेख नजर नहीं आता है; तथापि उनके साथ खानेपीनेका संबंध अभी नहीं रखते हैं-उससें मालूम होता है कि वे पीछेसें हुवे होवेंगे; सबब कि ओशवाल, पोरवाड वगैरः ज्ञातिभी आचार्य महाराजजीनें प्रतिबोध करकें स्थापितकी हैं और स्थापित करनेके वक्त जिस जिसने आचार्य महाराजजीकी आज्ञा पालनकी उन सबकों ओशवाल बनाये, उसमें ज्ञाति-भेद रहा नहीं. और हरिभद्रसूरिजीने पोरवाड बनाये सोभी इसी तरहसें आज्ञावंत हुवे. वै सब ओशवाल-पोरवाड-श्रीमाली वगैरः इकठे बैठकें जीमते हैं. विसी त-रह लाडवे श्रीमालीकोंभी किसी आचार्यने प्ररुपणा की होगी और जैनधर्म पानेसें एक ज्ञाति हुइ मालूम होती है. तथापि उनके पैसेसें खरीद कीये हुवे. सीधे की रसोइ बनवाकर खानेका कहवे तोभी ओशवाल श्रीमाली वगैरः जीमनेकी ना कहते हैं-ये किसी तरहका असल हठ बधा गया हुवा मालूम होता है; मगर ये हठ छोडने लायक है; सबब कि किस लिये हठ बंधा गया वोभी किसीकों मालूम नहीं. और वैसा हठ पकडकर बैठ रहना वोभी भूलभरिद है. कितनेकें शहरोंमें कुनबी, छीपें पैसे या सीधा देते हैं तो पोरवाड ओशवाल वगैरः खुशीसें जीमते हैं, और वहीवट चला हुवा आया सोही चला जाता है, तो विसी तरहसें लाडवें श्रीमालीके साथ ऐसा वहीवट नहीं चलता है सो चलाना चाहिंयें. वै लोग अपना पैस्तरें खाते थे; मगर अपन उनके साथ खाना बंध किया जिससें उनकों बुरा मालूम होने लगा, तब उन्होंनेंभी अपने साथ खाना मोकूफ कर दिया-इससें शासनमें भेद पड गया. यह जैनीभाइयोंमें भेद पडनेसें कितनेक शासनके कामोंमें बहुत हरकत आ पडी. वै लोग अपने विचार मुजब नहीं चलते हैं. यदि उनकें साथ ऐक्यता होती तो वैभी अपने विचारसें भिन्न न पड सकें, और परस्पर धर्म पानेका सुलभ पडे अगर औरभी सब सुगमता पडे; वास्ते इकठे होना-खाना पीना वही उत्तम है. वो न बन सकै तो उनके पैसेंसें भोजनसामग्री लेकें भोजन बनाकर खानेका प्रबंध शुरु करना चाहियें-ये भेद दूर होगा तो बहुत गुण प्राप्ति होवैगी. सा-ढेतीनसो गाथेके स्तवनमें गच्छके अंदर भेद न पाडनेके वास्ते साधुजीके लिये कहा गया है, उसी वचनानुसार श्रावकोंमेंभी भेद न पाडने चाहियें. बेदिलीसें शासनकों

बहुत नुकशान है. फिर ममत्ववंत ओशवाल श्रीमाली वगैरः है वै कहते हैं कि ह
उच्च हैं और वै नीच हैं. ऐसा बोलकर उनकी निंदा करते हैं उससे नीचगोत्र बंध
जाता है. सबब कि श्रावकका धर्म पांचवे गुणस्थानकका है, वो गुणस्थानमें मनुष्यक
नीचगोत्रका उदयही नहीं; तथापि श्रावककों नीच कहना ये वडी भूल है; कर्मबंधन
कारण है और वीतरागजीकी आज्ञा विरुद्ध कथन हैं. विचारसारकी टीकामें प्रश्न हुव
है कि हरीकेशी चंडालने दीक्षा ली है वो छट्टे सातवे गुणस्थानकमें वर्त्तते हैं औ
छट्टे सातवे गुणस्थानकमें नीचगोत्रका उदय नहीं. इसके जवावमें देवचंद्रजी महाराज
कहा है कि जिसकों चक्रवर्त्ती और सौधर्मेंद्र महाराज नमस्कार करते हैं उसकों उ
चगोत्रकाही उदय कहा जावै. नीचगोत्रका उदय होता तो पूजनीक होताही नहीं
पूजनीकपणा उच्चगोत्रके उदयसेंही होता है. बारहव्रतकी पूजामेंभी श्रावकके बहुतमा
न्यके इसारेमें कहा है कि, ' विरतीने परणाम करीने, इंद्रसभामां बेसे मेरे प्यारे.
गुणस्थानवंत श्रावककों इंद्रमहाराजभी नमस्कार करते हैं, वैसे व्रतवंत, ओशवा
श्रीमाली पोरवाड वगैरः सिवाकी ज्ञातीमें क्या नहीं होवेंगे ? अलवत्त होवेंगे. युं होने
परभी ऐसा भेद रखनेकी पद्धती होवै तो व्रतवंत लाडवेश्रीमाली प्रमुखकी निंदा हो
वो क्या प्रभुजीकी आज्ञाके बहार (विरुद्ध) का कथन नहीं है ? वास्ते प्रभुजीक
आज्ञाके आराधक होना यही उत्तमपुरुषोंका या उत्तमपुरुष होना होवै उसका का
है; क्यौं कि कर्मग्रंथकी ५६ वी गाथामें मिथ्यात्वमोहनी उपार्जन करनेमें उन्मार्ग
देशना वगैरः बहुतसे बोल कहे हैं, उसमें संघका प्रत्यनीकपणाभी गिना गया है औ
उस गाथाके अर्थमें श्रावककी निंदा वगैरः करनेसें मिथ्यात्व उपार्जन करै ऐसा का
हैं; वास्ते परज्ञातीके धर्मीष्ठकों नीच कहनेसें उसी गाथामें फल वतलाये है वो प्र
करते हैं और उन्हीके साथ भेद भग्न करके एकत्र हो जावै तो समकित निर्मल हो
इस लिये अपन तमाम मित्र मनमेंसें ये भिन्नभाव निकालदेके अभेदपणा होवै वै
उद्यम करैं तो बहुतही अच्छा होवै. जैनधर्मका पालन करनेवालेके और प्रशंसा कर
वालेका ज्यौं बन सके त्यौं बहुतमान करना चाहियें, शक्ति मुजब मदद दे
चाहियें; नहीं कि उनकेपर द्वेष इर्ष्याभाव ल्याना या नीचज्ञाती है ऐसा कलंक देन
ये रीत बिलकुल गैरलाभकारी है. अभी अपन रजपूत-क्षत्रीओंकी रोटी नहीं ख
है और ओशवाल प्रमुख उसी ज्ञातीमेंसें हुवे हैं, तिसी तरह लाडवेश्रीमाली बा

ऽमें पालनेसें एक ज्ञाती हुइ है. अपन जो असल ज्ञातीके थे उस ज्ञातीकी याद नहीं करते हैं, उसी मुजब उनकीभी क्या ज्ञाती थी वो तपासनेकी कुछ जरूरत नहीं. महावीरस्वामीजी आदि तीर्थंकरमहाराजजीके गुणग्रामकं करनेवाले और प्रभुप्ररूपित मार्गका सेवन करनेवाले हैं; वास्ते वो गुणकी वहुतमान्यता अपनेसें जितनी बन सके उतनी करनी चाहियें, मगर उनकी लघुता करनी ये महान् दूषण समझता हुं; वास्ते समस्त भ्राताओंकों ये प्रयास करने योग्य है.

७ जैनमें ज्ञातीकी रीत रसमके कायदे करने चाहियें और जैनी मात्रकी एकही रीति नीति होनी चाहियें. रीतभातका-लेनेदेनेकाभी कायदा बंधाजाय तो बातबातमें ज्ञातीमें फांटे पड जाते हैं और लडाइएं होकर एक्यताका भंग होता है वो न हो सकै. उन कायदाके आधार मुजब चलनेका होवै तो रीतिभांतिका भंग हो सकैही नहीं. ऐसा कायदे भंगका डर रहता है. भंग करै उसके प्रायश्चितकी व्यवहारिक मर्यादा चाहियें और एक गाँवके लडमरै तब उसका समाधान, कायदेमें देशविदेशके अध्यक्ष नाये होवै वे कर देवै इस्सें उसका चुकादा हो जावे-लंबी तकारार न पहुंचने पावै-जब कि थोडे थोडे मनुष्यमें पक्षपात हो सकता है; मगर बहुत मनुष्यमें वो नहीं हो सकता. सारा जैनमंडल एकही होवै और उनके रीत रसमके कायदे मुकरर कीये गये होवै, वो कानूनका भंग करै उसके साथ देशबदेशका जैनमंडल विरुद्ध हो जाय तो जैनका कायदा तोडनेमें भय रहेवै; क्यौं कि सबके साथ विरुद्धता हो जाय तो कभी क्यौं चल सकै? कायदे अमलमें लिये बादभी उसमें हरकत जैसा मालूम होवै तो सारा जैनमंडल हरसाल एकत्र होवे तब-कायदेमें सुधारा करता रहवै-युं होनेसेंभी जैनकोमकों सुखी होनेका साधन है.

८ इस सिवा सुधारेके काम करनेके वहुत हैं; लेकिन वो काम करनेवालोंकी न्यूनता मालूम होती है. वो न्यूनता कब दूर होवे कि जैनमंडलमेंसें परोपकारी मनुष्योंकों ऐसे काम करनेकी खुशी बतलानी चाहियें और उसमेंभी दो बातकी खुशी बतलानेकी जरूरत है याने आप जितना काम कर सके उतना काम करनेकी खुशी बतलानी चाहिये, ओर जितने पैसेकी जो मदद देनी चाहते होवै उतने पैसेकी मदद देनेकों वे बतला भय हुवे गृहस्थोंकों जाहिर करना चाहिये कि फलाने काममें हम ये मदद कर सकेंगे. अब वो किसकों जाहिर करना चाहिये? इस वास्ते परोपकारी

अग्रेश्वरमंडल मुकरर करनेकी आवश्यकता है याने वैसे अग्रेश्वरोंकों जाहिर करना चाहियें, और पैसेकी मददमेंसें श्रावकोंकों कार्यभारी बनाने चाहियें. और उन कार्यभारीओंसें, तथा परोपकारी अग्रेसर महेनतवंन भाइयोंकी महेनतसें जितना जितना बन सके उतना काम करना चाहियें. युं करते करते किसी वक्त सब सुधारा होनेका समय प्राप्त हो जायगा. अकेली बातें करनेसें ये काम नहीं बन सकता है. चतुर्विध संघमेंसें कोइभी धनवान गृहस्थ अग्रेश्वर होवें तो ये काम बन सके; वास्ते जिसने पूर्वमें पुन्य उपार्जन किया है वो पुन्यात्माके हित लिये उपार्जन किया है इस लिये उस पुण्यके फल यही है कि धन्याढय गृहस्थ अच्छे गुमास्ते-मुनीम रक्खें, अपने व्यापारका काम उन्होंकों सुपरद करकें आप खुद परमार्थके काममें कटिबद्ध हो रहें कि जिससें शासन शोभावंत होवे. मगर मुकाम अफसोसका है कि वैसे धनवंत तो कहते हैं कि-हमकों तो ऐसे काम करनेकी फुरसद नहीं. तब साधारण मनुष्यकों तो फुरसद होवेंही कहांसें? पुन्यवंत ऐसा करें उससें धन प्राप्तिके शुभ फलका स्वादानुभव नहीं कर सकते हैं. और जो शख्स जितना जितना कार्य करते है उतनें उत फलका स्वादानुभव ले सकते हैं. भगवंतजीका शासन एकवीश हजार वर्षतक जयवंत कहा है; वास्ते कोइभी भाग्यशाली शासनके कार्य करनेमें कटिबद्ध रहेंगे और शासन जयवंत प्रवर्त्तेगा. जो जो भव्यप्राणी शासन जयवंत रखनेकी महेनत करते हैं वे वैसा पुण्य उपार्जन करते हैं ये निःसंदेह वार्त्ता है-इस लिये ये लेख पढकर कोइ भाग्यशाली शासनोन्नतिमें तत्पर रहवे यही हमारा उद्देश है. जहांतक कोइ भाग्यशाली जागृत न होवेगा वहांतक तो चलता है वैसाही चला जायगा; तथापि अभी कुछ भाग्यशालीजन कहीं कहीं जागृत हुवे मालूम होते है और वे शासनकी उन्नतिका उद्यम करते हैं. उन्होंकों मेरे लिखानसें कुछ अच्छा लगै तो वे विशेष जागृतिवंत होकर तन मन धनका सदुपयोग करने लगें; इस वास्ते इतना लिखा गया है. आगामीक कालमेंभी जैनकोम सुधारनेके कामी होवे उनकोंभी मेरी बालबुद्धिके लिखा कुछ अच्छा विचार होवे और पसंद पडे तो इस वाक्यानुसार चलन रक्खें इस लिये मेरा इसारा है. कदाचित ये लिखान प्रवृत्तिका है उसमें किसीकों बुरा लगै वैसा लेख तो नहीं है; तथापि मेरी भूलसें किसीकों बुरा लगने जैसा लिखान हुआ होवे, उनके पाससें मैं पेस्तरमेंही क्षमा करनेकी बीनती करता हुं, और मुझकों लिख भे

तो मै माफी मांग लुंगा. यदि प्रभुजीकी आज्ञा विरुद्ध लिखान हो गया होवे तो प्रभुजीके आगे त्रिकरण शुद्धिसें मिच्छामिदुक्कड देता हुं.

प्रश्नः—जिस तरह जैनमें अभक्ष्य पदार्थ-मांस, मदिरा, सहत, मख्खन, मूली वगैरा अनंतकाय, द्विदल, वेंगन, रात्रीभोजन अभक्ष्य कहे हैं तिस तरह अन्यदर्शनीयोंने कहा है?

उत्तरः—श्रीचंदकेवलीके रासमें पुराणांतर्गत श्लोक लिखे गये है वो श्लोक ए लिखता हुं, उससें प्रतीति होयगी. जो जो आत्मार्थी मनुष्य है वे तो शोचेंगे, मगर जो विषयी जीव है वे तो जो धर्म मानते हैं उसके शासनपरभी विश्वास नहीं रखते हैं इससें लाइलाज हुं. अन्यदर्शनीओंके धर्म प्रकाशनेवालेहा आपके शास्त्रमें अभक्ष्य कहा है वो पढकरकेंभी उसका त्याग नहीं करते हैं और श्रोताओंको त्याग करनेका उपदेशभी यथास्थित न दे सकते हैं, इससें अभी ऐसा हुवा है कि श्रावक रात्रिभोजन न करै तिसी तरह कोइ दयालु ब्राह्मन रात्रिको न खावै तो उसें दूसरे वैश्नव कहने लगे कि क्यों श्रावकधर्म स्वीकार लिया है कि ऐसी दशा बन गइ है? ये सब योग्य गुरुके वियोगकेंही फल हैं; वास्ते जैनीभाइयोंको वैसोंकी दयाचिंतवन करनी सोही उत्तम है. मुकाम अफशोसका है कि कितनेक शहरोंमें पानीके नल हो गये हैं वहां जैनी हो करकेंभी नलके मुंहपें एक चीथडा बांध दिया कि पानी छाना गया ऐसा मानने लगे हैं. संखाराभी नहीं समाला जाता है ये बडे अफशोसकी वात है! क्यों कि अन्यदर्शनी तो कहते है कि जैनी पानी छानकर उपयोगमें लेते हैं और खुद जैनी भाइ ऐसा करकें मुद्देकी वात छोडते चले जाता है, और चिंता होती है कि दीर्घ समय जानेसें अन्यदर्शनी जैसाही हो जावैगा. कितनेकको कहते है कि नलमेंसें पानी लेकर उसें छानकर उसका जीवाणी-संखारा यदि नल तालावमेंसें लिया गया हो तो तालावमें, नदीमेंसें या कूवेमेंसें नल लिया गया हो तो नदी-कूवेमें डाल दो मगर कोन सुनता है! वैसा करनेवाले थोडे हैं, वास्ते जैनीभाइ जीवदया प्रतिपाल हो जांय तो वो नौब सच्चा कब होवे कि जब जीवकी जतना कि जावै तब. वास्ते जीवरक्षणके लिये पानी छान लेना और उसका संखारा तालाव, कूवेमें जहांका पानी हो वहां डाल देना. बाइस अभक्ष्य है उसका त्याग करना. उन बाइसमेंसें कितनेक तो अन्यदर्शनीमेंभी त्याग करनेका फरमान है; लेकिन उन अन्यदर्शनीकाभी पूर्णप-

ऐसें मालूम नहीं है कि हमारेही शास्त्रोंका क्या फरमान है ! इस लिये लिखता हुं, और अन्यदर्शनी जिस चीजकों त्याग करनेका कहते है तो जैनीओंकों वेशक विसका त्याग करनाही मुनासिव है वेसी श्रद्धा होंनेके वास्ते दर्शाता हुं किः—

माहाभारतमें कहा है किः—

घातकश्चानुमन्ता च भक्षकः क्रयविक्रयी ॥
लिप्यंते प्राणिघातेन पंचैतेपि युधिष्ठिर ॥ १
यावन्तीपशुरोमाणी पशुगात्रेषु भारत ॥
तावद्वर्षसहस्राणी पच्यते पशुघातकाः ॥ २

अर्थ—हे युधिष्ठर ! जीवोंको प्राणघातसें करके मारनेवाला, उसें खानेवाला, उसें वेचनेवाला, वेचाउ लेनेवाला और सम्मती देनेवाला ये पांचो जन पापसें लिप्त होते हैं और पशुके शरीरपर जितने वाल है उतने हझार वर्षतक वे नरकमें दुःख पाते हैं. १–२

शांतिपर्वमें लिखा है किः—

यू पंछित्वा पशुन् हत्वा कृत्वा रुधिर कर्दमान् ॥
यद्येवं गम्यते सर्गे नरके केन गम्यते ॥ ३

अर्थः—[महाभारतांतर्गत शांतिपर्वमें कहा है कि] यज्ञ स्तंभकों और पशुओंकों छेदकरकें पृथिवीपर लोहुका कीचड कर स्वर्गमें जावे तो फिर नरकमें जानेवाले कौन बाकी में रहे ? याने यज्ञकर और पशु वगैरः जीवोकों मारनेवालाही नरकमें जाता है; वास्ते पशुघात और यज्ञ होमादि करनेसें ऐसे फल होते है. ३

मार्कंडपुराणमें कहा है किः—

जीवाना रक्षणं श्रेष्ठं जीवाः जीवितकांक्षिणः ॥
तस्मात् समस्तदानेभ्योभयदानं प्रशस्यते, ॥ ४ ॥

अर्थः—जीवोंका रक्षण करना यही उत्तम है. जीवभी अपने जीवितकी इच्छा करते हैं; वास्ते सव-दानोंसें जीवोंकों अभयदान दैना ये अधिक है. अभयदानकी कितनी महत्ता वतलाइ है ? युं फरमान होनेपरभी पशुका होम करना ये कितनी बालचेष्टा है ? वास्ते तमाम धर्ममें किसीकों दुःख न होवै ऐसा चलन रखना वही सच्चा धर्म है. ४

पुनः उसी पुराणमें अष्ट पुष्प कहे हैः—

अहिंसा परमपुण्यं पुष्पं इंद्रिये निग्रहम् ॥
सर्व भूत दया पुष्पं क्षमा पुष्प विशेषतः ॥ ५ ॥
ध्यान पुष्पं तपः पुष्पं ज्ञान पुष्पं तु सप्तमम् ॥
सत्ये चैवाष्टमं पुष्प तेन पुष्यंति देवता. ॥ ६ ॥

अर्थः--उसी पुराणमें ' जीवानां रक्षणं श्रेष्ठं ' ऐसा कहा है वहांही अष्टपुष्पका कथन है कि-हिंसा न करनी ये प्रथम पुष्प है, इंद्रियोंकों वश्य करनी ये दूसरा पुष्प है, सर्व जीवोंपर दया रखनी ये तीसरा पुष्प हैं, शांति रखनी ये चौथा पुष्प है, ध्यान करना ये पांचवा पुष्प है, तप करना ये छठ्ठा पुष्प है, ज्ञान मिलाना ये सातवा पुष्प है, और सत्य भाषन करना ये आठवा पुष्प है कि ये पुष्पोंसें देवता प्रसन्न रहते हैं. ५-६

फिर महाभारतमें लिखा है किः—

यूकामत्कुनदंशीमसात् जंतुश्च तुदति तनूं ॥
पुत्रवत् परिरक्षंति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ७ ॥
आत्मपादी य ये घ्नंति ते वै नरकगामिनः ॥
सर्वत्रकार्या जीवानां-रक्षाचैवापराधिनाम् . ॥ ८ ॥

अर्थः—जु, खटमल, मछर वगैरः जंतु जो शरीरकों काटते हैं, उसकों पुत्रकी तरह रक्षण करता है वो प्राणी स्वर्गमें जाने योग्य है. और जो मनुष्य जीवोंके शरीर या पांउकों छेदता है वो नरकमें जाता है; वास्ते अपराधी जीवोंकीभी सब प्रकारसें रक्षा करनी यही मुख्य धर्म है. ७-८

पुनः महाभारतमें कहा है किः—

विंशत्यंगुलमानंतु त्रिंसदंगुलमायतम् ॥
तद्वस्त्रं द्विगुणिकृत्य गालयित्वापिवेत् जलम् ॥ ९ ॥
तस्मिनवस्त्रेस्थितान् जीवान् स्थापयेत् जलमध्यतः ॥
एवं कृत्वा पिवेत् तोयं स याति परमांगतिम् . ॥ १० ॥

अर्थः—वीस अंगुल विशाल और त्रीस अंगुल लंबा वस्त्र हो उसें दुपट करकें पानी छानकर पीना और उस वस्त्रकी अंदर रहे हुवे जीवोंकों कूवे वगैरःमें डाल देना. इसतरह करकें जो मनुष्य पानी पीता है वो उत्तमगतिकों पाता है. ९-१०

इस तरह महाभारतके वचन हैं; तथापि संन्यासी पुराणी होकर अनछाना जल पीते है या न्हाने धोनेके काममें लेते हैं उनकी क्या गति होवैगी ? वो महाभारत पढने सुनेवाले लक्ष नहीं देते है वो कैसी बालदशा है ? आत्मार्थीयोंकों अवश्य दया करनीही योग्य है.

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेत् जलम् ॥
सत्यपूतं वदेत् वाक्यं मनः पूतं समाचरेत् ॥ ११ ॥

अर्थः—आंखोंसें देखकर पांव रखना, कपडेसें छानकर पानी पीना, सत्यसें वचन बोलना और मन पवित्रसें आचरना.

पुनः महाभारतमें कहा है किः—

संग्रामेण यत् पापं अग्निना भस्मसात्कृतम् ॥
तत्पापं जाय ते तस्य मधुबिंदु प्रभक्षणात् ॥ १२ ॥

अर्थः—महान् युद्ध करनेसें जितना पाप होता है और अग्निसें गाँव वगैरः जलानेसें जितना पाप होता है, उतना पाप सहतका बिंदु खानेसें होता है. सहत खानेमें ऐसा पाप है तोभी शास्त्र पढानेवाले सहतका त्याग नहीं करते हैं सुनेवाले तो सहतका त्याग करेंही कैसें ? वास्ते प्रथम कथा वांचनेवालोंकों दयालुतासें सहत खानेका त्याग करना कि जिससें श्रोताजनभी सुधारा कर सकें. १२

विष्णुपुराणमें कहा है किः—

ग्रामाणां सप्तके दग्धे यत् पापं समुपद्यते ॥
तत् पापं जायते पार्थ जलस्यागलिते घटे ॥ १३ ॥
संवत्सरेण यत् पापं, कैवर्त्तस्यैव जायते ॥
एकाहेन तदाप्नोति अपूतजल संग्रही. ॥ १४ ॥

अर्थः—हे पार्थ ! सात गाँव जलादेनेसें जितना पाप होता है उतना पाप घडेमें छाने बिगरका पानी भरनेसें होता है. मच्छीमार वर्ष दिनतर्क जाल डालनेसें जितना पाप होवै उतना पाप एक दिन छाने बिगरका जलका उपयोग करनेवालोंकों होता है. १३—१४

पुनः उसी पुराणमें कहा है किः—

यःकुर्यात् सर्वकार्याणी वस्त्रपूतेन वारिणा ॥
स मुनिः स महासाधु स योगी स महाव्रती. १५

अर्थः—जिस कपडेसें छाने हुवे पानीसें करकें सब काम करता है वोही मुनी वोही बडा साधु, वोही योगी और वोही बडा व्रतवाला जानना. १५

पुनः इतिहास पुराणमें कहा है किः—

अहिंसा परमंध्यानं अहिंसा परमंतपं ॥
अहिंसा परमंज्ञानं अहिंसा परमंपदम् ॥ १६ ॥
अहिंसा परमंदानं अहिंसा परमोदमः ॥
अहिंसा परमोजाप अहिंसा परमंशुभम् ॥ १७ ॥
तमेवमुत्तमं धर्ममहिंसाधर्मरक्षणम् ॥
ये चरन्ति महात्मानः विष्णुलोकं व्रजन्ति ते. ॥ १८ ॥

अर्थः—अहिंसा यही उत्तम ध्यान है, अहिंसा वही उत्तम तप है, अहिंसा वही उत्तम ज्ञान है. अहिंसा वही उत्तम पद है, अहिंसा वही उत्तम दान है, अहिंसा वही उत्तम दम है, अहिंसा वही उत्तम जाप है, अहिंसा वही उत्तम शुभ है और अहिंसा रूप धर्म करना यही उत्तम धर्म है. उस धर्मका जो महात्मा आचरण करते है वे विष्णुलोकमें जाते हैं. १६–१८

नागपडल ग्रंथमें श्रीकृष्णजीने युधिष्ठिरसें कहा है किः—

अभक्ष्याणि न भक्ष्याणि कंदमूलानी भारत ॥
नूतनोद्गमपत्राणि वर्जनीयानी सर्वतः ॥ १९ ॥

अर्थः—हे भारत! कंदमूल अभक्ष्य हैं वे न खाने चाहियें और नये पैदा हुवें अंकुरादिके पत्र वगैरःभी त्याग करने चाहियें. इसतरह कहे हुवे परभी कंदमूल, जमीकंद–सक्करकंद पटाटे रतालु वगैरः एकादशीके रोज याने एकादशीव्रत करकें खाते है उसका कितना पाप है वो बुद्धिमानकोंही विचार कर लैना योग्य है.

मदिराके लिये कहा है किः—

मधुपाने मतिभ्रंशो नराणां जायते खलु ॥
धर्मेणतेभ्योदातॄणां न ध्यान न च सत्क्रिया. ॥ २० ॥
मद्यपाने कृतेक्रोधो मान लोभश्च जाय ते ॥
मोहश्च मत्सर श्चैव दुष्टभाषणमेवच ॥ २१ ॥
मद्यमांसे मधुनि च नवनीते वहिःकृते ॥
उत्पद्यंते विलीयंते सु सूक्ष्मजंतुराशयः ॥ २२ ॥

अर्थः—दारु पीनेसें मनुष्योंकी बुद्धिका भ्रंश होता है उससें पापाचरण करते हैं; वास्ते वैसेकों कोइ वस्तु देनेसें धर्म नहीं होता है. मदिरा पीनेवालोंकों ध्यान और सत्क्रिया फल रहित होती है. मदिरा पीनेसें क्रोध, मान, लोभ, मोह, मत्सर होता है और दुष्ट भाषणका उपयोग किया जाता है. औरभी कहा है कि मदिरा, मांस, सहत और छांसमेंसें वहार निकाला गया मख्खनमें सूक्ष्म जंतुका समूह पैदा होता है और नाशभी होता है. मख्खनका दोष कहा है तोभी अन्यदर्शनी उसका कुछ दोष नहीं गिनते हैं और कहते है कि शास्त्रसें विरुद्ध नहीं हैं, इस वास्ते न्यायीकों इस श्लोकसें शोचनेकी जरूरत है. २०–२२

अभक्ष्य भक्षणके दोष संबंधमें कहा है किः—

पुत्रमांस वरमुक्तं न तु मूलकभक्षणम् ॥
भक्षणात् नरकं यांति वर्जनात्सवर्गमाप्नुयात् ॥ २३ ॥

अर्थः—पुत्रका मांस खाना सो अच्छा, परंतु मूला खाना बुरा है. मूला खानेसें प्राणी नरकमें जाता है और उसका त्याग करनेसें स्वर्गमें जाता है. २३

इतिहास पुराणमेंभी लिखा है किः—

यस्तु वृंताक कालिंग मूलकानां च भक्षकः ॥
अंतकाले स मूढात्मा न स्मरिष्यति मां प्रिये. ॥२४॥

अर्थः—हे प्रिये ! वेंगन, कलिंगड और मूले खानावाला प्राणी अंतकालमेंभी मुझकों याद न कर सकैगा याने ये चीज खानेवाला अधर्मी होता है उससें अंतसमय मुझकों याद न करनेसें वो दुर्गतिमें जाता है. २४

शिवपुराणमेंभी कहा है किः—

यस्मिन् गृहे सदा नाथ, मूलकं पचति जनः ॥
श्मशान तुल्यं तद्वेश्म पितृभिः परिवर्जितम् ॥ २५ ॥
मूलकेन समं भोज्यं यस्तु भुंक्ते नराधमः ॥
तस्यबुद्धि नं चंभेत चांद्रायण शरीरीण. ॥ २६ ॥
भुक्तं हलाहलं तेन कृतं चा भक्ष्य–भक्षणम् ॥
वृंताक भक्षणाच्चापि नरायांत्येव रौरवम् ॥ २७ ॥

अर्थः—हे नाथ! जिसके मकानमें हमेशां मूलेका शाख या उसके साहित भाजी तैयार की जाती है उसका मकान श्मशान (मरघट) के समान है, और उस मकानका पि-

लोगोंने त्याग किया है. मूलेके साथ जिस चीजका जो भोजन करता है वो मनुष्य अधम गिना जाता है—और उसकी बुद्धि चांद्रायणादि व्रतोंसे करकेभी शुद्ध नहीं होती. जिसने अभक्ष्य—मूले, बेंगन वगैरः खाया होवे उसने हलाहल झहर पीया है ऐसा समझना और वो प्राणी अंतमें रौरव नामक नरकमें जाता है. २५-२७

पद्मपुराणमें कहा है कि:—

गोरसं माषमध्ये तु मुद्गादिके तथैव च ॥
भक्षयेत्त भवेत् नूनं मांसतूल्यं युधिष्ठिर. ॥ २८ ॥

अर्थः—हे युधिष्ठिर ! दूध, दहीं, छास ये उर्दसें मुंगमें या दाल होनेवाले द्विदलमें डालनेसें वो मांस तूल्य हो जाते हैं; वास्ते ये खाना और मांस खाना ये दोनु बरोबर है. २८

रात्रीभोजनके बारेमेंभी कहा है कि:—

अस्तंगते दिवानाथे आपोरूधिर मुच्यते ॥
अन्नमांससमंप्रोक्तं मार्कंडेन महर्षिणा. ॥ २९ ॥
चत्वारो नरकद्वारः प्रथमं रात्रिभोजनम् ॥
परस्त्रिगमनं चैव संधानानन्तकायिका. ॥ ३० ॥

अर्थः—सूर्य अस्त हुवे बाद पानी पीना सो लोहीके समान है, और अन्नसके समान है. नरकके चार द्वार हैं उसमें प्हेला रात्रिभोजन, दूसरा परस्त्रीगमन, तीसरा आचार वगैरः खाना और चौथा मूले वगैरः अनंतकाय भक्षण करना सो हैं.

इस श्लोकमें रात्रीभोजन, परस्त्रीगमन, धूप वतलाये हुवे विगरका आचार कि जिसमें जंतु पड जाते हैं, और अनंतकाय याने मूले विगरमें अनंतजीव है इन चारोंका नरकगामी है; ऐसा बतलाया है वास्ते इन्होंका त्याग करना. २९-३०